DHANVAN TARI

1959 G. K. U.

077663

COMPILED

077863

Stock Verification-2[illegible]

जनवरी
आ

COMPILED

आवश्यक सूचना

गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी कागज का समय पर प्रबंध न हो सकने के कारण जनवरी का साधारण अंक प्रकाशित कर आपकी सेवा में प्रेषित है। आगामी अंक विशेषांक प्रकाशित किया जायगा। विस्तृत विवरण इसी अंक के अन्दर प्रारम्भ में दिया है कृपया इसे अवश्य पढ़ लीजियेगा। अपना वार्षिक मूल्य यदि आपने अभी तक न भेजा हो तो अब भेज दीजियेगा। यदि किसी कारण आपको ग्राहक न रहना हो तो पत्र द्वारा अवश्य सूचित करदें। विशेषांक वी. पी. द्वारा पहुँचने पर वापिस करना हमारे साथ घोर अन्याय होगा, एसा आप कदापि न करें यह हमारी करबद्ध प्रार्थना है। कायचिकित्सांक तथा अप्रैल का साधारण अंक दोनों एक साथ अप्रैल के अन्त में या मई के प्रारम्भ में गत वर्ष के समान ही भेजे जांयगे। नवीन ग्राहक बनाने का भी प्रयत्न कीजियेगा।

—व्यवस्थापक।

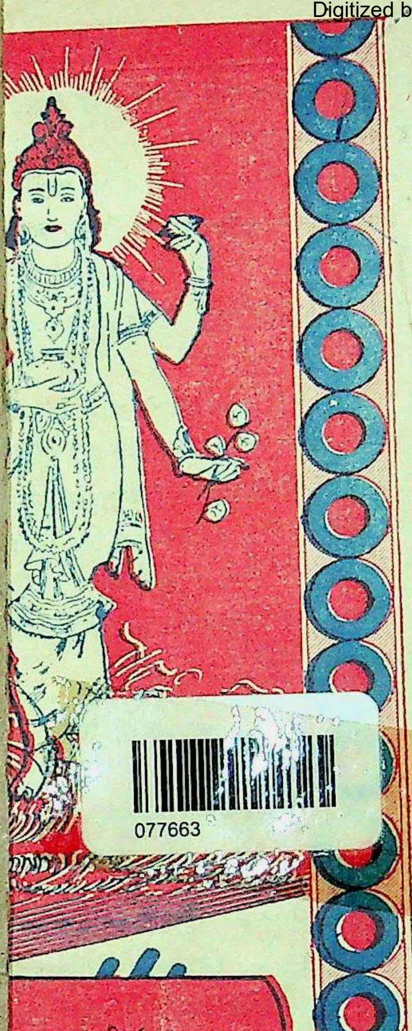

077663

जनवरी १९५९

न्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

दक :- वैद्योपाध्याय देवीशरण गर्ग. ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी. एस-सी.

—धन्वन्तरि के ग्राहक बनने के नियम—

१—धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य ५॥) है। तथा एक वर्ष से कम के लिए ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

२—धन्वन्तरि का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है तथा दिसम्बर में समाप्त हो जाता है।

३—धन्वन्तरि के ग्राहक वर्ष के प्रारम्भ अर्थात् जनवरी से ही बनाए जाते हैं। वर्ष में जब भी चाहें ग्राहक सकते हैं, लेकिन जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क भेजकर नवीन ग्राहक को भी जनवरी ग्राहक बना लिया जाता है।

४—प्रतिवर्ष एक विशाल-सचित्र विशेषाङ्क प्रकाशित किया जाता है। यह विशेषाङ्क भी ग्राहक को उक्त व मूल्य ५॥) के अन्तर्गत ही मिलता है।

५—ग्राहक को किसी भी माह का अङ्क मिलने पर यह देख लेना चाहिये कि उससे पहले माह का अङ्क है या नहीं। यदि नहीं मिला है तो तुरन्त अपना पूरा पता तथा ग्राहक नम्बर लिखते हुए सूचित क चाहिये। वर्ष के अन्त में या ४–६ माह बाद एक साथ ४-४, ६-६ अङ्कों की शिकायत लिखना उचित नहीं

६—धन्वन्तरि के प्रकाशन में हमको बहुत घाटा रहता है। अतः इसके वार्षिक मूल्य में हम किसी को, प्रकार की रियायत नहीं करते। अतएव कमीशन या रियायत के विषय में लिखना व्यर्थ होगा।

७—वार्षिक मूल्य पहिले ही मनियार्डर से भेजना चाहिये। या जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अ और विशेषाङ्क वार्षिक मूल्य ५॥) की वी. पी. से भेजन् की आज्ञा देनी चाहिये।

जनवरी १९५९, भाग ३३ अङ्क १ की

विषय-सूची

स्वस्थवाणी (कविता)	—श्री कपूरचन्द्र विद्यार्थी	१
कालिदास का आयुर्वेदिक ज्ञान	—पं० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी	२
विनीत प्रार्थना	—व्यवस्थापक-धन्वन्तरि	३
च्यवनप्राश	--पं० बाबूराम शर्मा	४
धन्वन्तरि रहस्य	—कवि. रामनाथ वैद्य	८
एलोपैथिक दवाओं का प्रयोग न करें	—वैद्य बद्रीनारायण शर्मा	१०
अधिमन्थ (ग्लाकोमा)	—डा० रमेशचन्द्र गर्ग	१३
प्राणशक्ति	--श्री राजेन्द्रकुमार शास्त्री	१८
चकौड़ा बूटी	--वैद्य आत्माराम बर्वे	२०
पाठ्यक्रम का अध्ययन	--श्री कृष्णकुमार एम. ए.	२२
गुप्तसिद्धप्रयोग	--जती चन्द्रशेखर जी	२६
परीक्षित प्रयोग	... ...	२७
समाचार एवं सूचनाएं	... ...	२८
संक्षिप्त समाचार	... ...	३०

धन्वन्तरि के

-ग्राहक बनाइये-

धन्वन्तरि आयुर्वेद का सर्वोत्त सचित्र हिन्दी-मासिकपत्र है इसके विशाल विशेषाङ्कों आयुर्वेद साहित्य सृजन में ए क्रांति पैदा की है। इस वर्ष विशेषांक पहिले सभी विशेषां से उत्तम एवं उपयोगी साहि प्रस्तुत करेगा। लगभग ६० पृष्ठ, सैंकड़ों चित्र फिर भी वार्षि मूल्य ५॥) में ही वर्ष के अन अङ्कों सहित मिलेगा। स्वय ग्राहक बनें तथा अपने परिचि अन्य वैद्यों को ग्राहक बनावें।

मुद्रक —वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि प्रेस विजयगढ़
प्रकाशक--वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि कार्यालय, विजयग
वार्षिक मूल्य ५॥) एक अङ्क का ॥

हैं।
चाहें ग्राहक
जनवरी
ी उक्त व
का अङ्क।
सूचित क
चित नहीं
ी को, वि
।
काशित अ

के
ाइये-
का सर्वोत्त
कपत्र है
ोषाङ्कों
जन में ए
स वर्ष
विशेषां
ी साहित
भग ६०
भी वार्षि
के अन
। स्वय
परिचित
बनावें।
रण गर्ग
विजयगढ़
रण गर्ग
विजयग
ङ्क का।।

जनवरी-फरवरी
विशेषांक प्रकाशि
न्तु गत दो वर्षों
अंक ही प्रकाशित
है। इसका कारण—
१. विशेषांक के लि
सेंस हमको मि
न्यूज़प्रिंट काग
है। चीन से
किन्तु उसके भा
वहां से रेल द्वा
एक माह अवश्
कागज आजाने
प्रारम्भ किया
षांक के छपने
देरी के कारण
जनवरी का
वस्तुस्थिति आ
२. कागज आते ही
की जायगी तथ
तैयार करने का
किन्तु इसकी वि
को समझते हुए
अप्रैल के अंक
में अवश्य भेजने
३. यह विशेषांक ल
उपयोगी चित्रों
महान पण्डितों
विशेषांकों से अ
साहित्य होगा
विश्वास दिलाते
की जो परम्परा

असली व अत्युत्तम

अष्टवर्ग–युक्त

च्यवनप्राश अवलेह

ताजे आंवलों

से बना

इसी समय मिल सकता है। हमारे सभी ग्राहकों, एजेन्टों एवं वैद्यों को इसी समय अधिक से अधिक तादाद में च्यवनप्राश मंगाकर रख लेना चाहिए। इस समय ताजे आंवले व अत्युत्तम अष्टवर्ग से बना हुआ च्यवनप्राश बहुत बड़ी तादाद में तैयार किया जा रहा है।

(२० दिन के लिए रियायती मूल्य)

–रियायत निम्न प्रकार होगी–

[तारीख २५ फरवरी से १६ मार्च सन् १९५६ तक]

निम्न सुविधा दी जा रही है। आशा है कि इस सुविधा से हमारे सभी ग्राहक लाभ उठावेंगे।

१—एक पाव की एक शीशी का मूल्य १=) होगा।
आध सेर की एक शीशी का मूल्य २।) होगा।
२—१२ शीशी एक साथ मंगाने पर १ शीशी बिना मूल्य दी जायगी।
३—तीन दर्जन (३६) शीशियां एक साथ मंगाने पर ४ शीशी बिना मूल्य दी जांयगी।
४—६ दर्जन (७२) शीशियां एक साथ मंगाने पर ९ शीशियां बिना मूल्य दी जांयगी।
५—१२ दर्जन (१४४) शीशियां एक साथ मंगाने पर २० शीशियां बिना मूल्य दी जांयगी।

कुछ न कुछ वृद्धि ही करेगा ऐसा हमको दृढ़ विश्वास है।

४. धन्वन्तरि को उत्तरोत्तर उन्नति पथ पर बढ़ाने में हमारे वे कृपालु ग्राहक बहुत सहायक होते हैं जो कृपा कर धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक

ह [illegible]क व अनुभवपूर्ण लेख प्रयोगादि अवश्य भेजें। इस वर्ष इन अंकों को साधारण अंकों से अधिक बड़ा तथा सचित्र सुन्दर प्रकाशित करेंगे तथा पाठक इन दोनों रोगों के विषय में उपयोगी अनुभवपूर्ण साहित्य प्राप्त कर सकेंगे।

077 663

—धन्वन्तरि के ग्राहक बनने के नियम—

नियम

१—च्यवनप्राश अवलेह रेलवे पार्सल से ही भेजा जा सकेगा। अतएवं पास का रेलवे स्टेशन पत्र में अवश्य लिखना चाहिए।

२—तीन दर्जन या अधिक शीशियां एक साथ मंगाने पर सवारी गाड़ी का आधा किराया कार्यालय देगा तथा आधा किराया ग्राहक को देना होगा।

३—तीन दर्जन से कम मंगाने पर सभी व्यय पैकिंग, पोस्टेज, रेलभाड़ा आदि ग्राहक को देना होगा।

४—यह रिआयत केवल २० दिन (२५ फरवरी से १६ मार्च तक) के लिये है, बाद में नहीं दे सकेंगे।

५—एक ग्रौस एक साथ मंगाने वाले को ५०० विज्ञापन वितरणार्थ तथा कपड़े का एक सुन्दर बोर्ड भी भेजा जायगा।

—इस अवसर पर—

एक साथ मंगाने वालों के लिये खास भाव नीचे दिये जाते हैं। जो वैद्य हैं और अधिक तादाद में मंगाकर रखना चाहते हैं वे इन भावों पर मंगा सकते हैं—

५ सेर च्यवनप्राश एक डिब्बे में	१८)
१० सेर च्यवनप्राश २ डिब्बों में	३५॥)
२० सेर च्यवनप्राश १ टीन में	७०)
१ मन च्यवनप्राश २ टीन में	१३५)

नोट—१-२० सेर मंगाने पर सवारी गाड़ी का आधा रेल भाड़ा कार्यालय देगा। कम मंगाने पर ग्राहक को पूरा देना होगा।

२—५ सेर च्यवनप्राश एक कनस्तरी में सुरक्षित पैकिंग में पोस्ट से भेजा जा सकता है। पैकिंग पोस्ट व्यय ६॥) पृथक लग जांयगे अर्थात् २४॥) में ५ सेर च्यवनप्राश आपको घर बैठे प्राप्त हो जायगा। २४॥) मनियार्डर से भेजकर ५ सेर च्यवनप्राश प्राप्त करें।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

ए ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।
प्त हो जाता है।
वर्ष में जब भी चाहें ग्रा
क को भी जनवरी
ग्राहक को उक्त व
ले माह का अङ्क
खते हुए सूचित क
लखना उचित नहीं
हम किसी को,
र्थ होगा।
तक के प्रकाशित प्र

न्तरि के

बनाइये-

ायुर्वेद का सर्वोत्त
ी-मासिकपत्र है
त विशेषाङ्कों
हित्य सृजन में प
ी है। इस वर्ष
से सभी विशेषां
उपयोगी साहि
। लगभग ६०
वत्र फिर भी वार्षि
ों ही वर्ष के अन्
मिलेगा। स्वयं
या अपने परिचित
ग्राहक बनावें।

देवीशरण गर्ग
रि प्रेस विजयगढ़
देवीशरण गर्ग
ार्यालय, विजयग

संक्षिप्त समाचार ३०

वार्षिक मूल्य ५॥) एक अङ्क का ॥

वि
न्तु
ंक
है।
१. वि
२.
३.
४.

अवश्य पढ़िये

जनवरी-फरवरी १९५६ का संयुक्तांक काय-कित्सांक प्रकाशित करने की घोषणा की गई थी न्तु गत दो वर्षों की भांति जनवरी का साधारण अंक ही प्रकाशित करना उचित प्रतीत हुआ है। इसका कारण—

१. विशेषांक के लिये न्यूजप्रिंट कागज का लाइसेंस हमको मिल गया है तथा उस लायसेंस से न्यूज़प्रिंट कागज सीधा चीन से मंगाया गया है। चीन से कागज जहाज पर लद गया है किन्तु उसके भारतीय बंदरगाह पर आने तथा वहां से रेल द्वारा हमारे स्टेशन तक आने में एक माह अवश्य लग जाने की सम्भावना है। कागज आजाने पर ही विशेषांक का छपना प्रारम्भ किया जा सकेगा। ऐसी दशा में विशेषांक के छपने में विलम्ब हो सकता है। इस देरी के कारण हमारे पाठक अधीर न हों अतः जनवरी का अंक साधारण प्रकाशित करके वस्तुस्थिति आपके समक्ष रखदी है।

२. कागज आते ही विशेषांक की छपाई रात-दिन की जायगी तथा शीघ्र से शीघ्र उसे छापकर तैयार करने का भरसक प्रयत्न किया जायगा किन्तु इसकी विशालता और कार्य की गुरुता को समझते हुए पाठक कुछ धैर्य रखें। विशेषांक अप्रैल के अंक के साथ अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में अवश्य भेजने का प्रयत्न किया जायगा।

३. यह विशेषांक लगभग ६०० पृष्ठ का, सैकड़ों उपयोगी चित्रों से सुसज्जित तथा आयुर्वेद के महान पण्डितों का सहयोग प्राप्त पिछले सभी विशेषांकों से अधिक सुन्दर तथा अति उपयोगी साहित्य होगा इसका हम आपको पुनः पनः विश्वास दिलाते हैं। धन्वन्तरि के विशेषांकों की जो परम्परा बन गई है उसमें यह विशेषांक कुछ न कुछ वृद्धि ही करेगा ऐसा हमको दृढ़ विश्वास है।

४. धन्वन्तरि को उत्तरोत्तर उन्नति पथ पर बढ़ाने में हमारे वे कृपालु ग्राहक बहुत सहायक होते हैं जो कृपा कर धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाकर हमारी सहायता करते तथा हमको इस पुनीत कार्य के लिये उत्साहित करते रहते हैं। अतएव हम सभी ग्राहकों से बार-बार निवेदन करते हैं कि वे इस वर्ष २-२ नवीन ग्राहक अवश्य बनादें इससे हमको बड़ी सहायता मिलेगी। आशा है आप हमारे निवेदन पर अवश्य ध्यान देंगे।

५. इस वर्ष का वार्षिक मूल्य यदि आपने न भेजा हो तो कृपा कर अवश्य भेज दीजियेगा। वी० पी० से रुपया देने तथा मनीआर्डर से भेजने में आपके लिये कोई अन्तर नहीं, लेकिन हमारे लिये बड़ी सुविधा और सहायता होगी। आशा है आप शीघ्र ही मनियार्डर से रुपया भेज देंगे। दिसम्बर के अंक में मनियार्डर फार्म भेज चुके हैं। जो राजसंस्करण मंगाना चाहें वे ६॥) मनियार्डर से भेजें।

६. जो सज्जन किसी कारण धन्वन्तरि के इस वर्ष ग्राहक न रहना चाहें वे कृपया सूचना अवश्य देदें। बार-बार निवेदन करने पर भी सूचना न देकर, वी० पी० पहुंचने पर लौटाना बड़ा अनैतिक कार्य है तथा इस कार्य से धन्वन्तरि को बड़ी हानि होती है। अतएव धन्वन्तरि से बिदा लेने वाले ग्राहकों से करबद्ध निवेदन है कि वे ग्राहक न रहने के अपने निश्चय की सूचना पत्र द्वारा अवश्य दे दें।

दो लघु विशेषांक

७. गत वर्ष माता अंक तथा भगन्दर अंक प्रकाशित किए गये थे जिनको पाठकों ने अत्यधिक पसंद किया। इसी प्रकार आगामी वर्ष श्वास रोग तथा मधुमेह रोग पर उपयोगी साहित्य संग्रह कर २ लघु विशेषांक प्रकाशित किये जायंगे। लेखकों तथा अनुभवी चिकित्सकों से प्रार्थना है कि वे अनुभवपूर्ण लेख प्रयोगादि अवश्य भेजें। इस वर्ष इन अंकों को साधारण अंकों से अधिक बड़ा तथा सचित्र सुन्दर प्रकाशित करेंगे तथा पाठक इन दोनों रोगों के विषय में उपयोगी अनुभवपूर्ण साहित्य प्राप्त कर सकेंगे।

077 663

८. आगामी वर्ष के साधारण अंकों को अधिक उपयोगी, सारपूर्ण तथा आकर्षक बनाने के लिये हम एक रूपरेखा बना रहे हैं जिसका विस्तृत विवरण विशेषांक के बाद के अंक में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करेंगे।

९. पाठकों तथा विद्वानों से भी निवेदन है कि वे धन्वन्तरि को अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिये अपने सुझाव तथा अपना सहयोग अवश्य प्रदान करते रहें।

कायचिकित्साङ्क

सम्प्रति कायचिकित्सा ही आयुर्वेद का जीवित एवं प्रभावशाली अङ्ग है, इस अंग के कारण आयुर्वेद आज टिका हुआ है तथा जनता में इसका पूर्ण प्रभाव है। किन्तु यह अङ्ग भी उत्तरोत्तर शिथिल होता जारहा है अतः इस कारण आयुर्वेद दिन-प्रतिदिन गिर रहा है। उस अंग को पुनः पुष्ट करने तथा आयुर्वेद का सम्मान पूर्ववत् बनाने के लिए ही इस विशाल विशेषांक का निर्माण बड़े परिश्रम तथा प्रचुर धन व्यय करके किया जारहा है। आयुर्वेद के महान पण्डितों तथा अनुभवी वयोवृद्ध चिकित्सकों के सहयोग से जो साहित्य इस विशेषांक द्वारा आपके समक्ष प्रस्तुत किया जायगा उसे आप पसन्द ही नहीं करेंगे प्रत्युत अपने चिकित्सा व्यवसाय में, अपनी ज्ञानवृद्धि में सहायक पायेंगे। इतना सस्ता तथा इतना उपयोगी साहित्य पाठकों को अन्यत्र नहीं मिल सकेगा यह हम डंके की चोट कहते हैं।

आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए तो यह विशेषांक— कायचिकित्सा विषयक अधिकारपूर्ण पुस्तक के अभाव की पूर्ति करते हुए एक वरदान सिद्ध होगा।

पाठक धैर्य रखें

कहावत है कि दुधारु गाय की लात भी सहन करना उचित है। धन्वन्तरि द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले इस महान उपयोगी विशेषांक के प्रकाशन में यदि कुछ देरी भी हो जाय तो पाठकों को परेशान नहीं होना चाहिए। हम भरसक प्रयत्न करते हैं कि पाठकों को विशेषांक समय पर ही दे सकें लेकिन कोई न कोई बाधा उपस्थित हो ही जाती है और विशेषांक लेट हो जाता है। विशेषांक के लेट हो जाने के कारण ही बाद के अंक भी लेट हो जाते हैं। किन्तु हम चेष्टा करेंगे कि विशेषांक के बाद अंक शीघ्र ही प्रकाशित कर धन्वन्तरि को समय पर ही प्रकाशित किया जाय।

लेखकों से निवेदन

धन्वन्तरि के मान्य लेखकों से प्रार्थना है कि वे धन्वन्तरि के आगामी साधारण अङ्कों के लिये उपयोगी लेख भेजने की कृपा करें। दो लघु विशेषांक मधुमेह एवं श्वासरोग पर प्रकाशित किये जांयगे जैसा कि हम धन्वन्तरि के पूर्व अंकों में सूचित कर चुके हैं। आशा है आप इनके लिए भी अपने लेख अवश्य ही भेजने की कृपा करेंगे।

शारीरिक-चित्र

ये चित्र अनेक रङ्गों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये हैं। इन सभी चित्रों का साइज एक समान २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढ़े हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी अवयवों का विवरण हिन्दी में लिखा गया है।

नं० १–अस्थिपञ्जर—

इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढङ्ग से दर्शाया गया है। अंगुलियों की, पैर की, रीढ़ की, छाती की सभी अस्थियां स्पष्ट समझ में आ सकती हैं। मूल्य ५)

नं० २–रक्त परिभ्रमण—

इस चित्र में शुद्ध-अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिरायें अपने प्राकृतिक रंगों में दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्त-भ्रमण का प्रथक् चित्र है। हृदय एवं सम्बन्धित शिरा-धमनी का पृथक् चित्र दिया गया है। एक हाथ और एक पैर में सम्पूर्ण धमनी तथा दूसरे हाथ और दूसरे पैर में शिरायें दर्शाई हैं। मूल्य ५)

नं० ३–वातनाड़ी संस्थान—

इस चित्र में सम्पूर्ण वात-नाड़ी मण्डल (Nervous System) का सुन्दर [illegible] किया गया है। ऊर्ध्व-वात नाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क के सम्बन्ध का चित्रण पृथक् किया गया है। चित्र अपने ढङ्ग का निराला है। मूल्य ५)

नं० ४—नेत्र रचना एवं दृष्टि-विकृति—

इस चित्र में पृथक्-पृथक् ६ चित्र हैं। १-दक्षिण चक्षु-इसमें चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाये हैं। २—पटलों और कोष्ठ को दिखाने के लिये चक्षु का क्षितिजकाट। ३—चक्षु से सम्बन्धित नाड़ी। ४—दृष्टि-भेद (दर्शन सामर्थ्य)। ५—साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ में आजाएगा। मूल्य ५)

चारों चित्र एक साथ मंगाने पर मूल्य १६)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीग)

रजिस्टर्ड चिकित्सकों

के लिए

रोगी रजिष्टर—

चिकित्सार्थ आने वाले रोगियों का विवरण लिखने के लिये सभी आवश्यक कालम युक्त, चिकने ग्लेज कागज पर छपा २०० पृष्ठ का सजिल्द रजिष्टर। मूल्य ३)

रोगी प्रमाणपत्र—

अवकाश प्राप्त करने के लिये दिया जाने वाला प्रमाणपत्र, दुरंगे सुन्दर छपे हुए, ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका हिन्दी में मूल्य १), बड़े साइज में अंग्रेजी में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)

स्वस्थ प्रमाणपत्र—

अवकाश के पश्चात् कार्य पर जान के पूर्व स्वस्थ होने का प्रमाणपत्र देना होता है, उसी प्रमाणपत्र की ५० प्रति की पुस्तिका हिन्दी में मूल्य १), बड़े साइज में अंग्रेजी में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)

रोगी व्यवस्थापत्र—

रोगियों को दिये जाने वाले दैनिक परचे, १० हिदायतें छपी हुई हैं। मूल्य ।≈) प्रति सैकड़ा।

आघात प्रमाणपत्र—

चोट लग जाने पर दिये जाने वाले फुलस्केप साइज में छपे २५ प्रमाणपत्रों की पुस्तिका मूल्य १)

तापमान चार्ट—

रोगी का तापमान प्रतिदिन ४ समय का १२ दिन तक अङ्कित करने के लिये उपयोगी फार्म। २५ फार्मों का मूल्य १)

सभी चिकित्सकों के लिये इन चीजों को मंगाकर अवश्य रखना चाहिये।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

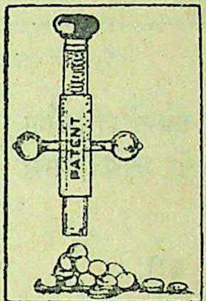

टेबलेट्-मशीन—

थोड़ी तादाद में टेबलेट बनाने के लिये उपयोगी मशीन है। टेबलेट तीन साइज की बनाई जा सकती हैं। निकिल पालिश-युक्त मशीन का मूल्य ११)

औषधि-पेटी—

प्रत्येक चिकित्सक के लिये आवश्यक है कि चिकित्सार्थ या अन्य आवश्यक कार्य निमित्त जाते समय यात्रा में औषधियां साथ रखे। चिकित्सक को हर स्थान पर रोगी मिल जाते हैं उस समय औषधियां पास न रहने पर बड़ी असुविधा होती है। इसलिये औषधि-पेटी चिकित्सकों के लिये अत्यन्त आवश्यक है। हमने केवल एक प्रकार की सुन्दर टिकाऊ औषधि-पेटी तैयार कराई है विवरण निम्न प्रकार है—

नाप—ऊंचाई ७। इञ्च, लम्बाई ६॥ इञ्च, चौड़ाई ४॥ इञ्च।

शीशियाँ—२ ड्राम २४, ४ ड्राम की १८ तथा ८ ड्राम की ८ शीशीं, कुल ५० शीशियां मय कार्क।

पाकेट—एक पाकेट लगी है जिसमें कागज रखे जा सकते हैं। दूसरी ओर सिरिंज व थर्मामीटर रखने के लिये स्थान बना है।

वजन—मय शीशियों के लगभग १॥ सेर, । लकड़ी की पार्सल में पैक करने पर ३ सेर।

मूल्य—कार्क सहित औषधि-पेटी का १८) पोस्ट-व्यय ३॥)

नोट—आर्डर के साथ ५) एडवांस अवश्य भेजें।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

शिलाजीत नं० १

(सूर्यतापी)

स्वयं अपनी देखरेख में निकाला गया अत्युत्तम शिलाजीत नं० १ सूर्यतापी हमसे मंगाइयेगा। पूर्ण विश्वस्त तथा सर्वोत्तम होने की गारंटी है। मूल्य १ सेर ५०) ५ तोला २॥=) १ तोला ॥≡)।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

शहद असली

अत्युत्तम बड़ी मोहार का शहद, औषधि निर्माण एवं अनुपान रूप में व्यवहार करने के लिये निम्न सुन्दर पैकिंग में मंगावें।

१ पौंड का पैकिंग	३।)
१० तोला का पैकिंग	१)
५ तोला का पैकिंग	॥=)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

च्यवनप्राश अवलेह

सर्वोत्तम द्रव्यों, विशुद्ध घृत, असली अष्टवर्ग तथा उत्तम मिश्री से विधिवत् निर्मित सर्वोत्तम एवं पूर्ण प्रभावशाली च्यवनप्राश। एक बार परीक्षा अवश्य करें। इस समय नवीन आंवलों का बना है।

मूल्य—१ सेर डिब्बा में ४)
½ सेर शीशी में २।)
¼ सेर ,, में १=)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

असली केशर-कस्तूरी

ग्राहकों के आग्रह से उत्तम और असली कश्मीरी केशर एवं कस्तूरी संग्रह की है। आवश्यकतानुसार अवश्य मंगाइये।

कस्तूरी	१ तोला	६०)
केसर	१ तोला	१८)
केसर चूरा	१ तोला	८)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

नाड़ी दर्शन (सचित्र)

श्री पं० ताराशंकर मिश्र द्वारा लिखित अपने विषय की सर्वोत्तम सचित्र पुस्तक। अनेक चित्रों द्वारा सरल भाषा में नाड़ी की चाल आदि के विषय में सुगमता से बोध कराने वाली उपयोगी पुस्तक है। पृष्ठ संख्या १७२ मूल्य २॥) मात्र।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

विविध उपकरण

वैद्यों के लिये उपयोगी एवं वैद्यों की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले अनेक उपकरण हमने विक्रियार्थ संग्रह किए हैं। इसका प्रथक् सूचीपत्र पत्र डालकर मंगाइये।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

"मार्तण्ड के आयुर्वेदिक इन्जेक्शन"

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स बड़ौत की एयर-कन्डिशण्ड तथा आधुनिकतम मशीनों और यन्त्रों से सुसम्पन्न, लेब्रोरेट्री में सरकारी लाइसेन्स के आधीन सरकार से मान्य केमिस्टों द्वारा तैयार किये ये ८ प्रकार के इन्जेक्शन तुरन्त असर करते हैं। जैसे सोमा-दम्मे के दौरे में, शूलान्तक-सब वातिक दर्दों में, स्मृतिदा-कमेडे हिस्टीरिया आदि में, हृदयामृत-दिल की ताकत के लिये, तापीकर-शीत आने पर तथा नजला जुकाम में, मरुताशी-बात रोगों में, प्रदरारि-प्रदरपर, क्लीवान्तक-नपुंसकता पर। इन्हें एक बार प्रयोग में लाकर देखिये। रिसर्च का रोचक सचित्र साहित्य तथा मार्तण्ड मासिक की एक प्रति मंगाइये। इसके अतिरिक्त हम आसव अरिष्ट चूर्ण, रस भस्मों का भी शास्त्रीय विधि से निर्माण करते हैं।

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स बड़ौत, S.S.Rly (उ.प्र.)
(रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ इण्डियन मेडीसन्स)

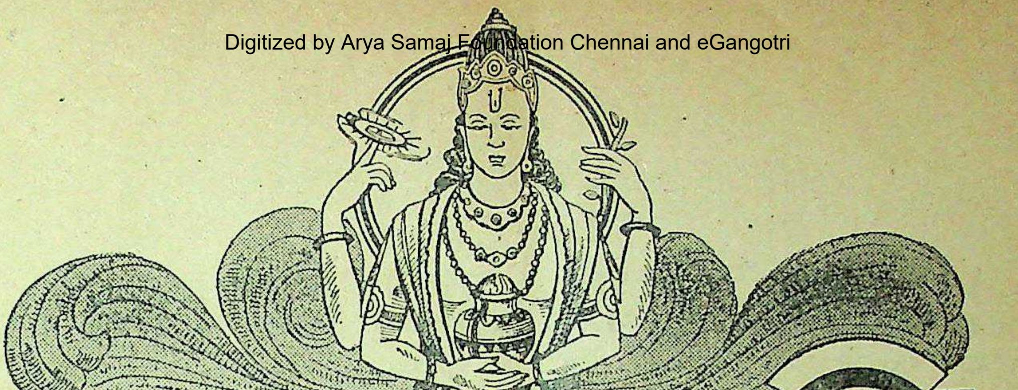

धन्वन्तरि

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० अ० १–४०

भाग ३३ } धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ { जनवरी
अङ्क १ } का मुख पत्र { १९५९

स्वस्थ-वाणी

प्रकृति प्रगति का नाम है, काल अकाल सुकाल ।
संयम शील स्वभाव जन, सदा रहत खुश हाल ॥१॥
संयम सम औषध नहीं, सरल रहित अनुपान ।
बाल, वृद्ध, तिय, तरुण को, गुण-प्रद सदा समान ॥२॥
विषय चाह की दाह में, दहत लम्पटी लोग ।
संयम शील सुशील जन, भोगत भोग मनोज्ञ ॥३॥
व्याधि व्यथा व्यापे नहीं, संयम शील स्वभाव ।
चिरजीवी हो रुज रहित, लें आयुष्कर भाव ॥४॥
यम के प्रबल प्रहार को, संयम सबल कुठार ।
ज्ञाता ध्यावत ध्येय धर, चित दे करत संभार ॥५॥

लेखक—–श्री कपूरचन्द्र विद्यार्थी, दमोह (म. प्र.)

कालिदास का आयुर्वेदिक ज्ञान

लेखक श्री. पं. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री अयुर्वेदाचार्य ।

चरक संहिता में आठ प्रकार के निन्दित पुरुषों का वर्णन प्राप्त होता है। उनमें एक स्थूल पुरुष को भी निन्दित माना गया है। भले ही दूसरों के लिए वे दुःखद न हों किन्तु अपने लिये तो वे प्रत्यक्ष भारस्वरूप हो जाते हैं। स्थौल्य रोग प्रायः वंशज देखा गया है। चिकित्सा करने के पूर्व इस बात का विचार कर लेना चाहिये कि यह वंशज है अथवा व्यक्तिगत। यदि वंशज है तब तो—"ये चापि केचित् कुलजा विकाराः, भवन्ति तांस्तान प्रवदन्त्यसाध्यान्" के अनुसार चिकित्सा सफल नहीं होती, यदि वंशज नहीं है तो स्थौल्य का निदान परिवर्जन अर्थात् जिन कारणों से स्थूल हुआ है उनका परित्याग, क्योंकि "कार्श्यमेव वरं स्थौल्यात् नहि स्थूलस्य भेषजम्" तथा शास्त्रोक्त चिकित्सा क्रम से अवश्य लाभ होता है किन्तु दीर्घकाल पर्यंत चिकित्सा करनी चाहिये।

मालूम होता है कि कविकुल कमलदिवाकर कालिदास ने चरक आदि आयुर्वेदीय संहिताओं का अध्ययन अपने काव्य ग्रंथों की रचना के पूर्व भलीभांति किया होगा, नहीं तो दिलीप के गुरु गृह जाने से लेकर नन्दिनी के वर प्रदान पर्यंत आयुर्वेदीय सिद्धन्वानुसार क्रमबद्ध मेदोरोग की चिकित्सा का सफल प्रदर्शन अपने इस रघुवंश नामक प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ में कैसे कर पाते। सन्तान न होने से दुःखित एवं चिन्तित राजादिलीप ने अपने सम्पूर्ण राज्य का भार मन्त्रियों के ऊपर डालकर अपनी स्थूला सुदक्षिणा को लेकर गुरु वशिष्ठ के आश्रम के पास पहुँचकर स्वयं रथ से उतरे और प्रयत्नपूर्वक सुदक्षिणा को भी उतारा।

अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः।
तामवारोहयत्पत्नीं रथादवततार च ॥

इस पद्य से सुदक्षिणा का स्थूला होना स्पष्ट ज्ञात होता है।

तदनन्तर राजा दिलीप सुदक्षिणा सहित, मन्त्र एवं चिकित्सा विषय प्रधान अथर्ववेद के ज्ञाता गरु वशिष्ठ के पास गये और गरु के कुशल प्रश्न पूछने पर राज्य के सातों अंगों में कुशल की सूचना देते हुये कहते हैं कि सर्व सुख सम्पन्न यह सम्पूर्ण जगतीतल का राज्य भी केवल एक पुत्र के न होने से मुझे सुखी बनाने में समर्थ नहीं हो रहा है। मेरे बाद पिण्डलोप देखने वाले वे मेरे पितर भी दुःखी होकर आज से ही स्वधा भाग को इकट्ठा करने में लग गये हैं और वे आज भी तृप्ति पूर्वक भोजन नहीं कर पा रहे हैं।

इतना कहने के बाद वशिष्ठ जी सन्तान न होने के चरकोक्त कारण (अतिस्थूलस्य शुक्राल्पत्वान्मेदसावृतमार्गत्वाच्च कृच्छ्रव्यवायता, च. सू.) को जानकर कहते हैं तुम दोनों कन्दमूल फल खाते हुये दीर्घकाल तक इस गाय की सेवा करो और प्रतिदिन कुशासन पर जाकर सोवो—

सत्यामपि तपः सिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः।
कल्पवित् कल्पयामास बन्यामेवास्य संविधाम् ॥

यद्यपि गुरु वसिष्ठ अपनी तपः सम्पति के प्रभाव से राजा के योग्य निबास भोजन आदि की सुव्यवस्थित सामग्री के जुटाने में समर्थ थे किन्तु उनको यह अपेक्षित न था क्योंकि वे कल्पवित थे। इसलिये इन दोनों की स्थूलता को दूर करने के लिए बनवासी की सामग्री ही इनको बतलाई। अब जरा कुशासन बन्यवृत्ति अर्थात् बनवासियों के समान आहार विहार एवं गो-सेवा के विधान पर ध्यान दीजिये—

कुशासन—

दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हितम्।
मत्रकृच्छ्राश्मरी तृष्णा वस्तिरुक्प्रदरास्रजित ॥

—भा० निघण्टु।

दोनों प्रकार का कुश त्रिदोषनाशक, मधुर, कषैला, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, तृष्णा, वस्तिपीड़ा, रक्तप्रदर नाशक होता है।

वन्यवृत्ति गो सेवा—स्थौल्य रोग में आयुर्वेदोक्त पथ्य—परिश्रम—यथा—

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथा: स्थितायां स्थितिमाचरे: ।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसिपिबेरप: ॥

अर्थ—नन्दिनी के चलने पर चलो, खड़े होने पर खड़े होओ, बैठने पर बैठो, पानी पीने पर तुम भी पानी पीओ, यह कितना कठिन परिश्रम है। अधिक जागना, चिन्ता, उपवास, धूप का सेवन, घूमना, सवारियों पर चलना, वमन, विरेचन, थोड़ा खाना, कोदों, सामा, तिन्नी, कगुनी, जौ, कुलथी आदि रूक्ष पदार्थ सभी उक्त रोग में उपकारक एवं बनों में सुलभ होते हैं।

इस प्रकार की आज्ञा पाने पर दिलीप एवं सुदक्षिणा ने श्रद्धा विश्वास एवं वन्यवृत्ति द्वारा इस कल्प को इक्कीस दिन में बड़ी तत्परता के साथ पूर्ण किया तदनन्तर नन्दिनी के आशीर्वाद स्वरूप स्वास्थ्य को प्राप्त कर वे दोनों अपने राज्य को लौटे। राज्य में पहुंचकर सुदक्षिणा ने गर्भ धारण किया, रघु जैसा पराक्रमशाली एवं दीप्तमान् पुत्र पैदा हुआ।

कालिदास के काव्यों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि इसको भारतीय संस्कृति से कितना अगाध प्रेम था। यद्यपि यह चतुरस्र प्रतिभावान् कवि था फिर इसके काव्यों में जितना स्वदेश प्रेम और समाज उत्थान के उच्च आदर्श प्राप्त होते हैं सम्भवत: उतना सौभाग्य अन्य भारतीय कवियों की लेखनी को कम मिला होगा। इसके काव्य की यही विशेषता है कि जिस विषय का ज्ञाता है उसको उसके विषय की अविकल सामग्री इसके साहित्य में प्राप्त होती है। सचमुच इसके काव्य श्रीकृष्ण के उस वाक्य की स्मृति दिलाते हैं—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'।

* * *

विनीत-प्रार्थना

★धन्वन्तरि का आगामी विशेषांक धन्वन्तरि के पिछले विशेषांकों के अनुरूप ही विशाल एवं उपयोगी साहित्य तथा सैकड़ों चित्रों से सुसज्जित प्रकाशित होगा तथा आप इसे अवश्य पसन्द करेंगे। अतएव प्रार्थना है कि इस वर्ष का वार्षिक मूल्य यदि आपने अभी तक नहीं भेजा है तो शीघ्र भेज दें।

★यदि किसी कारणवश आप ग्राहक न रहना चाहें तो आपसे विनम्र करबद्ध प्रार्थना करते हैं कि अपने ग्राहक न रहने के निश्चय की सूचना एक पत्र डाल कर अवश्य देदें। सूचना न देने पर, वी० पी० पहुँचेगी ही। फिर उसे वापस करना आपका धन्वन्तरि के प्रति नैतिक अत्याचार होगा। इस प्रकार आप एक कार्ड की बचत करते हुए धन्वन्तरि की ।।।) की हानि करेंगे तथा आयुर्वेदोन्नति में रत 'धन्वन्तरि' को एक गहरी चोट पहुँचावेंगे अतएव बार-बार प्रार्थना है कि ग्राहक न रहना हो तो सूचना अवश्य देदें।

★धन्वन्तरि की उपयोगिता को समझकर नवीन ग्राहक बहुत बन रहे हैं। आपसे भी प्रार्थना है कि आप भी २-१ नवीन ग्राहक बनाकर हमारा उत्साह बढ़ाइये। आपके इस कृपापूर्ण सहयोग से हमको बहुत बल मिलेगा।

च्यवनप्राश

लेखक—श्री पं० बाबूराम शर्मा वैद्य, श्री लक्ष्मण चिकित्सालय, खुर्जा (उ० प्र०)

च्यवनप्राश के नाम और गुणों से आज वैद्य समाज ही नहीं बल्कि जन साधारण भी भलीभांति परिचित हो चुका है। यह एक आयुर्वेदोक्त प्रभावशाली रसायन है। और 'यत् जरा-व्याधि विध्वंसि भेषजं तत् रसायनम्' इस शास्त्रोक्त रसायन के गुण और लक्षणों से युक्त है—यह असंदिग्ध रूप से सिद्ध है, कि इसके सेवन से जरा जीर्ण कलेवर महर्षि च्यवन को फिर से नवयौवन प्राप्त हुआ था एवं कफ श्वास प्रभृति रोगों के निवारणार्थ आज भी वैद्य समाज में इसके प्रयोग का प्रचुर प्रचार है। कहना न होगा कि कोई भी आयुर्वेदिक रसायनशाला ऐसी न होगी, जिसमें 'च्यवनप्राश' का प्रभूत परिमाण में निर्माण और विक्रय न होता हो साथ ही चिकित्सक वर्ग भी अपने यहां स्वतन्त्र रूप से 'च्यवनप्राश' बनाते और रोगियों पर प्रयुक्त करते हैं। अभिप्राय यह है कि च्यवनप्राश बाल, वृद्ध, युवा, रोगी, निरोगी सभी के लिये समान रूप से लाभप्रद, उपादेय, सुस्वादु एवं सर्वकाल सुख सेव्य रसायन है।

इस सर्व हितकारी रसायन के निर्माण करते समय निर्माता के सामने बहुत सी शास्त्रीय कठिनाइयां आती हैं-फिर भी निर्माता नव शिक्षित वैद्य हो या फिर प्रतिभावान् सुशिक्षित, भैषज्य निर्माण में पटुता प्राप्त, प्रौढ़ चिकित्सक सभी के समक्ष समान रूप से जो असुविधायें आसकती हैं प्रस्तुत लेख उन्हीं को वैद्य समुदाय के सम्मुख रखने का प्रयास है। संभव है नवशिक्षित भिषक समुदाय को इससे कुछ लाभ हो।

च्यवनप्राश का मूल योग 'चरकसंहिता' का योग है और चरकसंहिता से 'वाग्भट संहिता,' चक्रदत्त' 'शाङ्गर्धर संहिता' प्रभृति संग्रह ग्रन्थों में कुछ-संशोधित परिवर्धित रूप में संग्रहीत किया गया है। इस प्रयोग में 'बिल्व' आदि छत्तीस काथ्य द्रव्यों में से प्रत्येक को १-१ पल की मात्रा में लेने का विधान है-और आंवले आकृति मान से गिनकर पांच सौ (५००) लिये गये हैं-तथा चीनी पंचास (५०) पल लेने को लिखा है। यथा-

> एषाँ पलोन्मितान् भागान्, शतान्यामलकस्य च।
> पंच दद्यात्........................ ॥
> ....दत्वा चार्धतुलां भिषक्।
> मत्स्यण्डि कायाः पूतायाः.............. ॥

यहां विचारणीय यह है-कि जब आज ६ माशे से लेकर ६ तोले तक वजन वाला आंवला बाजार में मिल रहा है तब स्वभावतः ही यह शंका होती है कि—

१—च्यवनप्राश के लिए कौनसा आंवला उपयोगी रहेगा।

२—किस जाति के आंवलों के लेने पर, उसकी मात्रा की अपेक्षा औषधि और चीनी के प्रमाण का अनुपात सुसंगत रहेगा।

३—महर्षि अग्निवेश का अभिप्राय किस प्रमाण के आंवले लेने से पूर्ण होगा। आदि।

यद्यपि ऐसी शंकायें मूलभूत शंकायें हैं, और सभी के लिए सहज संभाव्य भी हैं-फिर भी इनके सुलझाव के लिए किसी भी प्राचीन संग्रहकार अथवा टीकाकार ने इस प्रसंग में कोई भी संकेत नहीं किया है। जिसका कि किया जाना परम आवश्यक था-बल्कि इस तरह का कोई निर्देश न करके टीकाकारों ने अपनी पूरी जिम्मेवारी नहीं निभाई और यह बड़ी भारी शास्त्रीय त्रुटि छोड़ दी है, जो कि सर्वथा अखरती है।

हां, अद्यजन आचार्य स्वर्गीय श्री यादव जी त्रिक्रम जी महाराज ने अवश्य अपने 'सिद्ध योग संग्रह' ग्रन्थ में जिसका प्रकाशन 'श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन' के प्रकाशन विभाग द्वारा हुआ है-इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न किया है। आपने

शार्ङ्गधर संहिता के संस्कृत टीकाकार श्री 'आढमल्ल' का प्रमाण देते हुए फुट नोट में लिखा है कि 'आंवले जंगली छोटे' और बगीचे के कलमी बड़े होते हैं, सब आंवलों का बजन एक सा नहीं होता, अतः सूखे आंवले का बज़न आधा तोला और गीले आंवले का बजन एक तोला मान कर व्यवहृत करने का नियम टीकाकारों ने लिखा है' इति।

और इसी आधार पर आचार्य जी ने 'सिद्धयोग संग्रह' की स्वनिर्मित हिन्दी टीका में 'शतान्यामलकस्य च। पंचदद्यात्'। का अर्थ अन्य टीकाकारों की तरह 'गिनकर पांच सौ ५०० आंवले लेना' ऐसा न लिखकर स्पष्ट लिखा है कि 'आंवले तोल कर ५०० तोला डालें' जैसा कि लिखना आज के लिये सर्वथा श्रेयस्कर था। अपि च इसी प्रकार ५०० तोला तोल कर आंवले लेने का विधान वंग भाषा में मुद्रित 'आयुर्वेद संग्रह' तथा 'आयुर्वेद शिक्षा' प्रभृति अर्वाचीन संग्रह ग्रन्थों में भी पाया जाता है।

इस प्रकार परम श्रद्धेय इन आचार्यों के सत्प्रयत्न से आंवले वाली समस्या जो अवश्य ही आवश्यक रूप से सुलझती है परन्तु साथ ही एक दूसरी अवान्तर शंका भी उठ खड़ी होती है और वह है कि—

१—जिस तोले से तोलकर ५०० तोला आंवला लिया जाय उस तोले का मान कितना होना अभीष्ट है। क्यों कि आज भिन्न भिन्न प्रमाण भेद से तीन तरह के तोले उपलब्ध होते हैं। माननीय पाठक महोदय! तोले के उन तीनों प्रकारों के स्पष्टीकरण से पहले यह आवश्यक होता है कि किसी शास्त्रीय बाट को माध्यम मान लिया जाय और इस कार्य के लिए 'पल' के बाट को ही सर्वथा उपयुक्त होने से मान लेते हैं। अब तोले के मान के स्पष्टीकरण करने तथा समझने में सुगमता होगी हां। तो तोले के वे तीनों प्रकार ये हैं।

१—पहला तोला है पल के वज़न से चतुर्थांश वजन वाला तोला। जिसका कि व्यवहार श्री यादव जी महराज ने अपने 'सिद्धयोग संग्रह' में स्पष्ट रूप से किया है। वहां १ पल बराबर है ४ तोला।

२—दूसरा तोला है पल का आठवां हिस्सा। जो वंगवासी वैद्यों द्वारा अपने ग्रन्थों में उल्लिखित एवं व्यवहार में व्यवहृत है। वे २ तोले का १ कर्ष और ४ कर्ष का १ पल मानते हैं।

३—तीसरा 'यदि पल को प्रचलित मान के अनुसार १ छटांक मान लिया जाय जैसा कि जयपुर निवासी स्वर्गीय श्री श्रीकृष्ण राम जी वैद्य द्वारा विरचित 'सिद्ध भैषज मणिमाला' ग्रन्थ में माना गया है तब तोले का मान होता है 'पल का पंचमांश।'

इस प्रकार प्रमाण भेद से तोला तीन प्रकार का है और तीनों ही तोले सम्मानित एवं प्रचलित हैं।

यहां प्रश्न होता है कि तोले के तीन भेद होने पर भी प्रकृत प्रयोग के निर्माण में क्या आपत्ति आती है। तोले का कोई भी प्रमाण हो। हम अपने जिस अभीष्ट तोले से तोल कर आंवला लें, उसी से द्रव्य, चीनी एवं प्रक्षेप्य द्रव्य भी तोल लें। बस समस्या हल होगई—कोई भी असुविधा नहीं रही। वहां कहना पड़ेगा कि श्रीमान् जी! जरा सूक्ष्मरूप से निरीक्षण कीजिये। सुनिये—जहां पल का चतुर्थांश तोला माना गया है वहां ५०० तोला आंवलों का वजन हुआ १२५ पल और क्वाथ की प्रत्येक वस्तु जोकि १ पल के प्रमाण में ली गई है के प्रमाण का अनुपात हुआ १२५ वां भाग तथा चीनी का अनुपात होगा २½ वां अंश—जोकि आवश्यक मात्रा से कहीं अधिक न्यून है। चीनी की अपेक्षणीय मात्रा आंवले के समानांश अथवा सवाई होनी अभीष्ट है—क्योंकि अवलेह में चीनी का कार्य केवल स्वादुता संपादन मात्र ही नहीं होता—बल्कि चीनी का योग अवलेह को निर्दिष्ट काल पर्यंत रस, गुण, वीर्य एवं प्रभाव से संयुक्त रखता है—और ऐसा तभी सम्भव होता है, जब चीनी आंवले के समान अथवा उससे अधिक मात्रा में ली जाय अन्यथा नहीं। मेरी इस मान्यता में श्री यादव जी द्वारा च्यवनप्राश के नुस्खे में किया गया परिवर्तन ही

पर्याप्त प्रमाण हैं। चरक संहिता के 'दत्वाचार्यतुलां भिषक।' मत्स्यण्डिकाया: पूताया: इस पाठ के स्थान पर आचार्य जी ने 'खण्डं पादतुलोन्मितम्' ऐसा परिवर्तन किया है और टीका में स्पष्ट लिखा है कि चीनी ५०० तोला लेवें। सिद्ध होता है कि चीनी और आंवले का कम से कम सम प्रमाण होना परम आवश्यक है। चरकोक्त ५० पल चीनी का प्रमाण १२५ पल आंवलों की अपेक्षा आधे से भी अधिक कम है। एतदर्थ श्री आचार्य जी को चीनी के विषय में परिवर्धन करना बलात् आवश्यक हो गया।

२—और जब हम पल के अष्टमांश मान वाले तोले का उपयोग करते हैं तो ५०० तोले आंवलों का वजन होता है ५००÷८=६२॥ पल। तदनुसार क्वाथ्य द्रव्य का अपेक्षाकृत भाग होता है ६२॥ वां भाग—और चीनी रहती है आंवलों के समानांश क्योंकि यह रसायन निर्माताओं का दैनिक अनुभव है कि आंवले को उबालने और त्वक् अस्थि रहित करने के बाद और भूनने से पहले यदि तोला जाय तो वह अपने पूर्वमान यानी ५०० तोला से १ पंचमांश कम बैठता है अर्थात् ४०० तोला रहता है—इसको पल के अष्टमांश तोले से तोला जाये तो ४००÷८=५० पल होगा और चरकोक्त मूलपाठ में चीनी का प्रमाण भी ५० पल ही है—इस प्रकार चीनी और आंवले के मान में अभीष्ट समानता उपलब्ध होती है।

३—यदि तोले को पल का पंचमांश मानकर व्यवहार किया जाय, तो ५०० तोला अर्थात् १०० पल आंवलों की अपेक्षा क्वाथ्य द्रव्य का सौवां भाग होता है और ५० पल चीनी तो एक दम आधी ही बैठती है।

अब पाठक महोदय स्वयं विचार करेंगे कि इस प्रकार के विवेचन के बाद प्रयोग निर्माण करते समय अखरने योग्य कुछ असुविधायें उपस्थित होती हैं, अथवा नहीं। साथ ही स्वयं निर्णय करेंगे कि 'च्यवनप्राश' के लिये किस मान वाले तोले का व्यवहार उपयोगी होगा।

यहां इतना कह देना असंगत न होगा कि आठ तोला =एक पल मान कर आंवले, चीनी, एवं क्वाथ्य और प्रक्षेप्य द्रव्य लिये जायें तो समस्त उपादान द्रव्यों का उपर्युक्त विवेचनानुसार परस्पर आपेक्षिक प्रमाण भी यथोचित रहेगा। साथ ही चरकोक्त मूल पाठ का निर्वाह भी अपने स्वरूप में ही सुसम्पन्न हो सकेगा। उसमें किसी प्रकार के संशोधन परिवर्धन करने की विवशता भी न होगी।

'च्यवनप्राश' के प्रसंग में 'आयुर्वेद के उद्भट विद्वान् एवं लब्धकीर्ति हमारे गुरुजी महाराज स्वर्गीय श्री नारायणदत्त जी वैद्य खुर्जा निवासी का एक दूसरा ही मत है जो कि सर्वथा शास्त्रीय है एवं उपादेय भी। आपका कहना था कि सर्व वैद्य सम्मत सिद्धान्त से आंवले का प्रमाण हरीतकी के प्रमाण से चतुर्थांश है—और हरीतकी का प्रमाण आचार्य श्री चक्रपाणि दत्त ने अपने 'चक्रदत्त संग्रह' में हिक्काधिकारोक्त 'भार्गीगुड' के प्रकरण में निर्धारित किया है कि—

'हरीतकी शतस्यात्र प्रस्थत्वादाढकं जलम्' इति अर्थात् सौ १०० हरीतकीयों का प्रमाण १ प्रस्थ होता है। तदनुसार सूखे सौ आंवलों का वजन हुआ १ चौथाई प्रस्थ यानी ४ पल और 'शुष्कद्रव्येष्विदंमानं द्विगुणं तत् द्रवार्द्रयो' के नियम से गीले सौ आंवले ८ पल के हुये—एवं गीले ५०० आंवलों का वजन हुआ ५×८=४० पल। सिद्धान्ततः च्यवनप्राश के लिये ४० पल ताजे आंवले लेने चाहिये। इस प्रकार ४० पल आंवलों की अपेक्षा १ पल क्वाथ्य द्रव्य का ४० वां भाग होगा और मूलग्रन्थोक्त ५० पल चीनी होगी, आंवलों से सवाई जैसा कि अभीष्ट है। इस मत के अनुसार संसाधित 'च्यवनप्राश' में क्वाथ एवं प्रक्षेप्य द्रव्य की मात्रा अन्य सर्वमतापेक्षया अधिक रहती है एवं चीनी भी प्रयोग पाठ में बगैर किसी संशोधन के उचित प्रमाण में ही उपलब्ध हो जाती है।

यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि 'च्यवनप्राश' में जो रसायन गुण तथा रोग निवारक शक्ति है वह केवल आंवले या चीनी द्वारा ही तो सम्पादित नहीं है, इसमें क्वाथ एवं प्रक्षेप्य द्रव्यों का भी पर्याप्त योग है। अतः मानना होगा कि आंवले और चीनी के अनुपात से अन्य द्रव्य जितने अंश में न्यून होते जांयगे नियमतः उसी अनुपात से रसायन की कार्य क्षमता भी अनिवार्य न्यून हो जायगी।

दूसरे इस पक्ष के मानने में एक बड़ी भारी सुविधा यह भी है कि ४० पल आंवले एवं १ पल औषधि को किसी भी मान वाले तोले से तोल लीजिये आंवले और द्रव्य के बीच के अनुपात में किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं आता—यथा पल के अष्टमांश वाले तोले से तोलने पर ४०×८ =३२० तोले आंवले और १ पल यानी ८ तोला द्रव्य का अनुपात वही ४० वां भाग। इसी प्रकार पल के चतुर्थांश एवं पंचमाश तोले के व्यवहार में भी आंवले तथा द्रव्य के बीच ४० का ही अनुपात रहता है।

यहां ज्ञातव्य यह होता है कि आंवलों की अपेक्षा क्वाथ्य औषधे का ४० वां या फिर ६२ वां अंश ही उपयोगी एवं उपादेय है और सौवें तथा सवा सौवें अंश में औषधियों का लेना प्रयोग प्रदाता महर्षि को अभिप्रेत नहीं इसमें क्या प्रमाण है ? वहां इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि 'यदि ४० पल अथवा ६२॥ पल आंवले लिये जांय तो चीनी के प्रमाण में किसी प्रकार का हेर फेर करना आवश्यक नहीं होता, मूलपाठानुसार ५० पल चीनी लेने से ही सब गतार्थ हो जाता है। अतः स्थाली पुलाक न्याय से सिद्ध होता है—कि जिस मत के अनुसार ली गई चीनी की मात्रा ग्रंथकार द्वारा उल्लिखित मात्रा से मेल खाती है, उसमें कोई संशोधन नहीं करना पड़ता उसी मत के अनुसार ली गई औषध आदि का मान ही ग्रन्थकार को सर्वथा अभिप्रेत होगा। ऐसा मान लेने में निःसन्देह ही कोई भूल नहीं है—क्योंकि यह सिद्धांत है कि 'जिस किसी भी एक मत के अवलम्बन से ग्रन्थ के अन्यतम अंश की पूर्ति होती हो, दूसरे अंशों की पूर्ति के लिये भी उसी मार्ग का अनुसरण करना सर्वथा सानुकूल होता है।

अब कहना यह है कि इस विषय में तो कोई भी वैद्य महानुभाव अनेक मत नहीं होंगे कि आर्ष-ग्रंथों के प्रयोगों में इनके उपादान द्रव्य एवं उनका आपेक्षिक मान ऋषियों द्वारा अनेक बार के परीक्षण के अनन्तर ही लिखे गये हैं—अतः इन्हें उल्लिखित मात्रा में लेने से ही योगोक्त गुण एवं कार्य क्षमता का सम्यक रूप में उपलब्ध होना संभव होगा—अन्यथा नहीं। आज व्यवसायी वर्ग 'च्यवनप्राश' के मूल्य में अधिक से अधिक सस्तापन लाने की होड़ में संलग्न हैं। ऐसी दशा में प्रयोग के उपादान द्रव्य एवं उनकी मात्रा उचित रूप में ली गई है अथवा नहीं, इस ओर स्वभावतः ही ध्यान नहीं जाता, परिणाम स्वरूप उनके इस 'च्यवनप्राश' का रूप और गुण क्या होगा यह विषय विशेष विवरण सापेक्ष न होकर स्वतः अनुमान गम्य है।

एतदर्थ वैद्य समाज एवं व्यवसायी वर्ग सभी से साग्रह नम्र निवेदन है कि आयुर्वेद के आर्ष प्रयोगों में किंचिन्मात्र भी हेर फेर न करके उनका ग्रंथ के अनुसार सही स्वरूप में ही निर्माण करें फिर उन प्रयोगों में जो चमत्कार है उससे प्रभावित करते हुये जनता में आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास की भावना पैदा करें, तभी आयुर्वेद की सच्ची सेवा और उसकी उन्नति सम्भव होगी।

★

धन्वन्तरि रहस्य

लेखक—कविराज रामनाथ वैद्य आयुर्वेदाचार्य, गुरुकुल कांगड़ी (हरद्वार)

भगवान धन्वन्तरि के विषय में शास्त्रों में तथा लोक में अनेक प्रकार की मान्यताएँ, कथायें प्रचलित हैं। कोई कोई लोग काशीराज दिवोदास को धन्वन्तरि मानते हैं। कोई कोई कहता है धन्वन्तरि एक जाति थी। उसका कार्य चीड़फाड़ करने का था। दूसरी ओर जब हम पौराणिक काल में जाते हैं और धन्वन्तरि भगवान को समुद्र से उत्पन्न हुआ देखते हैं और उस स्थल का अथवा श्री मद्भागवत् के अष्टम स्कन्ध, अध्याय ६ का अवलोकन करते हैं तथा उस कथा का सम्बन्ध तथा आयुर्वेद के स्वरूप का सम्बन्ध जब हम उस चित्र से लगाते हैं, जो धन्वन्तरि के रूप में आयुर्वेद हमारे सामने प्रस्तुत होता है तो एकाएक विचार होता है कि इस चित्र में अवश्य कोई रहस्य है जिसका सम्बन्ध एक विज्ञान से है और उसे ही आयुर्वेद का प्रवर्त्तक मानते हैं। जब हम आयुर्वेद का इतिहास पढ़ते हैं तो भी धन्वन्तरि ही इसके प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इस सम्बन्ध में इन्द्र और ब्रह्मा प्रजापति का भी नाम आता है. किंतु यहां पर मुख्य विषय इस धन्वन्तरि चित्र के रहस्य के बारे में है कि वास्तविक बात क्या है। सबसे प्रथम यह सोचना है कि कोई कथानक जब प्रारम्भ होता है तो उसका कोई आधार अवश्य होता है तभी वह स्थायी भी रह सकता है। अब इस पर विचार करते हैं। कथा का प्रचार उस समय हुआ जब देवता—अर्थात् संरक्षक शक्ति तथा राक्षस—अर्थात् विध्वंसक शक्ति का आपस में घोर युद्ध हो रहा था। यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। उसी समय संरक्षक शक्ति—अर्थात् देवताओं ने विचार किया कि हमारी रक्षा कैसे हो सके, बस यहां से ही आयुर्वेद का आविष्कार प्रारम्भ होता है। देवता विष्णु के पास जाते हैं और रक्षा का उपाय पूंछते हैं। विष्णु ने क्या बताया:—

> क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वाः वीरुत्तृण लतौषधीः ।
> मंथानं मंदरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥
>
> —श्री मद्भागवत्, अष्टम स्कन्ध, अध्याय ६, श्लो· २२

इस वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि इसका आरम्भ सबसे प्रथम द्रव्य गुण अनुसंधान से किया गया। अतः मेरी मान्यता विशेष रूप से पौराणिक गाथा पर ही है। क्योंकि जिस कथानक को प्रारम्भ करके जो चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है उससे हमको सृष्टि क्रम से लेकर पूरे आयुर्वेद का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। कथानक समुद्र मन्थन से प्रारम्भ होता है अर्थात् सम्पूर्ण जगत के द्रव्य औषधि स्वरूप हैं। उन्हीं का संग्रह समुद्र मंथन करके प्रारम्भ हुआ अर्थात् द्रव्यों का प्रयोग होना प्रारम्भ हुआ, इसी को मन्थन नाम दिया गया है। प्रथम उसका दुष्प्रभाव ज्ञात हुआ—जिसको विष उत्पन्न हुआ ऐसा मानते हैं। विष शिव ने पिया। पुनः अमृत कलश लिये धन्वन्तरि भगवान निकले—श्यामवर्ण, पीवरांग, सुन्दर, चतुर्भुज, एक हाथ में कलश, एक में वनस्पति, एक में हरीतकी—जलोका, एक में शस्त्र। इस प्रकार की मूर्ति प्रायः धन्वन्तरि के नाम से उपस्थित की जाती है और उसका कार्य बताया जाता है कि उस अमृत का वितरण देवताओं को किया गया—राक्षसों को नहीं। यह कथानक है।

इसके रहस्य को समझने की चेष्टा करनी चाहिये जब कथा समुद्र मंथन से कथा को प्रारम्भ हुआ देखते हैं तो सहसा सृष्टिक्रम का ध्यान उत्पन्न होता है। 'ऋतञ्च सत्यं' इत्यादि वेदमन्त्र में 'समुद्रादर्णवा दधि' इत्यादि वाक्य आते हैं। उससे स्पष्ट है कि पहले सृष्टि में जल ही जल था। फिर ईश्वर की इच्छा से दिन, रात्रि, ऋतु, संवत्सर, सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि की उत्पत्ति हुई। पुनः वनस्पति, जलचर, थलचर, मानव उत्पन्न हुये। तब मानव शरीर में संरक्षक और विध्वंसक दो शक्तियों का निरन्तर युद्ध प्रारम्भ हुआ। उसी को

देवासुर संग्राम नाम दिया गया। उससे बचने के लिये अर्थात् जीवन शक्ति की रक्षा के लिये समस्त जगत की औषधियों का मन्थन अर्थात् अनुसंधान किया गया। उसी को समुद्रमन्थन कहते हैं। उससे पहले औषधियों के दुष्प्रभाव का ज्ञान हुआ। जिसको विष नाम दिया गया। दूसरा अर्थ यह भी है कि इस कथा में वासुकि सर्प का भी प्रयोग है अर्थात् जांगम विषों और स्थावर विषों का भी प्रयोग आयुर्वेद में हो अतः इस विष को शिव ने पिया। शिव नाम पारद का है। देह सिद्धि के लिये पारद बुभुक्षित किया जाता है। और उसमें समस्त विषोपविष कार्य में आते हैं शिव की लिंग मूर्ति पर भी वे चढ़ाये जाते हैं इसमें भी एक रहस्य है किन्तु यह रस शास्त्र का विषय है। इस पर विस्तार से विचार न करके केवल संकेत कर दिया गया है। विष शान्त होने के पश्चात् अर्थात् विष का संस्कार और शुद्धि होने के बाद जैसा कि शास्त्रों में युक्तियुक्त विष को 'प्राणदायि रसायनम्' कहा गया है इसीसे इसको अमृत भी कहते हैं। जब विष में अमृतत्व होगया उसी समय धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव हुआ। वह सर्वांगीण आयुर्वेद का प्रादुर्भाव है। इस चित्र की कल्पना में इतना रहस्य है कि उसमें पूरे आयुर्वेद के दर्शन होते हैं।

प्रथम जब स्वरूप का दर्शन होता है तो श्याम वर्ण, पीवराङ्ग, सुन्दर, कोमल, तेजस्वी, प्रकाशयुक्त सत्वगुण प्रधान पित्त का स्वरूप तथा ओजस्वी, मेधावी, सौम्यता यह कफ का स्वरूप तथा तम का दर्शन होता है एवं गतिशीलता होने से रजोगुण बहुल वायु का भी दर्शन होता है। ऋतः उस मूर्त्ति में त्रिदोष, त्रिगुण सहित सत्व बहुल साम्यावस्था का दिग्दर्शन होता है। इस रहस्य को जानने के पश्चात् एक प्रकाश मिलता है—जहां-जहां इस प्रकार की मूर्त्ति का वर्णन किया है वहां उसको श्याम ही बनाया है। गौर वर्ण नहीं बनाया; क्योंकि गौरवर्ण श्लेष्म प्रधान, तमोगुण युक्त, अधोगामी, गुरु, जड़ प्रकृति का स्वरूप है। यह चेतन, सत्व प्रधान, ज्योति स्वरूप है। इससे प्रकृति, पुरुष का भेद ज्ञात होता है। और प्रकृति पुरुष के संयोग से ही चतुर्विंशति तत्त्व विशेष पुरुष की उत्पत्ति हुई। वही चिकित्स्य है—उसी की चिकित्सा को चार अङ्गों में विभक्त कर दिया गया है। उसी को चतुर्भुज बनाया है। (१) स्वस्थस्य परिरक्षणम् अर्थात् मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा (२) काय चिकित्सा (३) वस्ति चिकित्सा अर्थात् पञ्चकर्म कर्षण चिकित्सा (४) शल्य चिकित्सा। इन्हीं चारों चिकित्साओं के उपाय भी चित्र में आयुध के रूप में चारों भुजाओं में प्रदर्शित किये गये हैं। (१) प्रथम भुजा में मुख्य आयुध कलश, जिसमें अमृत है—अर्थात् सम्पूर्ण औषधियों का सार आहार द्रव्य जो रस प्रधान होते हैं उनका भी अन्तर्भाव होजाता है। यह स्वास्थ्य रक्षा के लिये बृंहण चिकित्सा का स्वरूप है। (२) दूसरे में वनस्पति—अमृता यह संशमन चिकित्सा और रसायन चिकित्सा का संकेत है। (३) तीसरे में हरीतकी इससे वस्ति चिकित्सा अर्थात् पंचकर्म और कर्षण चिकित्सा का संकेत है। (४) चौथे में शस्त्र जलौका से शल्य चिकित्सा का संकेत मिलता है—जलौका रक्तविश्रावण, व्रणबिम्लापन, शोथ शमन, शस्त्रकर्म का निर्देशन किया गया है। इसी के अन्तगर्त क्षार, अग्नि, दग्धकर्म तथा शृंगी तुम्बी आदि का अन्तर्भाव होजाता है। अतः इस चित्र को देखने से सम्पूर्ण आयुर्वेद का स्मरण रहे। यही इसका मुख्य उद्देश्य ज्ञात होता है। अमृत स्वरूप जो औषधियां उत्पन्न हुईं उनका प्रयोग राक्षस अर्थात् विध्वंसक शक्ति को बढ़ाने के लिये नहीं किया गया किन्तु देवता अर्थात् शरीर संरक्षक शक्ति को प्रबल बनाने के लिये किया गया है। यही इसका रहस्य है तथा यही चिकित्सा सिद्धान्त है। इसी कारण से यह चित्र चिकित्सावलम्बियों को मान्य होना चाहिये। क्योंकि इसी से सम्पूर्ण चिकित्साओं का प्रादुर्भाव हुआ है। यह आयुर्वेद का चित्र है।

पेटेंट एलोपैथिक दवाओं का प्रयोग न करें

लेखक—श्री वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, प्रधानवैद्य कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा

वैद्यबन्धु! यह लेख निवेदन रूप से लिख रहा हूं। किसी के हृदय में चोट पहुंचाने के लिये या डाक्टरों अथवा नव्य शिक्षित, दीक्षित सज्जनों से विवाद करने के लिये नहीं है। आयुर्वेद और भारतीय जन समाज की सेवा और हित की दृष्टि से जो मुझे उचित विदित हुआ है, वही सेवा में निवेदन करता हूँ।

नव्य विद्या की चकाचौंध से प्रभावित और आयुर्वेद के मूल सिद्धांत को उचित रूप में न जानने वाले कई वैद्यबन्धु और भगिनिएँ एलोपैथिक पेटेंट औषधियों के तत्काल मिलने वाले प्रभावशाली गुणों से आकृष्ट होकर प्रत्यक्ष (Direct) और अप्रत्यक्ष (Indireet) रूप में इनका प्रयोग करते रहते हैं। इसलिये कि इन दवाइयों से उसी समय रोगी को अपना प्रभाव दर्शा करके वे यशस्वी बनना चाहते हैं। बहुत सी देशी कम्पनियां जिनके नाम हम बतलाना नहीं चाहते वे पैसा कमाने व मालामाल होने की दृष्टि से २-४ आयुर्वेदिक औषधियों में १-२ ऐलोपैथिक औषधियों का समुचित मिश्रण करके अपनी औषधियों को पेटेंट व रजिस्टर्ड करा लेते हैं और खूब विज्ञापन प्रचार तथा प्रदर्शन करके पैसा कमाते हैं।

इन ऊपर लिखे प्रकार के व्यक्तियों को यह भी पता रहता है कि वे आयुर्वेद तथा जनता के प्रति धोखा करते हैं और इन औषधियों के प्रतिफलित (Reactions) क्रिया-प्रभाव विष या दूषीविष के समान होते हैं। फिर भी इन सबकी परवाह न कर केवल अपना सिप्पा जमाने व धन उपार्जन करने को ही लक्ष्य में रखकर ऐसा करते रहते हैं। जो कि सर्वथा अनुचित व हेय माना जायगा।

बहुत से धर्मार्थ औषधालयों तथा भारत के भिन्न-भिन्न राजकीय औषधालयों में जब कि उनके उच्च अधिकारियों की मनाई की हुई होती है; विज्ञापन पत्र (Circular) निकाले हुये होते है, तथापि वे छुपे-छुपे, किंतु बे परवाह होकर यह सब करते ही रहते हैं, अधिकांश सभ्य एवं साधारण जनता और खास करके डाक्टर लोग इस प्रकार के वैद्यों के व्यवहार की सदा निन्दा व उनसे घृणा करते हैं। डाक्टर बन्धु तो इस प्रकार के वैद्यों को ऊंट वैद्य (Quack) तथा मूर्ख समझते हैं साथ ही वे आयुर्वेद को तथा अन्य विशुद्ध आयुर्वेद भक्त वैद्यों को भी इसी कोटि में रखते हुये नहीं चूकते और आयुर्वेदिक औषधियों को केवल निराडंग व प्रभाव गुणहीन तथा क्रियाहीन समझ लेते हैं।

मैं अपने अनुभवों से जोरदार शब्दों में कह सकता हूँ कि एणटी वायोटिक और एलोपैथिक घातक दवाइयां परिणाम में विष-तुल्य, गुण-क्रिया प्रभाव पैदा करती हैं और रोगियों को प्रथम अपना चमत्कार बताकर फिर दिनोंदिन स्वास्थ्य-हरण चमत्कार बताती हैं।

बहुतसे डाक्टरों ने व साधारण सभ्य पुरुषों ने कई बार मेरे समक्ष भी यह प्रश्न रखे। जैसे कि और वैद्यों के सन्मुख भी रखते ही होंगे कि क्या आयुर्वेद में ऐसी प्रभावशाली औषधियों का अभाव है जो इस तरह वैद्य लोग अंग्रेजी दवाओं को छुपे या प्रकाशरूप में प्रयोग करते हैं। यदि ऐसा ही है तो वे डाक्टरी क्यों नहीं पढ़ते या कम्पाउण्डरी क्यों नही कर लेते ? ऐसी चौर्यवृत्ति क्यों अपनाते हैं ?

मेरा उत्तर--शीघ्र प्रभावशाली औषधियों से इस प्रकार के वैद्यों की अनभिज्ञता होना ही रहता है। आयुर्वेद में प्रभावशाली औषधियां क्यों नहीं हैं? केवल ज्ञाताओं व प्रयोक्ताओं तथा मिश्रण कर्त्ताओं की दुर्लभता है।

बहुत से इस प्रकार के वैद्य इन अंग्रेजी दवाओं का प्रयोग तो करते हैं, केवल दूसरों के दिखाये बताये अनुसार। किंतु वे उन पेटेंट दवाओं के भीतर रखे हुये साहित्य (Literature) को पढ़ व समझ नहीं सकते यहां तक कि बहुत से अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ भी होते हैं फिर भी अन्धाधुन्ध प्रयोग करते हैं जब कि उन लिटरेचरों में उनके स्थानिक प्रभाव, औषधि मिश्रण, मात्रा सेवन, समय सब लिखे छपे रहते हैं। ऐसे चौर्य वृत्ति वाले केवल अपना ही हित कर सकते हैं। आयुर्वेद पर तो कुठाराघात ही करते हैं और शुद्ध आयुर्वेदीय वैद्यवरों को भी बदनाम करवाते हैं। वे परिश्रम नहीं करना चाहते, शोध-अन्वेषण करना नहीं चाहते। केवल बना बनाया परोसा हुआ, सेवन करना चाहते हैं।

उक्त प्रकार के चिकित्सक "तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते" इस पद की आड़ लेकर ऐसा करना औचित्य सिद्ध करते हैं कि "औषधि वही योग्य है जो कि रोगी को रोग मुक्त करे"। किंतु जरा विचार कीजिये, उस रोगी को क्षणिक लाभ पहुंचाकर अन्य चिरकालिक रोगानल में झोंक दें, यह तो कोई चिकित्सा नहीं और उक्त पद्य का भी यह अभिप्राय नहीं।

हमारा आयुर्वेदीय चिकित्सा सिद्धांत तो "योगः प्रशमयेद् व्याधिं नान्यंरोगमुदीरयेत्" से है। अर्थात् चिकित्सा-व्याधि का शमन करे और अन्य उपद्रव व व्याधि उत्पन्न न होने दे, हमारा चिकित्सा-सिद्धांत है।

आधुनिक वैज्ञानिक कसौटी पर कसा जाने वाला नित नया रूप धारण करने वाला, ऐलोपैथिक सिद्धांत हमारे सिद्धांत से बिल्कुल विपरीत है। आज एक नई पेटेंट अमोघ दवा ईजाद की जाती है। मूल्य काफी बढ़ा चढ़ा कर रखे जाते हैं। बड़े आकर्षक प्रचारों द्वारा महती उपयोगिता सिद्ध की जाती है कालान्तर में उसके भयङ्कर मारक परिणाम लोगों पर दृष्टिगोचर होते हैं और जब सैंकड़ों ही नहीं किंतु लाखों लोगोंके स्वास्थ्य का शिकार हो जाता है तो वे ही वैज्ञानिक उस पर प्रतिबन्धात्मक पाबंदियां लगाने की सम्मति देते हैं। अधिकांश ऐलोपैथिक दवाओं का यही हाल है। खैर! हमें किसी की निंदा स्तुति में न पड़कर हमारे ही विषय में कुछ सोचना है। हमें ऐलोपैथी की औषधियां चाहे वे पेटेंट हों या सादी, जब तक हमने उस सारे विषय को पढ़कर कोई परीक्षा न दी हो, भिन्न-भिन्न द्रव्य व उनके गुणावगुणों, प्रयोग विधि, उचित मात्रा तथा प्रयोगावधि आदि पूर्णतया मालूम न की हों, उनके पूरे साहित्य से अनभिज्ञ हों तो हमें उनके प्रयोगों के उपयोग का कोई अधिकार नहीं है।

और माना कि हम उपरोक्त ऐलोपैथिक-साहित्य से पूर्ण परिचित भी हैं अथवा ऐलोपैथिक परीक्षा प्रदत्त भी हैं। किंतु उनके दुर्गुणों तथा विषैले प्रभावों और एक रोग को दबाकर दूसरे भयङ्कर उपद्रवों के उत्पादक प्रभावों को देखकर वैद्य लोगों के लिये तो सर्वथा त्याज्य हैं।

कतिपय प्रान्तीय राजकीय आयुर्वेदीय विभागों के संचालकों द्वारा यद्यपि ऐलोपैथिक दवाओं तथा इंजेक्शनों के प्रयोगों, राजकीय वैद्य कर्मचारियों पर प्रतिबंधात्मक विज्ञप्तियां निकली हुई हैं किन्तु उनका पालन नहीं के बराबर होता है। हम तो सब प्रकार के वैद्यों से ही नहीं किन्तु चिकित्सक कहलाने वाले किसी भी पैथी के चिकित्सक को सानुनय निवेदन करते हैं कि वे ऐसी मारक विषैली, परिणाम में जनस्वास्थ्यापहारक, दूषित औषधियों को विषधर के तुल्य समझ कर सर्वथा त्याग दें। क्यों हम डाक्टरों जनता के विशेष व्यक्तियों और आयुर्वेद के वरिष्ठ-विद्वानों की आलोचना व निन्दा के पात्र बनें?

ऐलोपैथिक औषधियां स्वल्प मात्रा में शीघ्र प्रभाव कारी हैं यह जनसाधारण व कुछ चिकित्सकों का मिथ्या भ्रम है। मुझे कई ऐलोपैथी की पेटेंट व ग्रन्थोक्त औषधियों का खूब अच्छा परिचय मिला है उसके साहित्य से भी अनभिज्ञता नहीं है। मैं ऐसे उदाहरण दे सकता हूं कि वे चिरकाल में प्रभावकारी हैं कभी बहुधा उस रोग पर बिल्कुल प्रभाव न डालकर उसके विपरीत अन्य दूषित प्रभाव भी कर

देती हैं। साथ ही मात्रा और कोर्स भी काफी लम्बा और अधिक मूल्य वाला होता है। इतना होते हुए भी आयुर्वेदिक औषधियों के मुकाबिले बड़ी (खर्चीली-महंगी Costly) पड़ती हैं। साधारण दीन भारत के ग्रामीण व मध्यवर्गीय व्यक्ति तो इस बड़े व्यय भार से घबरा कर मर ही जाते हैं। हां उनकी चमक, पोलिश, सफाई, पेकिंग व लेबल व आकर्षक शीशी व डिजाइन से हम खिच जाते हैं और उनका प्रयोग करते हुये हम बड़ी महत्ता व गौरव का अनुभव करते हैं। अन्तोतोगत्वा वे हानिकर अनुपयोगी और हमारे देश की जलवायु के अनुकूल नहीं हैं। अतः सर्वथा त्याज्य हैं।

विधिवत् बनाये हुये ताजा व पूरे द्रव्य डाले हुए तथा उत्तम टिकियां व टेवलेट (गोलियां), मिश्रण बनाये हुए, आधुनिक डिजाइन के लेबल व पेकिंग किए हुए, हमारे आयुर्वेदिक रस रसायन उनकी अपेक्षा कई गुना गुण क्रिया, प्रभाव रखते हैं फिर निर्दोष व निरापद भी हैं।

हम यहां १-१ एलोपैथिक पेटेंट मेडिशन के साथ ही उसके समान ही नहीं किन्तु अधिक गुण करने वाली औषधि के प्रयोग क्रमशः लिख रहे हैं। उनका आप लोग अवश्य प्रयोग करें और अंग्रेजी दवाओं के प्रयोग को जो कि वैद्य समाज की कीर्ति को कलंकित करता है, उसे त्याग दें।

१. क्विनारसोल टेबलेट के स्थान पर—

शुद्ध श्वेत मल्ल भस्म	१/८ रत्ती
नाय सत्व	१/२ रत्ती
सप्तपर्णघन चूर्ण	१/२ रत्ती

यह मात्रा १ टेबलेट की है, इसी प्रकार अधिक परिमाण में लेकर नीम के पत्तों के रस से घोटकर टेबलेट मशीन में गोलियां बनवालें। शीत ज्वर (मलेरिया), विषमज्वरों में अति उपयोगी है।

२. सेप्टीनीलम टेबलेट—

पिरोजा भस्म	१/४ रत्ती
शुद्ध श्वेत गंधक	१ रत्ती
कासीस भस्म	१/४ रत्ती

इस परिमाण में अधिक द्रव्य लेकर मशीन में गोलियां बनवालें।

उपयोग-व्रण रोपक व रक्त दोषांतक है।

३. एम. बी ६९३ के स्थान पर—

अभ्रक भस्म श्वेत	१/२ रत्ती
शुभ्रामारित मल्ल भस्म	१/८ रत्ती
गोदन्ती भस्म	१/२ रत्ती
श्रृंग भस्म	१/४ रत्ती

मशीन में टिकिया बनालें।

उपयोग—निमोनिया-ज्वर-कास पर।

४. एक्रीफलीविनटेबलेट के स्थान पर—

रसांजन	१ रत्ती
कपूर	१/४ रत्ती
अफीम	१/८ रत्ती
शुभ्रा	१/४ रत्ती
हल्दी	१/८ रत्ती

इसी परिमाण में अधिक द्रव्य लेकर मशीन में टिकिया बनवालें।

उपयोग—नेत्राभिष्यन्द व नेत्र रोगों में गुलाब जल में घोलकर नेत्रों में २-४ बूंदें डालें।

५. एम. वी ७६० के स्थान पर—

गोदन्ती भस्म	१/२ रत्ती
शुभ्रा भस्म	१/४ रत्ती
अमृतासत्व	१/२ रत्ती
श्रृङ्गभस्म	१/४ रत्ती

इसी परिमाण में अधिक टेबलेट बनवालें।

उपयोग—ज्वर-कास

६. सिबाजोल के स्थान पर—

शुद्ध श्वेत मल्ल भस्म	१/८ रत्ती
सौभाग्य भस्म	१/४ रत्ती
श्रृंगभस्म	१/२ रत्ती

—शेषांश पृष्ठ १७ पर।

अधिमन्थ (GLAUCOMA)

लेखक—आयुर्वेदाचार्य डा० रमेशचन्द्र गर्ग ए० एम० एस०
प्रोफेसर-एल० एच० आयु० कालिज, पीलीभीत

यह वह नेत्र रोग है जिसका प्रभाव नेत्र के समस्त अवयवों पर पड़ता है सुश्रुतमतानुसार नेत्राभिष्यन्द की उचित चिकित्सा न होने पर अथवा आहार विहार से यह रोग होता है। नवीन मतानुसार इसको रोग न कहकर लाक्षणिक उपद्रव माना गया है। सामान्यत: इस रोग से पीड़ित रोगी के शिर व नेत्र में तीव्र वेदना होती है। सुश्रुत में भी सामान्य लक्षणों में निम्नप्रकार का उल्लेख मिलता है—–

> उत्पाटयत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मंथ्यते तथा ।
> शिरसोऽर्धं च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ।।

अर्थात् नेत्र बाहर निकलता प्रतीत होता है। नेत्र और शिर का आधा भाग (जिधर आंख हो) मथता हुआ प्रतीत होता है। पीड़ा अत्यधिक होती है। नवीन मत के अनुसार नेत्र का आन्तरिक पीड़न जब किसी भी कारण से अधिक बढ़ जाता है, अर्थात् नेत्र के आन्तरिक लसिकास्राव का प्राकृतिक मात्रा से अधिक बनना तथा उसका प्राकृत या कमी के साथ बहाव बाहर को होना, बाहर का लसिका का बहाव कम होना तथा अन्दर लसिका का प्राकृत अवस्था में बनना या अधिक मात्रा में बनना। उपर्युक्त किसी भी एक कारण से नेत्र का 'आन्तरिक पीड़न' प्राकृत अवस्था (mga Hg) से अधिक बढ़ जाता है तब उसका दबाव नेत्र नाड़ियों (Nerves) पर पड़ता है जिससे मनुष्य के नेत्र व शिर में पीड़ा उत्पन्न होती है· और यदि यह दवाब नाड़ियों पर अधिक समय तक रहे, उपचार न किया जाय तो मनुष्य अन्धा होजाता है। आयुर्वेद में सुश्रत ने भी लिखा है—

> उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो,
> वातात्मकः सादयति प्रसह्य ।।
> रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष,
> हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ।।

अर्थात् हताधिमन्थ रोग होने पर नेत्र की ज्योति नष्ट होजाती है और बुद्बुद सूख कर छोटा भी हो जाता है। इसके पश्चात् वेदना आदि शान्त हो जाती है।

यह रोग मुख्यतया ४० वर्ष की उम्र के बाद मनुष्यों में मिलता है। वैसे तो किसी भी अवस्था में यह रोग मिल सकता है।

आयुर्वेद में यह ४ प्रकार का कहा गया है—

(१) वातज (२) पित्तज (३) कफज (४) रक्तज परन्तु नवीन पुस्तकों में यह दो प्रकार का माना जाता है।

(१) प्रारम्भिक Primary. (२) Secondary (अर्थात् किसी और कारण से यह रोग उत्पन्न हो जाय)

वातज –

> नेत्रमुत्पाटयत इव मथ्यते अरणिवच्च यत् ।
> संघर्षतोदनिर्भेद मांससंरब्धमाविलम् ।।
> कुञ्चनास्फोटनाध्मानवेपथुव्यथनयुतम् ।
> शिरसोऽध च येन स्यादधिमन्थः स मारुतात् ।।

अर्थात्—नेत्र उखड़ता सा प्रतीत होता है, अरणी से मथने के समान नेत्र में पीड़ा, रगड़, तोद, शस्त्र से चीरने की सी वेदना, सूजन, गदलापन, संकुचित होना (प्रकाश में मिचना), फटना, आध्मान, कम्पन, आधे शिर में पीड़ा होती है।

पित्तज—

> रक्तराजिचितंस्रावि वह्निनेवावदह्यते ।
> यकृत्पिण्डोपमं दाहि क्षारेणाक्तमिव क्षतम् ।।
> प्रपक्वोच्छूनवर्त्मान्तं सस्वेदं पीतदर्शनम् ।
> मूर्छाशिरोदाहयुतं पित्तेनाक्ष्यधिमन्थितम् ।।

अर्थात्—आंख लाल रेखाओं से भरी स्रावयुक्त अग्नि की भांति जलती है। नेत्र यकृत पिण्ड के समान जलनयुक्त, व्रण पर नमक मलने के बाद जैसा जलता है, उस प्रकार जलन, पका हुआ, किनारे सूजे हुये, पसीना युक्त पीला दीखता है। रोगी को मूर्च्छा तथा शिर में जलन रहती है।

कफज—

शोफवन्नातिसंरब्धं स्रावकण्डूसमन्वितम् ।
शैत्यगौरवपैच्छिल्यदूषिकाहर्षणान्वितम् ॥
रूपं पश्यति, दुःखेन पांशुपूर्णमिवाविलम् ।
नासाध्मानशिरोदुःखयुतं श्लेष्माधिमन्थितम् ॥

अर्थात्—आंख सूजी हुई, अधिक लाल नहीं, स्राव एवं कण्डू युक्त, शीतल, भारी, पिच्छलता, मैल, हर्ष, पलकों के बाल खड़े युक्त होती हैं। कठिनता से वस्तु दिखाई देती है और वह भी धुंधला। इसमें नासा में आध्मान तथा शिरोवेदना रहती है।

रक्तज—

बन्धुजीव प्रतीकाशं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम् ।
रक्तस्रावं सनिस्तोदं पश्यत्यग्निनिभादिश: ॥
रक्तमग्नारिष्टवच्च कृष्णभागश्च लक्ष्यते ।
यद्दीप्तं रक्तपर्यन्तं तद्रक्तेनाधिमन्थितम् ॥

अर्थात्—आंख दुपहरिया फूल के समान लाल धुंधयालीसी, देखने में असमर्थ, आंसू में लाली, चुभने की दर्द, चारों ओर आग लगी सी देखती है। आंख का काला भाग रक्त में लाल किये अंगीठी के समान दीखता है। दाहयुक्त होता है तथा किनारों पर लाली रहती है।

नवीन मतानुसार Secondary Glaucoma, filtration Angle के किसी प्रकार बन्द हो जाने से, आन्तरिक नेत्र पीड़न के बढ़ने पर उत्पन्न होता है। मुख्य कारण निम्न हैं—

१—कृष्ण मण्डल में छेद होजाय तथा Iris का कृष्णमण्डल से चिपक जाना।
२—Iris का lens से मण्डलाकार रूप में चिपक जाना।
३—lens में व्रण होना।
४—lens का अपने स्थान से हट जाना।
५—नेत्र में अर्बुद का बन जाना।
६—नेत्रों के अन्दर रक्त श्राव।

प्रारम्भिक अधिमन्थ (Primary Glaucoma)—इसका अभी तक मुख्य कारण ज्ञात नहीं हो पाया है। अनुमानतया यह दो बातों पर आश्रित है। (१) किस प्रकार के मनुष्य को रोग हुआ है। (२) किस प्रकार के नेत्र में रोग हुआ है। आधुनिक मत में भी अधिमन्थ के रोगी के नेत्रों में वही चिन्ह मिलते हैं जैसा कि प्राचीन ऋषियों ने उल्लेख किए हैं।

अर्थात्—(१) कृष्णमण्डल के चारों तरफ अधिक लालाई।
(२) दृष्टि (Pupil) का विस्फार तथा प्रकाश डालने पर उस पर बहुत कम या बिल्कुल नहीं के बराबर प्रभाव।
(३) कम दिखलाई देना।
(४) नेत्र व शिर में तीव्र वेदना।
(५) आन्तरिक नेत्र पीड़न का बढ़ना।

चिकित्सा—

इस रोग की चिकित्सा रोगी को शीघ्रातिशीघ्र प्रारम्भ कर देनी चाहिए अन्यथा शूलादि कष्टों के साथ मनुष्य की ज्योति शनैः शनैः कम होती जायगी और अन्ततोगत्वा रोगी सम्पूर्णतया अन्धा हो जायगा।

आयुर्वेदीय चिकित्सा—यह रोग सुश्रुतमतानुसार शिरावेधन से शान्त होता है।

सिरा मोक्षण—पुराने घी (दस साल के) से स्नेहन करके, स्वेदन देकर करे। स्निग्ध विरेचन देकर बस्तियों का प्रयोग करना चाहिए। तदन्तर तर्पण, पुटपाक, धूम आश्च्योतन, नस्य, स्नेह परिषेक तथा शिरोबस्ति देवे।

ज्वर के समान निराम अवस्था में ही स्नेहन और स्वेदन करना चाहिये। यथा—

स्वेदः प्रलेपः तिक्तान्नं धूमो दिन चतुष्टयम् ।
लंघनम् चाक्षिरोगाणां आमानां पाचनानि षट् ॥
अंजनं सविषः पानं कषायं गुरुभोजनम् ।
नेत्ररोगेषु सामेषु स्नानं च परिवर्जयेत् ॥

वाताधिमन्थ की चिकित्सा—

स्वेदन—भद्रदार्व्यादि वातनाशक, अनूपमांस, जलज मांस, आमला आदि अम्ल द्रव्यों के क्वाथ से सेचन करके कपड़े की पोटलियों को उष्ण घी, तैल वसा मज्जा में भिगो भिगो कर दूध से, वेश्वार, सालवण उपनाह द्रव्यों से, खीर से स्वेदन करके सिरा मोक्षणादि करें ।

भोजनोपरान्त रात्रि में घृतपान त्रिफला क्वाथ में सिद्ध किया हुआ पीवें ।

स्नैहिक पुटपाक, स्नैहिक धूम, स्नैहिक नस्य एवं शालपर्णी, दूध तथा काकोल्यादि मधुरगण से सिद्ध किया तैल नस्य आदि में प्रयोग करें । कण्टकारी के मूल से सिद्ध किया बकरी का दूध गरम गरम सेक में प्रयोग करें । आश्च्योतन में दूध को ठण्डा करके काम में लाए ।

परिषेक—सैन्धव, खस, मुलहठी, पिप्पली, इनसे आधा पानी मिलाया दूध सिद्ध करके प्रयोग में लाए ।

अंजन—मुलहठी, हल्दी, हरड़, देवदारु, इनको बकरी के दूध में पीस कर अंजन लगाए ।

पित्ताधिमन्थ की चिकित्सा—

रक्तस्राव, विरेचन, आंखों पर परिषेक, आलेप नस्य और अञ्जन करना चाहिए ।

पित्तनाशक उपचार करे, तीन दिन के बाद, दूध से निकाले घी का नस्य देवे ।

पलाश के रस में शर्करा मधु मिलाकर अञ्जन करना चाहिए । चन्दन, गूलर, इनको वस्त्र को पोटली में बांध कर पानी में भिगोकर आश्च्योतन कराए ।

श्लेष्माधिमन्थ की चिकित्सा—

सिरामोक्षण—स्वेदन, अवपीडन, अञ्जन, धूम, परिषेक, प्रलेप, कवलग्रह, रूक्ष आश्च्योतन, रूक्ष पुटपाक । तीसरे दिन बाद, उपवास के उपरान्त तिक्त घृत का पान, कफ की वृद्धि न करने वाले खान पान को देना चाहिए ।

स्वेदन—कुरन्नट (तगर) आस्फोट (सारिवा), फणि, मक (मरवा), बिल्व, पत्तूर, पिलु, आक, कैथ, इनके पत्तों से स्वेदन करना चाहिये ।

वर्त्ति—हरड़, हल्दी, मुलहठी, सुरमा जल में पीस कर वर्त्ति बनाना चाहिए तथा अञ्जन करना चाहिए ।

रक्ताधिमन्थ की चिकित्सा—

पुरातन घृत (एक सौ वर्ष का) या अधिक स्नेह वाले मांस रसों से स्निग्ध करके सिरामोक्षण करें ।

शिरोविरेचन, प्रदेह, परिषेचन, नस्य, धूमयोग, का प्रयोग ।

आश्च्योतन, अभ्यंग, अञ्जन, तर्पण, स्निग्ध पुटपाक का प्रयोग ।

प्रलेप—नीलोफर, खस, दारुहल्दी, कालीयक काष्ठ, मुलहठी, मुस्ता, लोध, पद्माख इनको शतधौत घृत में मिलाकर आंखों के चारों तरफ लेप करना चाहिए ।

अधिक पीड़ा होने पर—आंखों के चारों तरफ स्वेदन करें तथा जौंक लगाए । अधिक घी पीने से भी पीड़ा शान्त होजाती है ।

आश्च्योतन—कसेरू और मुलहठी के चूर्ण को पोटली बांधकर वर्षा जल में भिगो भिगोकर आंखों पर करना चाहिए ।

अंजन—चन्दन, कमल, तेजपात, शिलाजतु, केसर, लोहभस्म, ताम्रभस्म, तुत्थ, नीम का गोंद, रसौत, रांगे का मैल, (जस्ता जा आंखों में डालते हैं) कांसी का मैल मधु से घिस कर वर्त्तियां बनाले और इन्हें अंजन के लिए प्रयोग में लाए ।

आधुनिक चिकित्सा—

इस मत में क्योंकि रोग का कारण (छिद्र का बन्द हो जाना) मानते हैं चाहे वह किसी भी कारण से हो, उसके दूर करने का उपाय शीघ्रतातिशीघ्र करना चाहिये। आन्तरिक नेत्र पीड़न को दूर करना एक मुख्य ध्येय होना चाहिये।

(१) औषधि के प्रयोग द्वारा।

(२) शस्त्र कर्म।

अधिमन्थ की तीव्रावस्था में—

प्रारम्भ में Essesine pilocarpine *2%* drops का प्रयोग प्रत्येक ½ घण्टे पर नेत्र में डालकर १२ घण्टे तक लगातार करना चाहिये। इससे भी शीघ्र चिकित्सा की जाय तो बहुत उत्तम है। प्रारम्भ में Essesine *1%* drops को जिस नेत्र में अधिमन्थ है प्रत्येक ५ मिनट पर डालना चाहिये। यह क्रिया ½ घण्टे तक रहे। बाद में यह क्रिया प्रत्येक घण्टे के बाद नेत्र में बूंद डालकर करता रहे जब तक कि आन्तरिक नेत्र-पीड़न कम न हो जाय।

जिस नेत्र में अधिमन्थ नहीं है उसमें भी ऐसी दशा में Essesine ½% drops दिन में दो बार डाल देनी चाहिये।

morphia ¼ gr. का Injection भी वेदना शान्त करता है। mag. Sulph. *50% 6* ounces., intrarectally. देने से नेत्र का आन्तरिक पीड़न बहुत कम हो जाता है।

शङ्ख प्रदेश पर जौंक द्वारा रक्त मोक्षण करने से भी पीड़न कम होता है। यह विधि प्रायः पुराने आचार्य भी प्रयोग में लाते थे।

रोग शन्ति होने पर भी trephining शल्यक्रिया कर देना हितकर रहता है।

औषधि के डालने व प्रयोग में लाने पर भी यदि नेत्र व शिर में पीड़ा कम नहीं तो तुरन्त ही शल्य चिकित्सा का अनुकरण करना चाहिये।

शल्य चिकित्सा—

(*1*) Iredectomy (wide spherical Iredectomy leaving the sphincter papillacintach.)

इस शल्यकर्म का प्रथम प्रयोग सन् १८५६ में श्री वोनग्रेफी (Von Greafe) ने किया था। इस शल्य विधान से angle of antrior chamber खुल जाता है और लासिका का प्रवाह प्राकृत रूप में आ जाता है। हताधिमन्थ (Absolute glaucoma) में दर्द को दूर करने के लिये गरम परिषेक तथा Aspirin का प्रयोग करे। अथवा Novocain *1.5* c. c. *4%* retrocular (नेत्र के अन्दर) सूचीवेध करे और उसके ७ मिनट बाद Alcohol *80./·* का इन्जेक्शन नेत्र के अन्दर लगादे। एक रुई की गद्दी तथा पट्टी (बन्ध) बांध दे।

उपर्युक्त चिकित्सा करने पर भी यदि दर्द में कमी न आये तो यही चिकित्सा बार बार करे। इसमें शल्यकर्म न करे, क्योंकि ऐसे अधिमन्थ के रोगियों में यह सन्देह होता है कि रोग का कारण नेत्र के उत्तर उत्पन्न किसी जीर्ण अर्बुद है।

जीर्णाधिमन्थ की चिकित्सा—

Pilocapine ½./· या Doryl *0.75./·* Solution. या Eserine ⅛ to ½./· drops दिन में दो बार नेत्र में डाले जिसमें रोग हो।

यदि औषधि प्रयोग करने से दर्द में कमी नहीं होती या ज्योति उत्तरोत्तर घटती ही जाती है तो तुरन्त शल्यकर्म करना चाहिये।

शल्यकर्म—(*1*) Iridencleisis.
(*2*) Trephining.
(*3*) Cyclodialysis (chronic glaucoma in Aphakie eyes)

बालकों में पाया जाने वाला अधिमन्थ—

यह अधिमन्थ रोग केवल उन बालकों में पाया

जाता है जिनकी आंखों में जन्मजात ही angle of Anterior chamber or Filtration angle बन्द हो। ऐसे रोगी के कृष्ण मण्डल (Cornea) में शुक्ल (opacity) मिलती है। cornea, globe के आकार का हो जाता है। इसके अतिरिक्त और सब पहले प्रकार के लक्षण मिलते हैं। यह रोग प्राय: बालकों के दोनों नेत्रों में मिलता है। यह भी देखा गया है कि लड़कियों की अपेक्षा यह रोग लड़कों में अधिक पाया जाता है।

चिकित्सा—लाभदायक साबित नहीं हो पाई। औषधि प्रयोग से कोई लाभ नहीं होता, इस कारण शल्यकर्म का ही एक मात्र अवलम्बन लेना पड़ता है।

शल्य चिकित्सा—

(*1*) Anterior *S*clerotomy with the trephine.:—इस शल्यकर्म को बार बार करना पड़ता है और कभी-कभी ज्योति नहीं बढ़ पाती।

(2) Iridencleisis.

(*3*) Irido-Dialysis.

(*4*) Trabeculotomy (Goniotomy) यह नवीनतम शल्यकर्म श्री ओटो बारकन (Otto Barkan) ने किया था। इससे आशातीत सफलता मिली है।

उपर्युक्त रोग अधिमन्थ (Glaucoma) का विवेचन प्राचीन तथा अर्वाचीन ढङ्ग से बहुत ही संक्षेप में मैंने लिखने का प्रयास किया है जिससे पाठक भली प्रकार समझ सकें। यह रोग बहुत ही भयंकर सिद्ध होता है। यदि इसका उपचार सुचारु रूप से शीघ्र न किया गया तो अन्ततोगत्वा रोगी ज्योतिहीन हो जाता है। हमारे देश में ऐसे रोग से उत्पन्न अन्धों की संख्या बहुत है।

हमारी सरकार को चाहिये कि जगह-जगह पर नेत्र चिकित्सालय मुख्यतयः गांवों में खुलवाये। जिससे रोगी शीघ्र उपचार न होने के कारण तथा अपनी अज्ञानता के कारण हमेशा के लिये ज्योतिहीन न बनें। आशा है सरकार नेत्र चिकित्सा के सम्बन्ध में अगली पंचवर्षीय योजना में अधिक सोचेगी जिससे देश का कल्याण होगा।

:: पृष्ठ १२ का शेषांश ::

अभ्रक भस्म श्वेत	१/४ रत्ती

इसी परिमाण में अधिक द्रव्य लेकर मशीन में गोलियां बनवालें।

उपयोग—निमोनियां, कास, ज्वर, व्रण तथा नेत्र रोगों में प्रयुक्त होती हैं।

७. वेरिन टेबलेट के स्थान पर—

अश्वगंधा सत्व	१/४ रत्ती
बङ्गभस्म (श्वेत)	१/४ रत्ती
प्रवाल पिष्टी (श्वेत)	१/४ रत्ती

इसी परिमाण में अधिक द्रव्य लेकर छोटी टिकिया बनालें।

उपयोग—साधारण वातरोग नाशक शक्तिप्रद है।

८. क्लोरोमाइसिटीन केपसूल के स्थान पर—

मुक्तापिष्टी	१/२ रत्ती
गोरोचन	१/४ रत्ती
कस्तूरी	१/४ रत्ती

—इस मात्रा में केपसूल में भर लें।

उपयोग—टाइफाइड (मोतीझरा), तीव्र ज्वर में निर्विघ्न और उत्तम लाभप्रद है।

९. क्विनाइन केपसूल के स्थान पर—

शुभ्रा निर्मित मल्ल भस्म	१/८ रत्ती
अमृतासत्व	१/२ रत्ती
नाय सत्व	१/२ रत्ती
कासीस गोदन्ती भस्म	१/४ रत्ती

इस मात्रा में एक केपसूल में भरलें।

उपयोग—शीतज्वर, विषमज्वर नाशक, प्लीहावृद्धि को दूर करती है।

प्राण-शक्ति

लेखक–श्री. राजेन्द्र कुमार शास्त्री, अलीगढ़।

मानव शरीर की समस्त क्रियायें प्राणशक्ति के आधार पर हो रही हैं। इसीलिए भारतीय महर्षियों ने प्राणोपासना पर विशेष ध्यान दिया है। प्राचीन काल में प्राणोपासना धर्म का एक अङ्ग मानी जाती थी, अतः प्रत्येक गृहस्थ इसका अनुष्ठान करता था; किन्तु शनैः शनैः कालक्रमागत एवं राजनैतिक परिस्थितियों के कारण प्राणोपासना का रूप विकृत तथा विलुप्त होगया। प्राणोपासना सम्बन्धी ग्रन्थ अब भी उपलब्ध हैं, किन्तु अनुष्ठान कर्त्ताओं की बड़ी न्यूनता है, न्यूनता ही क्या एक प्रकार से अभाव ही समझना चाहिए। यदि आज का मानव इस प्राणोपासना का अभ्यास करने में तत्पर होजाय तो जहां वह अनेकानेक व्याधियों से मुक्त हो वहां उसे अनिर्वचनीय मानसिक एवं आत्मिक शांति की भी प्राप्ति हो। अनभ्यास के कारण यह प्रक्रिया कठिन भले ही मालूम हो, किन्तु असम्भव नहीं, जैसा कि कुछ लोगों का विचार है। कभी कभी ऐसा देखा गया है जब संसार के सभी वैद्य और डाक्टर हार मान बैठे हैं वहां प्राणोपासना ने अपना अद्भुत चमत्कार दिखाकर लोगों को चकित कर दिया है।

डाक्टर मैकफैडन ने अपने एक ग्रन्थ 'Supreme Vitality' में एक रोगी का वर्णन किया है एक बार एक नवयुवक जिसे कि बड़े-बड़े डाक्टरों ने असाध्य कह कर निराश कर दिया था प्राणशक्ति के बल से उसने पूर्ण स्वास्थ्य लाभ किया। नवयुवक के ही शब्दों में इस प्रकार है—

"मैं डाक्टरों की दवाओं से परेशान होगया, बड़े-बड़े नामी हकीम और डाक्टरों ने मुझे मरने से पहले ही मौत का टिकट दे दिया, मेरे पिता जिनका मैं अकेला ही पुत्र था, जिनकी सभी आशाएं मेरे ही ऊपर आश्रित थीं, मेरे सामने आंसू बहाने लगे, उनकी आंखों में आंसू देखकर मुझे भी रोना आजाता था पर मैं विवश था। मैं कहता आप धैर्य रखें, शायद ईश्वर मुझे बचा ही ले, उनके यहां सब कुछ सम्भव है। मुझे कुछ ऐसा विश्वास होता था मानो मैं मरूंगा नहीं। मेरे चलने फिरने की शक्ति तो क्षीण हो ही चुकी थी, इसलिये मैं चारपाई पर ही पड़ा रहता था। एक बार जैसे ही मैं पड़ा था मेरे पिताजी ने मुझे एक पुस्तक दी, उसमें लिखा था कि जब तक मनुष्य के शरीर में प्राणशक्ति रहती है, वह मर नहीं सकता, चाहे फिर शरीर कितना ही क्षीण क्यों न होजाय, मुझे विश्वास हुआ कि फिर तो मैं भी स्वस्थ हो सकता हूं। उसमें बताया गया था कि प्राणशक्ति किस प्रकार बलवती बनायी जा सकती है। मैंने तदनुरूप अभ्यास पड़े-पड़े प्रारम्भ कर दिया धीरे धीरे मुझे अनुभव हुआ कि मेरे शरीर में कोई ऐसी विद्युत समाविष्ट हो रही है जिसके कारण मुझे चलने फिरने में जरा भी थकान या शिथिलता अनुभव न हुई। एक दिन मैं अपने ग्रहोद्यान में टहल रहा था, उसी समय मेरे पिताजी भी मेरे पास आगये और मुझे देखकर आश्चर्य से बोले 'तुम किसकी दवा खारहे हो? मैंने झट से उत्तर दिया प्रकृति की। आपने जो पुस्तक मुझे पढ़ने के लिये दी थी, उसी के अनुसार मैंने दिनचर्या बनाली और अभ्यास प्रारम्भ कर दिया, मैं अनुभव कर रहा हूँ कि पुस्तक लिखने वाले का अनुभव बिल्कुल ठीक है। आप विश्वास रखें कि मैं अब मर नहीं सकता। पूरे एक वर्ष के अन्दर मुझे कोई रोग न रहा। पश्चात् मैं उन डाक्टरों के पास गया जिन्होंने मुझे असाध्य कह कर मौत का परवाना दे दिया था। वे साश्चर्य मेरे स्वास्थ्य का रहस्य पूछने लगे पर मैं मुस्करा कर रह गया।"

उपरोक्त घटना से यह सिद्ध होता है कि पूर्ण आरोग्य एवं दीर्घ जीवन के लिये आत्म विश्वास

और प्राणशक्ति के रहस्य को जानने की आवश्यकता है। "प्राणायाम" शब्द का अर्थ ही प्राणोपासना है। यदि हम इसकी व्युत्पत्ति करें तो इस प्रकार होगी "प्राणस्य आयामः" प्राण का विस्तार यानी जीवन का विस्तार, दीर्घ जीवन की प्राप्ति। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आयर्वेद की सभी औषधियां इसी प्राणशक्ति को सबल एवं सुव्यवस्थित बनाने के लिये हैं। अतः ४ बजे की अमृत बेला में प्राणायाम करने वाले मनीषियों को निस्सन्देह उत्तम स्वास्थ्य, दिव्य मेधा एवं बलवती प्राणशक्ति की प्राप्ति होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि विमुक्त वातावरण में विचरण करने वाले पशु और पक्षी कभी बीमार नहीं पड़ते, पालतू पशु, पक्षियों की अपेक्षा उनका स्वास्थ्य और सौन्दर्य अधिक आकर्षक एवं स्थायी होता है। प्रकृति में कहां वैद्य और डाक्टर हैं वहां तो प्राकृतिक तत्व ही रोगोपशामक हैं जो सबको सदैव सुलभ हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने प्राणायाम के चार प्रकार बतलाये हैं। रेचक, पूरक, कुम्भक और वाह्याभ्यन्तराक्षेपी। इन्हीं चार प्राणायामों के और भी अनेक भेद हो जाते हैं, किन्तु मूल रूप में चार ही निर्धारित हैं। अब इन चारों की प्रक्रिया नीचे लिखी जाती है।

रेचक—

रेचक-रेचृ विरेचने धातु से बना है, जिसका अर्थ है विरेचन होना, दूषित वायु का भीतर से निकाल देना। शुद्ध स्थान में जहां की वायु नितांत स्वच्छ एवं सुगन्धित हो एकान्त में जिधर का वायु चल रहा हो उसी ओर मुंह करके नासिका से अन्तस्थ वायु को शनैः शनैः बाहर निकालना चाहिये। धक्का देकर वायु को नासारन्ध्र से निकालने से नेत्रों पर आघात पहुंचता है, जिससे नेत्रों को हानि होने की सम्भावना रहती है। स्मरण रहे इस रेचन क्रिया के द्वारा जहां दूषित परमाणुओं का बहिष्करण होता है, वहां रुग्णता, वृद्धता एवं मानसिक दुर्बलता के परमाणुओं का भी अभिक्षय हो जाता है। अभ्यासी को इसका स्वतः अनुभव होने लगता है।

पूरकः—

रेचक प्राणायाम के द्वारा दूषित वायु को बाहर निकालना होता है। बाहर से शुद्ध वायु शनैः शनैः भीतर खींचना चाहिये। इस प्राणायाम के द्वारा कण्ठ, वक्ष एवं उदर को क्रमशः वायु से पूरित किया जाता है।

कुम्भक—

कुम्भ घड़े को कहते हैं। वायु के उदर में रुकने के कारण उदर घड़े के समान हो जाता है। इसलिये इसका नाम 'कुम्भक' रखा गया है। इस प्राणायाम में यथाशक्ति वायु को भीतर ही रोकना चाहिये। किन्तु बलात् नहीं, इसको धीरे-धीरे ही रोकने का अभ्यास करना चाहिये। इस प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में दिव्य शक्तियों का विकास होने लगता है। शरीर में अपार बल की वृद्धि होने लगती है। १ सेर सन्तरों के रस में जितनी शक्ति हो सकती है उससे भी कहीं अधिक शक्ति इस प्राणायाम के द्वारा प्राप्त होती है।

वाह्याभ्यन्तराक्षेपी—

प्राण शक्ति को जहां का तहां ही रोक देना अर्थात् बाहर का बाहर और भीतर का भीतर। इस क्रिया के अभ्यास से मानसिक शक्तियों का अद्भुत विकास होता है। अभ्यास काल में प्रथम तो दमसा घुटने लगता है, किन्तु थोड़े समय के पश्चात् अद्भुत आनन्द अनुभव होने लगता है। अधिक काल तक नियमित रूप से अभ्यास करने पर आत्मदर्शन की क्षमता भी प्राप्त हो जाती है। किन्तु इन सभी प्राणायामों के समय प्राणायाम मंत्र का मानसिक जप अर्थ सहित करना चाहिये, तभी वास्तविक अभ्यास का लाभ मिलेगा।

चकौडा बूटी

लेखक–वैद्यरत्न श्री आत्माराम बर्वे आ० वि० शास्त्री, मु. पो. घंसौर (सिवनी)

गुण—स्वादिष्ट, रूखा, हल्का, कड़वा, चरपरा, हृदय को हितकारी, शीतल, खारी एवं वात, पित्त, कफ, दाद, कोढ़, कृमि, श्वास, बवासीर, घाव, मेदोरोग, पामा, त्रिदोष, अरुचि, ज्वर, मल, मूत्र का रुक जाना एवं प्रमेह, खांसी को दूर करता है।

बीज—मलरोधक, गरम, चरपरा, तथा कफ, कोढ़, श्वास, खांसी, दाद, खुजली, विष, सूजन, गुल्म एवं वातरक्त को नाश करने वाले।

पत्तों का साग—हल्का, पित्तजनक, अमल्य, गरम तथा कफ, वात, दाद, कोढ़, कण्डू, खांसी, श्वास नाशक है।

हानिप्रद—आंतों के लिए।

हानि निवारक—दही, दूध।

व्यवहार—बीज, मूल, पत्ते। [शं० नि०]

परिचय—

यह बूटी प्रायः सभी स्थानों में पाई जाती है। बरसात में पैदा होती तथा कार्तिक तक रहती है। इसका क्षुप २–२॥ फुट ऊंचा, पत्ते गोल एवं एक-एक सींक में छः छः होते हैं, फूल पीला, फली ४-६ इंच तक बड़ी। इसे सभी जानते होंगे। चकौड़ा नाम से प्रसिद्ध है।

उपयोगः—(१) चकौड़े के बीज १ तोला, १ छटांक गाय के मूत्र में महीन पीसकर दाद, खाज, गजकरन पर चन्दन के समान लेप करें। १२ घण्टे के पश्चात् साफ कर लिया करें। अवश्य लाभ होगा।

२—प्रथम विधि के अनुसार लेप तैयार कर १/२ तोला थूहर का दूध डालकर मर्दन करें और श्वेतकुष्ठ पर लेप करें।

३—नकसूर में इसके पत्तों का रस सुंघाना चाहिये।

४—दोहा—अमरवेल और [१]अमरकठा,
गांव का ठाकुर गाय का मठा।
[२]नगरसवासन लीजै मिलाय,
इसे लगावे तो सेऊआ जाय॥

अनुभवसिद्ध प्रयोग–वैद्य मोहनलाल 'दुबे' घन्सौर।

५—चकौड़ा के बीज, मीठा तेलिया, बच, चीता, नागरमोथा, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, समभाग महीन पीसकर चूर्ण करके गुड़ के साथ मर्दन करें फिर लेप करें। इस लेप से कुष्ठ रोग अच्छा होता है।

६—असगन्ध, चकौड़ा बीज, वायबिडङ्ग, भिलावा, जमालगोटा की जड़, चीता, अमलतास, निबोली, इन सबको काजी में पीसकर श्वेत-कुष्ठ पर लेप करें। लाभप्रद औषधि है।

७—चकौड़े के बीज ४ माशा, हरताल ४ माशा, बावची १६ माशा। इनको गाय के मूत्र में पीसकर सफेद चकते (दाग) पर लेप करें। लाभ होगा।

८—चकौड़ा बीज, गेरू, गँधग, बावची। सब दवा समभाग गौमूत्र में पीसकर लेप करने से इस प्रयोग से भी सफेद दाग ठीक हो जाते हैं। इस लेप को लगाकर एक घंटा धूप में बैठे रहना चाहिये।

९—चकौड़ा बीज ५ तोला, केशर २ तोला, मेनसिल २ तोला, आंवलासार गंधक ४ तोला, चौकिया सुहागा ४ तोला, मुर्दासंग ८ तोला। इन सब दवाओं को कूट छान चूर्ण कर फिर कड़ुआ तेल में मिलाकर घोटें। बाद में लेप करें (मलें) दाद

---

[१] =कठुमर [वनऊमर]। [२] हल्दी [हरिद्रा]

077663

खाज, गजकरण, सेहुआ इत्यादि चर्मरोग नाश होते हैं।

१०—चकौड़ा के बीज, हरड़, सेंधा नमक, तुलसी, इन सबको बराबर बराबर लें। कांजी या खट्टे मठा संग पीसकर लेप करें महा असाध्य कच्छ दाद, खाज आदि दूर होते हैं।

११—चकौड़ा बीज, कूट, सेंधा नमक, सरसों, वायबिडङ्ग। यह सब दवा समभाग चूर्ण कर कांजी संग लेप करें, कृमि, सेहुआ, दाद, खाज, कोढ़ अच्छे हों।

१२—चकौड़ा बीज, कसौंदी की जड़, खट्टे मठा में पीसकर लेप करें। क्रित्रिम कोढ़ का नाश करे।

१३—चकौड़ा बीज, कूट, मूली के बीज, मालकांगनी सरसों, हल्दी तथा केशर। समभाग मठा में पीसकर लेप करें। बहुत पुराना सेहुआ नाश हो।

१४—चकौड़ा बीज, पीपल. कूट सबको समभाग बकरे के मूत्र में पीसकर लेप करे. इससे भी सफेद दाग ठीक होते देखा गया है।

बृहन्मरिचादि तेल—

१५—मिर्च, निशोथ, जमालगोटा की जड़, आक का दूध, गोबर का रस, देवदारु, दारुहल्दी, हल्दी, जटामांसी, कूट, चंदन, इन्द्रायण की जड़, कनेर की जड़, मेनशिल, चीता, करियारी, नागरमोथा, बायविडङ्ग, चकौड़े के बीज, सरसों, नींम की छाल, इन्द्रजौ, सेहुंड, थूहर, गिलोय, अमलताश, बावची, बच, मालकांगनी यह सब औषधि ४-४ तोला, मीठा तेल ८ तोला सब को पानी में पीसकर २५६ तोले सरसों के तेल में मिलाकर एवं तेल से चौगुना गौमूत्र डालें फिर मंदाग्नि से तेल को सिद्ध करलें।

गुण—इस तेल की मालिश करने से १८ प्रकार के कुष्ठ तथा दाद, खुजली, विस्फोट और ८० प्रकार के वात रोग इत्यादि अवश्य नाश होते हैं। शरीर वायु के समान वेग वाला होवे।

[र. प. म.]

१६—दोहा—जवा, राई, तिली,
तीनहुँ अलग खार बनाय।
बावची, बीज चकौड़ा,
जवाखार मंगवाय॥
खट्टो मठा गायकौ तासंग,
तीन दिना घुटवाय।
सात दिनों तक लेप करो,
दादखुजली सेहुआ जाय॥

077663

असली-द्रव्य

उत्तम कस्तूरी—विश्वस्त व असली, १ तोला ६०)
केशर काश्मीरी—असली व नवीन काश्मीरी केशर। १ तोला १८)
केशर का चूरा—औषधि निर्माण में व्यवहार करने योग्य उत्तम केशर का चूरा। १ तोला ८)
अम्बर—१ तोला ३६), गौरोचन—१ तो, ४०)
अकीकदाना—५ तोला २) खड़ ५ तोला १)
कहरवा—१ तो. २॥) जहर मोहरा खताई—१ तो. १)
खर्पर (खपरिया) ५ तोला २)
वैक्रान्त खड़ १ तोला २)
माणिक्य खड़ १ तोला २)
पुखराज खड़ १ तोला ३)
नीलम खड़ १ तोला ३)
फिरोजा खड़ १ तोला २)

—ये भाव नैट हैं, कोई कमी नहीं होगी। खर्चा प्रथक् होगा।

पता-धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा नियुक्त आयुर्वेद शिक्षा समुत्थान समिति द्वारा प्रस्तुत

पंचवर्षीय आयुर्वेदाचार्य उपाधि पाठ्यक्रम का

विवेचनात्मक अध्ययन

लेखक—श्री. कृष्णकुमार एम० ए० आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेद विद्यालय, गुरुकुल कांगडी।

उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द ने २४ जून १९५८ को उत्तर प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी नैनीताल में एक आयुर्वेद सम्मेलन का आयोजन किया था। इस सम्मेलन में आयुर्वेद के अनेक प्रसिद्ध विद्वान् श्री शिवशर्मा, श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री, श्री हरिहरदत्त जोशी, श्री द० अ० कुलकर्णी आदि सम्मालित हुए थे। इस सम्मेलन में यह मत व्यक्त किया गया था कि अब तक उत्तर प्रदेश में चलने वाला आयुर्वेद का मिश्रित प्रणाली (Intigrated System) का पाठ्यक्रम असफल रहा है। इस पाठ्य का अध्ययन करके उत्तीर्ण अधिकांश आयुर्वेद स्नातक आयुर्वेद में श्रद्धा नहीं रखते, उनको आयुर्वेद का उचित ज्ञान नहीं होता तथा व्यावहारिक रूप में वे वैद्य न होकर ऐलोपैथी की ही सेवा करते हैं। इन स्नातकों द्वारा आयुर्वेद की उन्नति न होकर अवनति ही होरही है। तथ्य यह है कि अधिकांश आयुर्वेद स्नातक अपने औषधालयों में आयुर्वेदीय औषधियों का प्रयोग बहुत कम करते हैं परन्तु ऐलोपैथिक औषधियों का प्रयोग बाहुल्य से करते हैं। इस मिश्रित प्रणाली के पाठ्यक्रम का अध्ययन कर उत्तीर्ण हुये अनेक ऐसे भी आयुर्वेद चिकित्सक हैं जिनके औषधालयों में एक भी आयुर्वेदीय औषधि दिखाई नहीं देती। ये चिकित्सक अपने को वैद्य कहलाने में अपमानित अनुभव करते हैं तथा डाक्टर कहलाने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। इन परिस्थितियों में आयुर्वेद की उन्नति न होकर अवनति ही हो रही है। आयुर्वेद के जिन स्नातकों में आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा ही नहीं है, जो अपने अध्ययन काल में आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा और विश्वास न रखते हुये आयुर्वेद की उपेक्षा ही करते रहे उनको आयुर्वेद का सम्यक् ज्ञान ही किस प्रकार हो सकता है और वे चिकित्सा में आयुर्वेदीय औषधियों से किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

इन परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि वर्तमान मिश्रित प्रणाली के पाठ्यक्रम को समाप्त करके एक ऐसे पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जावे जो आयुर्वेद के प्रति श्रद्धावान् श्रेष्ठ विद्वान् उत्पन्न करे तथा जिस पाठ्यक्रम के अध्ययन से उत्तीर्ण आयुर्वेद स्नातक आयुर्दीय औषधियों का सफलता से प्रयोग कर सकें। इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए उत्तर प्रदेशीय सरकारने २४ जून १९५८ को एक उच्चस्तरीय आयुर्वेद शिक्षा समुत्थान समिति का संगठन किया। इस समिति ने २७ जून १९५८ को आयुर्वेद महाविद्यालयों में अध्यरान के लिये एक पंच वर्षीय आयुर्वेदाचार्य उपाधि पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया।

भारतवर्ष में आयुर्वेद के पाठ्यक्रम के विषय में दो पक्ष रहे हैं प्रथम पक्ष यह है कि आयुर्वेद महाविद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्रों को आयुर्वेद के साथ साथ नवीन पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करना आवश्यक है। चिकित्सा जगत में हुये नवीन आविष्कारों का ज्ञान प्राप्त किये बिना हम उन्नित नहीं कर सकते। आयुर्वेद में लगभग १००० वर्षों से नवीन अनुसन्धान नहीं हुये हैं अतः आयुर्वेद किन्हीं अंशों में बहुत पिछड़ गया है। आयुर्वेद विज्ञान में पूर्णता लाने के लिये यह आवश्यक है कि इसके अपूर्ण अंशों की पूर्ति नवीन

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान से की जावे। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन के बिना विद्यार्थी श्रेष्ठ सफल चिकित्सक नहीं बन सकता।

दूसरा पक्ष यह है कि आयुर्वेद महाविद्यालयों में विशुद्ध आयुर्वेद का ही अध्ययन कराना आवश्यक तथा वांछनीय है। आयुर्वेद के साथ साथ पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करने से विद्यार्थियों में आयुर्वेद के प्रति रुचि नहीं रहती तथा विद्यार्थी आयुर्वेद में श्रद्धा नहीं रखते। इन महाविद्यालयों में पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान आयुर्वेद के विषयों पर हावी होजाता है। विद्यार्थियों का अधिक समय तथा परिश्रम पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन में ही व्यतीत होजाता है। इस कारण विद्यार्थी पूरे वैद्य नहीं बन पाते, साथ ही पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का पूर्ण अध्ययन न कर सकने के कारण उसमें भी पूरे निष्णात नहीं होते। प्रारम्भ से ही आयुर्वेद के साथ पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करने से विद्यार्थी भौतिकतावादी हो जाता है। इस अपरिपक्व अवस्था में पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन का उसके मस्तिष्क पर यह प्रभाव होता है कि वह प्रत्यक्ष आंखों से दिखाई पड़ने वाली वस्तु की ही सत्ता स्वीकार करता है अन्य वस्तुओं को असत्य मानता है।

दोनों पक्षों की अपनी अपनी मुक्तियां ठीक हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विवेचना करना असंगत तथा अनावश्यक है। इसमें से एक ऐसा मध्यम मार्ग निकाला जा सकता है जो दोनों पक्षों की आपत्तियों का निवारण कर सके। प्रस्तुत पाठ्यक्रम इसी मध्यम मार्ग का निर्देश करता है।

किसी भी युग में आविष्कृत विज्ञान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। विज्ञान के इस वर्तमान युग में हम पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान तथा उसके नवीनतम अनुसंधानों की उपेक्षा नहीं कर सकते। विद्यार्थियों को आयुर्वेद के साथ-साथ आधुनिक विज्ञान की शिक्षा भी देनी ही चाहिये। परन्तु आधुनिक विज्ञान की यह शिक्षा आयुर्वेद विज्ञान के पृथक रूप में ही दी जानी चाहिये। ऐसा न हो कि कहीं यह आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान हमारे अपने आयुर्वेद विज्ञान को ही निगीर्ण कर जावे। प्रत्येक विज्ञान के अपने सिद्धान्त होते हैं। आयुर्वेद के भी अपने सिद्धान्त हैं जो शताब्दियों से क्रियात्मकता की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं। आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में नवीन पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का समावेश करते हुये इन सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः यह आवश्यक है कि नवीन पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में समावेश इस प्रकार किया जाना चाहिये कि यह पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान स्वतन्त्र रूप में व्यक्त न होकर आयुर्वेद का ही एक अङ्ग बन जावे।

आयुर्वेद के किसी भी पाठ्यक्रम में दो विशेषताऐं होनी आवश्यक है। प्रथम यह है कि पाठ्यक्रम अपनी मातृभाषा में होना चाहिये तथा शिक्षा का माध्यम भी मातृभाषा होना चाहिये। दूसरा यह कि इसमें अपने सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। आयुर्वेद के विषयों के अध्ययन की प्रमुखता तथा आयुर्वेद के सिद्धान्तों को सुरक्षित रखते हुये पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का समावेश इसमें किया जा सकता है।

ऊपर लिखे गये तथ्यों को ध्यान में रखते हुये आयुर्वेद शिक्षा समुत्थान समिति द्वारा प्रस्तुत पंचवर्षीय आयुर्वेदाचार्य उपाधि पाठ्यक्रम पर विचार किया जाता है।

आयुर्वेदाचार्य उपाधि के इस नवीन पाठ्यक्रम के प्रस्तुत होने के पश्चात् अनेक विवाद उत्पन्न होगये हैं इसके पक्ष व विपक्ष में अनेक लेख तथा भाषण प्रकाशित हुये हैं। प्रायः ये सब विवाद पाठ्यक्रम का पूर्ण विवेचनात्मक अध्ययन न करने के कारण उत्पन्न हुये हैं। इस नवीन पाठ्यक्रम पर अनेक आक्षेप किये जाते हैं। मुख्य आक्षेप यह किया जारहा है कि यह विशुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में नवीन विज्ञान से शून्य इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिये कोई विद्यार्थी तैयार न होगा। यही कारण है कि इस

वर्ष आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रवेश संख्या नगण्य है। इस वर्ष गुरुकुल कांगड़ी, पीलीभीत, झांसी तथा मेरठ के आयुर्वेद महाविद्यालयों में एक भी विद्यार्थी प्रथम वर्ष में प्रविष्ट नहीं हुआ है। भारतीय चिकित्सा परिषद से सम्बद्ध सम्पूर्ण आयुर्वेद महाविद्यालयों में इस वर्ष प्रविष्ट विद्यार्थियों की कुल संख्या केवल १० है। इन परिस्थितियों में कुछ ही वर्षों में इन महाविद्यालयों के बन्द होने की स्थिति उत्पन्न हो जायगी। दूसरी बात यह भी है कि इस विशुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम का अध्ययन करके उत्तीर्ण स्नातक आधुनिक विषयों के ज्ञान से शून्य होंगे। वे चिकित्सा ज्ञान के नवीन अनुसंधानों का लाभ नहीं उठा सकेंगे तथा पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के डाक्टरों की प्रतियोगता में टिक नहीं सकेंगे।

नवीन पाठ्यक्रम पर ऊपर लिखे गये जो आक्षेप किये जाते हैं वे वस्तुतः परिचय अभाव के कारण तथा पाठ्यक्रम का विचार पूर्वक अध्ययन न करने के कारण किये जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार उक्त प्रकार से विचार करने वाले व्यक्तियों ने पाठ्यक्रम का ठीक से मनन न करके केवल शुद्ध आयुर्वेद के शब्द को लक्ष्य में रख कर इस प्रकार के आक्षेप किये हैं। आयुर्वेद महाविद्यालयों में इस वर्ष विद्यार्थियों के प्रविष्ट न होने के कुछ अन्य कारण भी प्रतीत होते हैं। प्रथम यह है कि यह नवीन पाठ्यक्रम बहुत देर से प्रस्तुत हुआ है। इस समय तक इन्टर पास विद्यार्थी अन्य स्थानों पर प्रवेश ले चुके थे। यदि इस पाठ्यक्रम को इस वर्ष प्रारम्भ न करके अगले वर्ष प्रारम्भ किया जाता तो यह अवस्था उत्पन्न न होती। दूसरा कारण यह है कि इस समय इन्टर कालेजों में premedical Course के समान कोई पूर्व आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम नहीं है। यदि इन कालेजों में संस्कृत, दर्शन आदि विषयों के साथ एक पूर्व आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम का समावेश कर दिया जावे तभी आयुर्वेद महाविद्यालयों की यह समस्या सुलझ सकती है। आशा है कि उत्तर प्रदेशीय सरकार इस सम्बन्ध में शीघ्र ही कार्य करेगी। तीसरा कारण यह है कि आयुर्वेदीय स्नातकों को सरकारी नौकरियों तथा समाज में वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती जो पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के स्नातकों को होती है। यदि आयुर्वेदीय स्नातकों को आयुर्वेद शिक्षा समुत्थान समिति द्वारा प्रस्तुत आर्थिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक सुविधाएँ सरकार द्वारा प्रदान की जावें तथा सरकारी नौकरियों में उचित प्रतिष्ठा प्राप्त हो तो आयुर्वेद महाविद्यालयों में अध्ययन करने के लिये छात्र उसी प्रकार से उत्सुक रहेंगे जिस प्रकार से पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के महाविद्यालयों में पढ़ने के लिये रहते हैं। आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रवेश संख्या में किसी प्रकार की भी कमी अनुभव न होगी।

यह आक्षेप कि नवीन पाठ्यक्रम अर्वाचीन विज्ञान से शून्य है। वस्तुतः परिचय अभाव के कारण है। पहिले भी लिखा जा चुका है कि यह आक्षेप पाठ्यक्रम का बिना अध्ययन किये किया जाता है। नवीन पाठ्यक्रम का अच्छी प्रकार से अध्ययन करने पर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इसमें अर्वाचीन विज्ञान का आवश्यक रूप से समावेश है। नवीन पाठ्यक्रम में अर्वाचीन विज्ञान को पृथक् रूप में नहीं रखा गया, परन्तु उसे आयुर्वेद का ही एक अङ्ग बनाकर आयुर्वेदीय विषयों के साथ उसका एकीकरण कर दिया गया है। भारतीय चिकित्सा परिषद् (Indian medicine Board) के द्वारा संचालित *B. I. M. S.* अथवा *A. M. B. S.* उपाधि पाठ्यक्रम में पढ़ाये जाने वाले सम्पूर्ण आयुर्वेदिक एवं ऐलोपैथिक विषयों का समावेश इस नवीन पाठ्यक्रम में कर दिया गया है। यह सम्भव है कि नवीन पाठ्यक्रम के बनाने में शीघ्रता के कारण कुछ त्रुटियां रह गई हों। इन त्रुटियों को पूरा किया जा सकता है। इन त्रुटियों के कारण नवीन पाठ्यक्रम तथा उसमें निहित सिद्धांत को अवैज्ञानिक तथा अनुपयुक्त कहना ठीक नहीं है। यह लक्ष्य दोनों ही पाठ्यक्रमों का तुलनात्मक रीति से विवेचन करने पर स्पष्ट हो जाता है।

बी० आई० एम० एस० अथवा ए० एम० बी० एस० के पाठ्यक्रम में निम्न लिखित विषयों का अध्ययन कराया जाता है:—

प्रथम वर्ष (Preliminary Examination)-

१—आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धांत (Basic Sciences of Ayurved)।

२—आधुनिक आधारभूत विज्ञान (Modern Basic sciences)।

(क) भौतिक विज्ञान (Physics)।
(ख) रसायनशास्त्र (Chemistry)।
(ग) जीवन विज्ञान (Biology)।

द्वितीय वर्ष (First Professional Examination):—

३—त्रिदोष सिद्धांत।

४—आयुर्वेद के आधारभूत विज्ञान (Basic sciences of Ayurved)।

५—शारीर।
(क) प्राचीन शारीर।
(ख) Modern Anatomy.
(ग) Modern Physiology.

तृतीय वर्ष (Second Professional Examination):—

६—द्रव्यगुण शास्त्र।
७—रसशास्त्र तथा भैषज्य कल्पना।
८—स्वस्थवृत्त।
९—अगदतन्त्र तथा व्यवहार आयुर्वेद।
१०—निदान।

पञ्चम वर्ष (Final Professional Examination):—

११—Pathology and Bacteriology.
१२—प्रसूतितन्त्र स्त्री रोग तथा कौमारभृत्य।
१३—चिकित्सा रोग विज्ञान सहित।
१४—शल्यतन्त्र।
१५—शालाक्यतन्त्र।

नवीन पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों के अध्ययन की व्यवस्था है:—

प्रथम वार्षिक या प्रारम्भिक परीक्षा—

१—(अ) पदार्थ विज्ञान।
(ब) आयुर्वेद का इतिहास।
२—(अ) भौतिक विज्ञान (फिजिक्स)।
(ब) रसायन विज्ञान (कैमिस्ट्री)।
३—प्राणिविज्ञान (उद्भिज विज्ञान व प्राणिविज्ञान।

द्वितीय वार्षिक परीक्षा—प्रथम परीक्षा-

४—शारीर—
(अ) शरीर रचना विज्ञान।
(ब) शारीरक्रियाविज्ञान।

तृतीय वार्षिक परीक्षा—द्वितीय परीक्षा:—

५—द्रव्यगुण।
६—रसशास्त्र व भैषज्य कल्पना।
७—अगदतन्त्र तथा व्यवहार आयुर्वेद।

उपाधि परीक्षा—प्रथम खण्ड:—

८—निदान।
९—प्रसूतितन्त्र, कौमारभृत्य, स्त्रीरोग विज्ञान।
१०—स्वस्थवृत्त।
११—चरक पूर्वार्द्ध।

उपाधि परीक्षा—द्वितीय खण्ड:—

१२—काय चिकित्सा।
१३—शल्यतन्त्र।
१४—शालाक्य तन्त्र।
१५—चरक उत्तरार्ध।

इस प्रकार से नये तथा पुराने दोनों ही पाठ्यक्रमों में विषयों का भेद नहीं है। पुराने पाठ्यक्रमों के सभी विषयों का समावेश नये पाठ्यक्रम में कर लिया गया है। प्रत्येक विषय की विस्तार से विवेचना करना आवश्यक है। —क्रमशः

गुप्त सिद्ध प्रयोग

जिज्ञासु भिषक् श्री जती चन्द्रशेखर जी

वैद्यालङ्कार, विशारद, वैद्यरत्न

अध्यक्ष—श्री महावीर आयुर्वेदिक दवाखाना
पाठशाला रोड, बोलिया (म० प्र०)

"श्री जतीजी योग्य अनुभवी चिकित्सक हैं। आपके वृद्ध पिताजी जंत्र-मंत्र-तंत्र व बनौषधि विशेषज्ञ हैं आयु ६७ वर्ष की है। पिताजी से ही आपने बहुत सा अनुभव प्राप्त किया है। और अनेक उपाधियां विविध संस्थाओं से प्राप्त की हैं। आप एक होनहार आयुर्वेद सेवक हैं। आपके कुछ प्रयोग निम्न लिखित हैं जो सभी सिद्धप्रद सफल प्रतीत होते हैं।"

—सम्पादक।

रक्तप्रदररिपु (र० सि०)

विधि—(पुराने) कम्बल को खुले मैदान में जलावे निर्धूम होने पर ढँक देने से काली भस्म होजाती है, सफेद भस्म नहीं होनी चाहिये।

कम्बलभस्म	६ माशा
विटामिन K	२ गोली

—प्रातः सायं ठण्डे जल के साथ। नियमपूर्वक सेवन करने से 'घोर रक्तप्रदर' में भी आशातीत लाभ होगा।

बहुमूत्रान्तक (आर्यभिषक्)

—बांस के पत्ते २॥ तोला को पाव भर जल में उबाल कर काढ़ा बनालें। काढ़ा सिर्फ १॥ तोला शेष रहने पर उसमें आधा तोला शहद मिला कर पीने से बहुमूत्र रोग में अवश्य आराम होगा।

पार्श्व शूलान्तक—

(भारत एन्टीप्लाजस्टीन)

सोंठ
कुचिला
एलवा
बारहसिंगे का सींग

—इन चारों चीजों को गौमूत्र में घिस उसमें तीन रत्ती अफीम मिलालें। फिर थोड़ा गरम कर लेप करने से पसलियों का दर्द तुरन्त शांत होगा।

पेशाब खुल गया (यति मेघविनोद)—

—गोखरू २॥ तोला को पाव भर जल में उबाल कर काढ़ा बनालें। काढ़ा २॥ तोला शेष रहने पर १ रत्ती कलमी शोरा, ६ माशा शहद मिलाकर पीने से बंधा हुआ पेशाब बिना कैथेटर डाले खुल जायगा।

महावातारि तैल—

महानारायण तैल	३॥ तोला
आइल टरपनटाइन	१। तोला
लशुनादि तैल	१। तोला

—तीनों महौषधियों का मिश्रण करलें, औषधि को अधिक प्रभावशाली करने के लिये—

आइल कैम्फर	५ बूंद
आइल मेन्था	५ बूंद
अफीम	३ रत्ती मिलालें

उपयोग—दर्द वाले स्थान पर धीरे-धीरे मलें, मर्दन के बाद (हॉटवाटर बैग) से सिकाई करें। तत्काल आराम होगा। सर्ववातनाशक अनुभूत है।

परीक्षित प्रयोग

नेत्रांजन—

एक काले सर्प का फन एक बालिस्त काटे, तथा उसमें डली वाला सुरमा १ तोला भरदें, बाद में उसे एक कुञ्जे में मुख मुद्रा करके एक नीम की जड़ १ गज खोद कर कुञ्जे के बराबर नीम की जड़ काट दें तथा कुञ्जे को इस प्रकार रखे कि जड़ दोनों तरफ (ऊपर नीचे) कुञ्जे को छूती रहे। बाद में मिट्टी से दबा दें। एक माह बाद निकाल कर काले खरल में ३ दिन घोटें। इसमें यदि ममीरा डाल दें तो अंजन चार गुना असर करेगा।

लाभ—सुबह-शाम अंजनवत् प्रयोग करने से आंखों के सभी रोग अर्थात् धुन्ध, जाला, परबाल, रतोंध, ढलका, लाली, फूली तथा किसी धुएँ से बिगड़ी हुई आंख ठीक होती हैं।

नोट—सर्प उस समय ही मारा जाना चाहिए।

प्रमेह नाशक—

कीकर का पंचांग (सफेद गूदा पत्ते, गोंद, फूल, कच्ची फली)

—को बराबर लेकर तथा छाया में सुखा कर चूर्ण करे।

मात्रा—१-१ माशा सुबह शाम ठण्डे पानी से दें।

पथ्य—खाने को पुष्टप्रद चीजें दें। तथा तेल, खटाई, मट्ठा, कच्चा मीठा, आलू, मिर्च, तथा गरम वस्तुयें न दें।

महाहिक्का नाशक—

हल्दी आंवला शुद्ध मेनसिल

—तीनों को समभाग लेवें तथा बारीक चूर्ण करके, हुक्के की चिलम में रख कर पिलावें। तीन बार पिलाने से ईश्वर की कृपा से महा हिक्का भी दूर हो सकती है।

श्वास-कासनाशक—

ततैयों (पीली बर्रों) के छत्ता से बच्चों को निकाल कर उसे सुखावें बाद में लौंग उसमें एक-एक करके भरदें, फिर उसे कुञ्जे में रख कर मुद्रा करके उपलों में फूंक देवें, तथा भस्म ठण्डा होने पर खरल करें।

मात्रा—१-१ माशा सुबह शाम शहद से देवें तो इससे भंयकर श्वास, कास, पुरानी खांसी नष्ट होती है। पथ्य का ध्यान रखें।

—वैद्यशास्त्री पं. गोपीचन्द शर्मा,
दयालपुर (गुडगावां)

बच्चों की काली खांसी—

नमक काला	१ छटांक

—कूट कर चीनी के अथवा कांच के वर्तन में डाल लें। पश्चात् आक के दुग्ध की एक भावना दें। शराब सम्पुट में रख कर ५ सेर उपलों की अग्नि दें। स्वांग शीतल होने पर निकाल कूट-कपड़छान कर शीशी में भरलें।

मात्रा—१ वर्ष के बच्चों के लिए १ रत्ती, दिन में दो मात्रा मधु के साथ दें।

उपयोग—शुष्क कास (काली खांसी) एक सप्ताह के सेवन से समूल नष्ट हो जाती है।

—वैद्य साधुराम शर्मा पाठक वैद्याचार्य
सु० भ० औषधालय, धूरी मण्डी।

समाचार एवं सूचनाएँ

४३ वां अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

(दिल्ली में २३, २४, २५ फरवरी को)

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आयुर्वेद महासम्मेल के ४३वें वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन सम्माननीय राष्ट्रपति जी ने दि० २३ फरवरी १९५९ को करना स्वीकार कर लिया है। अतः स्वागत समिति ने २३ फरवरी से २५ फरवरी ५९ तक की तिथियां अधिवेशन के लिये निश्चित् की हैं। आशा है आप तदनुसार अपना कार्यक्रम स्थिर कर अवश्य ही अधिवेशन को शोभान्वित करेंगे।

कार्यालय—

मजुमदार आयु. फार्मेसी, श्री. आशुतोष मजुमदार
हौजकाजी, दिल्ली। कार्यालय मन्त्री

× × ×

आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय दिल्ली में

प्रवेश के लिये

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का महाविद्यालय १५ दिसम्बर १९५८ से रोहतक रोड, करौलबाग, दिल्ली में प्रारम्भ किया जा रहा है। इस विद्यालय में विद्यापीठ द्वारा संचालित विशारद तथा आचार्य के पाठ्यक्रम हिन्दी तथा संस्कृत भाषा में प्रायोगिक ज्ञान सहित शिक्षा दी जायगी। कोई भी विद्यार्थी जो गवर्नमेंट संस्कृत कालेज वाराणसी की मध्यमा या तत्सम परीक्षोतीर्ण हो या पूरा मैट्रिक या पंजाब यूनिवर्सिटी की प्रभाकर अथवा समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण हो या नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद भिषक् या समकक्ष परीक्षोतीर्ण हो, विशारद में प्रवेश पा सकता है। आचार्य में प्रवेश के लिये नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की विशारद अथवा तत्सम परीक्षोत्तीर्ण होना आवश्यक है। प्रवेशार्थ इच्छुक विद्यार्थी निम्न पते पर अपने प्रमाणपत्रों की प्रमाणित प्रतिलिपियों सहित शीघ्र आवेदन करें। प्रवेश शुल्क ५ रुपया है। विशारद शिक्षा शुल्क ५ रुपया प्रतिमास तथा आचार्य शिक्षा शुल्क ८ रुपया प्रतिमास है। आवेदन पत्र निम्न पते पर तुरन्त भेजें।

प्रधानाचार्य
आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक दिल्ली ६

× × ×

विज्ञप्ति

उत्तर प्रदेशीय सरकार राज्य में आयुर्वेदिक जड़ी बूटियों एवं अन्य औषधियों पर नियन्त्रण रखने तथा उनका मापदण्ड स्टैंडर्डाइजेशन करने के लिये कानून बनाना चाहती है। इस कानून के बनाने में सरकार उन सभी आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सकों एवं व्यवसायियों का सहयोग प्राप्त करना चाहती है जो आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा का कार्य करते हैं।

अतः सभी सम्बन्धित व्यक्तियों से हमारा अनुरोध है कि देशी चिकित्सा कार्य में व्यवहृत होने वाली समस्त जड़ी बूटियों तथा बनी हुई औषधियों के मापदण्ड को किस प्रकार नियंत्रित किया जाय जिससे उनका उचित स्टैंडर्डाइजेशन हो सके।

अनुरोध है कि अति शीघ्र विस्तारपूर्वक आपका सुझाव बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन, उत्तर प्रदेश लखनऊ के कार्यालय को प्राप्त होजावेगा।

—श्री. धर्मदत्त वैद्य-
एम० एल० ए० संयोजक।

मेरठ आयुर्वेद कालेज का वार्षिकोत्सव—

मेरठ आयुर्वेदिक कालेज, नौचन्दी, मेरठ का वार्षिकोत्सव शनिवार, दिनांक ७ फरवरी ५६ को सम्पन्न हो रहा है। इसी अवसर पर माननीय श्री बलदेव सिंह जी आर्य, उपमन्त्री स्वास्थ्य एवं पुनर्वास उ० प्र० नवीन शवच्छेद भवन का शिलान्यास करेंगे।

—श्री पं० ल० ना० मिश्र, प्रिंसिपल।

+ + +

मेरुन्दा में आयुर्वेद विकास समारोह सम्पन्न

दिनांक२०-११-५८ को नागौर जिलान्तर्गत मेरुन्दा ग्राम में विकास समारोहांतर्गत आयुर्वेद विकास समारोह का उद्‌घाटन करते हुए राजस्थान आयुर्वेद विभागाध्यक्ष राजवैद्य श्री प्रेमशङ्कर जी ने कहा कि आजादी के पश्चात् हमारे देश में समस्त विकास कार्य बड़ी तेजी से हो रहे हैं। इस विकास प्रगति की दौड़ में यदि आलस्य व प्रमादवश पीछे रह गये तो फिर पछताना पड़ेगा। आज हमें विदेशी वस्तुओं के जाल में न फंसकर हमारे देश में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु का विकास उपयोग व आदर करना चाहिये। जिससे देश की बेकारी दूर हो देश समृद्ध बने। स्वास्थ्य के लिये भी हमें अपने देश की सस्ती सुलभ आयुर्वेदिक औषधियों का ही प्रयोग करना चाहिये, न कि विदेशी औषधियों का।

मध्याह्न को २ बजे राजस्थान के सुप्रसिद्ध वैद्य रमेशचन्द्र जी भिषगाचार्य की अध्यक्षता में नागौर जिला वैद्य संगठन पर चर्चा शुरू हुई। जिसमें करीब ४१ वैद्यों ने भाग लिया।

वर्तमान नागौर जिला संगठन में चल रही कार्यशिथिलता पर विचार किया गया, और शीघ्र पुनर्गठन करने के लिये आयुर्वेद केशरी वैद्य श्री नित्यानन्द जी जोशी नागौर के संयोजकत्व में एतदर्थ एडहाक समिति का, जिले की ८ तहसीलों के वैद्यों से निर्माण किया गया।

तत्पश्चात् वैद्य श्री नित्यानन्द जोशी ने राज्य सरकार द्वारा ड्रग एक्ट लगाकर वैद्यों के साथ बरती जा रही इस पक्षपाती नीति के प्रति घोर असन्तोष प्रकट किया तथा समस्त वैद्यों ने भी इसका घोर विरोध किया, क्योंकि जहां तक चिकित्सा व चिकित्सा प्रणाली का प्रश्न है उसमें राज्य सरकार द्वारा रजिस्टर्ड प्रत्येक वैद्यों व डाक्टर को सेवा कार्य करने का समान अधिकार होना चाहिये। चिकित्सा व औषधि विज्ञान किसी एक वर्ग विशेष की बपौती नहीं है, जब कि एक तरफ नेहरू जी कहते हैं कि विज्ञान किसी एक का नहीं है, सभी का है। उसका उपयोग करने का सबको समान अधिकार है और दूसरी तरफ यह संकीर्ण विचार कुछ समझ में नहीं आता? जहां तक औषधि का प्रश्न है तो प्रत्येक औषध को जो योग्य मान्य चिकित्सक हो उसका ज्ञान रखता है, उसके द्वारा जनता के स्वास्थ्य लाभ पहुँचाने का सबको समान अधिकार है, चाहे वह आधुनिक तरीकों से निर्मित हो या प्राचीन। तत्पश्चात् राजस्थान के प्रत्येक क्षेत्र में आरोग्य व किसी रोग विशेष का शिविर ज्यादा से ज्यादा तादाद में लगाकर जनता को लाभान्वित करने पर जोर दिया गया, साथ ही श्री जोशी जी ने कहा कि हमें आज औषध से भी अधिक जनता को दिनचर्या, ऋतुचर्या व उचित आहार विहार की ओर ध्यान आकर्षित कर तदनुकूल चलाने की आवश्यकता है, जिससे जनता पूर्ण स्वस्थ रह सके।

तत्पश्चात् धन्वन्तरि जय घोष व जन सुस्वास्थ्य की शुभकामनाओं के साथ सभा की कार्यवाही समाप्त की गई।

—वैद्य नित्यानन्द जोशी
साहित्यायुर्वेद विशारद
संयोजक जिला वैद्य-सभा
नागौर।

संक्षिप्त समाचार

कालीदास शील्ड —

इन्दौर। स्थानीय सुप्रसिद्ध वैद्यराज पं. लक्ष्मी नारायण जी त्रिवेदी द्वारा कालीदास समारोह समिति द्वारा आमंत्रित कालीदास समारोह में मुख्य मंत्री डा. श्री कैलाशनाथ काटजू को ५०१) का चैक भेंट किया गया जिससे एक कालीदास शील्ड बनाई जावे। यह शील्ड कालीदास समारोह पर उत्कृष्ट अभिनय करने वाले नाट्य मण्डल को प्रदान की जावेगी। मा. डा. काटजू महोदय ने वैद्यराज जी का आभार प्रदर्शन किया।

जयपुर की जनता द्वारा सन्मान—

जयपुर। ता–२७–११–५८ को आयुर्वेद मार्त्तण्ड श्री सीताराम जी मिश्र आचार्य का जयपुर की जनता द्वारा सन्मान किया गया। यह समारोह जैन संस्कृत कालेज में भूतपूर्व अध्यक्ष पब्लिक सर्विस कमीशन श्री देवीशंकर जी तिवाड़ी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। अभिनन्दन पत्र संस्कृत में जैन संस्कृत कालेज के प्रिन्सीपल पं. मुरारीलाल जी भिषगाचार्य ने पढ़ा जिसमें गर्व अनुभव किया गया कि राजस्थान का एक व्यक्ति अखिल भारतीय विद्यापीठ का मंत्री बनता है। श्री मिश्र जी ने ओजस्वी शब्दों में अभिनन्दन पत्र का उत्तर दिया।

उदयपुर में शोक सभा –

उदयपुर। दिनांक ११–१–५९ को उदयपुर कमिश्नरी वैद्य सभा उदयपुर की ओर से निम्बार्क सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष महन्त श्री गंगादास जी महाराज मेवाड़ मण्डलेश्वर स्थलाधीश श्री प्रयागदास जी का स्थल उदयपुर के स्वर्गवास होने पर एक शोक सभा का आयोजन हुआ। राजस्थान आयुर्वेद विभाग के संचालक राजवैद्य श्री प्रेमशंकर जी भिषगाचार्य ने पूज्य महन्त जी के जीवन पर प्रकाश डाला। महन्त जी धार्मिक कार्यों के साथ-साथ संस्कृत एवं आयुर्वेद के पोषक थे तथा उसके विकास के कार्य किये। स्वामी जी ने अपने उत्तराधिकारी अपने जीवन में ही श्री मुरली मनोहर जी शास्त्री (वैद्य मिश्रीप्रसाद शास्त्री प्रधान मंत्री कमिश्नरी वैद्य सभा) को नियुक्त किया था जिनसे बहुत कुछ स्वामी जी की अभाव पूर्ति हो सकेगी। सर्व सम्मति से अन्त में शोक प्रस्ताव पास हुआ और दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिये प्रभु से प्रार्थना की गई।

छात्र संघ द्वारा शोक प्रस्ताव—

छात्र संघ राजकीय आयुर्वेद कालेज उदयपुर ने स्थानीय छात्रसंघ के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं महाविद्यालय के यशस्वी स्नातक, वैद्य श्री मिश्रीप्रसाद जी शास्त्री के पूज्य गुरु श्री गंगादास जी महाराज उदयपुर के निधन पर शोक प्रस्ताव पास कर शास्त्री जी को धैर्य एवं शान्ति धारण करने के लिये प्रेरित किया।

शोक समाचार––

घिरोर। ता–२–१–५९ की रात को घिरोर के प्रतिष्ठित वैद्य श्री रामचरणलाल जी दीक्षित का अकस्मात मुंडेर से पैर फिसल जाने के कारण तीव्राघात से स्वर्गवास हो गया। जनता को आपके वियोग से अपार कष्ट हुआ। ईश्वर उन्हें आत्मिक शान्ति प्रदान करे।

आयुर्वेद मण्डल का चुनाव—

रेवाड़ी। ता–३१–१२–५८ को आयुर्वेद मण्डल रेवाड़ी का चुनाव निम्न प्रकार हुआ।

प्रधान—श्री त्रिलोकीनाथ जी वैद्य।
उपप्रधान—श्री बोधेन्द्रदेव जी।
,, श्री हीरानन्द जी।

मंत्री—श्री सुरेन्द्रकुमार गुप्त आयुर्वेदाचार्य ।
उपमंत्री व प्रचार मंत्री—श्री पारब्रह्म जी परमार्थी।
कोषाध्यक्ष—श्री कौशलकिशोर जी वैद्य ।

नगर वैद्य सभा का चुनाव—

सहारनपुर २६-१२-५६ । नगर वैद्य सभा का वार्षिक चुनाव हुआ। यह चुनाव श्री कृष्णदत्त जी के निवास स्थान पंसारी बाजार में श्री वैद्य सोमदत्त जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, निम्न पदाधिकारी चुने गये ।

संरक्षक—वैद्य रतनलाल जी चातक
प्रधान–वैद्य शरदकुमार जी मिश्र सम्पादक 'जागरण, साप्ताहिक ।
उपप्रधान—वैद्य चन्द्रमणि जी
मन्त्री—वैद्य महेन्द्रदत्त जी
उपमन्त्री—वैद्य देवकीनन्दन जी
कोषाध्यक्ष—वैद्य विश्वम्भरदास जी
आय व्यय निरीक्षक—वैद्य बालकृष्ण जी मेहता

इन कार्यकर्त्ताओं के अतिरिक्त १० सदस्य कार्यकारिणी के भी चुने गये । एक प्रस्ताव द्वारा यह भी सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि नियमावली में संशोधन किया जावे और संरक्षक पद बढ़ा कर उसे कार्यकारिणी का सदस्य समझा जाय ।

श्रीयुत डाइरैक्टर महोदय आयुर्वेद विभाग
अजमेर (राजस्थान) की सेवा में—

तलवाड़ा (राज०) १-११-५८ स्थानीय राजकीय आयुर्वेद औषधालय में जो श्री रामकृष्ण जी शर्मा कौशिक इंचार्ज नियुक्त हैं वे बड़े कर्मठ एवं परिश्रमशील व्यक्ति हैं स्थानीय क्षेत्र की जनता को सब प्रकार की चिकित्सा सुविधा निःशुल्क देते रहे हैं। रोगियों की संख्या नित्य बढ़ती जाती है क्षेत्र की जनसंख्या ५००० से अधिक है ऐसी दशा में यहां इंडोर की अत्यन्त कमी है। इस औषधालय को B श्रेणी की सुविधा प्राप्त होने पर अन्तरंग चिकित्सालय की सुविधा बहुत दूर-दूर से आने वाले रोगी भी प्राप्त कर सकेंगे अतः आप इस ओर अधिक ध्यान दें यही हमारी प्राथना है ।

पंजाब के स्वास्थ्य मंत्री की सेवा में—

वैद्य मंडल तहसील जिन्द की ओर से एक प्रतिवेदन पंजाब स्वास्थ्य मंत्री श्री सरदार गुरबन्तासिंह महोदय की सेवा में प्रस्तुत किया गया जिसमें शीघ्र ही पेश किये जाने वाले बिल, जिसके द्वारा आयुर्वेद चिकित्सों को एलोपैथी दवाओं का प्रयोग करने पर प्रतिबंध लगाया जायगा, विरोध किया गया है तथा उसे आपत्तिजनक बताया गया। आपसे यह भी अनुरोध किया गया कि सरकार द्वारा आसवारिष्ट तैयार करने पर जो प्रतिबंध लगाया है और जो आयुर्वेद चिकित्सकों को अपंगु बना देने वाला है, शीघ्र हटवाने के प्रयत्न किए जावें ।

श्रम स्वास्थ्य सम्मेलन—

कानपुर १६-११-५८ श्री रामानन्द औषधालय के तत्वावधान में कानपुर चमड़ा मिल कर्मचारी यूनियन के कार्यकर्त्ताओं द्वारा श्रम स्वास्थ्य सम्मेलन का विराट आयोजन १६-११-५८ को चि० चू० श्री वैद्य रामेश्वर जी मिश्र के सभापतित्व में सांस्कृतिक समारोह के साथ सम्पन्न हुआ । श्री एस० सी० बक्सी वेलफेयर आफीसर कूपर एलन ने उद्घाटन भाषण किया । स्वागताध्यक्ष श्री रामभरोसेलाल शुक्ल वकील सभापति परमठ मंडल कमेटी ने अपने भाषण में वैद्य भगवत प्रसाद जी को जिनके प्रयास से यह सम्मेलन हुआ साधुवाद दिया। पं० सत्यनारायण मिश्र ने श्रमिक स्वास्थ्य पर सुन्दर विवेचन के साथ कर्मचारी बीमा योजना की चिकित्सा पर प्रभाव डाला। श्री रामसिंह मजदूर प्रतिनिधि एलगिन मिल श्री शम्भूनाथ पाण्डेय शास्त्री, श्रीमती सुशीला मंजू, श्री एम. सी. पन्त सहायक श्रम कमिश्नर उत्तर प्रदेश कानपुर ने अपने भाषणों में आयुर्वेद का और कर्मचारियों की बीमा योजना चिकित्सा में आयुर्वेद का महत्व बताया। सम्मेलन अत्यन्त सफल रहा तथा कई उपयोगी प्रस्ताव पास किए गए ।

हमारा आगामी प्रकाशन

'धन्वन्तरि' का आगामी विशेषांक

कायचिकित्सा विशेषाङ्क

★ यह विशेषांक धन्वन्तरि की विशेषांक शृंखला परम्परा में अपना एक ऐसा अनमोल रत्न बनकर प्रगट होने वाला है कि जिसकी मनोहारिणी प्रभा वर्षों तक पाठकों के हृदय में जगमगाती रहेगी।

★★ भारतवर्ष में आयुर्वेद के जो गिने चुने मूर्धन्य विद्वान् माने जाते हैं उनकी लेखनी से प्रकट अनेक उच्चकोटि के लेखों से विभूषित यह विशेषांक १०० चित्रों और १००० परिच्छेदों से युक्त होगा।

★★★ इस विशेषांक को ही यह सर्व प्रथम सुअवसर प्राप्त होगा जब विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले आयुर्वेदीय अनुसन्धानों के सम्बन्ध में अहर्निश जुटे हुये विद्वानों की लेखनी से प्रकट तथ्यों को आयुर्वेद संसार के समक्ष उद्घोषित किया जा सकेगा।

धन्वन्तरि के सहस्रों पाठकों की आशा के अनुरूप विगत ३२ वर्षीय परम्परा के
अनुसार धन्वन्तरि के अक्षय कोष को प्रकट करने वाले इस विशेषांक के
निर्माण में धन्वन्तरि कार्यालय मुक्त हस्त से अर्थ व्यय कर रहा है।
उसके विशेषांक सम्पादक, सम्पादक मण्डल के सदस्य, कम्पोजीटर,
प्रेसमैन, चित्रकार और असंख्य कर्मचारी इस स्वप्न को साकार
करने के लिये अहर्निश अनवरत परिश्रम कर रहे हैं। ताकि
अप्रैल १९५६ के अन्तिम सप्ताह में यह प्रकट होकर
आपकी प्रतीक्षा की पुष्टि और ज्ञान की तृप्ति कर
आपके कोमल हृदय में स्थान बना सके।

कायचिकित्साङ्क

अब तक प्रकाशित विशेषांकों में सर्वोत्तम होगा

- ● लगभग ६०० पृष्ठ
- ● सैकड़ों उपयोगी चित्र
- ● ठोस सामग्री

विशेषांक में

प्रकाशित होने

वाले

सैकड़ों चित्रों

में से

एक चित्र

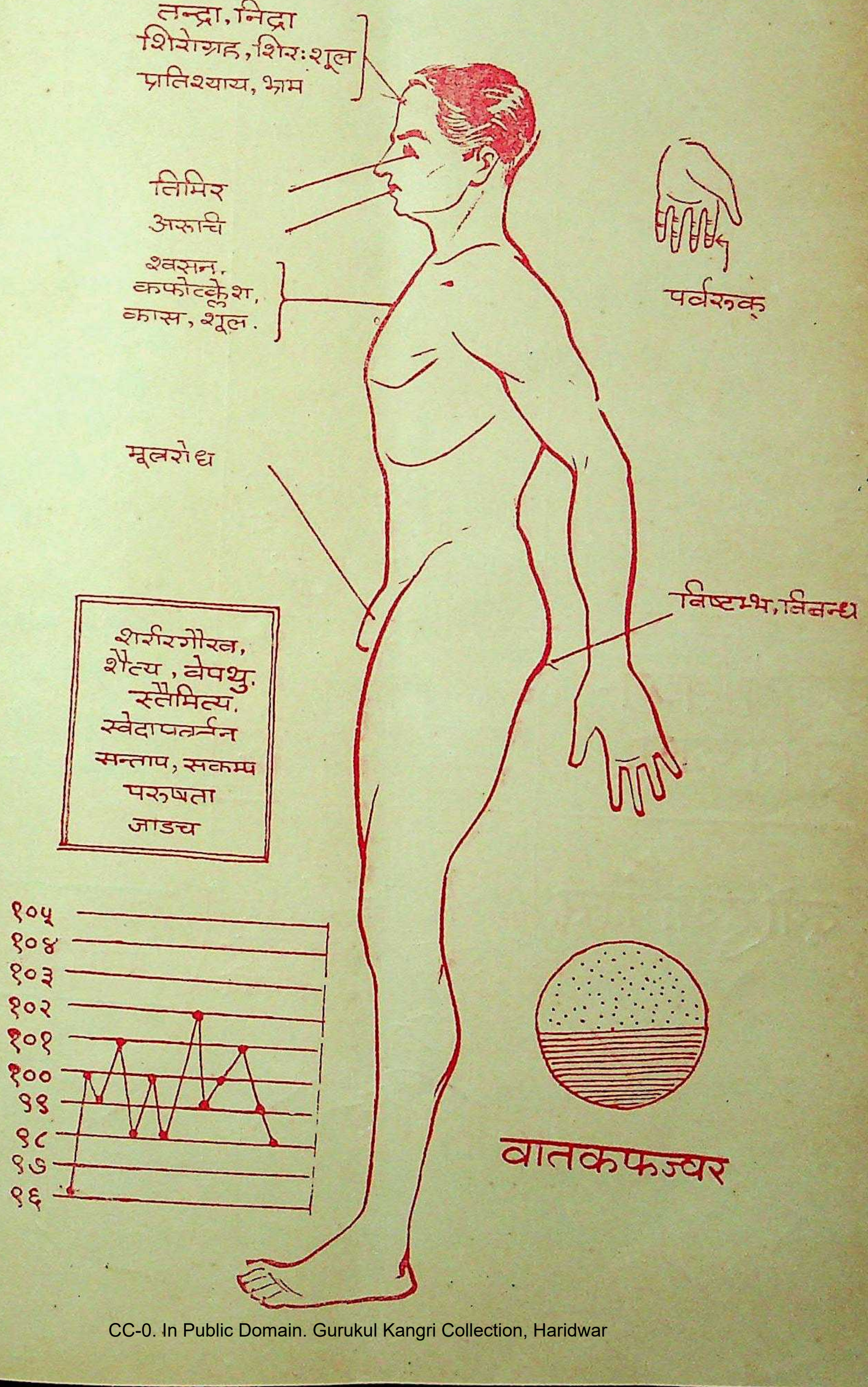
तन्द्रा, निद्रा
शिरोग्रह, शिरःशूल
प्रतिश्याय, भ्रम
तिमिर
अरुचि
श्वसन,
कफोत्क्लेश,
कास, शूल.
पर्वरुक्
मूत्ररोध
विष्टम्भ, विबन्ध
शरीरगौरव,
शैत्य, वेपथु,
स्तैमित्य,
स्वेदापवर्त्तन
सन्ताप, सकम्प
परुषता
जाड्य
१०५
१०४
१०३
१०२
१०१
१००
९९
९८
९७
९६
वातकफज्वर

वार्षिक मूल्य

मनियार्डर से

भेज कर

अपनी प्रति

सुरक्षित

करें

कासके भेद.

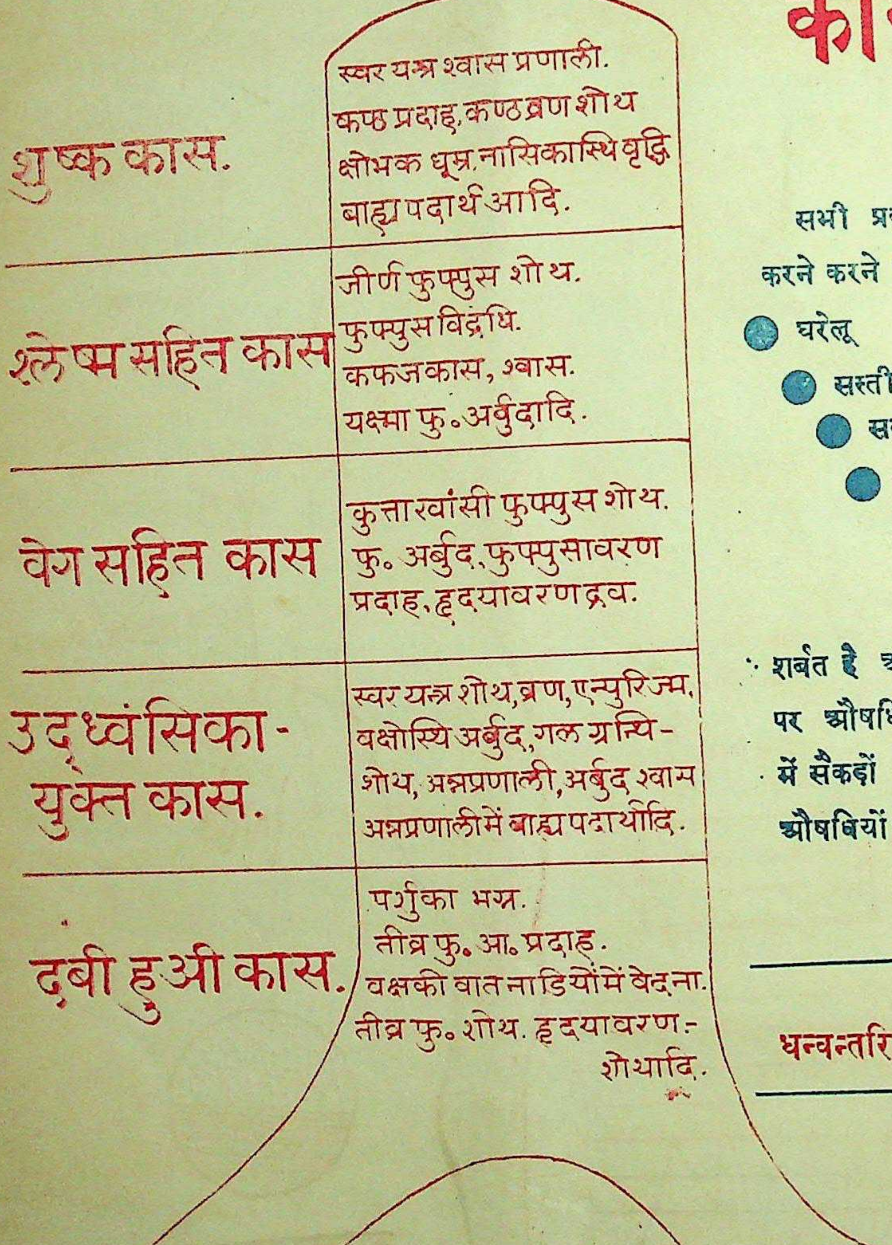

शुष्क कास.	स्वर यन्त्र श्वास प्रणाली. कण्ठ प्रदाह, कण्ठव्रण शोथ क्षोभक धूम्र, नासिकास्थि वृद्धि बाह्य पदार्थ आदि.
श्लेष्म सहित कास	जीर्ण फुफ्फुस शोथ. फुफ्फुस विद्रधि. कफज कास, श्वास. यक्ष्मा फु० अर्बुदादि.
वेग सहित कास	कुत्ता खांसी फुफ्फुस शोथ. फु० अर्बुद, फुफ्फुसावरण प्रदाह, हृदयावरण द्रव.
उद्ध्वंसिका-युक्त कास.	स्वर यन्त्र शोथ, व्रण, एन्युरिज्म, वक्षोस्थि अर्बुद, गल ग्रन्थि-शोथ, अन्नप्रणाली, अर्बुद श्वास अन्नप्रणाली में बाह्य पदार्थादि.
दबी हुई कास.	पर्शुका भग्न. तीव्र फु० आ० प्रदाह. वक्षकी वात नाडियोंमें वेदना. तीव्र फु० शोथ. हृदयावरण-शोथादि.

धन्वन्तरि

कासारि

सभी प्रकार की खांसी नष्ट करने करने के लिए

● घरेलू
● सस्ती
● सर्वोत्तम
● आयुर्वेदिक दवा

∵ शर्बत है अतएव शहद के स्थान पर औषधियों के अनुपान रूप में सैकड़ों वैद्य व्यवहार करते हैं औषधियों के गुणों को बढ़ाती है।

-निर्माता-
धन्वन्तरि कार्यालय विजयग

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

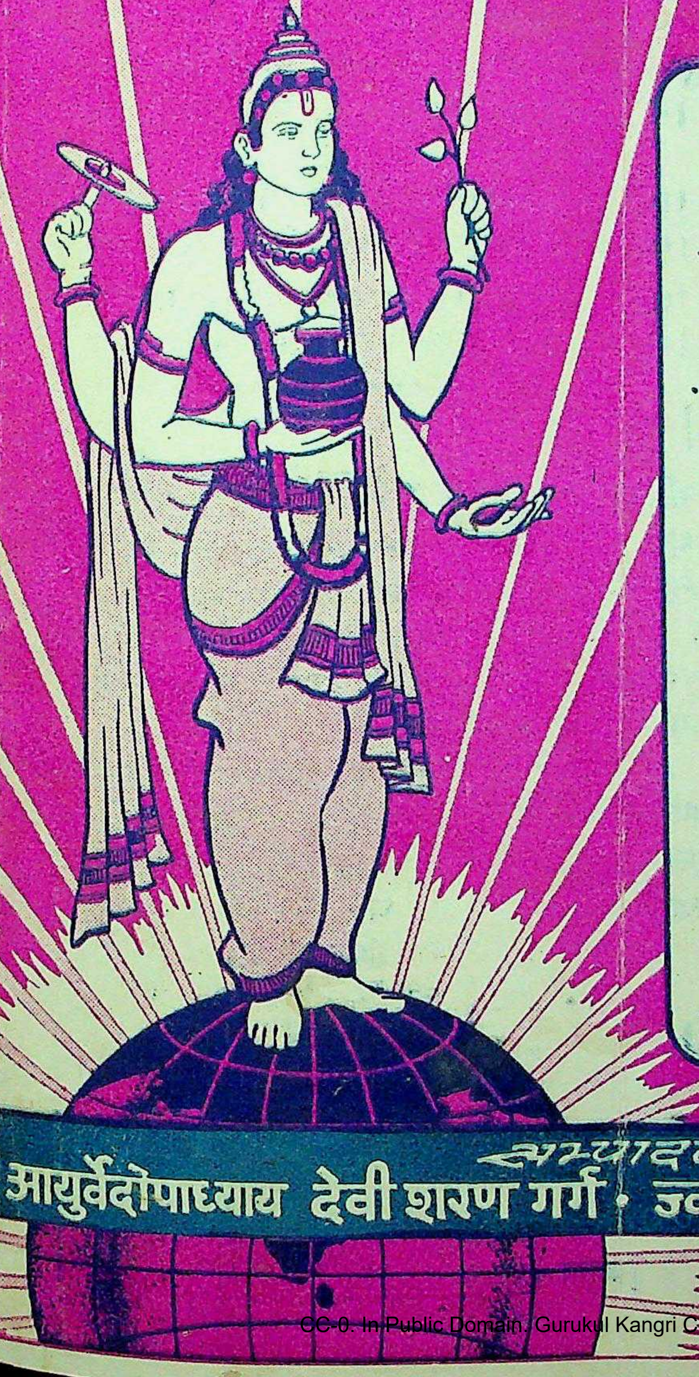

एलोपैथी

शास्त्र या विज्ञान पद का अधिकारी नहीं

मैं चाहता था कि भारत में जो भी चिकित्सा प्रणाली प्रचलित होगी वह आयुर्वेद व यूनानी के आधार पर आधारित होगी और मैं इस दिशा में अब भी प्रयत्नशील हूं, क्योंकि एलोपैथी भारत जैसे गर्म और गरीब देश के लिये उपयुक्त नहीं है। आयुर्वेद सहस्त्रों वर्षों की अनुभव राशि से उद्‌भूत मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित वैज्ञानिक शास्त्र है जबकि एलोपैथी, शास्त्र अथवा विज्ञान के पद को प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है।

—माननीय आत्माराम गोविन्द खेर
अध्यक्ष उ० प्र० विधान सभा।

सम्पादक:—
आयुर्वेदोपाध्याय देवी शरण गर्ग · ज्वाला प्रसाद अग्रवाल बी.एस-सी

मई १९४६

—धन्वन्तरि के ग्राहक बनने के नियम—

१—धन्वन्तरि का वर्षिक मूल्य ५॥) है। एक वर्ष से कम के लिए ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

२—धन्वन्तरि का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है तथा दिसम्बर में समाप्त होता है।

३—धन्वन्तरि के ग्राहक वर्ष के प्रारम्भ अर्थात् जनवरी से ही बनाये जाते हैं। वर्ष में जब भी चाहें ग्राहक बन सकते हैं, लेकिन जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क भेज कर नवीन ग्राहक को भी जनवरी से ही ग्राहक बना लिया जाता है।

४—प्रतिवर्ष एक विशाल-सचित्र विशेषांक प्रकाशित किया जाता है। यह विशेषांक भी ग्राहक को उक्त वार्षिक मूल्य ५॥) के अन्तर्गत ही मिलता है। इस वर्ष कायचिकित्सांक प्रकाशित किया गया है।

५—ग्राहक को किसी भी माह का अङ्क मिलने पर यह देख लेना चाहिए कि उससे पहिले माह का अङ्क मिला है या नहीं। यदि नहीं मिला है तो तुरन्त अपना पूरा पता तथा ग्राहक नम्बर लिखते हुए सूचित करना चाहिए। वर्ष के अन्त में या ४-६ माह बाद एक साथ ४-४, ६-६ अङ्कों की शिकायत लिखना उचित नहीं।

६—धन्वन्तरि के प्रकाशन में हमको बहुत घाटा रहता है। अतः इसके वार्षिक मूल्य में हम किसी को किसी प्रकार की रिआयत नहीं करते। अतएव कमीशन या रिआयत के विषय में लिखना व्यर्थ होगा।

७—वार्षिक मूल्य पहिले ही मनियार्डर से भेजना चाहिए. या जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क और विशेषांक का वार्षिक मूल्य ५॥) की वी. पी. भेजने की आज्ञा देनी चाहिए।

इस अङ्क में पढ़िये

उद्बोधन (कविता) डा० सन्तोषकुमार जैन ६९७
दोहद और उसका प्रभाव श्री० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ६९८
नेत्र रोगों की सर्वोत्तम दवा आयुर्वेद अनुसन्धान मण्डल ७००
पुराणों में आयुर्वेद श्री जनार्दन शास्त्री ७०१
कुष्ठ रोग और उसका निदान श्री अवधबिहारी मिश्र ७०३
प्रदर श्री माणिक्य सागरयति ७०५
पेटेण्ट एलो० औषधियों का प्रयोग न करें श्री बद्रीनारायण शर्मा ७०७
बद और रिहौली श्री कवि. देवराज सुमन ७०९
दन्त रोग की समस्या श्री लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल ७११
बुभुक्षित नाग बनाना श्री रामेशवेदी ७१२
कुष्ठ एक अध्ययन श्री कृष्णमोहन भट्ट ७१७
ग्रीष्मकालीन बालातिसार श्री ओ३म्प्रकाश शर्मा ७२३
विष्णुकान्ता एवं कृष्णकान्ता श्री आत्माराम बर्वे ७२८
घृत श्री रघुवरदयाल भट्ट वैद्य ७३१
किशमिश और स्वास्थ्य श्री डा० कुलरंजन मुखर्जी ७३४
परीक्षित प्रयोग ७३६
केन्द्रीय सरकार और देशी चिकिसा पद्धतियां राजवैद्य सुधनवा ७४१
समाचार एवं सूचनाएं ... ...

धन्वन्तरि के

-ग्राहक बनाइये-

धन्वन्तरि आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक पत्र है। इसके विशाल विशेषांकों ने आयुर्वेद साहित्य सृजन में एक क्रांति पैदा की है। इस वर्ष के विशेषांक ने पहिले सभी विशेषांकों से उत्तम एवं उपयोगी साहित्य प्रस्तुत किया है। लगभग ६०० पृष्ठ, और सैकड़ों चित्र होते हुए भी वार्षिक मू. ५॥) में ही वर्ष के अन्य अङ्कों सहित दिया गया है। स्वयं ग्राहक बनें तथा अपने परिचित अन्य वैद्यों को ग्राहक बनावें।

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग।
धन्वन्तरि प्रेस विजयगढ़।
प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग।
धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़।
वार्षिक मू. ५॥), एक अङ्क का ॥)

धन्वन्तरि

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० अ० १–४०

भाग ३३ अङ्क ५
धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुख पत्र
मई १९५९

उद्बोधन ?

संघर्षों से घबराओ क्यों ?
जीवन पथ ही संघर्षशील फिर पीछे पैर हटाओ क्यों ?
शाश्वत है आयुर्वेद विशद तूफानों ने पथ है रोका ।
निर्बाध प्रगति पर जाते उस राही को पथ में है टोका ॥
फिर भी वह जीवित है उन्नत, रुकने के गीत सुनाओ क्यों ?
संघर्षों से घबराओ क्यों ?
इस चकाचौंध के नवयुग में है सहज सत्य भ्रम हो जाना ।
उस केन्द्र विन्दु से भटकाकर नव आकर्षण पर ले जाना ॥
पर तुमको तो गन्तव्यमार्ग पर जाना तुम भय खाओ क्यों ?
संघर्षों से घबराओं क्यों ?
मधुबन बसन्त के साथ-साथ हम पतझड़ से भी प्यार करें ।
उस कुसुम सेज के साथ शूल-शैया भी नव तैयार करें ॥
है विष अमृत का सहज योग फिर विष को तुम ठुकराओ क्यों ?
संघर्षों से घबराओ क्यों ?

डा० सन्तोषकुमार जैन A. M. S.

दोहद और उसका प्रभाव

श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

"आप्त वाक्यं प्रमाणम्" यथार्थ—ठीक-ठीक उपदेश देने वाले का नाम "आप्त" है। आर्ष ग्रन्थ सभी आप्त हैं, उनका उल्लंघन मनुष्य को अधः पतन की ओर ले जाता है। आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार स्त्री को क्षेत्र, शुक्र को बीज की संज्ञा दी है। बोने से पहिले जिस प्रकार क्षेत्र और बीज की शुद्धि अच्छी फसल के लिए अपना एक महत्त्व रखती है ठीक उसी प्रकार उत्तम सन्तान के जन्म के लिए स्त्री पुरुषों के लिए इन नियमों का पालन भी उतना ही महत्त्व का है। जरा ध्यान दीजिये—क्षेत्र शुद्धिः – स्त्री ऋतुकाल के प्रथम दिन से ब्रह्मचारिणी रहे तथा दिन में सोना, अञ्जन लगाना, रोना, स्नान, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का शरीर पर लगाना, मालिश, नखों का काटना, दौड़ना, ऊंचे हंसना, बहुत बोलना, ऊंचे शब्दों का सुनना, अवलेखन, वायु का अधिक सेवन तथा परिश्रम करना छोड़ दे। कुश के आशन पर सोवे। हाथ में या मिट्टी के पात्र में अथवा पत्ते में हविष्य (सात्विक) पदार्थों का भोजन करने वाली स्त्री तीन दिन तक पति से अपनी रक्षा करे (अलग रहे) चौथे दिन स्नान करके उत्तम आभूषण धारण करके मंगल स्वतिवाचन करने के पश्चात् निम्नलिखित गुणों से युक्त पति का दर्शन करे।

बीज़ शुद्धि—

पुरुष को चाहिये कि वह एक मास तक ब्रह्मचारी रहे, घी से स्निग्ध होकर सायंकाल घी और दूध के साथ शालि चावलों का भात खाये। इस प्रकार पुष्ट बीज वाला वह पुरुष उपर्युक्त गुणों वाली एवं उस रात्रि में तैल से स्निग्ध होकर तैल से बने हुए पक्वान्न तथा उड़द द्वारा रचित भोज्य पदार्थों का ही भोजन करने वाली पीनप्रसन्नवदना स्त्री के साथ समरात्रि में सहवास करे। इस प्रकार गर्भाधान से जो पुत्र उत्पन्न होता है उसके विषय में सुश्रुतकार लिखते हैं—

> एवं जाता रूपवन्तः सत्ववन्तश्चिरायुषः।
> भवन्त्यृणस्य भोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणो हिताः॥

इस प्रकार से रूपवान् सत्वगुणयुक्त, दीर्घायु, पिता को उऋण करने वाले, तथा माता पिता के हितचिन्तक पुत्र उत्पन्न होते हैं। जिसके कारण "कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरापुण्यवती च तेन" उक्ति सार्थक होती है।

किन्तु ध्यान दें! जिस प्रकार समय पर बीज बो देने से ही कृषक अपने को कृतार्थ नहीं समझ लेता अपितु उस क्षेत्र को समय-समय पर होने वाली उन-उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहता है जिससे उसकी फसल नीरोग एवं सर्वाङ्ग-पूर्ण होने में समर्थ रहती है, उसी प्रकार गर्भ धारण करने के पश्चात्—

> चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्ग विभागः प्रव्यक्तोभवति। गर्भ-हृदय प्रव्यक्तिभावाच्चेतना धातुरभिव्यक्तो भवति कस्मात्? तत्स्थानत्वात्, तस्माद्गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेपु-करोति द्विहृदयां च नारींदौहृदिनी माचक्षते। दौहृद-विमाननात् कुब्जं कुणिं खञ्जं जड़ं वामनं विकृताक्ष मनक्षं वा नारी सुतं जनयति तस्मात्सायद्यदिच्छेत् तत्तस्यैदापयेत् लब्धदौहृदाहि वीर्यवन्तं चिरायुषं च पुत्रं जनयति॥

चतुर्थ मास में सब अङ्ग प्रत्यङ्गों की बनावट स्पष्ट हो जाती है, गर्भ के हृदय के स्पष्ट हो चेतना धातु स्पष्ट हो जाती है क्योंकि चेतना का स्थान हृदय ही है। इसलिए गर्भ चौथे मास में इन्द्रियों के विषयों की इच्छा करने लगता है, अतः स्त्री को दो हृदय वाली दौहृदिनी कहते हैं। दौहृद का अपमान करने से सन्तान कुबड़ी, खराब हाथों वाली, लंगड़ी, जड़, नाटी, विकृत आंख वाली

अन्धी, मूक, अस्पष्ट बोलने वाली या जिन-जिन इन्द्रियों के जो-जो विषय होते हैं वे-वे यदि समय पर गर्भिणी को नहीं प्राप्त होते तो वह उन-उन अंगों से विकल हो जाती है। इसीलिए वह जो-जो चाहे वह-वह उसको दिलायें क्योंकि उसकी इच्छा पूर्ण होने से वह वीर्यवाली (शक्तिशाली) और चिरायु सन्तान को पैदा करती है।

विचारशील व्यक्तियों से मेरा आग्रह है वे ध्यान दें कि आज आपको कितने प्रतिशत "सत्पुत्राः पुत्रिणोहिताः" उक्ति को चरितार्थ करने वाली सन्तानें खोजने से मिल रही हैं और क्यों? मेरा विश्वास है कि सम्पन्न घरों में यद्यपि सभी प्रकार के सुख सुलभ हुआ करते हैं किन्तु वह एक ऐसा समय है कि जिसमें विलक्षण-विलक्षण प्रकार की इच्छायें उत्पन्न हुआ करती हैं, क्योंकि—

कर्मणा चोदितं जन्तोर्भवितव्यं पुनर्भवेत्।
यथा तथा दैवयोगाद्दोहृदं जनयेद्धृदि॥

किन्तु इस प्रकार की महत्वपूर्ण इच्छाओं को सब साधन होते हुए भी उनकी उपादेयता न समझने के कारण पूर्ण नहीं कराया जाता अन्ततः फल वही होता है जो नहीं होना चाहिये। गरीब घरों में इसकी चर्चा ही व्यर्थ है, उन घरों में जब प्रतिदिन की साधारण इच्छायें (अन्न वस्त्र) ही समस्या का रूप धारण कर लेती हैं तो कुछ ऐसी इच्छायें जो नीचे दी गई हैं इनका उपभोग तो निर्धन समाज के लिये सर्वथा असम्भव है, इनको असाधारण व्यक्तित्व का समाज ही प्राप्त कर सकता है। ये दोहद बालक के भविष्य की सूचना को लेकर ही प्रगट होते हैं।

गर्भवती स्त्रियों की इच्छायें—

राजदर्शन, उत्तम वस्त्र आभूषणधारण, ऋषियों के आश्रमों के दर्शन, देव दर्शन, तीर्थयात्रा, मांसभक्षण, मृत्तिकाभक्षण, छः रसों में किसी एक रस में विशेष प्रवृत्ति, काव्य पुराण चर्चा, तथा इनके अतिरिक्त वह जिन पदार्थों की इच्छा करती है उन्हीं पदार्थों के समान शरीर आचार स्वभाव वाली सन्तान को पैदा करती है।

वह समय था शास्त्रों के विधिवत् अनुशीलन तथा उसके निर्दिष्ट मार्गों पर चलने का, इस ओर संकेत करते हुए कविकुलगुरु कालिदास राजा दिलीप के द्वारा सुदक्षिणा की दोहदपूर्ति का तीसरे सर्ग में वर्णन करते हैं—

न ये ह्रिया शंसति किंचिदीप्सितं
स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।
इतिस्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः
प्रिया सखी रुत्तरकोसलेश्वरः॥

उपेत्य सा दोहद दुःखशीलतां
यदेव वव्रे तदपश्यदाहृतम्।
न हीष्ट मस्यत्रिदिवेऽपिभूपते-
रभूदनासाद्य मधिज्य धन्वनः॥

—रघुवंश।

महारानी सुदक्षिणा को मृत्तिका भक्षण का दोहद हुआ था, फिर भी राजा दिलीप इस बात की चिन्ता करते थे कि रानी किस पदार्थ की इच्छा करती है, वे समझते थे कि कहीं लज्जावश वह अपने दोहद को मेरे से न कहे इसलिये वे उसकी सखियों से बार बार पूछा करते थे और सुदक्षिणा के कहते ही उसकी इच्छित वस्तु उसके सामने आजाती थी क्योंकि राजा दिलीप अद्वितीय धनुर्धारी था उसके लिये स्वर्ग में भी कोई वस्तु अलभ्य नहीं थी। दूसरा उदाहरण देखिये—चौदहवें सर्ग में बनवास से लौटने के पश्चात् जब श्री रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक होगया था और राज्य का भार अपने ऊपर लेकर उसका विधिवत् सञ्चालन करने लगे थे उसी समय एक बार अपने अन्तःपुर में जाकर उन्होंने सीता जी के पाण्डुवर्ण वाले मुख को देखा, प्रसन्न होकर गर्भ के लक्षणों से युक्त सीता जी को गोद में बैठा कर पूछा कि तुमको किन पदार्थों की इच्छा हो रही है, तब सीता जी नीचे मुंह करके एकान्त में अपनी इच्छा प्रगट करने लगीं।

सा दष्ट नीवारबलीनिर्हिस्रैः
सम्बद्ध वैखानस कन्यकानि।
इयेषभूयः कुशवन्ति गन्तुम्
भागीरथी तीरतपोवनानि ॥
—रघुवंश

मैं उस स्थान में जाना चाहती हूँ जहां ऋषियों के द्वारा पशु पक्षी मनुष्य आदि के लिये दिये जाने वाले मुनिअन्न (तीनी) को हिंस्रक खा जाते हैं। वानप्रस्थ मुनि कन्याओं के साथ जहां मेरा प्रेम हो गया था कुशावाले गङ्गाजी के तीरों पर स्थित तपोवनों को। श्री राम ने उसे स्वीकार कर लक्ष्मण को आज्ञा दी कि तुम आज ही सीता जी को सुखद रथ में बैठा कर महर्षि बाल्मीक के आश्रम में पहुंचा दो, उनकी आज्ञा के अनुसार लक्ष्मण जी ने सीता जी को महर्षि के आश्रम में पहुंचा दिया। इस प्रकार दोहद पूर्ति का यह जाज्वल्यमान उदाहरण है कि राजा रघु (सुदक्षिणा के पुत्र) जिनसे इन्द्र को भी मुंहकी खानी पड़ी, तथा लव-कुश (सीता के पुत्र) जैसे सर्वगुण सम्पन्न बालक जिनके बल एवं ओज का वर्णन अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर श्री रामचन्द्र जी को स्वयं करना पड़ा।

आज के साहित्य आज की गवेषणायें आज के सिद्धान्त क्यां क्षणभंगुर हो रहे हैं और हमा पूर्वाचार्यों (चरक सुश्रुतादि) के सिद्धान्त क्यों आज भी अटल हैं इस पर यदि थोड़ा सा भी ध्यान दिया जाय तो हमारे जीवन में ऐसे अनेक मूल तत्वों की अवलेहनायें दृष्टिगोचर होती हैं जिनसे वर्तमान एव भावी समाज प्रतिदिन किस ओर बढ़ रहा है कहने की आवश्यकता नहीं। मेरा नम्र निवेदन उन सभी वैद्य बन्धुओं से है जो जनता जनार्दन की सेवा में तत्पर हैं वे समय समय पर इस प्रकार लुप्तप्राय किन्तु महत्वपूर्ण विषयों पर ध्यान दिलायें। आज का आयुर्वेद आपकी मुखापेक्षिता कर रहा है आप उसे आश्रय दीजिये और चरक के इस "आयुर्वेदोपदेशेषुविधेयः परमादरः" सुभाषित को बुलन्द करने में सहायक होइये।

—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य
सी. के. ७।६६ सिद्धेश्वरी, बाराणसी।

नेत्र रोग की सर्वोत्तम दवा

गतवर्ष आयुर्वेद अनुसंधान मण्डल (दिल्ली ६) ने नेत्र रोग सम्बन्धी बीसियों गुणकारी औषधियों की जांच की जिनमें से पुनर्नवा का वह योग बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ जो योगी रत्नगिरि जी से प्राप्त हुआ था। यह चमत्कार निःसन्देह आयुर्वेद के इस महान वाक्य का प्रतीक है—

पुनर्नवा नेत्र नवी करोति

अर्थात् पुनर्नवा (इटसिट) आखों को नया बना देती है। इस औषधि के बनाने की विधि इस प्रकार है कि विमल ज्योति की जड़ को पुनर्नवा की जड़ के रस की सात भावनायें देकर अंजन बना लिया जाय और इसे रात को सोते समय आंखों में लगाया जाय। योगी जी का कथन था कि उन्होंने इससे अनेक रोगियों का चश्मा उतरवा दिया। मण्डल के प्रधान कविराज कुन्दनलाल खैतल ने स्वयं इसका सेवन किया और आपके चश्मा का नम्बर ५ से घटकर २.५ ० आ रहा। औषधि का सेवन तथा लाभ की प्रगति अभी जारी है। कविराज प्रतापसिंह भूतपूर्व परामर्श दाता देशी चिकित्सा पद्धति भारत सरकार ने भी अपनी नेत्र ज्योति इस साठ वर्ष की आयु में ठीक होने का कारण इस अद्भुत जड़ी को ही बताया। मण्डल के कई सदस्य इस औषधि को अपने रोगियों प प्रयोग करने के पश्चात् इसकी बहुत प्रशंसा करते हैं।

कार्यालय मन्त्री
आयुर्वेद अनुसन्धान मण्डल, दिल्ली-६

पुराणों में आयुर्वेद (५)

अग्निपुराण अध्याय ३१

श्री जनार्दन शास्त्री

[अग्निपुराण 'संस्कृत साहित्य का विश्वकोष' (Encyclopaedia of Sanskrit Literature) कहा जाता है। इसमें जहां मानव जीवनोपयोगी वेद-वेदाङ्ग आदि विपुल विषय वर्णित हैं, वहां वैद्य बन्धुओं के लिये विशेष उपादेय सामग्री-वैद्यविद्या, सिद्धौषध, मन्त्रौषध, सर्वरोग चिकित्सा, सम्पूर्ण रोगहर औषध, षट्त्रिंशतपदक ज्ञान (जिसमें ३६ काष्ठादि औषधियों के प्रयोग द्वारा ३०० वर्ष की पूर्णायु होने की बात कही गई है) वृक्षायुर्वेद, गवाश्व चिकित्सा, रसलक्षण, मणि-माणिक्यादि परीक्षा आदि का सम्यक् वर्णन है। हम इस लेखमाला के अन्तर्गत यह सभी सामग्री अनूदित करके देरहे हैं, किन्तु फिर भी वैद्य बन्धुओं एवं धन्वन्तरि के पाठकों से साग्रह निवेदन करते हैं कि इस पुराण के मूल का अवश्य अवलोकन करें जिससे और भी उपयुक्त ज्ञान उपलब्ध हो सके। —लेखक]

औषधि चिकित्सा की भांति मन्त्र चिकित्सा भी लाभप्रद और आवश्यक है, यह हम इसी लेखमाला में आगे विशेष समीक्षा में विस्तार से स्पष्ट करेंगे। संप्रति 'अग्निपुराण ३१ वें अध्याय' में जो अपामार्जन विधान है उसे यथावत् उद्धृत कर रहे हैं। इस स्तोत्र का पाठ करते हुए कुशा से रोगी का अपामार्जन करने से (झाड़ने से) किसी भी रोग में शान्ति मिलती है यह अनुभव सिद्ध है। पाठ करने वाले व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि तथा रोगी का मंत्र पर विश्वास आवश्यक है।

अपामार्जन विधानम्

अग्निरुवाच—

रक्षां स्वस्य परेषां च वक्ष्येऽपामार्जनाह्वयाम् ।
यथा विमुच्यते दुःखैः सुखं च प्राप्नुयान्नरः ।। १ ।।
ॐ नमः परमार्थाय पुरुषाय महात्मने ।
अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने ।। २ ।।
निष्कल्मषाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्धयतु मे वचः ।। ३ ।।
वराहाय नृसिंहाय वामनाय महात्मने ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्धयतु मे वचः ।। ३ ।।
त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्धयतु मे वचः ।। ५ ।।
वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम ।
हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम् ।। ६ ।।
अपराजित चक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः ।
अखण्डितानुभावैस्त्वं सर्वदुष्टहरो भव ।। ७ ।।
हर अमुकस्य● दुरितं सर्वं च कुशलं कुरु ।
मृत्युबन्धार्तिभयदं दुरिष्टस्य च यत्फलम् ।। ८ ।।
पराभिध्यानसहितैः प्रयुक्तं चाभिचारिकम् ।
गरस्पर्शमहारोगप्रयोगं जरया जर ।। ९ ।।
ॐ नमो वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्गिने ।
नमः पुष्करनेत्राय केशवायादि चक्रिणे ।।१०।।
नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे ।
महाहवरिपुस्कन्धघृष्टचक्राय चक्रिणे ।।११।।
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नमः ।
महायज्ञवराहाय शेषभोगाङ्कशायिने ।।१२।।
तप्तहाटककेशान्त ज्वलत्पावकलोचन ।
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तुते ।।१३।।
काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामभूषिणे ।
तुभ्यं वामनरूपायाऽऽक्रमते गां नमो नमः ।।१४।।
वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि वै ।
मर्द मर्द महादंष्ट्र मर्द मर्द च तत्फलम् ।।१५।।
नारसिंह करालास्य दन्तप्रान्तानलोज्ज्वल ।
भंज भंज निनादेन दुष्टान्पश्यातिनाशन ।।१६।।
ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक् ।
प्रशमं सर्वदुःखानि नयत्वस्य जनार्दनः ।।१७।।

●अमुकस्य के स्थान में रोगी का नाम उच्चारण करना चाहिये।

ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथात्रिदिवसं ज्वरम् ।
चातुर्थिकं तथात्युग्रंतथैवसततं ज्वरम् ॥१८॥
दौषोत्थ सन्निपातोत्थ तथैवागन्तुकं ज्वरम् ।
शमं नयाशु गोविन्द चिछन्धिचिछन्ध्यस्य वेदनाम् ।१९।
नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखं चोदरसम्भवम् ।
अनिःश्वासमतिश्वासं परितापं सवेपथुम् ॥२०॥
गुदघ्राणाङ्घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम् ।
कामलादींस्तथा रोगान् प्रमेहांश्चातिदारुणान् ॥२१॥
भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगांश्च वल्गुलीम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान् ॥२२॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवा ।
कफोद्भवाश्च ये केचित् ये चान्ये सान्निपातिकाः ॥२३॥
आगन्तुकाश्च ये रोगा लूताविस्फोटकादयः ।
ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥२४॥
विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन च ।
क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः ॥२५॥
अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥२६॥
स्थावरं जङ्गमं चापि कृत्रिमं वापि यद्विषम् ।
दन्तोद्भवं नखभवमाकाशप्रभवं विषम् ॥२७॥
लूतादिप्रभवं यच्च विषमन्यत्तु दुःखदम् ।
शमं नयतु तत्सर्वं वासुदेवस्य कीर्तनम् ॥२८॥
ग्रहान्प्रेतग्रहांश्चापि तथा वै डाकिनी ग्रहान् ।
वेतालांश्च पिशाचांश्च गन्धर्वान्यक्षराक्षसान् ॥२९॥
शकुनीपूतनाद्यांश्च तथा वैनायकान् ग्रहान् ।
मुखमुण्डीं तथा क्रूरां रेवतीं वृद्धरेवतीम् ॥३०॥
वृद्धिकाख्यान् ग्रहांश्चोग्रांस्तथा मातृग्रहानपि ।
बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानिमान् ॥३१॥
वृद्धाश्च ये ग्रहाः केचिद् ये चबालग्रहाः क्वचित् ।
नरसिंहस्य ते दृष्ट्वा दग्धा ये चापि यौवने ॥३२॥
सटाकरालवदनो नारसिंहो महाबलः ।
ग्रहानशेषान्निःशेषान् करोतु जगतो हितः ॥३३॥
नरसिंह महासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन ।
ग्रहानशेषान्सर्वेश खाद खादाग्निलोचन ॥३४॥
ये रोगा ये महोत्पाता यद्विषं ये महाग्रहाः ।
यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः ॥३५॥
शस्त्रक्षतेषु ये दोषा ज्वालागर्दभकादयः ।
तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दनः ॥३६॥
किञ्चिद्रूपं समास्थाय वासुदेवास्य नाशय ।
क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ॥३७॥
सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत !
सुदर्शन महाज्वाल चिछन्धिचिछन्धि महारव ॥३८॥
सर्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं यान्तु विभीषण ।
प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि दक्षिणोत्तरतस्तथा ॥३९॥
रक्षां करोतु सर्वात्मा नरसिंहः स्वगर्जितैः ।
दिविभुव्यन्तरिक्षे च पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥४०॥
रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः ।
यथा विष्णुर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥४१॥
तेन सत्येन दुष्टानि शममस्य व्रजन्तु वै ।
यथा विष्णौ स्मृते सद्यः संक्षयं यान्ति पातकाः ॥४२॥
सत्येन तेन सकलं दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ।
यथा यज्ञेश्वरो विष्णुः देवेष्वपि हि गीयते ॥४३॥
सत्येन तेन सकलं यन्मयोक्तं तथास्तु तत् ।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ॥४४॥
वासुदेव शरीरोत्थैः कुशैर्निर्णाशितं मया ।
अपमार्जति गोविन्दो नरो नारायणस्तथा ॥४५॥
तथाऽस्तु सर्वदुःखानां प्रशमो वचनाद्धरेः ।
अपामार्जनकं शस्तं सर्वरोगादिवारणम् ॥४६॥
अहं हरिः कुशा विष्णुर्हता रोगा मया तव ॥४७॥

इत्यादि महापुराण आग्नेये कुशापामार्जन स्तोत्र विधानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

[अग्निपुराण अध्याय १२५, श्लोक ४३-४६]

इस अध्याय में युद्धजयार्णवीय नाना चक्रों का वर्णन है जिसमें औषधि चक्र भी आया है–

शिवजी ने कहा—हे पार्वती ! अब मैं युद्ध में महारक्षाविधायिनी औषधियों का वर्णन करता हूं–महाकाली, चण्डी, वाराही, ईश्वरी, सुदर्शना तथा इन्द्राणी इनको शरीर में धारण करने से युद्ध में सब प्रकार से रक्षा होती है। बला, अतिबला, भीरू, मुसली, सहदेवी, जाती, मल्लिका, यूथी, गारुड़ी और भृङ्गराज इन औषधियों को भी चक्र रूप ही समझो जो देह में धारण करने से विजय प्रदान करती हैं, हे देवि ! ग्रहण के समय उखाड़ी हुई ये औषधियां विशेष शुभप्रद होती हैं।

—साहित्याचार्य पं० जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
२१/२३ ब्रह्माघाट काशी।

कुष्ठ रोग और उसका निदान

श्री पं० अवधविहारी मिश्र

जिससे कोई चीज बहे उसका नाम कुष्ठ है। इस परिभाषा में ७ महाकुष्ठ, ११ क्षुद्रकुष्ठ अन्तर्भूत हो जाते हैं। महर्षि पतञ्जलि अपने ग्रन्थ चरक में लिखते हैं कि सात द्रव्य वात, पित्त, कफ तीन दोष, त्वचा, मांस, रक्त सरीका इन चार द्रव्यों की विकृति से कोढ़ रोग उत्पन्न होते हैं। कोढ़ तीनों दोषों के प्रकोप से होते हैं। अर्थात् एक-दो दोष के प्रकोप से कोढ़ नहीं होता। जैसे वायु के अधिक प्रकोप से कापालिक कुष्ठ होता है, पित्त के अधिक प्रकोप से औदुम्बर कुष्ठ होता है, कफ के अधिक प्रकोप से मण्डल कुष्ठ होता है इत्यादि दोषों के न्यूनाधिक प्रकोप तथा अंशांश विकल्पना से अनेक प्रकार के कुष्ठ होते हैं। किंतु सभी कुष्ठों में अन्ततोगत्वा कुछ न कुछ बहने लगता है अतः पूर्वोक्त कुष्ठ की परिभाषा ठीक सिद्ध हुई।

श्वेत कुष्ठ

इसकी गणना कोढ़ों के अन्तर्गत नहीं है। न यह दो या तीन दोषों से होता है या एक ही दोष से उत्पन्न होता है। इसे आयुर्वेद में किलास कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—दारुण, वारुण, श्वित्र। दारुण वायु की प्रधानता से होता है और इसका रङ्ग तांबे समान होता है। वारुण पित्त की प्रधानता से होता है और इसका रङ्ग कमल के पत्ते के समान होता है। श्वित्र कफ प्रधान होता है और इसका रङ्ग बिल्कुल सफेद चमेली के फूल के समान होता है। श्वेत कुष्ठ में आरम्भ से लेकर अन्त तक चाहे वह कितना ही पुराना क्यों न हो जाय, इससे कोई चीज़ बहती नहीं। इसलिए इसे कुष्ठ नहीं कहा जा सकता किन्तु कोढ़ पापजन्य है और यह भी पापजन्य है इसलिए इसे भी कोढ़ कहते हैं।

निदान

भयङ्कर झूठ बोलने से, देवताओं की निन्दा से, कृतघ्नता (किये हुए उपकारों को न मानना), गुरुजनों के प्रति ईर्ष्याभाव रखना और अन्यान्य पाप कर्मों से तथा पूर्वजन्म कृत पापों से, विरोधी अन्नों के सेवन से यह रोग होता है ऐसा शास्त्रों में लिखा है।

एकदम ठण्डे स्थानों से गरम स्थानों में जाना जैसे एयर कण्डीशण्ड या गरम प्रदेश से ठण्डे प्रदेश में जाना और पुनः वापस आना। भोजन पूर्ण रूप से हजम न हुआ हो और ऊपर से फिर भोजन करना। अत्यधिक परिश्रम कर लेने के बाद ही ठण्डे पानी से स्नान कर लेना। अति मैथुन, गरिष्ट पदार्थों का अधिक सेवन, विशेष ठण्डी वायु का निरन्तर सेवन करना, अधिक व्यायाम करना तथा विरोधी अन्नों का सेवन करना। जैसे मूली, मकोय, लहसुन, राई, सहजन का शाग, इनको खाकर दूध पीना। मछली विशेष तथा चिलचिम मछली बहुत गरिष्ट होती है और उष्ण वीर्य है। दूध शीत वीर्य होने के कारण इसको खाकर दूध पीना। मछली विशेषतया चिलचिम प्रत्युत मृत्युकारक भी है। यों तो सभी मछलियों के खाने के बाद दूध पीना अहितकर है। इन कारणों से तीन दोष एक साथ कुपित होकर महाभयङ्कर कुष्ठ रोग को पैदा करते हैं। विरोधी अन्नों के विषय में चरक में बड़ा ही विशद वर्णन किया है।

देश विरुद्ध—

जैसे मारवाड़ आदि निर्जल देशों में तीक्ष्ण रूक्ष पदार्थों का सेवन। जल प्रदेश बंगाल आदि में स्निग्ध और शीत पदार्थों का सेवन करना।

काल विरुद्ध—

शीतऋतु में शीत और रूक्ष पदार्थों का सेवन, गर्मियों में कटु और उष्ण पदार्थों का सेवन।

मात्रा विरुद्ध—

घी और शहद समान मात्रा में सेवन करना।

सात्म्य विरुद्ध—

जैसे किसी पुरुष को कटु उष्ण आदि पदार्थ सात्म्य (हितकारी) हों वह यदि मधुर और शीत पदार्थों का सेवन करे।

वीर्य विरुद्ध—

जो पदार्थ शीतवीर्य हो उसको उष्ण वीर्य वस्तु के साथ खाया जाय, जैसे मछली और दूध।

कोष्ठ विरुद्ध—

क्रूर कोठे वाले मनुष्य को मृदु वीर्य रोचक पदार्थ देना और मृदुकोष्ठ वाले पुरुष को गुरु अथवा बहुत रेचक पदार्थ देना।

अवस्था विरुद्ध—

परिश्रम, स्त्रीप्रसंग, व्यायाम करने के बाद पुरुष को वीर्य बढ़ाने वाले आहार करना।

क्रम विरुद्ध—

बिना भूख के खाना या अत्यधिक भूख लगने से विकलता आ जाने पर भोजन करना।

संयोग विरुद्ध—

खटाई का दूध के साथ खाना।

हृदय विरुद्ध—

जो भोजन मन को पसन्द न हो उसे खाना।

संयम विरुद्ध—

जिस भोजन का रस नष्ट हो गया हो उसे खाना। इत्यादि।

उपरोक्त विरोधी अन्न के सेवन से निम्न रोग उत्पन्न होते हैं यथा नपुंसकता, अन्धापन, विसर्प, जलोदर, विस्फोटक, उन्माद, भगन्दर, मूर्च्छा, गलरोग, पाण्डुरोग, आमविष, किलास (श्वेतकुष्ठ) संग्रहणी, रक्तपित्त, ज्वर, पीनस इत्यादि। इतना ही नहीं भावी सन्तान में भी इसका असर होता है और मृत्यु का भी कारण हो सकता है। भले ही तरुण स्वस्थ पुरुष विरोधी अन्नों के सेवन से रोगी न हो किन्तु परिणाम में उन्हें भी भयङ्कर रोगों का शिकार होना पड़ेगा।

कुष्ठ के पूर्व रूप

पसीने का अधिक आना या बिल्कुल न आना त्वचा में कठोरता, त्वचा में चिकनापन, विवर्णता खुजली, सुई चुभने सा मालूम होना, स्पर्शज्ञानाभाव (सुन्नबहरी), जलन, रोमांच होना, थोड़ी चोट लगने पर बहुत मालूम होना, धूप अधिक खराब लगना, छोटा सा व्रण भी अधिक दिनों में ठीक होना इत्यादि लक्षण यदि मालूम हों तो समझें कि कुष्ठ रोग का आक्रमण हो गया।

चिकित्सा

श्वेत कुष्ठ तथा अन्यान्य कुष्ठों को सोमराजी (वाकुची) तथा स्वर्णक्षीरी, हिन्दी में घमोय, बंग, सत्यानाशी भमरभांड बंगला में स्यारा कांटार इत्यादि नामों से ली जाने वाली इन दोनों जड़ियों द्वारा ये रोग अधिक रूप से अच्छे किये जाते हैं। लाभ भले ही अधिक दिनों में हो किन्तु इनके प्रयोग से किसी प्रकार की हानि नहीं होती और भी कुछ अप्रसिद्ध जड़ियां हैं जिनके सेवन से कुष्ठ में चमत्कृत लाभ होता है।

रसचिकित्सा—

इस चिकित्सा में प्रधान पारद है। शास्त्रों में सुवर्ण में लाखगुण, हीरक में कोटि गुण तथा पारद में असंख्य गुण लिखे हैं। तथापि पारद कुष्ठहा अर्थात् कोढ़ को नाश करने में अमोघ शक्ति रखता है। श्री गोविन्द भिक्षु अपने रसहृदय ग्रंथ में लिखते हैं देवता, गुरु, गाय, ब्राह्मण इन चारों की हिंसा से उत्पन्न कुष्ठ जैसे भयानक पापज रोग को पारद अच्छा कर देता है। अतएव पारे में भगवान शंकर का अनिर्वचनीय प्रादुर्भाव आज भी देखने में आता है। नहीं तो इसके विलास मात्र से ही

—शेषांश पृष्ठ ७१० पर।

स्त्रियों में बढ़ता हुआ रोग–

प्रदर

श्री माणिक्य सागर यति

आज का नारी समाज अधिकांशतः प्रदर रोग से भयङ्कर रूप से ग्रसित है। लज्जावश स्त्रियां इस रोग को वैद्य या डाक्टर से कहने में संकोच करती हैं और रोग को बढ़ाती हैं, फलतः उन्हें अन्य अनेक भयङ्कर बिमारियों का ग्रास होना पड़ता है।

इस रोग की अवधि बारह वर्ष की आयु से लेकर पचास वर्ष की आयु तक है, क्योंकि इसी समय स्त्रियों को मासिक धर्म होता है। मासिक धर्म के अतिरिक्त होने वाला स्राव ही प्रदर रोग कहलाता है।

वैसे तो इस रोग के कई प्रकार हैं, किन्तु मुख्य रूप से इसके आज दो रूप हैं :—

(१) रक्त प्रदर (खून अधिक आना)

(२) श्वेत प्रदर (पीला या सफेद पानी बहना)

रोग की उत्पत्ति के कारण—

(अ) आराम से बैठे रहना, शृङ्गार रस के उपन्यासों को अधिक पढ़ना, अधिक फैशन परस्ती, उत्तेजक भोज्य पदार्थों का सेवन एवं उत्तेजनात्मक वातावरण में रमण, तथा अश्लील सिनेमा, नाटक, नृत्य आदि का देखना।

(आ) अधिक गरम, खट्टे, चटपटे आहार और मांस मदिरा का सेवन।

(ई) अत्यधिक भोजन करना, अजीर्ण में भी भोजन करना, अधिक शृंगार एवं एकान्त वास।

(ई) सारे दिन सोते रहना, बारम्बार गर्भस्राव होना या गर्भपात कराना, अत्यधिक सहवास, भारी बोझ उठाना, अधिक दूर तक पैदल चलना और शोक करना आदि।

इन कारणों के अतिरिक्त कुछ और भी कारण होते हैं, जिनसे कि यह रोग होता है। जैसे गर्भाशय में आघात, जनेन्द्रिय में अधिक रक्त का संचय, अधिक उपवास, गर्भाशय में सूजन।

रक्त प्रदर के लक्षण—

रक्त का अधिक मात्रा में गिरना और उस समय शरीर में पीड़ा होना, खून के अधिक निकलने से मुख का मुरझा जाना, शरीर का शिथिल, कृश और दुर्बल होना, प्यास अधिक लगना और कभी कभी ज्वर होना, अरुचि भूख न लगना आदि।

मासिक धर्म का साधारण समय ३ से ४ दिन तक होता है। इससे अधिक समय आना अथवा स्राव का अनेक वर्णों में आना या महिने में एक बार से अधिक दो तीन बार आना, पूरा एक मास से कम दिन में आना, अधिक मात्रा में रक्त का गिरना, रक्त का रङ्ग कालिमा लिए होना या उसमें गंध अधिक होना, आदि सब रक्त प्रदर के ही लक्षण हैं।

श्वेत प्रदर के लक्षण—

इसमें सफेद या पीलापन लिये स्राव अत्यधिक मात्रा में होता है। जिस समय स्राव कम होता है उस समय वह गाढ़ापन एवं चिपचिपापन लिए हुए गंधयुक्त होता है। इससे ज्वर, कमर में दर्द, पेडू में दर्द अधिक होता है जब पतलापन होता है तब कभी कभी खुजली भी आती है। किसी भी काम के करने की इच्छा नहीं होती। यह रक्त प्रदर से अधिक हानिकारक है।

रक्त प्रदर की चिकित्सा—

उपरोक्त कारणों के निवारण का उपाय करना

चाहिए एवं रोगी को चलना फिरना बंद कर देना चाहिए और चारपाई का पैरों की तरफ का भाग कुछ ऊंचा रखना चाहिए।

रक्त को बन्द करने लिये—

(१) लाख, लोध, सफेद चन्दन, इन तीनों को सम भाग लेकर इनका चूर्ण एक माषा तक तीन समय दूब के रस से लेवे या ठंडे जल से।

(२) रसौत को गेंदा के फूल के रस में घोटकर १-१ माशा मात्रा में ठंडे पानी से दिन में चार बार लें।

(३) विषाण भस्म एक एक माषा चावल चार आने भर जल में पीस कर तीन तीन घण्टे के बाद लेने से रक्तस्राव अवश्य ही बन्द होता है। यह अनुभूत प्रयोग है।

(४) चन्द्रकला, कामदुधा रस, प्रवालपिष्टी इन औषधियों को २-२ रत्ती च्यवनप्राश से सुबह शाम लेवें।

भोजन के बाद अशोकारिष्ट और लोध्रासव १-१ तोला दोनों को मिलाकर २॥ तोला जल से दोनों समय लेवें।

स्थान को शुद्ध रखना चाहिए। नारियल का जल, हरा धनियां, सोंफ, आंवला, अंगूर, दूध, भात आदि ठण्डे पदार्थ विशेष हितकर होते हैं।

श्वेत प्रदर की चिकित्सा—

सर्व प्रथम अन्दर के भागों की शुद्धि के लिये बस्ति (डूश) अवश्य लेना चाहिए। डूश के लिये सुहागा थोड़े से गर्म जल में डालकर या गूलर का सत्व गर्म जल में घोलकर या त्रिफला का क्वाथ या स्फटिका भस्म डाल कर लेना चाहिए।

इस रोग में ब्रह्मचर्य परमावश्यक है।

(१) शुद्ध किया हुआ सफेद सुरमा, नागकेशर, राल, पठानी लोध, मिश्री इन सबको सम भाग लेकर चूर्ण करके ३-३ माशा दूध से लेने से अवश्य लाभ होता है।

(२) चिकनी सुपारी, एला छोटी, माजूफल, कत्था, रूमी मस्तंगी इनको समभाग लेकर चूर्ण बनाकर बराबर मिश्री मिलाकर दो दो माशा मात्रा में दूध से दिन में तीन बार लेवें।

(३) अशोकारिष्ट, पत्रांगासव १-१ तोला मिलाकर जल के साथ भोजन के बाद लेवें और चन्द्रप्रभावटी २-२ गोली दूध से सुबह शाम लें।

(४) भोजन के बाद अशोकारिष्ट तथा पत्रांगासव के साथ एक माषा पुष्यानुग चूर्ण लेने से अवश्य लाभ होता है।

(५) त्वग भस्म २ रत्ती, बङ्गभस्म १ रत्ती च्यवनप्राश से दोनों समय लेवें।

प्रदर रोग में पथ्य—

गाय और बकरी का दूध तथा घी। फलों में पका हुआ केला, मौसमी, अनार, अंगूर, आंवला, सींघाड़ा, मतीरा और ककड़ी।

शाकों में—तोरई, परवल, घीया, चौलाई, टिमाटर, कुम्हड़ा आदि। इसके अतिरिक्त ठण्डे पेय द्रव्य एवं मिश्री पथ्य माने गये हैं।

अपथ्य—

किसी भी प्रकार का व्यायाम करना, धूप में जाना, क्रोध करना, सवारी पर चढ़ना, तैल, गुड़, सरसों, उड़द, लहसुन, शराब, खट्टे पदार्थ, चटपटे उत्तेजक एवं गरिष्ठ पदार्थ इस रोग में स्वास्थ्यरक्षा के लिये सेवन नहीं करने चाहिए और जिन-जिन कारणों से रोग उत्पन्न होता है उनसे सदा बचना चाहिए।

—वैद्य श्री माणिक्य सागर यति आयुर्वेदाचार्य
ऋद्धिकरण आयुर्वेद औषधालय, चूरू।

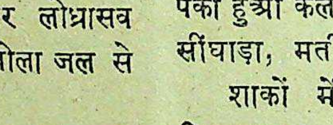

पेटेण्ट एलोपैथिक दवाओं का प्रयोग न करें

श्री बद्रीनारायण शर्मा

(गतांक से आगे)

प्लेस्च्यूल्स केपसूल विद लिवर एक्सट्रेक्ट के स्थान पर—

स्वर्णमाक्षिक भस्म	½ रत्ती
लौहभस्म	¼ रत्ती
ताम्र भस्म	¼ रत्ती
कासीस भस्म	½ रत्ती

यह १ मात्रा है। इस मात्रा से अधिक मिश्रण बना कर मशीन में गोलियां बनालें अथवा केपसूल में भर दें।

मात्रा—१-१ केपसूल दिन में ३ बार जल से।

लाभ—रक्ताल्पता-पांडुरोग, यकृत्प्लीहावृद्धि में उपयोगी है।

एस० डी० फ्रेंड के स्थान पर—

चाकमिट्टी	२ रत्ती
शुद्धस्फटिका	½ रत्ती
शुद्धपारद	¼ रत्ती

यह १ मात्रा है, टेबलेट बनवालें। प्रथम तीनों को पारद के अदृश्य होने तक घोट लें।

मात्रा—१-२ गोली दिन में २ से ४ बार तक पानी से दें।

लाभ—अतिसार-पेचिस (प्रवाहिका) रक्तातिसार में उपयोगी है।

इफेड्रिन टेबलेट के स्थान पर—

श्वेत सोमल-ताल भस्म	¼ रत्ती
सोमलता चूर्ण	१ रत्ती
शृंग भस्म	¼ रत्ती

यह १ मात्रा है। मशीन में अधिक टेबलेट बनावें।

मात्रा १-१ गोली—दूध, चाय या गर्म जल से लें। श्वास रोगनाशक है। कफ कास में भी लाभप्रद है।

लाभ—श्वास के दौरे को काबू में करती है।

केस्टोफीन, ड्रलेक्स आदि जुलाब की गोलियों के स्थान पर—

उत्तम जुलाफा चूर्ण	१ रत्ती
रेवाचीनी का सीरा	१ रत्ती
जैपाल तैल	¼ रत्ती
शकर	२ रत्ती

विधि—सबको बारीक बनाकर मशीन में इस १ मात्रा के अनुसार अधिक टेबलेट्स बनवा लें।

मात्रा—१ गोली जल, निवाये दूध के साथ-कोमल प्रकृति वालों को आधी मात्रा में दें।

लाभ—दस्त आकर उदर व आंतें साफ हो जाती हैं।

फ्रूट साल्ट के स्थान पर—

खाने का सोडा	५ तोला
निम्बु सत्व	२॥ तोला
सामुद्र लवण	१ तोला
सोंठ चूर्ण बारीक	:१ तोला

विधि—सोड़े को पीतल की कड़ाही में गर्म करें, फिर निम्बु सत्व व नमक डालें जब दाने पड़ जावें तब जल्दी से उतार कर सोंठ चूर्ण मिलाकर शीशियों में भर कर ढक्कन लगादें।

मात्रा—१ छोटी चम्मच ऽ— पानी में डालकर उफान आने के बाद पी जावें।

लाभ—उदरवात, साधारण मलावरोध को दूर कर अग्नि बढ़ाता है, उत्तम पाचक है।

सेलिन टेबलेट के स्थान पर—

वंशलोचन	½ रत्ती
अमृता सत्व	½ रत्ती
मुलैठी सत्व	½ रत्ती

प्रवाल भस्म	१/२ रत्ती

यह १ टेबलेट की मात्रा है। इसी तरह अधिक द्रव्य लेकर मशीन में टेबलेटस बनवा लें।

मात्रा-१-२ गोली, जल अथवा दूध से दिन में ३-४ बार।

लाभ—मन्द ज्वर, जीर्ण ज्वर, क्षयजन्य ज्वर, दुर्बलता, बालशोष में लाभकारी है।

सोनरिल या अन्य निद्राप्रद औषधियों के स्थान पर—

अहिफेन	१/४ रत्ती
रससिंदूर	१/४ रत्ती
पीपलामूल	२ रत्ती

मशीन में गोलियां बनालें। यह १ मात्रा है।

मात्रा—१-१ गोली, जल या दूध से।

उपयोग—नींद लाती है।

एविल टेवलेट के स्थान पर—

तालसिंदूर	१/२ रत्ती
सूतशेखर नं३ १	१ रत्ती

मशीन में गोलियां बनवालें।

मात्रा—१-२ गोली जल के साथ।

उपयोग—शीतपित्त, कण्डू, रक्तदुष्टि व चर्मरोग नाशक है।

पेन्सीलीन टेवलेट—

अश्वगन्धा सत्त्व	१ रत्ती
रसकर्पूर वटी	१/२ रत्ती

टेबलेट बनवालें।

मात्रा-१-१ गोली जल के साथ।

उपयोग—चर्मरोग, उपदंश, उष्णवात, व्रण, रक्तदोष सामान्य ज्वरों में उपयोगी है।

पेप्स के स्थान पर—

मुलैठी सत्व	१ रत्ती
देशीकपूर	१/८ रत्ती
कुलिंजन	१/२ रत्ती
खैरसार	१/४ रत्ती

मधु मिलाकर मशीन में टेबलेट बनवालें।

मात्रा—१-४ गोली दिन में २-४ या अधिक बार मुँह में रखकर चूसें।

उपयोग—कास, स्वरभेद, गलरोग, अरुचि दूर होती है।

हेडेन्सा के स्थान पर—

माजूफल चूर्ण	१ रत्ती
बंदाल चूर्ण	१ रत्ती
भांग चूर्ण	१ रत्ती
निर्मली चूर्ण	१ रत्ती
वेसलीन	१ तोला

सब औषधियों का कपड़छन चूर्ण बनाकर वेसलीन में मिलाकर मलहम बनाकर शीशियों या ट्यूबों में भर लें। इस प्रमाण से अधिक बनालें।

प्रयोग विधि—शौच हो आने पर यह मलहम सलाई से लगा दें।

उपयोग—अर्श (बवासीर) का रक्त बन्द होता है। कुछ दिनों में मस्से मुर्झा कर खिर जाते हैं।

एरोमाइसीन केपसूल के स्थान में—

मुक्तापिष्टी	१/४ रत्ती
रत्नगिरीरस	१/४ रत्ती
कस्तूरीभैरव रस	१/४ रत्ती

मात्रा-१-१ केपसूल दिन में ४-५ बार रोग व रोगी की अवस्थानुसार।

उपयोग—मोतीझरा (Typhoid) मियादी बुखार, जीर्णज्वर, मन्दज्वर में उत्तम लाभप्रद है।

सर्पीना टेवलेट के स्थान पर—

सर्पगन्धा चूर्ण	१ रत्ती
खुरासानी अजवायन	१ रत्ती
पीपलामूल	१/२ रत्ती
विजया	१/२ रत्ती

यह १ मात्रा है, इन सबका बारीक चूर्ण बनाकर मशीन में टेबलेट बनवा लें।

मात्रा—१-१ गोली शाम को २ बार जल या दूध से देना चाहिए।

उपयोग—मस्तिष्क व रक्तगति क्रिया का सन्तुलन ठीक कर रक्तचाप (Blood pressure) को नियमित करती है। नींद लाती है। (क्रमशः)

—वैद्य बद्रीनारायणशर्मा आयुर्वेदाचार्य, काव्यतीर्थ, प्रधान वैद्य, कृष्णगोपाल-कालेड़ा।

बद और रिहौली

कविराज देवराज सुमन

मैंने सन् १९५६ में पर्वत में स्थित भलवाल चिकित्सालय का चार्ज लिया था। तब से ही मैं नवीन जड़ी बूटियों की खोज में ध्यान लगाने लगा था। गत वर्ष मेरे पास व्रण चिकित्सार्थ कई रोगी आये परन्तु उन सबकी चिकित्सा में शल्यकर्म करके पाश्चात्य औषधि द्वारा बंधन लगाये गये। एक बार अक्टूबर १९५७ में मेरे पास एक रोगी आया और कहने लगा श्रीमान् जी मैं पाश्चात्य चिकित्सा और सूचीवेध से थक गया हूं, यदि आप देशी चिकित्सा से लाभ पहुंचा सकते हैं तो मेरी चिकित्सा हाथ में लें। मैंने उसे आश्वासन दिया और केवल खाने के लिये "शुभ्राभस्म" की दो दो रत्ती को पुड़िया बांधकर दे दीं और दूसरे दिन आने को कह दिया।

उसी दिन दोपहर बाद मैं विचारों में पड़ा हुआ निकटवर्ती पहाड़ी पर चला गया। वहां एक चरवाहा पशु चरा रहा था। वह स्वयं मेरे पास आया और कई प्रकार की जड़ी बूटियों के बारे में बातें करने लगा। वह बोला यह जो लम्बे पत्तों वाली जड़ी है यह व्रण का पाचन करती है। मैंने अनुभवार्थ थोड़ी सी उखाड़ ली और उस रोगी के उपचार में उसका प्रयोग किया। तीन दिन बाद रोगी स्वस्थ होगया। पूर्ण वर्णन मैं नीचे दे रहा हूँ जो मैंने ज्ञात किया है यदि कोई विद्वान् इसे जानते हों तो प्रकाश डालने की कृपा करें कि इसका शास्त्रीय नाम क्या है।

नाम - रिहौली (शास्त्रीय नाम ज्ञात नहीं) उत्पत्ति स्थान — पर्वतीय प्रदेशों में, इसकी उत्पत्ति वैसाख ज्येष्ठ की तपती दुपहरी में होती है। एक प्रकार के कंद से पत्र निकलते हैं जैसे जैसे गर्मी बढ़ती है वैसे वैसे इसका हरा पत्र लम्बा होने लगता है। इसकी आकृति सुदर्शन के पत्तों से मिलती जुलती है परन्तु पत्तों के मध्य में रेखायें होती हैं। किनारे कांटों रहित, लम्बाई २ या २॥ फुट। ग्रामीण लोग बच्चों को सूखा रोग लगने के भय से जङ्गल से जूता में रख कर लाते हैं।

गुण—कषाय, शीतल, पैत्तिकव्रण में लाभदायक अन्य द्रव्यों के संयोग से प्रत्येक प्रकार के व्रण में लाभदायक है। सुगन्धी घृतकुमारी से मिलती जुलती है।

प्रायोगिक परीक्षण—

नाम रोगी—शम्भूनाथ ग्राम—धार धरोंचा

आयु—४५ वर्ष व्यवसाय—खेतीवाड़ी

रोग—एक प्रकार का व्रण जिसे बद या जहर भी कहते हैं, घुटने की संधि पर नीचे की ओर था चलने में कष्ट, केवल गांठ सी।

विवरण–रोगी १॥ मास पूर्व से व्रण से पीड़ित था, पूर्व इतिहास में रोगी को खेत से आने पर हल्की हल्की पीड़ा थी। प्रथम कुछ कठिनाई नहीं थी परन्तु १॥ मास पूर्व सूअर का मांस खाने पर दर्द बढ़ने लगा। तब अपनी घरेलू चिकित्सा के बाद पाश्चात्य चिकित्सा की शरण ली। पैंसलीन के टीके लगवाये, मलहम भी प्रयोग करता रहा परन्तु दो दिन लाभ होता और तीसरे दिन फिर वही स्थिति हो जाती।

पूर्व परीक्षण—जब रोगी मेरे पास आया व्रण कठिन था हाथ लगाने पर पीड़ा का अनुभव, चलने में कठिनाई, व्रण चार इंच के व्यास में था जो स्थान को संकुचित करता प्रतीत होता था। रोगी को व्रण गतिशील प्रतीत होता कभी ऊपर कभी नीचे, संधि स्थान से अलग नहीं होता था। जिससे प्रतीत होता था कि व्रण का आश्रय संधि स्थान है।

चिकित्सा—

रोगी को खाने के लिये "शुभ्राभस्म" २ रत्ती प्रत्येक तीन तीन घण्टा के बाद शीतल जल से खाने को दी गई, ऊपर प्रयोग के लिये रिहौली से बनी मरहम का प्रयोग किया गया जिसका नाम "व्रण रोपणी" रखा हुआ है। तीन चार दिन में रोगी स्वस्थ होकर घर चला गया।

मरहम की विधि और प्रयोग—

२ तोला रिहौली के पत्तों को छाया में सुखालें सूखने पर २॥ तोला गोमूत्र या बकरी का मूत्र और पांच दाने काली मिर्च के इनको एकत्र मिलाकर अग्नि पर उबाला देकर मरहम बनालें। प्रयोग तैयार है। इसको एक पतले वस्त्र पर लगाकर व्रण पर बांध दें। प्रातः, दोपहर, सायं पट्टी बदलें। रात्रि को नहीं। तीन दिन बाद व्रण रक्तवर्ण का होजायगा हाथ लगाने से तीव्र उष्ण प्रतीत होगा। तब सुहागा (टङ्कण) पीस कर व्रण पर अवधूलन करें और गेहूं का हलुवा बना बांध दें। दो घण्टे बाद फट जायगा सब पूय निकल कर बह जायेगी और रोगी स्वस्थ होजायगा। पाठक गण प्रयोग से लाभ उठावें और लाभ धन्वन्तरि में प्रकाशित करें। रिहौली बिना मूल्य मुझ से पोस्ट व्यय भेज कर मंगवालें।

— कविराज देवराज 'सुमन' बी. आई. एम. एस.
राजकीय चिकित्सालय, भलवाल, जम्मू तवी।

:: पृष्ठ ७०४ का शेषांश ::

इतना बड़ा पापज रोग श्वेतकुष्ठ कैसे ठीक हो जाता ? रसेन्दु मंगल ग्रन्थ में यह स्पष्ट लिखा है कि सौ अश्वमेध यज्ञ करने का पुण्य, करोड़ गो दान का पुण्य, सुवर्ण भूमिदान का पुण्य सारे पुण्य केवल पारद के दर्शन से ही मिलते हैं। मृत पारद के सेवन से मुक्ति भी मिलती है। विलक्षण शैवी शक्ति वाले सुसंस्कृत पारद के द्वारा यदि उत्तमोत्तम शास्त्रीय प्रणाली से रस बनाये जांय तो मैं दावे से विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि आयुर्वेद में आस्था रखने वाले जन समाज को दिखा सकता हूँ कि कोढ़ ही क्या कोई भी रोग असाध्य नहीं है। मैंने जो साधु महात्माओं तथा गुरुजनों से पारद हस्तलादि की क्रियायें प्राप्त कीं तथा विधि द्वारा जो रस बनाये उनसे भी मुझे अत्यधिक सन्तोष मिला तथा उनके द्वारा यक्ष्मा, मधुमेह, श्वेतकुष्ठ, कुष्ठ जहां आज भी आधुनिक चिकित्सा पद्धति विफल सी है शतप्रतिशत कहना तो अनीश्वरवादिता है किन्तु अधिकाधिक लाभ पाया गया है।

—प्राणाभिसर पं० अवधविहारी मिश्र वैद्य
मो० ठठराही पो० बिंदकी, (फतेहपुर)

धन्वन्तरि कार्यालय बिजयगढ़ का निर्मित
खाज रिपु
खाज-खुजली को लगाते लगाते ठीक कर देता है.
आपके यहाँ के दूकानदारों के यहाँ मिल जायगा

दन्त रोग की समस्या

श्री. लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल

संप्रति दन्त-रोगियों की संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है। अधिकांश नवयुवक अनेक दन्त रोगों से पीड़ित हो अकाल में ही वृद्ध बनकर अपनी आयुर्वेद-विषयक अनभिज्ञता का परिचय प्राप्त करा रहे हैं। दन्त रोगों का मूल कारण क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि 'दन्त रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण केवल उदर विकार है।' यदि दांतों को रोगों के आक्रमण से बचाना है तो यह आवश्यक है कि पेट की सफाई रक्खी जाय। जिन व्यक्तियों के दांत पीले, दुर्गंधित, पूय स्रावयुक्त और चल हैं उन्हें सर्वप्रथम अपने आहार की नियमितता से पेट को स्वस्थ कर पुनः दांतों की चिकित्सा में संलग्न होना चाहिये।

जो व्यक्ति दांतों की चिकित्सा पर ही केवल ध्यान देकर उदर सम्बन्धी विचार नहीं करते वे दन्त-रोगों से छुटकारा न प्राप्त कर सकने के कारण दन्त रोग नाशक औषधियों की व्यर्थता सिद्ध करने लगते हैं। दांत के रोग अशुद्ध रक्त से उत्पन्न होते हैं और रक्त की शुद्धि उदर-शुद्धि से सम्बन्धित है। अतएव अधिक अम्ल, क्षार व लवण पदार्थों का भोजन, चीनी, गुड़, दही, शुक्त, आनूपमांस का अत्यधिक उपयोग न कर सुपाच्य और लघु आहार से प्रथम उदर व रक्त शुद्धि ही करे, पुनः रोगानुसार दांतों की चिकित्सा करे तभी सफलता की संभावना है। नीचे लिखे प्रयोग दांतों के तत्तद् रोगों पर अनुभूत हैं—

जिन व्यक्तियों के दांत मैले, पीले अशोभित हों उन्हें सर्व प्रथम नहर या बम्बे की बालूयुक्त मिट्टी से लगातार कुछ दिन दांत रगड़ कर साफ करना चाहिये। स्मरण रहे कि केवल बालू का ही प्रयोग मसूड़ों के लिए हानिप्रद है। इससे उनमें क्षत हो जाने की संभावना है।

दांतों से खून आने पर बबूल छाल की राख का मञ्जन सरल और श्रेष्ठ है। दम्मुल अखवैन को खूब महीन पीसकर दांतों व दांतों की जड़ों में रगड़ कर कुल्ला करने से भी आश्चर्यजनक लाभ होता है। छोटी इलायची के बीज और तुलसी की पत्ती को दिन में कई बार खाने से दांतों से खून का आना बन्द होकर उनकी दुर्गंध भी दूर हो जाती है।

बादाम के छिलकों की राख में उत्तम प्रवाल भस्म मिलाकर मञ्जन करने से दांतों से पीव और खून का आना बन्द होकर उनकी सुन्दरता और चमक में विशेष वृद्धि हो जाती है।

दांत में कीड़ा लग जाने पर तूतिये को भून कर उसमें किञ्चिन्मात्र सेंधानमक मिलाकर कीड़े वाले स्थान पर कई बार कुछ दिन तक रगड़ने से अवश्य ही आशातीत लाभ होता है। यह कई बार का अनुभूत प्रयोग है।

दांतों के चल होने पर शोधित भिलावे की राख को तैल के साथ प्रयोग करें। पियाबांसा और अपामार्ग की दातून का प्रयोग भी दांतों के दृढ़ीकरण में पर्याप्त सहायक है। फिटकिरी की खील में मौलश्री वृक्ष की छाल का बारीक चूर्ण मिलाकर मञ्जन करना दांतों की दृढ़ता में अभिवृद्धिकारक है। रसतन्त्र विशारदों का मत है कि—

वकुलत्वग्भवक्षोदयुक्ता तु स्फटिकारिका
घर्षिता दन्तमूलेषुदन्त दार्ढ्यं करीमता ।

जो व्यक्ति अपने दांतों को बुढ़ापे तक टिकाऊ रखना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे उषःपान का नियम बना लें। भोजन के पश्चात् दांतों को भली-

—शेषांश पृष्ठ ७२७ पर।

पारद अनुसन्धान लेखमाला (५)

बुभुक्षित नाग बनाना

श्री रामेश वेदी

पारद में कल्पित बीज जारण[1] करने के लिए जो नाग (सीसा) लिया जाता है उसकी विशेष शुद्धि करनी आवश्यक होती है। गुरुमुखी के एक हस्तलिखित रस ग्रन्थ प्राण सांगली और गोण्डल से प्रकाशित ऋद्धिखण्ड वादिखण्ड में नाग शुद्धि की कुछ विधियां बताई हैं। पारद अनुसन्धानशाला कनखल में श्री नारायण स्वामी जी ने उन ग्रन्थों में वर्णित विधियों पर जो क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त किया है उसका संक्षिप्त विवरण हम इस लेख में प्रस्तुत कर रहे हैं। ऋद्धिखण्ड वादिखण्ड तो प्रकाशित ग्रन्थ है इसलिए उसके सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। परन्तु, प्राणसांगली का ज्ञान रसशास्त्रियों को प्रायः नहीं है इसलिये उसके सम्बन्ध में दो परिचयात्मक शब्द लिख देना लाभदायक होगा। यह ग्रन्थ गुरुमुखी भाषा और गुरुमुखी लिपि में लिखा गया है। अत्यन्त जर्जरित कागज पर काली स्याही में कलम से मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है। कागज हाथ का बना हुआ है। लगभग २५१ पृष्ठ होंगे। इसमें रोग निवारण के लिए औषधों का भी वर्णन है। परन्तु प्रधानतया यह धातुवाद के विषय में ही लिखा गया है। लेखक का नाम और ग्रन्थ प्रणयन का काल हमें ज्ञात नहीं हो सका। नानक, चरपटनाथ और गोरखनाथ के सम्वाद के रूप में इसका प्रणयन हुआ है। प्रतीत होता है कि लेखक ने अपने समय में साधुजात् में प्रचलित रसशास्त्र विषयक ज्ञान को दोहों में बद्ध करने का प्रयत्न किया है। देवप्रयाग के प्रसिद्ध रसवैद्य श्री चण्डीप्रसाद के वंश में यह हस्तलिखित ग्रंथ सुरक्षित है। वहीं से कुछ काल के लिए यह ग्रंथ श्री नारायण स्वामी जी को स्वाध्याय के निमित्त प्राप्त हो सका था।

पारद में जारण करने के निमित्त नाग को पहले बंग के समान श्वेत निर्मल बनाना होता है। इस प्रक्रिया में से गुजारने के बाद प्राप्त नाग में यह विशेषता आ जाती है कि अग्नि का संयोग होने पर नाग का भार कम नहीं होता। दूसरे, नाग की लौह संक्रान्ति मिट जाती है। अग्नि में तपाने पर यह काला नहीं पड़ेगा। प्रत्युत, अग्नि में गलाने से इसकी रजतवर्ण शुभ्र द्युति प्राप्त होती है। ज्यों-ज्यों इसका अधिकाधिक शोधन होता जाता है इसमें हलकी पीली स्वर्णाभ आभा आने लगती है।

ऐसा नाग बनाने की अनेक विधियां शास्त्रों में लिखी हैं। पारद अनुसन्धानशाला में उनमें से अनेकों विधियों पर परीक्षण किये गये हैं। अपनी उपलब्धियों में से कुछ प्रयोगों का उल्लेख हम यहां दे रहे हैं। रसशास्त्र के जिज्ञासुओं की सुविधा के लिए हमने केवल सरल तथा सुनिश्चित फलप्रद, स्वानुभूत विधियों का ही उल्लेख किया है।

बबूल के द्वारा निर्मल करना—

इस प्रयोग में बबूल (कीकर) के पत्तों के रस की आवश्यकता होती है। ये पत्ते इतने रूक्ष होते हैं कि कूटने पीसने से इनमें से रस नहीं निकलता। इस लिये पुटपाक की विधि द्वारा इनका रस निकाल लेना चाहिये। इसकी विधि यहां दी जाती है।

---

[1] पारद में भूचरी जारण करने के लिये जो बीज लिये जाते हैं वे निम्न लिखित चार प्रकार के होते हैं—

१. सुवर्ण बीज २. रजत बीज ३. कल्पित बीज या प्रति बीज—सुवर्ण के प्रतिनिधि रूप में जो अन्य धातुएं विशेष शुद्ध करके ग्रहण की जाती हैं ४. माया बीज—रस और उपरस।

ताजे पत्तों को हांडी में भरकर ऊपर ढक्कन रखें और कपड़मिट्टी से सन्धिबन्धन कर दें । कोयलों या कण्डों की निर्धूम आग पर उसे दस पन्द्रह मिनट गरम करें; फिर निकालकर गरम-गरम को ही कपड़े में रख कर निचोड़ लें । दस नम्बर के क्रुसिबल में चार सेर रस डाल दें । रस अधिक परिमाण में न मिले तो दो सेर से काम चल सकता है । इससे कम परिमाण में रस नहीं लेना चाहिए । क्रुसिबल का निचला आधा भाग भूमि में गाड़ देना चाहिए । इसके ऊपर चौड़ा चपटी पेंदी का लोहे का तसला ढांक दें । इसके बीच में १ इञ्च व्यास का एक गोल छिद्र काट लिया जाता है । इस छिद्र पर टीन की फनल टिका दें । टीन की फनल किसी कारीगर या मिस्त्री से बनवा लेनी चाहिए । अपने प्रयोग के लिए हमने स्थानीय लोहार से जो फनल बनवाई थी उसकी नलिका की लम्बाई १० इञ्च रखी थी । निचला सिरा तो तसले के छिद्र के बराबर था, पर ऊपर का सिरा लगभग दो इञ्च चौड़ा रखा था जिससे गले हुए सीसे की धार आसानी से उसमें गिराई जा सके ।

पांच नम्बर की कुठालिया (क्रुसिबल) में ढाई सेर नाग डालकर तीव्र अग्नि पर पिघाल लें । पिघालते समय क्रुसिबल के ऊपर ढक्कन रखा रहना चाहिये जिससे राख या कोयले के कण आदि की मलिनताएं उसमें न मिलें । भलीभांति पिघल जाने पर लम्बी संडासी से पकड़ कर सीसे की धार फनल में डालें । रसशास्त्र के विद्यार्थी जानते हैं कि पिघली हुई नाग धातु तैल के अतिरिक्त अन्य जलीय द्रव पदार्थों के संयोग होने पर बड़ी तीव्रता से बन्दूक के छर्रों के समान छिटक जाती है और काम करने वाले के अङ्गों पर लगने से भारी हानि पहुंचा सकती है । इस उपद्रव से बचने के लिए ही तसला रखा गया था । तसले के ऊपर ईंट, पत्थर लोहे आदि का अच्छा भार रख देना आवश्यक होता है । गले हुए सीसे को पतली लगभग उंगली जैसी मोटी धार के रूप में थोड़ा-थोड़ा डालना चाहिए । एकदम नहीं डालना चाहिये । अधिक परिमाण में एक साथ पड़ जाने से नीचे का कुसिबल फूट जाता है ।

खाली कुसिबल में फिर ढाई सेर सीसा डालकर पिघलने रख दें । जब तक यह पिघले तब तक नीचे के कुसिबल में से बुझा हुआ सीसा निकाल लें । यह छोटी गोलियों और डलों के रूप में प्राप्त होता है । कुसिबल के रस को फेंककर बबूल का नया रस डाल दें । आगे वाले कुसिबल का सीसा पिघल जाने पर उसे पूर्व वर्णित विधि के अनुसार बुझा लें ।

इस प्रकार इस पांच सेर नाग को सौ बार कीकर के रस में बुझा लें । प्रत्येक बार नया रस लेना चाहिए । ढाई-ढाई सेर के दो घानों को कुल मिलाकर दो सौ बार बुझाना पड़ता है । इस प्रयोग में जितनी मेहनत पड़ती है और जितना समय तथा धन व्यय होता है उसका विचार करते हुए पांच सेर से कम परिमाण में नाग नहीं लेना चाहिये । सौ बार गलाने बुझाने में सीसे का परिमाण बहुत घट जाता है । अनुभव में पांच सेर नाग का कुल सवा सेर शुद्ध नाग प्राप्त होता है ।

इस प्रयोग में नाग के रूप रंग और अन्य भौतिक गुणों में क्रमशः परिवर्त्तन आते जाते हैं । पहले यह आग पर झट पिघल जाता था परन्तु अन्तिम बारों के तपाने में अपेक्षाकृत देर से पिघलने लगा था । आरम्भ की शुद्धियों में यह जितना घट रहा था अन्तिम शुद्धियों में उससे कम घटने लगा । इसी प्रकार क्रमशः इसकी मृदुता कम होती गई । यह अधिक कड़ा होता गया । इसका आपेक्षिक गुरुत्व बढ़ता गया । अपनी बनावट में इन परिवर्त्तनों को लिए हुए अब यह श्वेत रङ्ग की पीताभ धातु बन गई थी । सौ बार बुझाने पर भी नाग में इन गुणों का सम्यक्तया उदय न हो तो कुछ बार और बुझा लेना चाहिए ।

कीकर की फलियों द्वारा शुद्धि

(१) पहले प्रयोगों के समान नाग को पिघाल कर तैल, तक्र, कांची, गोमूत्र, कुलथी क्वाथ में सात-सात बार बुझाएँ। द्रव पदार्थ प्रत्येक बार नया लेना चाहिए।

(२) जङ्गली केले के कन्द के रस में सात बार बुझाएँ। प्रत्येक बार नया रस लें।

(३) घृतकुमारी के नये-नये रस में सात बार बुझाएँ।

(४) कुसिबल में पिघली हुई नाग के ऊपर भैंस की हड्डी का चूरा चुटकी-चुटकी डालें। नाग की ऊपरी सतह के सम्पर्क में आते ही धुंआं उठने लगेगा। लम्बे चिमटे से नागद्रुति को तब तक चलाते रहें जब तक धुंआं निकलना बन्द न हो जाय। चलाने का उद्देश्य यह होता है कि नाग का प्रत्येक कण अस्थिचूर्ण के संस्पर्श में आ जाय। पांच सेर नाग के लिए पांच छटांक अस्थिचूर्ण पर्याप्त होता है। निर्धूम हो जाने पर नागद्रुति को प्रथम प्रयोग की भांति भैंस के मूत्र में बुझाएं। इस प्रकार सात बार करें। अथवा—

(५) इसी विधि से हाथी की हड्डी के चूर्ण का प्रक्षेप देकर हाथी के मूत्र में सात बार बुझाएँ।

इन पांचों प्रक्रियाओं में से चाहे किसी में आप नाग का संस्कार कर सकते हैं।

सुसंस्कृत नाग को कुसिबल में गलाएं। कीकर की ताजी हरी गीली फलियों के सिलवट्टे पर कूटे दरदरे को थोड़ा थोड़ा डालें और चिमटे से चलाते जांय। एक सेर में एक पाव के हिसाब से फलियां जला दें। निर्धूम हो जाने पर तैलसिक्त सांचे में ढालकर लगड़ी बनालें। ऊपर के जले हुये अंश में से सीसे के कणों को सावधानी से संचित कर लें। इन कणों को तथा लगड़ी के सीसे को पुनः गलायें और पूर्ववत कीकर की फलियों का प्रक्षेप देकर लगड़ी बनाएं। ऐसा तब तक करते रहें जब तक कि सीसा सफेद न हो जाय। प्रायः सौ बार तो यह प्रक्रिया दुहरानी पड़ती है। प्राप्त सीसे की बनावट में वे सब परिवर्तन हो जायेंगे जो बबूल रस वाले प्रयोग में देखे गये थे। यह श्वेत रजत सदृश पीताभ हो जायगा।

अण्डे की सफेदी द्वारा शोधन—

दस छटांक ठीकरी के नौसादर को तथा आठ छटांक कलमी शोरे को न घिसने वाले पत्थर के खरल में अलग-अलग सूक्ष्म कर लें। मुर्गी के बारह अण्डों की श्विति (एल्ब्युमिन) को एक खरल में डालकर उसमें उपर्युक्त पीसे हुए नौसादर और शोरे को मिला दें। खरल करते-करते सुखा दें। दो तीन दिन की घुटाई से यह प्रायः सूख जाता है।

कुसिबल में सीसे को गलाकर उपर्युक्त चूर्ण की चुटकी भर-भर कर प्रक्षेप दें। इसे चिमटे से चलाना नहीं चाहिये। अपने प्रयोग में हमने जब चिमटे से चलाना आरम्भ किया तो चिमटे की नोक ही गल गई थी। एक सेर सीसे में चाय वाला एक चम्मच भर कर यह मिश्रण डाल देना होता है। जब धुंआ उठना बन्द होगा तो कुसिबल में नागद्रुति के ऊपर काले रङ्ग का तेलीय पदार्थ दीखेगा। कुछ देर में यह खून के रङ्ग का लाल हो जायगा। धीरे धीरे यह धुंएं के रूप में उड़ जायगा। सीसे का रङ्ग रक्त-पीत हो जायगा। अब इसे तैलसिक्त सांचे में ढालकर लगड़ी (सलाख) बनालें। नाग में अभीष्ट निर्मलता आने तक यह प्रक्रिया बार-बार दुहराएँ। सामान्यतया सौ बार करने से नाग स्वच्छ हो जाता है।

थोहर के दूध का प्रयोग—

ऋद्धिखण्ड वादिखण्ड में वंगकरणम् शीर्षक के अन्तर्गत नाग को निर्मल करने के दो प्रयोग दिये हैं। हमने उन पाठों के अनुसार नाग की जो शुद्धि की है उसका विवरण यहां दे रहे हैं।

इन प्रयोगों में हमने जो सीसा लिया था वह पूर्व वर्णित विधियों के अनुसार शुद्ध किया हुआ लिया था। एक प्रयोग में हमने साधारण सीसा लिया था, वह ठीक नहीं रहा क्योंकि उसकी कालिमा अन्त तक नष्ट नहीं हुई।

प्रथम विधि—धत्तूरे बीजों के चूर्ण को डण्डा-थोहर के दूध में खरल कर सुखा लें। इक्कीस भावनाएं दे-देकर धूप में सुखाते जायें। कुसिबल में पिघले हुए नाग के ऊपर इसको चुटकी देकर चिमटे से चलाएं निर्धूम होने पर पुनः चुटकी दें। इस प्रकार नाग का दसवां भाग यह चूर्ण डाल दें। पांच सेर नाग के लिए आठ छटांक चूर्ण काफी होता है। निर्धूम द्रुतनाग को अंगुलिया थोहर के दुग्ध में विधिवत् बुझा दें। अंगुलिया थोहर का दूध अत्यन्त विषैला है। दूध का हाथ आंख में लग जाने से अन्धा कर देता है। दूध प्राप्त न होने से हमने शाखाओं को कूटपीस कर रस निकाल लिया था। उसमें नाग को बुझाया था। बुझे नाग को रेती से बारीक चूर्ण कर लें। समानभाग कच्ची हल्दी का चूर्ण मिलाकर कच्ची हल्दी के स्वरस से सात दिन भावना दें। उसके बाद स्वच्छ जल में धोकर नाग को पृथक् कर लें। कुसिबल में पिघलाकर तैलसिक्त सांचे में लगड़ी बना लें। यह वंग के सदृश श्वेत नाग प्राप्त होगी[1]।

दूसरी विधि—ठण्डा थूहर के दूध से हल्दी के चूर्ण को सात बार भावनाएं देकर सुखालें। पिघले सीसे में दसवें भाग का प्रक्षेप दें। निर्धूम होने पर डण्डा थोहर के दूध में बुझाएँ। ऐसा सात बार करें। हल्दी चूर्ण का प्रक्षेप दे-देकर सात बार त्रिफला के अष्टमांश काढ़े में विधवत् बुझाएँ। ठीकरी का नौसादर और खील किये हुए सुहागे को आधा-आधा सेर के परिमाण में लेकर अलग-अलग खरल करलें। बारीक पीसलें। नरमूत्र से भावना देकर सुखालें। द्रुतनाग में इसका प्रक्षेप दे-देकर नरमूत्र में सात बार विधिवत् बुझाएँ। तब यह बिलकुल वंग के समान श्वेत बन जाता है[2]।

इन प्रयोगों में बाजारू हल्दी नहीं लेनी चाहिए क्योंकि वह उबाल कर सुखाई गई होती है। बिना उबाली हुई सूखी गांठों को लेकर स्वयं पीस लेना चाहिये।

गोंडल संस्करण के वादिखण्ड की वंगकरणम् की दूसरी विधि में कुछ पाठ छूट गया प्रतीत होता है। देवप्रयाग में पं० चण्डीप्रसाद जी वाली हस्तलिखित प्रति में अधिक पाठ है। उसी के आधार पर हमने नाग का यह संस्कार किया था।

अन्तिम शोधन

क्रामण के लिये, वेध के लिये या स्वयंवेधी शीशे की निरुत्थ भस्म बनाने के लिये नाग की विशेष शुद्धि करनी होती है। अब तक वर्णित विधियों से शुद्ध किये हुये सभी प्रकार के नागों का निम्नलिखित विधि से पुनः शोधन करें।

कुसिबल में गला-गला कर सात बार तिल के तेल में बुझाएं। प्रत्येक बार नया तेल हो। तिल तैल में शुद्ध करने का दूसरा तरीका यह है कि शीशे की लगड़ी (सलाख) के मशीन पर पतले पतले पत्र बनालें दोला यन्त्र की विधि से तिल तैल में तीन दिन तक इनका स्वेदन करें।

बुभुक्षित बनाना

उपर्युक्त शुद्ध निर्मल सीसे को बुभुक्षित बनाने की कुछ विधियां रस शास्त्रों में लिखी मिलती हैं। उन विधियों में से हमें वादिखण्ड की विधि सरल और प्रभावशाली प्रतीत हुई। उसमें यह नागमुखकरणम्

---

[1] धत्तूर बीज चूर्णं तु वज्रीक्षीरेण भावयेत्।
शौष्यं पैष्यं पुनर्मोच्यं एवं धर्मे त्रिसप्तयो ॥६०॥
तद्वाच्यं द्रुतनागस्य दशमांशन दापयेत्।
ढालयेत्तरनुश्मयो मध्ये तद्बंग जायते शुभम् ॥
भावयेद्रजनी मध्ये, तद्बंग जायते शुभम् ॥६१॥
वादिखण्ड, उपदेश १६, ६०-६१॥

[2] भावयेद् रजनी चूर्णं वज्रीदुग्धेन सप्तधा।
तद्वापं दशमांशन द्रुते नागे प्रदापयेत् ॥६२॥
तद्वापं द्रुतनागस्य दशमांशन दापयेत्।
तत् ढाल्यं त्रिफला क्वाथे पुनस्तद्रवे वापयेत् ॥६३॥
टंकणं नवसारं च दत्वा सैच्यं नृमूत्रके।
द्रावितं च पुनर्ढाल्यं नृमूत्रे बंगतां व्रजेत् ॥६४॥
वादिखण्ड, उपदेश १६, ६२-६४॥

शीर्षक से लिखी गई है। इसके आधार पर हमने सीसे को बुभुक्षित करने या "मुखकरण" का जो प्रयोग किया है उसका उल्लेख हम यहां कर रहे हैं।

शुद्ध गन्धक, सरसों का तैल से दिया जला कर बनाई काजल, फिटकरी की खील, सुहागे की खील प्रत्येक आधा सेर, एरण्ड के बीजों की गिरी चार सेर और शुद्ध गिण्डोले (भूनाग) छै: सेरलेकर सबको एक ही खरल में रगड़ लें। गिण्डोलों के शुद्ध करने की विधि यह है। जीवित गिण्डोलों को पानी भरे बरतन में बटोरना चाहिये। प्रयोगशाला में लाकर इन्हें दो-तीन बार पानी में धोकर साफ करलें। हलकी कांजी या पतली दही की लस्सी में इन्हे डुबो दें। एक घण्टे बाद निकाल लें। इसका प्रभाव यह होगा कि गिण्डोलों के पेट से सारी मिट्टी निकल जायगी। कांजी या लस्सी यदि अधिक तेज हुई तो गिण्डोले मर जाते हैं, इस लिये हलकी ही लें। धौत मृत्तिका को फेंक दें। गिण्डोलों को जीवित अवस्था में ही खरल में डालकर सब चीजों के साथ रगड़ लिया जाता है। भली भांति पिस जाने पर चने के बराबर गोलियां बनाकर सुखालें। रसशास्त्रियों में ये गोलियां "वडवामुखा" नाम से प्रसिद्ध हैं। कुसिबल में ढाई सेर द्रतनाग के ऊपर से चार-छै: गोलियां डालकर ढक्कन रखदें। पहले धुआं उठेगा जो हरे रंग की ज्वाला में जल जायगा हरी ज्वाला ताम्र के समासों की होती है। गिण्डोलों में ताम्र होने के कारण यह हरी ज्वाला बनती है निधूंम होजाने पर जब ढक्कन को उठाकर देखेंगे तो वडवामुखा की अवशिष्ट राख काली गोलियों के रूप में ही पड़ी दीखेगी। चार-छः गोलियां फिर डालकर ढक्कन रखदें। इस क्रम से दो तोले गोलियां का प्रक्षेप दे दें। निधूंम होने पर तैल सिक्त सांचे में ढाल दें। शीतल होने पर राख को अलग करदें। शीशे को फिर गलाएँ और एरण्ड तैल में बुझाऐं। दो तोले वडवामुखा का प्रक्षेप देने, सांचें में ढालने और तैल में बुझाने की ये प्रक्रियाएँ सौ बार दुहराएँ। अपने प्रयोग में हमने लाल एरण्ड का शीतविधि से निपीड़ा हुआ (cold drawn) तैल लिया था। प्रत्येक बार बुझाने में नया तैल लेना चाहिये। इस प्रयोग में हम प्रत्येक बार लगभग डेढ़ पाव तैल लेते थे। कुल मिलाकर दो कनस्तर तैल लग गया था। सौ बार बुझाने के बाद नाग को फिर कुसिबल में पिघला लें। पूर्व विधि से चार-छै वडवामुखा डालें। दो तोला का प्रक्षेप देकर सांचे में ढालें। ऐसा तीन बार करें एरण्ड तैल में बुझाने की आवश्यकता नहीं।

अब यह नाग बुभुक्षित बन गया है। उसमें से तोला भर नाग लेकर उसमें डेढ़ रत्ती शुद्ध चांदी या कोई अन्य शुद्ध धातु अथवा सत्व लेकर मिलाएँ। ढक्कनदार कुसिबल में पिघला लें। पिघली हुई अवस्था में आग पर आधा घण्टा पड़ा रहने दें। फिर, सांचे में ढाल लें। शीतल होने पर तोलें। यदि इसके भार में वृद्धि नहीं हुई तो समझें कि यह सम्यक्तया बुभुक्षित बन गया है। भार में वृद्धि नजर आने पर समझें कि बुभुक्षित नहीं हुआ। इस अवस्था में आवश्यकतानुसार बार-बार वडवामुखा का प्रक्षेप दें।

बुभुक्षित हो जाने पर सीसे को इक्कीस बार बीज रंजक तैल में बुझा लेना चाहिये।

—श्री रामेशवेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

१—गंधकं धूमसारं च फटकरी टंकणं समम्।
एरण्डबीजमज्जापि सर्वेषां द्विगुणा भवेत् ॥१०५॥
भूनागाः सर्वतुल्याः स्युः सर्वमेकत्र मर्दयेत्।
चणमात्रा वटीः कार्या ख्यातेयं वड्वामुखा ॥१०६॥
शुद्धनागं द्रुतं क्षेप्यं तैले एरण्डके पुनः।
द्राव्यं द्राव्यं पुनः क्षेप्यं भावद्वारं शतं भवेत् ॥१०७॥
पुनस्तस्मिन्द्रुते देया वटिका वड्वामुखा।
द्वित्रिवारं प्रयत्नेन नागस्येत्थं मुखं भवेत् ॥१०८॥
ग्रसते सर्वलोहानि सत्वानि विविधानि च।
यदा न ग्रसते तस्माद्वटी देया पुनः पुनः ॥१०९॥
वादिखण्ड, उपदेश ८०, १०५-१०९॥

कुष्ठ-एक अध्ययन

श्री कृष्णमोहन भट्ट

कुष्ठ रोग उस महारोग में से है जिसे कि आदि वासियों से लेकर राजमहल तक के व्यक्ति भी जानते हैं। आज कुष्ठ रोग का जितना प्रसार प्रचार होरहा है, जगद्विख्यात है। देहात में तो कुष्ठ पीड़ित हैं ही किन्तु जब किसी शहर के मुख्य राजपथ से निकलने का मौका आता है या स्नान के पथ पर और सबसे अधिक तो काशी के दशाश्वमेध घाट पर मानों कुष्ठालयों में आगये हों ऐसा प्रतीत होता है। वहां पर आयुर्वेद मतानुसार कुष्ठ के वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सन्निपातिक आदि साध्यासाध्य लक्षण स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। जिनकी चिकित्सा होना असम्भव तो है ही, दो दिन तक दुनियां में जीने का कोई उपाय भी नहीं है। कहीं कहीं हमारी सरकार द्वारा कुष्ठ पीड़ितों के वास्ते चिकित्सालय और भोजनालय की व्यवस्था है किन्तु वही पर्याप्त नहीं।

आज से कुछ दिन पूर्व मुझे संथाल पहाड़िया सेवा मण्डलान्तर्गत कुष्ठ चिकित्सालय का अवलोकन करने का अवसर मिला था और मैंने उनका अच्छी तरह निरीक्षण किया भी। तभी से कुष्ठ पर विशेष अध्ययन करने और चिकित्सा तथा सेवा करने की भावना सजग हो उठी।

कालेज से निकलने के बाद मैंने सोचा कि मैं भी अन्य डाक्टरों की तरह एलोपैथी दवायें और सूचीवेधों के द्वारा सभी रोगों पर अपना प्रभाव जमा लूंगा पर ऐसा नहीं हुआ। सबसे पहले मेरे सामने कुष्ठ के रोगी ही आये और अर्वाचीन चिकित्सा प्रणाली में असफल हो जाने पर फिर आयुर्वेद की ही शरण लेनी पड़ी। जिससे बहुत ही सहज उपाय द्वारा कुछ कुष्ठ रोगी चंगे हो सके। यह बात माननी होगी कि चाहे कोई भी पैथी भले ही आगे हो सबों का आधार आयुर्वेद है। आज के वैज्ञानिक बड़े परिश्रम से किसी रोग की खोज कर पाते हैं और उसका प्रचार करते हैं, किन्तु जब मैं अपनी चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद पर आता हूँ, तो आज से हजारों वर्ष पहिले हमारे आयुर्वेद महारथी उन रोगों का वर्णन कर चुके ज्ञात है।

परिचय—आज हम एक ऐसे रोग पर विचार करने जारहे हैं जिसका उपचार हमारे आयुर्वेद शास्त्र में भरपूर है। यह विकार एक प्रकार का चर्मरोग ही नहीं बल्कि सप्तधातुगत रोग है।

निदान—यक्ष्मा तथा फिरङ्ग की तरह यह भी एक औपसर्गिक रोग है। आयुर्वेद मतानुसार निदान निम्न है।

विरोधी खान पान तथा अति द्रव, स्निग्ध एवं गुरुपदार्थों के अति सेवन से, सहसा शीतल जल पीने या स्नान से, पंचकर्म में अपथ्य से, नवीन धान्य के भोजन से, दही, मछली, मांस, अधिक नमक तथा खटाई के सेवन से, उर्द, तिल, दुग्ध, गुड़ आदि के सेवन से, आहार न पचने पर मैथुन करने से, दिन में सोने से, ब्राह्मण या प्राणी मात्र तथा अपने से बड़ों का अपमान करने से, बुरे कामों के करने से, तीनों दोष कुपित होकर त्वचा, रक्त, मांस लसिका एवं शरीर के जलीय भाग को दूषित कर देते हैं। इसी से सात महा कुष्ठ और ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ मिलाकर अठारह प्रकार के कुष्ठ उत्पन्न होते हैं।

अर्वाचीन मत—(१) वैज्ञानिकों के मतानुसार इस रोग का कारण "वैक्टीरिअम लेप्रो" नामक एक जीवाणु है। इसके अलावा गौमांस, मादक द्रव्य का सेवन, गन्दा रहना, कोढ़ियों के संसर्ग में रहना तथा वंशज भी होता है। जवानों या बूढ़ों की अपेक्षा बच्चे इसके अधिक शिकार होते हैं।

(२) दूसरा कारण हैन्सन का "लेप्रा बैसिलस" नामक जीवाणु है। ये तीन प्रकार के होते हैं।

भोग काल—इस बीमारी के होने में जितने दिन लगते हैं उतने ही मुक्त होने में। इस बीमारी की अवधि कम से कम दो वर्षों की होती है। किसी किसी विद्वान् का मत है कि इसने एक बार पकड़ लिया तो आजन्म साथ नहीं छोड़ेगा और उस व्यक्ति तक ही नहीं वरन् उसकी सन्तान तक रहेगा।

प्राचीन मत से कुष्ठ का भेद—

सप्त महाकुष्ठ—वात, पित्त, कफ, वात पित्त, वात कफ, पित्त कफ तथा सन्निपातिक भेद से सात प्रकार के कुष्ठ होते हैं। यद्यपि सभी कुष्ठ त्रिदोषज होते हैं। तथापि उपर्युक्त सात भेद केवल उन उन दोषों तथा दोषों की अधिकता से माने जाते हैं।

ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ—एक कुष्ठ, चर्म कुष्ठ, किटिभ, वैपादिक, अलसक, दद्रू, चर्मदल, पामा कच्छु, विस्फोट, शतारु।

आधुनिक मत से भेद—

(क) १. ग्रन्थिक २. वातिक ३. मिश्रित।

(ख) १. वर्णमय कुष्ठ २. गुटिका युक्त कुष्ठ।

५. पूर्व रूप—

त्वचा का स्पर्श खुरदरा या चिकना होजाना। पसीना बन्द होजाना या अधिक निकलना, शरीर का वर्ण बदल जाना, दाह, खुजली, चकत्ते निकलना, त्वचा का स्पर्श ज्ञान शून्य होजाना, शरीर पर फोड़े फुन्सी या घाव होजाना या रक्त काला होजाना ये सब कुष्ठ के पूर्व रूप हैं।

लक्षण—

१. कपाल कुष्ठ—मृत पात्र के टुकड़े के समान गोलाईरहित काला, लाल, रूखा, खुर्दरा, पतला अत्यन्त व्यथा युक्त।

२. औदुम्बर—पीड़ा दाह सुर्खी एवं कण्डू से युक्त पीले रंगों से युक्त गूलर फल के समान।

३. मण्डल—सफेद अथवा लाल, स्थिर गीला सा चिपचिपाहट वाला चिकना ऊंचा।

४. ऋष्य जिह्व—खुरदरा सब ओर से लाल मध्य में काला, वेदना युक्त एवं भालू की जीभ जैसा।

५. पुण्डरीक—कुछ श्वेत इधर उधर से लाल, लाल कमल की पंखडी सा, मोटाई युक्त एवं ललाई युक्त।

६. सिध्म—श्वेत अथवा लाल, पतला, घिसने पर भूसीसी झड़े, वक्षस्थल पर होने वाला, व लौका घीया के फूल के समान वर्ण वाला।

७. काकण—घुचची या गुंजा के समान वर्ण वाला, पाक युक्त एवं भीषण पीड़ा युक्त।

क्षुद्र कुष्ठों के लक्षण—

१. एक कुष्ठ—पसीना रहित तथा बहुत स्थान घेरे हुए। मछली की त्वचा के समान।

२. चर्म कुष्ठ—हाथी के चमड़े के सदृश्य मोटी त्वचा होजाती है।

३. किटिभ—कालासा व्रण का स्थान खरदरा एवं रूखा।

४. वैपादिक—हाथ की हथेली तथा पैरों के तलवों का फटना एवं अत्यन्त पीड़ा होना।

५. अलसक—खुजली युक्त एवं लाल गण्डों से व्याप्त।

६. दद्रू—खुजली लाल तथा छोटी छोटी पिडकाओं से युक्त उफना हुआ सा प्रायः गोल।

७. चर्मदल—लाल, शूल तथा कण्डू से युक्त फफोलों वाला उनके फूटने पर गलने वाला, छूने से वेदना मालूम पड़ना।

८—पामा—छोटी छोटी बहुत सी पंछा बहने वाली कण्डू युक्त, खुजलाने के बाद दाह से पीड़ित फुन्सियां होना।

कच्छु—उपरोक्त लक्षण जब अधिक होते हैं तो कच्छु कहलाता है।

९—विस्फोट—लाल एवं काले पतली त्वचा वाले सी फफोले उठते हैं।

१०—शतारू—लाल, काला, दाह एवं पित्त तथा बहुत से व्रणों वाला।

११. विचर्चिका—कण्डू युक्त काली एवं बहुत पंछा बहने वाली।

वातादि भेदों से कुष्ठों का लक्षण—

वातज—जो कुष्ठ खुरदरे काले लाल रूखे एवं वेदना-युक्त होते हैं।

पित्तज—जो सड़न दाह सुर्खी एवं पंछा बहने वाले।

कफज—जो गीले गीले मोटे चिकने कण्डू शीतल तथा भारीपन से युक्त होते हैं।

द्विदोषज—दो दोषों से युक्त।

त्रिदोषज—तीन दोषों से युक्त।

धातुगत कुष्ठों का लक्षण—

त्वचा—शरीर के वर्ण पर परिवर्तन, रूखापन, त्वचा में शून्यता रोमांच एवं पसीना अधिक निकलना।

रक्त—कण्डू, पीव निकलना, कुष्ठ की अधिकता मुख शोथ, शरीर में खुरदरापन तथा फुन्सियों का निकलना।

मांस—सुई के चुभने की सी पीड़ा, फफोला उठना एवं व्रण चिरकाल तक रहने वाला।

मेद—हाथ पैरों की उंगलियां गिर जाती हैं अंगों की गति में रुकावट, व्रणों का कटना, घाव का फैलना आदि।

अस्थिमज्जा—नाक बैठ जाती है। आंखों में सुरखी आजाती है। घावों में कृमि पड़ जाते हैं एवं स्वर बिगड़ जाता है।

शुक्र-शुक्रगत कुष्ठ होने से सन्तान में भी आजाता है।

साध्यासाध्यता—

त्वचा रक्त मांस में स्थित कुष्ठ तथा वात कफ प्रधान कुष्ठ साध्य होता है। मेद में स्थित तथा द्वन्द्वज कुष्ठ या मज्जा तथा अस्थि का कुष्ठ असाध्य होता है।

श्वेत कुष्ठ—

उपरोक्त कारणों से श्वेत कुष्ठ भी होते हैं इनमें अन्य कुष्ठों के समान स्राव नहीं होता। ये श्वेत लाल युक्त होते हैं।

असाध्य—लिंग, योनि, हाथ की हथेली पर जो कुष्ठ होता है असाध्य होता है।

अर्वाचीन मत—

संक्रमण प्रसार—लसिका बाहिनियों द्वारा, कण्डू के कारण आत्मोपसर्ग, खुजलाते खुजलाते बढ़ जाना।

स्थानीय विकृति की अवस्थायें १—गुप्तावस्था—

इस अवस्था में जीवाणु वृद्धि त्वचा के नीचे होती है। किन्तु इसके विष का परिणाम शरीर पर नहीं होता।

२-प्रतिक्रियात्मक अवस्था—

इस अवस्था में विकृति स्थान पर शोथ होता है। केशिकायें फैल जाती हैं। रस रक्त द्वारा जीवाणु और उनके विष सम्पूर्ण शरीर में फैल कर बचे स्थानों पर विकृति उत्पन्न करते हैं, ज्वरादि लक्षण होते हैं।

३ उपशय की अवस्था—

इसमें शोथ तथा ज्वरादि लक्षण कम हो जाते हैं।

ग्रन्थिक—

इसमें त्वचा में छोटी छोटी गांठें उत्पन्न हो जाती हैं जिसमें सेलों की भरमार रहती है। कुष्ठ सेल जीवाणु मण्डल के रूप में रहते हैं।

वातिक—त्वचा में संज्ञावह नाड़ी सूत्रों के अग्र-भाग पर जीवाणुओं का आक्रमण होता है। जिससे त्वचा में विस्फोट, विवर्णता तथा स्पर्शहीनता होजाती है धीरे धीरे जीवाणु नाड़ी शाखाओं द्वारा मुख्य नाड़ी में पहुंचकर तर्क्वाकार में गढ़े उत्पन्न करता है।

मिश्रित—इसमें ग्रन्थिक तथा वातिक प्रकार के मिश्रित लक्षण मिलते हैं। इसकी विशेषता

यह है कि अगर ग्रन्थिक लक्षण अधिक हों तो वातिक कम और पैत्तिक अधिक हों तो ग्रन्थिक कम होते हैं।

शरीर में प्रवेश मार्ग—त्वचा में स्थित सूक्ष्म मार्ग के द्वारा जीवाणु शरीर में प्रवेश करते हैं। कुष्ठ की प्रारम्भिक उत्पत्ति अधिकतर शाखाओं मुख तथा नितम्ब पर होती है।

विकृत शरीर—

(क) मस्तिष्क विभाजन पटल इस रोग में नासा तथा इसके पटल की श्लेष्मलकला में जीर्ण व्रण में शोथ होती है।

(ख) त्वचा १—ग्रन्थिक प्रकार में ग्रन्थिक की उत्पत्ति २—वातिक प्रकार में नाड़ियों का अपकर्ष और उनमें ग्रन्थियों की उत्पत्ति।

(ग) अस्थिक्षय (घ) भेदक व्रण।

(च) लसिका ग्रंथियां की वृद्धि।

निम्न लिखित अङ्गों में जीवाणु मिलते हैं।

(१) त्वचा का स्राव (२) रक्त, विशेष आक्रमण काल में (३) यकृत (४) फुफ्फुस (५) वृषण।

चिकित्सा—

लोक में कुष्ठ की चिकित्सा असाध्य ही मानी गई है। फिर भी हमारे महर्षियों ने जो चिकित्सा बताई है। वह अर्वाचीन शास्त्र से कहीं अच्छी है।

कुष्ठ में जिस दोष के लक्षणों को विशेष बढ़ा हुआ देखे उसी की पूर्व चिकित्सा करे। वात प्रधान कुष्ठों में पूर्व घृतपान, कफप्रधान कुष्ठों में पूर्व वमन और पित्तप्रधान कुष्ठों में पूर्व रक्तमोक्षण और विरेचन कराना चाहिये। कोष्ठ शुद्ध हो जाने पर अर्थात् वमन वा विरेचन के बाद तथा रक्त के निर्हरण के पश्चात् कुष्ठो को स्नेहपान कराना अभीष्ट है।

वमनार्थ औषधि—

मैनफल, मुलहठी, नीम, देवदाली, तुरई, पीपल कुड़े की छाल, कड़वी तुम्बी, छोटी इलायची, घीया तुरई। इन सबों का क्वाथ करके पिला कर वमन कराना चाहिए।

आधुनिक वमनार्थ औषधियां तथा प्रयोग

१—सोडियमक्लोराईड इन हाईपर टोनिक सैल्यूशन
२—अमोनियम कार्बोनेट
३—जिंकसल्फेट।
४—कौपरसल्फेट।

आदि का सैल्यूशन बनाकर स्टॉमक पम्प द्वारा वमन कराना चाहिये।

विरेचनार्थ औषधियां

कुष्ठ में विरेचनार्थ निशोथ दन्तीमूल वा त्रिफला का प्रयोग प्रशस्त है। यों तो शास्त्र विहित विरेचन औषधि देने से लाभ करता है।

१—इच्छाभेदीरस।
२—अभयामोदक।
३—तीक्ष्णविरेचन चूर्ण।
४—सेवतीपाक आदि।

आधुनिक औषधों में 'परगोलक्स' भी अच्छा काम करता है।

सेवनयुक्त औषधि—

१—प्रयोग—दारुहल्दी अथवा रसौत गोमूत्र के साथ पिलाने से कुष्ठ नष्ट होता है। अथवा त्रिकटु, गुड़ और तैल के साथ हरड़ को एक मास पर्यन्त सेवन कराने से कुष्ठ नष्ट होता है।

२—गन्धक रसायन ४ रत्ती मधु से। अथवा वङ्ग भस्म १/३२ रत्ती शिलाजीत के साथ अथवा योगराज के साथ सेवन कराना चाहिये। अथवा प्रातः सायं कुष्ठ कुठार रस या आरोग्यवर्द्धिनी वटी गोमूत्र या त्रिफला क्वाथ के साथ सेवन कराना चाहिये।

कुष्ठरोग में महातिक्त घृत १ तोला प्रतिदिन सेवन कराना चाहिये।

(३) भोजन के बाद—सारिवाद्यरिष्ट १ तोला या

खदिरारिष्ट १ तोला या महामंजिष्ठाद्यरिष्ट १ तोला पानी मिलाकर पिलाना चाहिए।

(४) रात में विरेचन चूर्ण १ तोला गरम पानी से। इस रोग में मेरा अपना अनुभव है कि त्रिफला चूर्ण बहुत ही लाभ करता है। नीम तैल का सेवन तथा मालिश भी बहुत काम करता है।

नीम की छाल जलाकर राख बना ऊपर से छिड़कने से स्वेद आना बन्द कर देता है।

(५) प्रपौण्डरीकाद्यघृत का नस्य कराना भी लाभदायक है। दशमूल से यथाविधि साधित दूध से निकाले हुए ताजे घी में पिप्पली चूर्ण और मधु का प्रक्षेप देकर सेवन कराने से लाभ करता है।

कुष्ठी के व्रणों पर गन्धक तैल का प्रयोग उत्तम है।

कुष्ठों पर कुछ तैलों का प्रभाव—

श्वेत करवीराद्य तैल, तिक्तदवाकतैल, कनकक्षीरी तैल आदि-आदि का प्रयोग अच्छा होता है।

कुष्ठों पर कुछ लेपों का प्रभाव—

सिध्मलेप—कुष्ठ, तमालपत्र, कालीमिर्च, मनःशिल कासीस इन पांचों द्रव्यों के चूर्ण को तैल में डालकर ताम्रपात्र में सप्ताह भर रख छोड़े पश्चात् इसका सिध्म पर लेप करे। लेप के पश्चात् रोगी धूप में बैठे। इस प्रकार सात दिन करने से सिध्म नष्ट होता है। एक मास तक लेप करने से नवीन किलास नष्ट होता है। इसके प्रयोग के समय स्नान नहीं करना चाहिए। परन्तु देह की शुद्धि रखनी चाहिए।

विपादिका पर घृत तैल का प्रयोग करे और रुद्रगजादिलेप का भी प्रयोग करना चाहिए।

मण्डलकुष्ठ में लेप—किण्व, सूअर का रक्त, बड़ी इलायची सैंधानमक इन्हें एकत्र मिलाकर लेप करे।

कस्तुम्बुर्यादि लेप—धनियां और कुष्ठ यह मण्डल कुष्ठ को नष्ट करता है।

पूतिकादि लेप—लता करंज, देवदारु, जटामांसी पक्वसुरा, मधु, मुग्दपर्णी, काकनासा यह सिध्म मण्डल कुष्ठ नाशक है।

मनःशिलादि लेप—मैनसिल, वायविडङ्ग, कासीस गोरोचन, कनकपुष्पी की जड़, सेंधानमक, श्वित्र शान्ति हेतु लेप।

कुष्ठनाशक विशेष औषधियां

१—त्रिफला, आर्द्रक, पीपल, चित्रक, तुम्बरु, वंशलोचन, कुटकी, चिरायता, इन्द्रजौ, मैनफल कूठ, मंजिष्ठ, लाख, वनहल्दी, बाबचीफल, चक्रमर्द, चक्रमर्दफल, लशुन, भिलवा—

२—चीनाक कपूर-जवादि कस्तुरी, पद्माख, गूलर, शिलारस, नागकेसर, नख, जटामांसी, शैलेय, कचूर, मुरा, एलवा, केवटी, मोथा, पर्पटी, नलिका।

३—गिलोय, वृहती, एरण्ड, दोनों आक, लाल अर्क पुष्प, अर्कदुग्ध, सेहुण्ड का दूध, कलिहारी, धत्तूरा, वासा, नीम, नीम के पत्ते, नीम फल, महानीम, कचनार, अपराजिता, निर्गुण्डी कुटज, करंज, करंज फल, दोनों गुंजा महाजालनी।

फल-में सिकोड़ा !

धातु—लौहभस्म, लौहमाण्डूर, स्वर्णमाक्षिक रूपामाक्षिक, सिन्दूर, शिलाजीत, गन्धक, हिंगुल अभ्रक, हरिताल, सुरमा, बोल हीरा।

तैल—सरसों, तुबरी राल, पूतीकरंज, नीम, बाकुची, चालमोगरा, तुवरक आदि आदि।

विशेष योग—मंजिष्ठादि क्वाथ, महा मंजिष्ठादि क्वाथ, निम्बपंचाङ्ग चूर्ण, रस माणिक्य का सेवन तथा मरिच्यादि तैल, सोमराजी तैल की मालिश।

क्षुद्र कुष्ठों का एक मात्र अनुभूत योग—

कटु तैल (सरसों) आधा सेर अर्क दूध १ पाव,

चक्रमर्द बीज कल्क आधा पाव, सोडा एक छटांक, चूना एक छटांक डालकर अग्नि पर चढ़ादें जब सब मिलकर मलहम सदृश बन जाय तो उतार लें। पहले कुष्ठ स्थान पर निम्ब क्वाथ से अच्छी तरह धोलें फिर इस मलहम का प्रयोग करें। सभी क्षुद्र कुष्ठों पर आश्चर्यजनक लाभ करता है। विपादिका पर—सिक्थ तैल लाभप्रद है।

कुष्ठ पर आयुर्वेदिक इन्जेक्शन का प्रभाव—

(१) खदिर क्षार का इन्जेक्शन—कुष्ठ के लिये अत्युत्तम औषधि है। ५ बूँद की मात्रा में औषधि लेकर एक सी. सी. परिश्रुत जल के साथ मिलावें। ३-३ दिन के अन्तर से बाहुमूल में हाईपोडर्मिक इन्जेक्शन करते रहें।

(२) निम्बूसत्व का इन्जेक्शन—इसका इन्जेक्शन कुष्ठ रोग के लिये पूर्णतया लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

१५ बूँद की मात्रा को परिश्रुत जल में मिलाकर हाईपोडर्मिक इन्जेक्शन करें। सप्ताह में २ बार।

(३) पलाश तैल का इन्जेक्शन—इसका इन्जेक्शन कुष्ठ रोग के लिये सर्वोत्तम और अचूक है।

१० बूंद से प्रारम्भ करके ६० बूँद की मात्रा तक इन्जेक्शन कर सकते हैं। सर्व प्रथम १० बूँद की मात्रा का इन्जेक्शन करे। चार दिन बाद १५ बूँद। ६ दिन बाद २० बूँद। एक सप्ताह बाद ४० और ६० बूँद की मात्रा लगावें। २-३ सप्ताह के बाद पुनः उसी मात्रा से प्रारम्भ करें। जब तक कि पूर्ण आराम न हो जाय। इन्ट्रा-मस्क्यूलर इन्जेक्शन किया जाता है।

(४) वनफसासत्व का इन्जेक्शन—१०बूंद की मात्रा में औषधि लेकर शेष भाग परिश्रुत जल मिलावे ताकि एक सी. सी. पूर्ण हो जाय। एक सप्ताह के अन्तर से बाहुमूल में हाईपोडर्मिक इन्जेक्शन करते रहें।

(५) लहसुन सत्व का इन्जेक्शन—७ बूँद की मात्रा में औषधि लेकर शेष भाग परिश्रुत जल मिलालें ताकि एक सी. सी. की मात्रा पूर्ण हो जाय। सप्ताह में दो बार हाईपोर्डिमक इन्जेक्शन लगाते रहें।

पथ्यापथ्य—

कुष्ठ में लघु अन्न, तिक्त रस युक्त शाक हितकर होते हैं। भिलावे, त्रिफला और नीम से युक्त अन्न और घी। पुराने धान्य, जांगल पशु पक्षियों का मांस ये कुष्ठी के लिये पथ्य हैं।

शाक पत्र में—

चांगेरी, हुलहुल, पमाड़, गोभी, गिलोय, सहजन की फली, ककोड़ा, सरसों की नाल, वाराहीकन्द, केमुक, आदि आदि।

अपथ्य—

भारी अन्न, दूध, दही और आनूपमांस, मछली, गुड़, तिल, उड़द आदि अपथ्य हैं।

कुष्ठ चिकित्सा पर स्वतः अनुभव—

१—प्रातः सायं—

कुष्ठकुठार रस १ गोली या गन्धक रसायन ४ रत्ती त्रिफला क्वाथ से।

२—एक घण्टा बाद महातिक्त घृत १ तोला।

३—भोजन के बाद—

सारिवाद्यरिष्ट या महामंजिष्ठाद्यरिष्ट १ तोला बराबर पानी मिलाकर।

४—रात को विरेचन चूर्ण १ तोला गरम पानी से।

५—सर्पगन्धा घनवटी २ रात में नींद के वास्ते पानी से।

६—नीम का प्रयोग हर तरह से करते हैं।

नीम का तैल खाने और लगाने में नीम का क्वाथ धोने में। नीम छाल की भस्म या चूर्ण घाव पर छिड़कने में बहुत ज्यादा लाभ करता है।

७—श्वेतकुष्ठ पर मनःशिलादि लेप।

८—क्षुद्र कुष्ठों पर कुष्ठों का एक अनुभूत योग पूर्व कथित बहुत लाभ करता है।

९—विपादिका पर सिक्थ तैल।

—श्री पं० कृष्णमोहन भट्ट शास्त्री
महाराजगंज सरगुजा (मध्य प्रदेश)

ग्रीष्मकालीन बालातिसार

श्री ओम्प्रकाश शर्मा

यह बच्चों का रोग है प्राय: संक्रामक रूप में प्रसरण करता है इसका क्षेत्र उष्ण कटिबन्ध के देश हैं। यह ग्रीष्म काल में ही प्रसार पाता है, इस समय बच्चों का यह रोग उग्ररूप धारण कर चुका है। यह दो प्रकार का होता है, प्रथम तो हलके रूप में जिसे बालातिसार कहते हैं दूसरा विषूचिका रूप देश व्यापी बालातिसार। अन्य श्रेणियों के अतिसारों का भी इन्हीं में समावेश है, क्योंकि किसी भी प्रकार के अतिसार को शुद्ध एक श्रेणी का नहीं कहा जासकता है यह अतिसार सभी श्रेणियों का मिश्रण रूप होता है। इस रोग में मृत्यु संख्या भी अधिक होती है।

काल—ग्रीष्म ऋतु

स्थान—उष्ण कटिबन्ध के प्रदेश

अवस्था प्राय: स्तन दुग्ध पेयी शिशु (६ से १८ मास) में बहुत अधिक, दन्तोद्भव काल में अधिक उसके बाद २॥ वर्ष की आयु तक कम, उसके बाद प्राय: नहीं।

कारण—काल, अवस्था एवं स्थान तीनों प्रधान कारण हैं। मातृ एवं धाय दुग्ध की अशुद्धि, बोतल डब्बा अन्य दुग्ध एवं पात्रों की अशुद्धि इसमें विशेष सहयोगी कारण है। अनुभव से यह देखा गया है कि गर्भ रहने पर मैथुन करने से रक्त की उष्णता में वृद्धि होने से एवं अन्य दोषों की वृद्धि के परिणाम स्वरूप गर्भ का पोषण अपूर्ण होता है। लौह कैलसियम जैसी आवश्यक वस्तुएं दुग्ध में नहीं रहतीं। एक तो गर्भ का पोषण न होने से निर्बल शिशु ने जन्म लिया ऊपर से अपौष्टिक दुग्ध मिला जिससे शिशु का पोषण नहीं हुआ उस समय स्तन दुग्ध एवं पात्रों की अशुद्धि तथा अन्य कारणों से संक्रमण फैलने से दुर्बल शिशु शीघ्र ही आक्रान्त हो जाते हैं। शिशु जन्म के पश्चात् सम्भोग करने से दोष कुपित होकर दुग्ध दूषित होजाता है, एवं मां को गर्भ रहने से उसका दुग्ध भारी एवं दूषित होजाता है, इस दूषित दुग्ध पान से शिशु की पाचन शक्ति बिगड़ जाती है तब शिशु क्षीरालसक रोग से ग्रसित होजाता है। क्षीरालसक रोग का प्रधान कारण दुग्ध एवं दुग्ध पात्रों की अशुद्धि है। यह रोग ग्रीष्म ऋतु के संक्रामक देश व्यापी बालातिसार का ही रूपान्तरित नाम है।

दूषित दुग्ध से—

स्तन्ये त्रिदोष मलिने दुर्गन्ध्यायं जलोपमम्।
विविद्धमच्छं विच्छिन्नं फेनिलं चोपवेश्यते॥
शकृन्नाना व्यथा वर्ण मूत्र पीतं सितं घनम्।
ज्वरा रोचक तृट छर्दि शुष्कोद्गार विजृम्भिका॥
अङ्ग भङ्गोङ्ग विक्षेप: कूजनं वेपथुर्भ्रम:॥
क्षीरालसकमित्याहुरव्ययं चाति दारुणम्॥

उत्पन्न क्षीरालसक अत्यन्त दारुण बताया है, वह दुग्ध दोष मां अथवा धाय के आहार विहार के दोष से, अथवा पशु के दोष से अथवा बोतल एवं अन्य दुग्ध पात्रों की अशुद्धि से हो सकता है, दूध की अशुद्धता की अज्ञानता से शिशु को दूषित दुग्धपान कराने से, जल के समान, अच्छ, विच्छिन्न, आम रक्त, दुर्गन्धित, फेनिल, बहुवर्ण-का अतिसार होजाता है, मूत्र पीत, रक्त, श्वेत वर्ण का घन (अल्प) होजाता है, तृष्णा एवं ज्वर बढ़ जाता है, वमन होती है, विजृम्भिका, सूखी उबकाई, अरुचि भ्रम, अंग भंग, सुस्ती, सूखा रोग (फक्क रोग), आंत बोलना, नाक कान मुख एवं आंखों में पाक आदि रोग होते हैं। दृष्टि उप्लव, स्वरसाद आदि दारुण व्यथा लक्षण समूह का ही नाम क्षीरालसक है। दूषित दुग्ध पान से उत्पन्न एक रोग पारिगर्भिक नाम से माधव-निदान में वर्णित है पारिगर्भिक और क्षीरालसक दोनों एक से ही रोग हैं, विशेष भेद नहीं है, दोनों ही रोगों का साम्य ग्रीष्म बालातिसार से है।

पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में इस रोग का उपसर्ग जीवाणु द्वारा माना है किन्तु जीवाणु कौनसा है इसका निश्चय अभी तक नहीं हो पाया है। (वैसे प्रायः डिसेंटरी का जीवाणु सोना वर्ग का मिलता है) इसका कारण उन्होंने भी दुग्ध की वातावरण एवं पात्रों की अशुद्धि माना है। दुर्बल अस्थिवक्रता एवं बोतल दुग्ध से उत्पन्न पाचन दुर्बलता में इस रोग का उपसर्ग शीघ्र होता है। शुद्ध वायु के प्रभाव एवं शीत लगने पर भी यह रोग हो जाता है।

रोग के प्रधान भेद--

इस रोग के दो भेद हैं १. साधारण बालातिसार २. देश व्यापी ग्रीष्मकालीन संक्रामक बालातिसार।

साधारण बालातिसार के लक्षण—

ज्वर--ज्वर प्रायः नहीं या कम होता है।

तृषा--ज्वर एवं अतिसार के अनुरूप सामान्य बढ़ी हुई।

शौच--बहुत कम अतिसार दिन में ३ से ५ तक पतले दस्त।

वमन--प्रायः नहीं अथवा कम, दूध डालना।

मूत्र--प्रायः ठीक आता है।

उदर--उदर में कभी कभी थोड़ा दर्द।

संक्रामक बालातिसार के लक्षण—

विषूचिका वत् यह बालातिसार बड़े उग्र रूप में प्रसरण करता है कभी कभी तो सन्तोषजनक चिकित्सा काल भी नहीं मिलता, इसमें कमजोरी एक दम बढ़कर हृदयावसाद होजाता है। इस रोग में मृत्यु अधिक होती है।

ज्वर- ज्वर एक दम से तीव्र हो जाता है, तापमान १०३ से १०५ तक प्रायः रहता है।

तृषा—कास एवं खुश्की के कारण शिशु बेचैन रहता है, खुश्की से बच्चा आंखें नटेर जाता है कभी कभी श्वासावरोध होकर मृत्यु भी होजाती है।

शौच—तीव्र वेग से जल सदृश अधिक अतिसार होता है। शौच का रंग कभी श्वेत कभी हरा कभी पीला आता है फटा सा एवं दुर्गन्धित दूध आता है। कभी एक दम पानी, कभी रक्त मिश्रित आव भी आती है।

वमन—तीव्र तम वेग होते हैं दूध एवं पानी पीते ही लौट देता है, लौटा हुआ दूध फटा हुआ होता है।

उदर—उदर कड़ा सख्त, तना हुआ प्रतीत होता है अपान वायु का निष्कासन नहीं होता, उदर में आध्मान एवं शूल रहता है, कभी कभी बहुत अधिक यदि एकदम अतिसार का अवरोध हो तो अफारे से बेचैनी बहुत बढ़ जाती है और जीवन संकट में पड़ जाता है।

मूत्र—बहुत कम आता है। कभी कभी बिलकुल बंद हो जाता है।

रोगी की दशा—बच्चे को सुचिकित्सा के अभाव में या विलम्ब होने पर अथवा बच्चे का पूर्व से कमजोर होने पर और रोग की उग्रदशा में वमन और अतिसार से निरन्तर शरीर का तरलांश निकलने पर शुष्कीकरण होने से प्रायः मृत्यु हो जाती है, आंखों का धंसना, मुख पर गढ्ढे प्रतीत होना, त्वचा का स्पर्श ज्ञान का न होना, त्वचा पर झुर्रियों का होना, विशेषकर नितम्ब प्रदेश में, त्वचा एवं हाथ-पैरों का शीतल होना, ज्वर की तीव्रता, स्वेदावरोध या स्वेदाधिक्य, शरीर में विष बढ़ने से, मूर्च्छा तथा हृदयावसाद अथवा तीव्र ज्वर से आक्षेप आकर मृत्यु हो जाती है। इस रोग में मृत्यु संख्या अधिक है चिकित्सा में विशेष सावधानी और शीघ्रता करनी चाहिए। चिकित्सा में अहिफेन का उपयोग सोच समझ कर करने की आवश्यकता है।

चिकित्सा—

यह दो प्रकार की है रोग निरोधक और रोग शामक।

रोगनिरोधक—

इस चिकित्सा का उद्देश्य है कि रोग के आक्रमण को रोकना, जिससे रोग हो ही नहीं। यही चिकित्सा शास्त्र का उद्देश्य भी है।

१—सर्वप्रथम ऋतुकालीन दिनचर्या पालन।

२—गर्भ होने पर सम्भोग एवं दूध पिलाने वाली स्त्री से सम्भोग न करें।

३—ऋतु अनुकूल आहार विहार का ज्ञान।

४—उष्णकाल में स्तन दुग्ध छुड़ा दें (यदि हो सके तो)।

५—दुग्ध अशुद्धि पर स्तन्य शोधन पर्यन्त शिशु को स्तन्य दुग्ध बन्द कर ऊपर का शुद्ध एवं स्वच्छ दुग्ध दें। दूध का मीठा और वसा अंश कम कर उसे अधिक पाचक बनाऐं।

६—शिशु की शीत एवं उष्ण वातावरण से रक्षा करें।

७—वातावरण की पवित्रता, स्वच्छ वायु, दुग्ध पात्र एवं दुग्ध बोतल के शुद्धीकरण पर पूरा ध्यान रखना चाहिए।

८—इतने पर भी यदि शिशु को इसका संक्रमण हो जाय तो स्वच्छ बच्चों से प्रथकरण आवश्यक है और रोगियों को भी पृथक् पृथक् कुमारागार में रखें।

९—बच्चे के सामान्य स्वास्थ्य संरक्षण के निमित्त पारिवारिक चिकित्सक को दिखाते रहें, पाचन सम्बन्धि विकृति की तो कभी भी उपेक्षा एवं चिकित्सा में विलम्ब न करें।

यह रोग प्रायः दुग्ध विकृति से होता है अथवा होने पर दूषित दूध पीने से रोग मुक्ति की आशा नहीं रहती अर्थात् दुग्ध शुद्धीकरण पर स्थान-स्थान पर विशेष बल दिया है। जन साधारण के लिये घर में परीक्षण करने योग्य सरल-विधि इस प्रकार है-

दुग्ध परीक्षण—एक शीशे के सफेद स्वच्छ गिलास में जल भरकर रखदें, जल स्थिर होने पर धीरे से (जोर से या ऊपर से बलपूर्वक नहीं) किनारे से दूध गिलास में डालें। यदि दूध जल में नीचे बैठ जाए तो (कफ से) दूषित है, अथवा यदि दूध जल के ऊपर तैर जाए तो भी (वात से) दूषित है। दूध जल में मिल जाए जिसका प्रथकत्व दृष्टिगोचर न हो तो दूध उत्तम समझें। इसी को समापः कहा गया है।

दुग्ध को शुद्ध करने वाली औषधियां—

स्तन्य संशोधक कई क्वाथ हैं। अकेली, गिलोय, अकेली कुटकी, अकेला चिरायता भी दुग्ध संशोधक है एवं प्रायःतिक्त कषाय दुग्ध पर शोधन गुण करते हैं, एक सामान्य योग जिसको मैंने अनुभव में अनुभूत किया है—

पाठा महौषध सुरदारुमुस्तमूर्वा गुडूची. वत्सकफल किराततिक्त रोहिणी सारिवा कषायाणां च पानं प्रशस्यते—

पाठा, देवदारु, नागरमोथा, मूर्वा, गिलोय इन्द्रजौ, चिरायता, कुटकी, अनन्तमूल, २-२ तोला लेकर जौकुट चूर्ण बनालें। २ तोला चूर्ण प्रातः १६ तोला पानी में पकाकर शेष ४ तोला जल स्तन्य शोधनार्थ पिलायें। इसी प्रकार शाम को। यह ५ दिन के लिए योग है ५ वें दिन स्तन्य दुग्ध परीक्षण कर सेवन का निश्चय पुनः करें।

रोग शामक चिकित्सा—

इसमें भीषण लक्षणों का तुरन्त शमन, शक्तिह्रास को रोकना, रोगी का संरक्षण, विष को रूपान्तर कर निकालना, रोगी को औषध एवं पथ्य, तथा चर्या द्वारा स्वस्थ करना, उद्देश्य है।

रोगकाल—रोगी को उष्ण रखने के लिये गरम बोतल तैयार रखें शीताङ्ग होने पर तुरन्त उपयोग हो, उष्णवस्त्रों का उपयोग स्वच्छ वायु का प्रबंध एवं अन्य आकस्मिक उग्र लक्षणों की शान्ति के लिए परिचारक को ज्ञान करा देना चाहिए।

लाक्षणिक चिकित्सा—

ज्वर—ज्वर तीव्र होने पर सिरका गुलाब, यू. डी.

कोलन की पट्टी सिर पर रखें, अधिक तीव्रता में रोगी को भीगी स्वच्छ चादर भिगोकर लपेट देना चाहिए। गरम पानी में कपड़ा भिगोकर शरीर को पोंछना चाहिए यदि रोगी को तापमान १०६ के समीप हो तो अविलम्ब पानी के वर्फ को चारों ओर विशेषकर सिर पर ज्वर १०१ होने तक रखें। इससे ज्वर शान्त होता है। वैसे रोग की उग्रता के शमन होने से ज्वर का भी शमन होता है।

वमन—तीव्र वमन को रोकने के लिए सम्भव हो तो आमाशय का प्रक्षालन करें, शिशु को उपवास करादें, दूध एकदम १२ से ४८ घण्टे तक स्थिति के अनुसार बन्द रखें। इस उपवास काल में रोगी को एल्ब्युमीन वाटर, लाइमवाटर, लवणोदक क्रमशः—बार-बार दें, मिश्रित रूप में भी दे सकते हैं।

विरेचन-यदि उदर में आम एवं रक्त हो जो उदर को दबाने से एवं मरोड़ क्रीड़ा आदि के अनुभव द्वारा ज्ञात होता है उसे कास्ट्रैल अथवा कास्ट्रैल इमलशन द्वारा दस्त करा दें, प्रारम्भ में दस्त बढ़ेंगे फिर अपने आप ही धीरे-धीरे शान्त हो जायेंगे। काफी दिनों से अतिसार हो रोगी कमजोर हो तो दस्त नहीं कराने चाहिए का उपयोग अफीम इस रोग में समझ सोचकर करना चाहिये।

तृषा-ज्वर, वमन, विरेचन के शान्त होने पर स्वय शान्त हो जाती है किन्तु तृषा के बढ़ने पर लाजा जल, लवणोदक, उष्णोदक, षडङ्ग पानीय देने से उग्रता का शमन होता है।

औषधोपचार-ऊपर वर्णित।

षडङ्गपानीय-नागरमोथा, पित्तपापड़ा, लालचन्दन, धनियां, खस, नेत्रवाला, सोंठ, यह योग पित्तशामक, पाचक, तृषाघ्न है, इसके अकेले के उपयोग से ज्वर, तृषा वमन, विरेचन को शान्ति मिलती है।

लवणोदक—शक्ति ह्रास नहीं होने देता। रक्तपरिभ्रमण ठीक करता है, प्राण शक्ति का संरक्षण करता है, मूत्रावरोध दूर करता है, तृषा एवं वमन को दूर कर शरीर उष्ण रखता है, शरीर के शुष्कीकरण के समय तो सूचीवेध द्वारा अविलम्ब दिया जाता है। पूर्व से मुख द्वारा देने से प्रायः सूचीवेध से देने की आवश्यकता कम पड़ती है।

अन्य औषधियां—

क्वाथ—षडंगपानीय, धान्यपंचक, कलिंगादि क्वाथ नागरादि क्वाथ, कच्चा बेल, आम्रगुठली, कुटज तीनों का क्वाथ, बचादिक क्वाथ, कुटजादि क्वाथ, कण्टकादि क्वाथ।

चूर्ण—बालचातुर्भद्र चूर्ण, केशरादि चूर्ण, बाल-अतिसारहर चूर्ण, बालमित्र चूर्ण, लवणभास्कर चूर्ण, हिंग्वाष्टक चूर्ण, पिपल्यादि चूर्ण।

रस—आनन्दभैरव, दन्तोद्भेदगदान्तक, कनकसुन्दर, सर्वाङ्गसुन्दर, महागन्धक रसायन।

आसव—कर्पूरासव, अहिफेनासव, अरविन्दासव

अर्क-अमृतधारा जीवनधारा और उनके सदृश्य अन्य उपरोक्त औषधियों का उपयोग चिकित्सक के निर्देशानुसार ही करना चाहिये। स्वयं नहीं क्योंकि लक्षण, रोगी बल, रोग बल के अनुरूप औषध का परिवर्तन परिवर्धन विघटन करना पड़ता है।

निजी अनुभव—

प्रारम्भ में प्रथम दिन -

१—दिन में ३ बार

अ—कास्ट्रैल इमलशन १ ड्राम से २ ड्राम तक की १ मात्रा अतिसार शान्ति के लिए।

आ-दिन में दो बार-केलोमल $\frac{1}{6}$ ग्रेन से $\frac{1}{3}$ ग्रेन तक सोडा बाईकार्ब १ ग्रेन से २ ग्रेन, विस्मथकार्ब १ ग्रेन से २ ग्रेन की मात्रा में २ बार देता हूं। केलोमल वमन एवं विरेचन दोनों को शान्त करता है।

सोडाबाईकार्ब पाचक है विस्मथकार्ब अतिसार के लिए उत्तम है, आन्त्र पर एक भित्ती बना लेने से आन्त्रक्षत का भय नहीं रहता, क्षत का पूरण करता है।

उदर शुद्धि होने पर—दूसरे दिन से स्वस्थ होने तक—

१-सल्फा गोनोडीन १/४ से १/२ गोली तक, विस्मथकार्ब २ से ५ ग्रेन तक, अगर खून हो तो डोवर्स पाउडर १/२ से २ ग्रेन तक। ३ मात्रा गरम पानी में घोलकर।

२-सोडा साइट्रास १ ग्रेन से ५ ग्रेन तक, दालचीनी का तैल १ बूँद से ३ बूँद तक, कार्मीनेटिव मिक्चर १ ड्राम से २ ड्राम। ३ मात्रा दिन में दें।

१—दन्तोद्भेदगदान्तक रस	१ गोली
सर्वाङ्गसुन्दर रस	१ गोली
सौभाग्य भस्म	२ रत्ती
जहरमोहरा भस्म	१ रत्ती
प्रवालपिष्टी	१ रत्ती

—कुल ६ रत्ती की ३ मात्रा बनाकर शहद के साथ दिन में ३ बार दें।

२—रक्त आरहा हो तो उपयुक्त दवा के साथ-साथ कर्पूररस दिन में २ बार और दें।

विशेष—सर्वप्रथम उपवास, उपवासकाल में उष्णोदक, लवणोदक, एलब्युमीन, लाइमवाटर का उपयोग, गम्भीर उपद्रवों की तात्कालिक चिकित्सा, यथा शीताङ्ग के लिए उष्ण बोतल का सेक, कोरामीन, लवणोदक का सूचीवेध, मकरध्वज, रससिंदूर, लक्ष्मीविलास का मुख से उपयोग आवश्यकता पर राजिकास्नान।

आध्मान—तारपीन का तैल गरम पानी में डालकर उदरसेक, मुख से दालचीनी का तैल, पिपरमेंट का उपयोग, अधिक पर तारपीन के तैल का एनिमा, आवश्यकता पर एक बूंद बूरे में मुख द्वारा भी।

मूत्राघात—लवणोदक के प्रयोग से एवं अतिसार वमन की शान्ति से स्वतः आने लगता है। विशेष चिकित्सक के निर्देशानुसार।

—विद्याभूषण डा० ओम्प्रकाश शर्मा
बी. आई. एम. एस. आयुर्वेदाचार्य
गवां (बदायूँ)

:: पृष्ठ ७११ का शेषांश ::

भांति स्वच्छ कर देने से मसूड़ों सम्बन्धित रोगों के उत्पत्ति की आशंका नहीं रहती। गर्म भोजन के बाद तुरन्त ही ठण्डा पानी पीने से दांतों की जड़ें निर्बल पड़ जाती हैं। सोते समय दांतों को यथासम्भव बन्द कर के ही पड़े।

नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने, रसायन औषधियों का यथाविधि सेवन करने तथा आहार की स्वच्छता व नियमितता से दांत बहुत समय तक रोग रहित व कान्तियुक्त बने रहते हैं।

-श्री लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल शास्त्री, आयुर्वेदाचाय
मन्धना (कानपुर)।

अपनी डिस्पेंसरी में लगावें

शारीरिक-चित्र

चार चित्र तैयार हैं, बहुरंगी आफसैट की सुन्दर आकर्षक छपाई, विवरण हिन्दी में, कपड़े पर मढ़े, टांगने योग्य उपयोगी चित्रों को संगावें। मूल्य चारों चित्र १६)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

विष्णुकान्ता एवं कृष्णकान्ता

श्री आत्माराम बर्वे कोष्ठी

मुझे एक फटी पुरानी पुस्तक रद्दी में प्राप्त हुई थी उसमें विष्णुकान्ता एवं कृष्णकान्ता के विषय में कुछ प्रयोग लिखे थे। यह पुस्तक हस्तलिखित थी। इस पुस्तक को मैंने ध्यान पूर्वक पढ़ा तथा उसे कार्य रूप में कुछ प्रयोगों द्वारा अनुभव किया। ये दोनों बूटियां लाभकर ज्ञात हुईं। मैंने इस बूटी के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने हेतु काफी परिश्रम किया। मेरे इस परिश्रम में एक महानुभाव, जिनका नाम पं० वीरबल दुबे, रेलवे स्टेशन सिवनी है, ने मुझे सहयोग प्रदान किया जिसके फलस्वरूप विष्णुकान्ता नामक बूटी प्राप्त हुई किन्तु कृष्णकान्ता नामक बूटी बहुत कम मात्रा में पाई गई। पण्डित वीरबल दुबे के पूर्ण सहयोग से ही यह बूटी (कृष्णकान्ता) मेयो अस्पताल, शनीचरा, नागपुर में प्राप्त हो सकी।

आशा है वैद्य एवं साधारण अन्य व्यक्ति इस बूटी द्वारा अवश्य लाभ उठावेंगे।

विष्णुकान्ता——

परिचय—इसकी बेलें होती हैं। यह बाग बगीचों में अधिक पाई जाती है। मकानों की शोभा बढ़ाने हेतु इसकी लताएं फाटकों के ऊपर चढ़ा दी जाती हैं।

पत्र—इसके पत्र बन मूंग के समान, कुछ बड़े १-१ डण्डी पर ५-५ संलग्न रहते हैं।

फूल—समुद्रसोक के समान किन्तु छोटे नीचे की ओर सिकुड़े हुए, सफेद होते हैं। जब ये सूखने पर आते हैं तब ये स्त्री योनि के समान दिखाई देते हैं। इसीलिए इसको "योनिपुष्पी" या "भग-पुष्पी" कहते हैं। परन्तु पुष्प गाय के कर्ण के समान दृष्टिगोचर होते हैं। इसलिए यह गोकर्णी के नाम से भी पुकारी जाती है। गर्मी की ऋतु के कुछ दिनों को छोड़कर पूरे वर्ष फूल लगते रहते हैं।

कृष्णकान्ता——

बेल व पत्र विष्णकान्ता के ही समान होते हैं। केवल भेद यही कि कृष्णकान्ता के पुष्प नीले वर्ण के होते हैं और विष्णुकान्ता के पुष्प सीप के समान सफेद होते हैं।

विष्णुकान्ता के गुण—शीतल, कड़वी, बुद्धिदाता, नेत्रों को हितकारी, विषनाशक, कसैली, दस्तावर, शिरःशूल, त्रिदोष, दाह, कोढ़, आम, पित्त रोग, सूजन, कृमि, घाव, कफ, ग्रह पीड़ा और विष सर्प इत्यादि को हरने वाली।

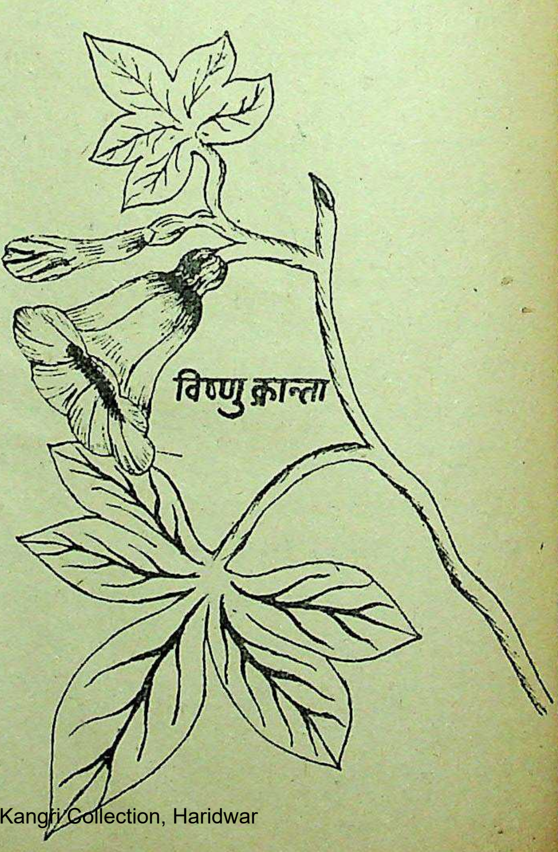

व्यवहार—जड़, पत्ते और रस।

कृष्णकान्ता के गुण—कड़वी, स्निग्ध, शीतवीर्य, वात-पित्त-कफ ज्वर, दाह, श्रम, भूतबाधा, रक्तातिसार, उन्माद, मद, खांसी, श्वास, कफ, कोढ़ क्षत इत्यादि तथा अन्य गुण विष्णुकान्ता के समान होते हैं। इसका पंचांग औषधि कार्य में आता है। जड़ रेचक एवं वमनकारक है। बीज ठण्डे और विष को दूर करने वाले तथा सत्व पेट में दस्त की शंका उत्पन्न करते हैं।

नोट—औषधि कार्य में विष्णुकान्ता विशेष गुणकारी होती है।

प्रयोग—

१. विष्णुकान्ता की जड़, चकौड़ा की जड़ पानी में पीस कर लेप करें, श्वेत कोढ़ (कुष्ठ) माह डेढ़-माह में ठीक होजाता है।

२. विष्णुकान्ता की जड़, इन्द्रायण की जड़, कड़वी बच, तीनों को गाय के मूत्र में पीसकर गण्डमाला में लेपन करे। अवश्य लाभ होगा। अनुभव सिद्ध है।

३. आधाशीशी में—ताजी जड़ का रस निचोड़ कर नाक में टपकावें। आधा शिरदर्द ठीक हो जाता है।

४. सुजाक पर—विष्णुकान्ता की ताजी जड़ ३ माषा से ६ माषा तक, शीतलचीनी १॥ माषा, १ काली मिर्च मिलाकर पानी में घोंट छान कर ७ दिन तक प्रातः सायं सेवन करे। जलन मवाद इत्यादि पर अत्यन्त लाभ होता है।

५. पथरी पर—चावल का धोवन और इसकी जड़ को घिस कर असली यवक्षार मिलाकर पीने से पथरी दूर होती है।

६. बिच्छू के डसने पर—इसकी जड़ को काटे हुए स्थान पर ऊपर से नीचे को ७ बार रगड़े एवं उतारे और उसी ओर के हाथ (मुट्ठी) में ५ मिनट तक जड़ी को पकड़े रहे। विष उतर जावेगा। अनुभव सिद्ध है।

७. उठते हुए फोड़ों पर—जड़ को सिरका में पीस कर लेप करे।

८. स्नायु की पीड़ा में—तैल में जड़ को पीस कर लेप करे।

९. जड़ का चूर्ण घृत के साथ सेवन करने से एवं नं० २ प्रयोग का लेप करने से गलगण्ड (घेंघा) ठीक होजाता है।

१०. जड़ का चूर्ण मठा के साथ सेवन करने से कामला ठीक होता है।

११. जड़ की राख मक्खन से मिलाकर लेप (मलने) से मुख की झांई दूर होती है।

१२. इसकी पत्ती २ तोला आधा सेर पानी में पकावें जब आधा पाव शेष रहे तब कुनकुना ही कुल्ली करे, गले के व्रण नष्ट होते हैं।

१३. इसके पत्तों का रस की नस्य लेने से विषम ज्वर दूर होवा है।

१४. इसके पत्ते का रस में नमक मिलाकर (पीसकर) कुनाकुना ही कानों के आस पास लेप करने से सूजन एवं दर्द आराम होता है।

१५. पत्तों को बकरी के दूध में पीस कर छानकर (ठण्डा) होने पर पिलाने से स्त्रियों का गिरता हुआ गर्भ भी थम जाता है।

१६. हरताल के विष पर इसके पत्तों का रस पिलाना चाहिए।

१७. श्वेतकुष्ठ पर जड़ की लेपन के साथ ही साथ इसके बीजों को घी में तलकर चूर्णकर जल के साथ सेवन करने से अपूर्व लाभ होता देखा गया है। अनुभव सिद्ध है।

१८. इसके चूर्ण को ३ माशा गर्म पानी से सेवन करने से तिल्ली, जलोदर दूर होता है।

१९. अद्भुत प्रयोग—स्त्री के प्रसव समय पर जब कि अत्यन्त कष्ट हो रहा हो और अधिक समय लग गया हो तब इसकी बेल को लेकर स्त्री के कमर में बांध (लपेट) दें शीघ्र बच्चा

बाहर आ जायगा। अनेकों बार का अनुभव सिद्ध है।

२०. इसकी जड़, सोंठ, पीपल कूट पीस शिर में लेप करने से शिर:शूल नष्ट होता है। अनुभव सिद्ध है।

२१-इसकी जड़, चावलों के पानी में पीसकर नस्य देने से प्रेतादि (भूत बाधा) दूर करे।

२२-इसके फूलों का रस आंखों में लगाने से नेत्रों के पटल रोग नष्ट होते हैं।

२३-इसकी जड़ को बकरी के मूत्र में घिसकर बटी बनाकर पास में रखें तो चोर व्याघ्रादि दूर हो।

और लिखा है-कि इसके पत्र और नीम के पत्र के रस का नस्य देने से डाकनी और मातृगण आदि छोड़ देते हैं। हे ईश! इसकी जड़ को कान में धारण करने से मकरादि का भय नहीं रहता।

२४-इसकी जड़, और बड़ी तुरई की जड़ को पानी में पीसकर सुंघाने से सांप का काटा ठीक हो जाता है। (तंत्र-मंत्र-करामाती पिटारा)

२५-भैंस के दूध में जड़ सहित विष्णुकान्ता को पीसकर भैंस के नेनू के साथ काकबन्ध्या स्त्री ७ दिन ऋतुकाल में सेवन करे और नियम आदि से चले तो स्त्री अवश्य गर्भिणी हो जाती है।

नोट—ऊपर के जितने प्रयोग हैं वह सब विष्णुकान्ता बूटी के हैं।

कृष्णकान्ता बूटी के प्रयोग-

१ कृष्णकान्ता की जड़ के प्रयोग से मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय की दाह मिटती है। एवं—

२—इसकी जड़ के सेवन से गुर्दे की सूजन, पीड़ा, ज्वर, रक्त के अभाव के लिए लाभदायक है। जिस प्रमेह में दाह और दर्द हो सेवन करना लाभदायक है। जड़ बहुत रेचक है इसकी जड़ को दूसरे रेचक और मूत्रल औषध के साथ देने से बढ़ी हुई तिल्ली और जलोदर मिटता है।

३—इसकी जड़ का क्वाथ देने से गठिया दूर होती है। फेफड़ों के रोगी को ताजी जड़ सेवन करने से लाभ होता है। सर्पविष वमन होकर दूर होता है।

४—इसकी जड़ की छाल का चूर्ण मधु गोघृत और खांड मिलाकर १ सप्ताह के सेवन से परिणामशूल बड़ी सरलता से ठीक हो जाता है।

५—इसकी जड़ का चूर्ण १॥ माशा, काली मिर्च का चूर्ण ६ रत्ती, पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण ६ माषा शुबह शाम सेवन करने से शोथ (सूजन) नष्ट हो जाती है। इसकी जड़ दस्तावर और मूत्रल है।

६—इसकी जड़ कमर में बांधने से कांच निकलना बन्द हो जाता है।

७—फोड़ा, फुंसी, स्वेद वाले ज्वर में इसके पत्तों का रस और अदरख का रस मिलाकर देना चाहिए।

८—इसके पत्तों को समुद्रफेन और सैंधानमक के साथ पीसकर गुन-गुना लेप करने से (गले) में गले की पीड़ा एवं शोथ (सूजन) ठीक होती है। इसी प्रयोग द्वारा कान पर लेप करने से कान का दर्द एवं सूजन ठीक होती है।

९—इसके बीजों को बारीक पीसकर (जल द्वारा) कुनाकुना अण्डवृद्धि पर लेप करें। अवश्य लाभ होगा।

१०-इसके काढ़े में मिश्री मिलाकर पाक करें, गाढ़ा होने पर उतार लें। फिर थोड़ी थोड़ी मात्रा में सेवन करें, खांसी, श्वास, कुक्कुर खांसी प्रभृति दूर हो जाती है।

११-इसके सत्व को २॥ से ५ रत्ती तक सेवन करने से दस्त आते हैं।

१२-सर्पविष पर इसकी जड़ का प्रयोग किया जाता है।

नोट-उपरोक्त वर्णन कृष्णकान्ता बूटी का है।

—वैद्यरत्न आत्माराम बर्वे,
आ० वि० एवं शास्त्री, घंसौर (सिवनी)

घृत

श्री रघुवरदयालु वैद्य

मानव जीवन में ऐहिक तथा पारलौकिक सुख शान्ति साधनों की समुचित प्रकार से सम्प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य स्वस्थ रहे। स्वस्थ शरीर ही धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक सुकृत्यों की ओर प्रवृत्त हो सकता है। और जहां स्वास्थ्य में विकार उत्पन्न होजाते हैं वहां उत्तम कार्यों का करना तो दूर रहा उन पर विचार करने की भी मनोवृत्ति बहुधा नहीं पाई जाती। इसलिये भारतीय चिकित्सा शास्त्र के आचार्यों का मत है कि

'धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूल मुत्तमम्'

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल कारण स्वस्थ रहना है। इस लिये दिनचर्या रात्रिचर्या और ऋतुचर्या आदि का विषद वर्णन कर रोगों से बचने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। जो स्वास्थ्य संरक्षण में सहसा सहायक सिद्ध होते हैं। घृत की भोजन में कितनी महत्ता है यह भोजन शास्त्र विशारदों से अविदित नहीं। घृत ऐसा पदार्थ है जिसकी स्वास्थ्य सुधार में अत्यधिक उपयोगिता है। इसके गुण एवं उपयोग के प्रदर्शन से पूर्व इसके भेदोपभेद का कथन आवश्यक है। इसके निर्माण के भी कतिपय प्रकार हैं। जैसे दूध से घी बनाना, उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में कच्चे दूध को जमाकर घी बनाने की प्रथा प्रचलित है। कच्चे दूध का मक्खन मशीन से निकाल कर उसका भी घी बनता है और बहुधा पके दूध को जमा कर घी बनाया जाता है। साधारणतया संस्कृत में घृत आज्य हविष् और सर्पिष् नाम प्रचलित हैं। इसका गुण नेत्रों की ज्योतिवर्धन, अग्निदीपन, विष विनाशन, वात तथा पित्तजनित रोगों का शामक, शोभाकर, सौन्दर्य वर्धन, मधुर रस, शीतवीर्य, किंचित् कफकर और स्वर को सुन्दर करने वाला है। स्मृति, बुद्धि एवं बल तथा आयु वर्धन इसका विशेष गुण है। ज्वर, उन्माद, शूल, आनाह क्षय रोग तथा विसर्प रोगों में लाभदायक है। यह कामशक्तिवर्धक भी है।

गौ, भैंस, बकरी, उंटनी, भेड़ी, घोड़ी, हथिनी गैंडी तथा स्त्री के दुग्ध से घृत बनाया जा सकता है तथापि बहुधा भैंस बकरी एवं गौ के दूध से बना घी उपलब्ध होता है। इन सब घृतों में गौ-घृत सर्वतोऽधिक गुणशाली माना जाता है। परन्तु आज के युग में उसी गौ घृत का सर्वथा अभाव सा हो रहा है। ऊपर लिखित घृत के सभी गुण गौघृत में पाये जाते हैं। नेत्र रोग, शिरोरोग, तथा बाजीकरण प्रकरण में जितना गौघृत उपयोगी है उतना अन्य घृत लाभदायक नहीं।

भैंस का घृत—कफकारक दीर्घपाकी एवं गरिष्ठ होता है इसका परिपाक मधुर होता है।

बकरी का घृत—नेत्र रोग कास क्षय और श्वास रोग में विशेष हितकर है। इसका परिपाक कटु होता है।

उंटनी का घृत-कुष्ठ गुल्म उदर रोग कृमि रोग एवं विषजन्य रोगों में अधिक लाभ देने वाला है। इसका भी परिपाक कटु होता है।

भेड़ी का घृत—लघुपाकी होता है। यह अस्थिवर्धक है। इसका उपयोग पथरी आदि तथा वातजनित रोगों में आशातीत लाभप्रद है।

घोड़ी का घृत—अन्य गुणों के साथ शीघ्रपाकी तथा पाचन शक्ति वर्धक है। यह दाहनाशक भी है।

स्त्री घृत-इसका प्राप्त होना सहसा सम्भव नहीं। तथापि यह कफवात रोग, योनि एवं नेत्र रोगों में विशेषतया लाभकर है।

हस्तिनीघृत—कषाय रस का होता है। इसका परिपाक कटु होता है। यह अग्निवर्धक लघुपाकी कफ कुष्ठ विष और कृमिनाशक है। यह मलमूत्र-रोधक भी है।

गर्दभी घृत–बलकारक बन्हिवर्धक सूत्रदोषनिवारक उष्णवीर्य लघुपाकी तथा कफघ्न है।

गण्डकी घृत–अधिक गुरु होता है अतः सुकुमार प्रकृति वालों को इसका सेवन निषिद्ध है। तथापि यह बुद्धि एवं शक्तिवर्धक है।

महर्षि चरकाचार्य ने गोरस वर्ग में केवल घृत के गुणों का आख्यान किया है। महिषी अजा और भेड़ी के घृत के गुणों के विषय में उत्पादक स्थल के गुणों के समान गुण वाला केवल लेख है। भगवान् धन्वन्तरि ने गेड़ा और गदही के घृत के गुणों के सिवा अष्ट प्रकार के घृतों के गुणों का पृथक्-पृथक उल्लेख किया है। यह निर्विवाद है कि कतिपय घृत ऐसे हैं जो अनुपलभ्य एवं अव्यवहार्य हैं तथापि इनके विशिष्ट गुणों की गवेषणा शश्वत् अपेक्षित है। चरक संहिता में घृत के गुणों के प्रकरण में लिखा है कि—

सहस्रवीर्यं विधिभिर्घृतं कमसहस्रकृत्।

अर्थात् विविध विध औषधियों के सहयोग से सम्पादित घृत सहस्रों प्रकार के काम करने वाला हो जाता है। घृत योगवाही है। नाना प्रकार की औषधियों के संयोग से अनेक आमयों के विनाशन में शक्तिशाली हो जाता है। अतएव चिकित्सा प्रकरण में ज्वराधिकार में अमृताघृत, षट्पल घृत, पञ्चतिक्त घृत, पिप्पल्यादि घृत दशमूल–षट्पलक घृत और क्षीरषट्पलक घृत ग्रहणी रोग में मरिचादि घृत, महाषट्पलक घृत, बिल्वाद्यघृत; अर्शः प्रकरण में शुण्ठीघृत चव्यादिघृत, अजीर्ण चिकित्सा में अग्निकर घृत दशमूलाद्यघृत और रक्तपित्त में दूर्वाद्यघृत बासादिघृत तथा शतावरी घृत का विधान है। एवं रीत्या अन्य रोगों में तत्तत् प्राकरणिक औषधियों के सहयोग से बहुविध घृतों का विधान रोग प्रशमनार्थ प्रदर्शित किया गया है। कतिपय अनुभवशील चिकित्सक राजयक्ष्मा तथा पुष्टिकर औषधियों के प्रसङ्ग में शोणित घृत का भी उपयोग करते हैं। इसके निर्माण में घृत से द्विगुणित अजारक्त और चतुर्गुण अजादुग्ध तथा अष्टवर्ग, गुडूची तथा कासघ्न औषधियों के कल्क से इसको सुसम्पन्न करते हैं। यह लाभप्रद भी है। शिशुओं के सूखा रोग में भी यह उपकारक होता है।

घृत के सम्बन्ध में कवि सम्राट् श्री हर्ष जी ने नैषधीय चरित में अत्युत्तम अत्युक्ति की है यथा–

यदप्यपीता वसुधातलैः सुधा
तदप्यदः स्वादु ततोऽनुमन्यते।
अपिक्रतुषर्बुध दग्ध गन्धिने
स्पृहां यदस्मै दधते सुधान्धसः॥

यद्यपि मनुष्यों ने अमृतपान नहीं किया है तथापि ऐसा अनुमान किया जाता है कि घी अमृत से अधिक सुस्वादु है। क्योंकि अमृत भोजी देवता भी यज्ञाग्नि में दग्ध घृत की सुगन्धि की आकांक्षा रखते हैं। अर्थात् स्वर्ग में घृत न मिलने से पीयूषपायी सुर समूह केवल दग्ध घृत की सुगन्ध से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। अतः यह अनुमान ठीक ही है कि घी अमृत से अधिक स्वादु है।

घी नूतन और पुरातन इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। भोजन, तर्पण तथा श्रमजनित कामों में एवं बलक्षय पाण्डुरोग और नेत्र रोग में नवीन घृत का उपयोग करना श्रेयस्कर है। प्राचीन घृत के सम्बन्ध में साधारण मत है कि एक वर्ष का घृत पुराना हो जाता है। परन्तु शास्त्रों में दश वर्ष का रक्खा घी पुराना श्रेष्ठ माना गया है। जो त्रिदोष और तिमिर रोग नाशक है तथा मूर्च्छा, कुष्ठ, उन्माद, अपस्मार (मृगी) आदि में शिरोऽभ्यङ्ग से उपकारकारी होता है। दस वर्ष से उपरान्त का घी रसायन माना जाता है सौ वर्ष के पुरातन घृत की कुम्भ घृत संज्ञा हो जाती है और जो घृत सौ वर्ष के पश्चात् सुरक्षित रखा जाता

है उसे महाघृत कहते हैं। यह घृत जैसे जैसे प्राचीन होता जाता है इसमें उतने ही अधिक गुण होते जाते हैं। इसको नेत्र में अंजन करने से तिमिर आदि नेत्र रोगों को आशातीत लाभ पहुँचता है और शिर में अभ्यङ्ग से ऊर्ध्व जत्रु (गले से ऊपर के रोग) रोगों का आशु विनाशकारी है।

यक्ष्मा, विसूची, ज्वर, प्रमेह, सोमरोग, विबन्ध और कफामय एवं बालक तथा वृद्ध को अधिक हितकर नहीं। त्रिफला को घृत के साथ प्रातः काल सेवन से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। नासिका की छोटी फुंसियों में केवल दैनिक घृत के उपयोग से लाभ होता है। मेरी यह भी धारणा है कि यदि न्यूनातिन्यून वर्ष में दो बार अर्थात् चैत्र और आश्विन में घृत के अभ्यङ्ग को नियमतः सेवन करने से शारीरिक रक्षक तत्त्व लाभान्वित होते हैं और देह बाह्यरोगों के आक्रमण से सुरक्षित रह सकता है। आर्थिक शक्ति सम्पन्न सत्पुरुष पुरातनकाल में प्राचीन घृत के संचय में अपना गौरव मानते थे और आकांक्षियों को यथावसर निःशुल्क वितरित किया करते थे। सम्प्रति वह प्रथा लुप्तप्राय सी होती जा रही है। मेरा निवेदन है कि धनीमानी इस ओर ध्यान देने की उदारता करें। समय की यह भी मांग है कि अन्वेषणशालाओं तथा रसायनशालाओं में प्राचीन एवं अर्वाचीन उभय विध वैज्ञानिक प्रकारों से यह गवेषणा की जाये कि किन-किन विषों के विनाशन में घी का कितना प्रभाव पड़ता है तथा कौन-कौन विषाक्त तत्त्व घी से कितने समय में विनष्ट हो सकते हैं और इसके विषापह गुण को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है। जिसमें यह घृत पेनिसिलीन आदि विषनाशक औषधियों से अधिक प्रभावशाली हो और उनसे होने वाली हानि से भी सुरक्षा हो सके।

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि घृत शहद के साथ समान मात्रा में ही विषाक्त होता है न्यूनाधिक मात्रा में नहीं। अथवा अन्य औषधियों के संयोग में भी इसका विषैला प्रभाव कम हो जाता है।

श्री पं० रघुवरदयाल भट्ट वैद्य
आयुर्वेदाचार्य, नौघड़ा, कानपुर।

*

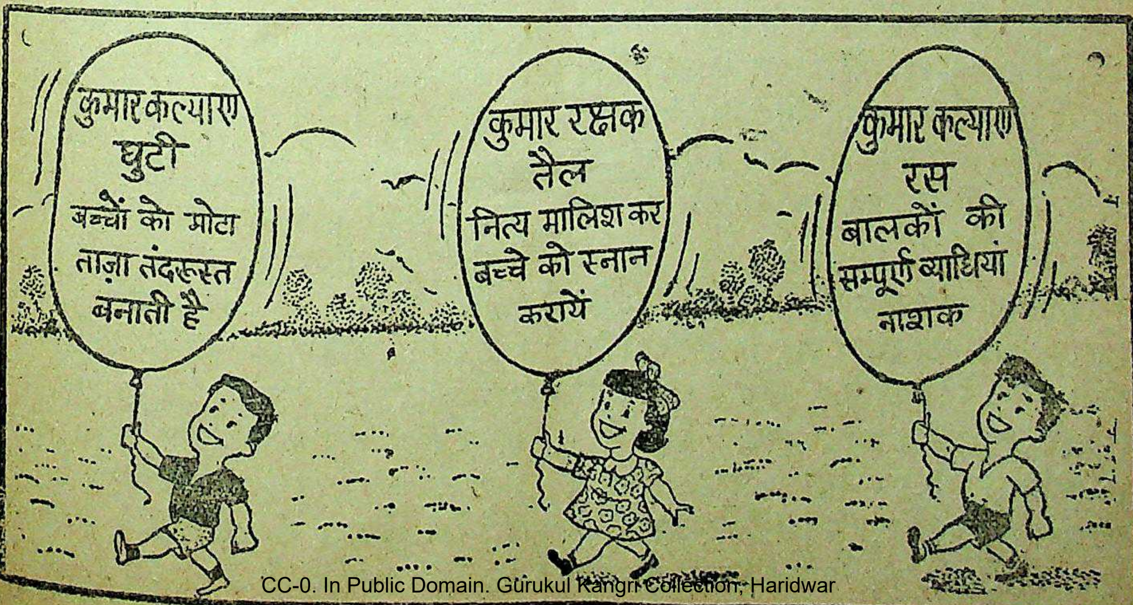
कुमार कल्याण घुटी बच्चों को मोटा ताज़ा तंदरूस्त बनाती है
कुमार रक्षक तैल नित्य मालिश कर बच्चे को स्नान करायें
कुमार कल्याण रस बालकों की सम्पूर्ण व्याधियां नाशक

किशमिश और स्वास्थ्य

श्री डा० कुलरञ्जन मुखर्जी

संसार में जितने खाद्य विशेष पुष्टिकर तथा स्वास्थ्य के लिए अनुकूल हैं उनमें से किशमिश एक मुख्य चीज है। सूखा हुआ अंगूर को "किशमिश" कहा जाता है। स्मरणातीतकाल से यह मानव समाज में व्यवहृत होता आ रहा है। ग्रीक तथा रोमन युग में भी भूमध्यसागर के आसपास के व्यापारियों के पास यह एक आवश्यक पण्य के रूप में गिना जाता था। ग्रीकं मल्लबीर शक्ति लाभ करने के लिये प्रतिदिन काफी मात्रा में किशमिश ग्रहण करते थे।

जिन देशों में अंगूर उत्पन्न होते हैं उन देशों में ही किशमिश मिलती है ऐसा नहीं। अंगूर पकने के समय जिन देशों में वर्षा नहीं होती है सिर्फ उन्हीं सब देशों में किशमिश उत्पन्न होती है। इसलिये संसार के बाजार की अधिकांश किशमिश इटली; फ्रांस, दक्षिण आस्ट्रेलिया, अमरीका का केलिफोर्नियां, दक्षिण अफ्रीका, स्पेन, तुरस्क, इरान, अफगानिस्तान तथा वेलुचिस्तान से आती है।

अंगूर पक जाने से अंगूरों के लच्छों को काट लाने के बाद लकड़ी के बरतन में सूखने दिये जाते हैं। सूखने के बाद अंगूरों का वजन बहुत घट जाता है। साधारणतः २२ पौंड अंगूर सूखकर साढ़े पांच पौंड से सात पौंड किशमिश में परिणत होता है।

किशमिश साधारणतः तीन श्रेणी की होती है। बीजहीन किशमिश ही अकसर दिखाई देती है। अंग्रेजी में इसे "सुलताना" कहते हैं। बीजयुक्त बड़ी-बड़ी किशमिशों को "मुनका" कहते हैं। इनके अतिरिक्त और एक श्रेणी की किशमिश मिलती हैं जो देखने में बहुत काली होती हैं। इनका अंग्रेजी नाम है "कारेन्ट", यह "करिन्थ" शब्द का अपभ्रंश है। किसी समय में करिन्थ ग्रीस का एक बड़ा शहर था। वहीं से यह आता था इसलिये इसका नाम पड़ा "कारेन्ट"।

कुछ कीमती खाद्योपादान का मुख्य अंश होने के हिसाब से किशमिश जन समाज में आदृत हुआ करता है। इसके भीतर प्रतिशत ७७.३ अंश शक्कर, २.० अंश प्रोटीन, ०.२ अंश बसा, ०.१० अंश कैलसियम, ०.०८ अंश फासफोरस तथा ४.० अंश लोहा मिलता है। इसके अलावा प्रति १०० ग्राम में ६० माइक्रोग्राम विटामिन बी और ०.५ ग्राम निकटिनिक ऐसिड वर्तमान रहता है। इसका तापमूल्य प्रति १०० ग्राम में ३१६ तथा इसके भीतर पानी का परिमाण सिर्फ सैंकड़ा १८.५ अंश है।

किशमिश का मुख्य खाद्योपादान है शक्कर। अंगूर में साधारणतः शक्कर का अंश रहता है सिर्फ सैंकड़ा दश अंश। परन्तु अंगूर सूखकर जब किशमिश बन जाता है तब इसका शक्कर मूल्य करीब ८ गुना बढ़ जाता है। इस लिये शक्कर की दृष्टि से किशमिश अंगूर से बहुत ज्यादा पुष्टिकर है। इसके अतिरिक्त किशमिश के भीतर जो शक्कर रहती है वह दूसरी श्रेणी की शक्करों से श्रेष्ठ है। इसका अधिकांश भाग ही ग्लुकोज तथा फलशक्कर बना है। सभी प्रकार के फलों की तुलना में अंगूर के भीतर ही ग्लुकोज अधिक रहता है। इसलिए ग्लुकोज को "द्राक्षा शक्कर" कहते हैं। याद रखना चाहिए कि अंगूर में किसी प्रकार का "श्वेतसार" नहीं रहता है। परन्तु ग्लुकोज देह के भीतर शीघ्र ताप तथा शक्ति उत्पन्न करता है। इसलिये सर्व प्रकार की कमजोरियों में, विभिन्न क्षय रोग में तथा रोग मुक्ति के समय यह विशेष रूप से लाभदायक है।

इसका मुख्य गुण यह है कि यह विशेष रूप से कोष्ठ साफ करता है। इसलिए प्रतिदिन ग्रहण करने से बहुत से रोगों से मुक्ति मिलती है।

किशमिश एक मुख्य रक्तवर्धक खाद्य है। साधारण खाद्यों में जिस परिमाण में लोहा रहता है उससे कई गुना अधिक लोहा रहता है किशमिश के भीतर। इसलिए इसे ग्रहण करने से देह में जल्दी से रक्तहीनता नहीं आ सकती। इसके अतिरिक्त यह एक मुख्य क्षार धर्मी खाद्य है तथा इसके भीतर क्षार की मात्रा साधारण क्षारधर्मी खाद्यों से बहुत अधिक है। इसे काफी मात्रा में ग्रहण करने से देह में क्षार का संचय बन जाता है। क्षार श्रेणी के खाद्य खून तथा देह के तन्तुओं को साफ करते हैं। इसलिए खाद्यों में किशमिश का अंश रहने से देह की रोग प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है।

बहुत वर्ष पहले चरक ने कहा था कि फलों में किशमिश ही श्रेष्ठ है तथा बहुत प्राचीन काल से यह भारतवर्ष में विभिन्न रोगों में औषध के रूप में व्यवहृत होती आ रही है। यूरोप में भी विभिन्न पुराने रोगों में सिर्फ किशमिश खा कर रहने की व्यवस्था है। यह एक तरह की चिकित्सा है। इसे अंग्रेजी में "रेइसिम क्योर" कहते हैं। इसे कम से कम एक महीना ग्रहण करने से देह से रोग-विष जैसे शीघ्र बाहर हो जाता है उसी तरह देह जल्द बन जाती है।

विभिन्न प्रकार से किशमिश ग्रहण की जा सकती है। इसे ग्रहण करने का सबसे अच्छा तरीका है रात में ठंडे पानी में किशमिशों को भिगो रखकर दूसरे दिन सुबह उसे ग्रहण करना। एक पाव किशमिश पानी में फूलकर करीब पांच पाव में परिणत हो जाती है। इसलिए अंगूर की तुलना में किशमिश बहुत सस्ती है। फिर भी अंगूर से यह बहुत सुपाच्य है।

इसे प्रतिदिन दूध या दही के साथ खाया जा सकता है। दूध में यथेष्ट परिमाण में प्रोटीन तथा किशमिश में शक्कर रहती है। जब यह दो खाद्य एक साथ मिलाकर खाये जाते हैं तब यह एक मूल्यवान खाद्य में परिणत हो जाते हैं। जब परिपाक यन्त्रों को विश्राम देना तथा देह को यथेष्ट परिमाण में पुष्टिकर खाद्य परिवेशन करना आवश्यक होता है, जब जरूरत होती है मूत्र यन्त्र का काम अच्छा करने की और जब फेफड़ा की मेहनत घटाने की आवश्यकता हो तब यह एक बहुत हितकर खाद्य का स्थान ग्रहण कर सकता है।

आवश्यक होने पर किशमिशों को दूध के भीतर डालकर उबालकर भी खाया जा सकता है। किशमिश उबालकर खाने से उसे और पानी में भिगोने की आवश्यकता नहीं होती। जिन लोगों की परिपाक क्षमता सबल है वे किसी भी तरह से किशमिश ग्रहण कर सकते हैं।

छेना के साथ किशमिश खाई जा सकती है। चीनी के साथ गृहीत छेना से यह बहुत अधिक उपकारी है।

किशमिश काजू बादाम या मुंगफली के साथ ग्रहण की जा सकती है। इससे खाद्य यथेष्ठ रूप से समृद्ध होता है। क्योंकि विभिन्न बादामों के भीतर प्रतिशत करीब २० अंश प्रोटीन रहता है। सलाद के साथ किशमिश बहुत अच्छी तरह ग्रहण की जा सकती है। टमाटर, धनियां-पत्ता, बिट, गाजर, खीरा तथा पियाज आदि से सलाद बनाकर उसमें कुछ किशमिश छोड़ देने से वह अत्यन्त हितकर तथा मुंह-रोचक खाद्य होता है।

किसी भी भाजी के साथ किशमिश दी जा सकती है। इससे सिर्फ खाद्य स्वादिष्ट ही नहीं होता है। बल्कि इसका खाद्य-मूल्य भी बहुत बढ़ जाता है।

—डा० कुलरञ्जन मुखर्जी
प्राकृतिक चिकित्सालय
११४/२ हाजरा रोड, कलकत्ता २६

परीक्षित प्रयोग

लक्ष्मी रसायन—

सोना गेरू	ऽ=
सतगिलोय	ऽ–
फिटकिरी लाल का फूला	ऽ=
प्रवालपिष्टी	२॥ तोला
कौड़ीभस्म	२॥ तोला
वंशलोचन	२॥ तोला
छोटी इलायची दाना	१। तोला
कपूर देशी	२॥ तोला
खूबकला	२॥ तोला
नागरमोथा चूर्ण	२॥ तोला

—सभी वस्तुओं को क्रमशः भृङ्गराज के रस, खस का क्वाथ, गिलोय का रस, चन्दन का क्वाथ की लगातार ३-३ भावना देवें। छाया में सुखाकर सुरक्षित रखें।

गुण—अशक्ति, प्रदर, रक्तार्श, हृदवेदना, रक्त प्रदर, घबराहट, पित्तज ज्वर, शिरोवेदना, पितोष्मा, अनिद्रा आदि रोग नष्ट होते हैं। बच्चों को पुष्टि करने वाला अद्वितीय रसायन है। बढ़े हुए बुखार को फौरन १-२ डिग्री कम करता है।

अनुपान—शहद, शर्बत बनफशा, शर्बत गाजवां, खमीरा गाजवां या दूध से।

अनन्त प्रभा—

(अनन्त गुणकारी)

संगजराहत पिसा हुआ	१ सेर
सोना गेरू	५ तोला
फिटकिरी फूला	५ तोला
प्रवालभस्म	५ तोला

—सब वस्तुओं को कपड़छनकर रख लेवें।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक पानी दूध या अन्य पेय पदार्थ से। अनुपान भेद से विशेष गुणकारी प्रमाणित हुआ है।

गुण—प्रदर, रक्त प्रदर, रक्तार्श, खून का गिरना, घाव लग जाना, नक्सीर पर शीघ्र लाभ करता है, बाह्य रूप से लगाने के भी काम आता है। उपदंश, खुजली, व्रण, कट जाने पर सूखा लगाना चाहिये फौरन खून बन्द होता है। गर्मी में अलाई निकलने पर शरीर पर लगावें शान्ति मिलती है। दान्तों के रोग पायोरिया, मवाद जाना दूर होकर दान्त चमकीले होते हैं। बहते हुए कान के मवाद को रोकता है। आई हुई आंख पर मलाई के साथ पट्टी बांधनी चाहिए।

लक्ष्मी अभय कल्प—

(अनेक रोग नाशक)

बड़ी हर्र का छिलका	१॥ सेर
पानी	२० सेर
गुड़ पुराना	१० सेर

—एक बड़े बर्तन में पकावें चौथाई जल रहने पर छान लेवें। बाद में—

पोटाश आयोडायड	१ औंस
सल्फूरिक एसिड	½ औंस

—डालकर शीशियों में रखें।

मात्रा—१-१ औंस दवा दिन में तीन बार।

गुण—रक्त शोधक, अर्शनाशक, उदर व्याधि, गुल्म-शूल, चर्मरोग नाशक होने के साथ साथ कब्ज-कुशा है। उदर सम्बन्धी बीमारियों पर लगे

हाथ फायदा पहुँचाती है। मलेरिया ज्वर को दूर करती है। आजकल इसे हम रोग की प्रथम अवस्था में देना प्रारम्भ कर देते हैं, काला नमक मिलाकर गुल्मशूल एवं कास श्वास पर लाभ होता है।

श्री लक्ष्मी चूर्ण—

(स्त्री रोगों पर)

चिकनी सुपारी कमरकस धाय के फूल
राल शतावरी
—प्रत्येक १-१ छटांक
मिश्री २५ तोला

—पीस कूटकर छान लेवें।

मात्रा, अनुपान—३-३ माशा दवा चावल के पानी दूध, घी-दूध, अशोक क्वाथ, मक्खन, या मावा से लेवें।

गुण-लाल, पीला, सफेद प्रदर, कटिशूल, पार्श्वशूल, मासिक धर्म की रुकावटें, समय पर न आना, कम ज्यादा होना, सन्तान का अभाव, सन्तान का बार बार मर जाना, गर्भस्राव, रक्तस्राव, आदि समस्त स्त्री रोगों पर लाभ करता है। चिकित्सा में सन्तोष से काम लेना चाहिए नियम से लाभ होगा।

—वैद्य पं० लक्ष्मीचन्द जमौरिया स्नेही
श्री परमार्थ जैन औषधालय
नजीराबाद (राज०)

+ \+ \+

फकीरी नुस्खे

१. बांझ स्त्री को भी बच्चे होने की दवा—

उलटकम्बल या सनकपास के बीज की छाल ३ माशा और १४ काली मिर्च को ४ घंटे तक खरल में घोटें तो दवा तैयार हो जायगी, यह एक मात्रा है।

मासिक धर्म के समय शहद के साथ लें। ५-६ महीने के प्रयोग से गर्भ धारण करने की क्षमता अवश्य हो जायगी। इससे मासिक धर्म के तमाम रोग भी ठीक हो जाते हैं।

२. पागलपन—

बिनौले के फूल के शर्बत के १ माह के सेवन से पागलपन ठीक हो जाता है।

३. पथरी की दवा—

१—करमकल्ला की जड़ को जलाकर उसकी ३ माशा मात्रा दिन में दो बार लेवें।

२—१६ ग्रेन जवाखार ५ तोला टिण्डे (ढेंड्स) के रस में लेवें।

४. पीलिया की दवा—

रोजाना ५ तोला खिरनी के पेड़ की अन्दर की छाल बारीक पीस कर ३ बार पानी से सेवन करने से पीलिया अच्छा हो जाता है।

५. आसानी से बच्चा पैदा करना—

जब बच्चा होने का दर्द शुरू होवे तो अपामार्ग की जड़ कच्चे डोरे से कमर में बांधने से बच्चा आसानी से हो जाता है। बच्चा पैदा होते ही उसे खोल देना चाहिये।

६. मासिक धर्म की बीमारियां—

(देर से कम मासिक धर्म होने पर)

१. एक छिछले बरतन में डिस्टिल्ड वाटर और आधा औंस जलधनियां की जड़ का रस रख कर पीले शीशे से ढंक कर धूप में ७ घंटे रक्खें। यही पानी छान कर बोतल में रखलें और दिन में ३ बार एक-एक औंस पिलावें।

२. दूसरे छिछले बरतन में डिस्टिल्ड वाटर और आधा औंस काले धतूरे के बीज रख कर लाल शीशे से ढंक कर ८ घंटे धूप में रक्खें। इसे भी छान कर रखलें। इस पानी में तौलिया भिगो कर पेट की नाभी को १५ मिनट तक रोजाना दो बार रगड़ें।

यह दवा स्त्रियों के हर मासिक धर्म के रोग में बहुत लाभप्रद प्रमाणित हुई है जिन्हें कम मासिक

धर्म देर से होता है।

जिन्हें अधिक मासिक धर्म होवे उन्हें पीले शीशे के बदले हल्के नीले शीशे से पीने और रगड़ने की दवा बनानी चाहिये। जड़ियां उपरोक्त ही होंगी।

७, ल्यूकोरिया की दवा—

१. एक तोला आंवले का रस, १ तोला शतावर का रस और १ तोला मूली का रस २ तोला शहद में मिला कर दिन में दो बार लेवें।

२. सफेद चंदन का बुरादा १ तोला, दूब का रस २ तोला को शहद २ तोला में.मिलाकर रोजाना लेवें।

ब्रह्मचर्य से महीने भर रहें। ल्यूकोरिया ठीक हो जावेगा।

८. बवासीर की दवा –

१२ औंस की हल्के नीले रंग की शीशी में १ औंस पिसी रुद्रवन्ती की जड़ और बाकी पानी से भर कर उसे ४ दिन तक धूप में रक्खें। बाद में पानी छान लें, दवा तैयार हो जायगी। इस पानी से कपड़ा गीला करके मस्सों को रोजाना ४ बार धोवें। गुड़ अनुमानतः गोली बनाने लायक प्रमाण में लें।

खूनी और बादी बवासीर में खाने की दवा—

१. चार सेर पानी में एक सेर नीम की पत्तियां उबालें। जब पानी ३ पाव रह जाय तो पत्तियों को पानी में मसलकर कपड़े से वह पानी छान लें। फिर उस पानी को मिट्टी के बरतन में रख कर सुखा लें। सूखने पर जो रह जाय उसमें नीम के बीज की छाल उतनी ही मिलाकर ३ साल पुराना गुड़ मिलाकर मटर के बराबर गोलियां बना लेवें रातको सोते समय ३ गोली खाकर पाव भर दूध पीवें।

२. छोटी दुद्धी और डोंडे का छिलका बराबर लेकर खूब बारीक पीस लें। इसे शहद से मामूली गीली करके मटर के बराबर गोलियां बना लें। रोजाना सुबह दो गोली खाकर पाव भर दूध पीवें। इससे दोनों प्रकार की बवासीर रोग अच्छा होता है।

कब्ज होवे तो सफेद तिल पानी में भिगोकर खंडसारी खांड में बराबर मिलाकर रात को २ औंस खावें।

९. क्षीण शक्ति नपुंसकता और अपूर्व शक्ति की दवा-

एक तोला शुद्ध किये हुये पारे को पाव भर काले धतूरे के फूल में घोटें और फिर पाव भर शंखपुष्पी के रस में घोटें। फिर एक मिट्टी की हांडी में कलमीशोरा भरकर उसके बीच में वह पारा रक्खें। मिट्टी की हांडी को कपड़मिट्टी करके गजपुट में आरणा छानों से आंच देवें। भस्म तैयार होजायगी। उस भस्म को पानी में डाल देने से शोरा गल जायगा और पारा भस्म बन जायगा।

उस भस्म को पहले दस तोला खडसारी खांड में ६ घंटे खरल करके फिर आंवले के पाव भर रस में इतना खरल करें कि लेप जैसा बन जाय उसे छाया में सुखा देवें। दवा तैयार हो जायगी। रोज १ रत्ती दवा मक्खन या मलाई के साथ सुबह खावें। २१ दिन के सेवन पर इसका चमत्कार दृष्टिगोचर होने लगता है।

दूध, घी, मक्खन, क्रीम, दही, फल और मेवे अधिकतर सेवन करें और ४० दिन ब्रह्मचर्य रक्खें!

—श्री प्यारे मोहनलाल,
चांदपोल बाजार, जयपुर सिटी।

× × ×

मधुमेह, प्रमेह, कास तथा निर्बलता के लिये-

बादाम की मींग	S≡
बड़ी दाख	S।
कूजा की मिश्री	S।
छुआरा (गुठली निकाल कर)	S।
ईसबगोल की भूसी	१½ तोला
अश्वगंध	१½ तोला
विधारा	१½ तोला
शुद्ध कोंच के बीज	१ तोला
शिलाजीत शुद्ध	१ तोला
सिखाव° की जड़ का रस	२ तोला

°शिखावली (शंखपुष्पी)

विधि—बादाम को दूध में पीस कर रखलें फिर ईसबगोल की भूसी को भूंज लें तथा कोंच के बीजों को भी पीस कर रख लें। अश्वगंध, विधारा को खूब पीस तथा छान कर रख लें। उपरोक्त औषधियों को खरल में रख कर कम से कम १० घण्टे कूटे। बाद में निम्न औषधियों को मिलाकर घोंटता रहे जब सब औषधियां मिल जावें फिर शुद्ध गाय का घी १० तोला कांच के जार में डालें।

अभ्रक	१/२ तोला
चांदी के वर्क	१ १/२ तोला
असली केशर	३ माषा
तुलसी के पत्तों का रस	१/२ तोला

—इन सब को कम से कम २ घण्टे घोंटे, उपरोक्त दवा में घोंट कर बाद में पेड़ा बना कर उसी जार में जिसमें घी है रखता जावे।

प्रयोग—प्रातः और सायं १-१ पेड़ा का सेवन करे, ऊपर से श्यामा गाय का दूध ऽ॥ सेर सेवन करे कुछ ही दिनों में उपरोक्त रोग नष्ट होजायगा। तथा चेहरे का रङ्ग बदल जायगा।

निषेध—गुड़, मिर्च, खटाई, तैल तथा स्त्री प्रसङ्ग।

बिच्छू का विष दूर करना—

—जमाल गोटा को पीस कर जहां पर बिच्छू ने काटा हो मल दे फिर नौसादर, हरताल इनको पानी में पीस कर दंश स्थान पर लेप करदे। शीघ्र ही आराम होगा।

बिवाई की दवा—

—गुड़ और शहद को मिलाकर गर्म करे फिर लगावे, लगाने से शीघ्र आराम होगा।

अम्लपित्त पर—

—आध पाव गुड़, आध पाव पीपल कपड़छान कर उसी गुड़ में मिला कर एक डब्बा में रख ले फिर प्रति दिन सवेरे सेवन करे। कुछ दिनों में अवश्य लाभ होगा। परीक्षित है।

—आचार्य शालिग्राम चतुर्वेदी विशारद,
राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय
कोटर (सतना)

+ + +

मुंह के छालों (मुखपाक) पर—

—तूतिया पीस कर कढ़ाही में डालकर आंच पर रखें, जब आंच देते हुए तूतिया का रङ्ग कुछ काला सा होजावे तो निकाल कर शीशी में रखलें। इसमें से एक रत्ती दवा लगे पान में रखकर खिलावें और पान की पीक जो आवे उसको रोगी थूकता जावे पीक निगली नहीं जावेगी। प्रातः सायं दो बार दिन में प्रयोग करें। दो ही मात्रा से छाले ठीक होजाते हैं पान में सुपारी नहीं रखें तथा चूना कम लगाया जावे। यह दवा बड़ी उम्र वालों पर प्रयोग करें जो थूक सकें बच्चों पर नहीं।

बच्चों के दस्तों (अतिसार) पर—

—कपूर रस १/८ से १/४ रत्ती तक आयु अनुसार रस पर्पटी १/४ से १/२ रत्ती तक खटिकादि चूर्ण २ से ४ रत्ती तक सुहागे का फूला आधी से १ रत्ती तक शंख भस्म आधी से एक रत्ती तक मिलालें, यह एक मात्रा है। ऐसी १-१ मात्रा ४-४ घण्टे बाद मां के दूध तथा मधु से दें। इससे बच्चों के हरे पीले सभी प्रकार के दस्त फौरन बन्द होजाते हैं। ३-४ मात्रा से अधिक की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिन बच्चों को महीनों से अतिसार था और एलोपैथिक, होमियोपैथिक इलाज से लाभ नहीं हुआ वे भी इससे ठीक होगये।

खटिकादि चूर्ण—खड़िया उत्तम २॥ तोला, दालचीनी १। तोला, बड़ी इलायची के दाने तीन माशे, लौंग ३ माशा, जायफल १ तोला, शक्कर

५ तोला लेकर कपड़छन चूर्ण करलें। यही उपरोक्त योग में मिलाया जावेगा।

उपरोक्त योग में कपूर रस सम्मिलित है उसमें १ रत्ती में १/६ रत्ती अफीम होती है अतः इसकी मात्रा रोगी को आयु तथा बलानुसार निश्चित करनी चाहिए।

अतिसार पर—

—शङ्खवटी १ गोली, कपूर रस १ रत्ती मिलाकर ४-४ घण्टे बाद जल से प्रयोग करें। प्रथम मात्रा में ही अतिसार, अजीर्ण, पेट में दर्द आदि दूर होजाता है। यह मात्रा बड़ों के लिये है, बच्चों को वयानुसार दें।

पिष्ट प्रमेह पर—

—चन्द्रप्रभावटी १-१ गोली प्रातः सायं दारुहल्दी व हल्दी के काढ़े के साथ देने से मूत्र के साथ जो चूने सा पदार्थ (जिसको फास्फेट जाना भी कहते हैं) जाता हो उसको बहुत शीघ्र ठीक करती है। कई रोगियों पर प्रयोग की गई, सबको लाभ हुआ।

—वैद्य दरबारीलाल आयु० भिषक्

फतेहगढ़ (उ० प्र०)

+ + +

पूर्व प्रकाशित २ सफल प्रयोग

रोचक चूर्ण—

[धन्वन्तरि वर्ष ११ पृष्ठ ७१२]

जीरासफेद ४ तो., सोंचर लवण ३ तो., कालीमिर्च ३ तोला, सेंधा लवण ४ तोला, सत्व निम्बु (टाटरी) १॥ तोला, पिपरमेंट २ रत्ती, नौसादर ३ माशा इन्हें वस्त्रपूत कर शीशी में रखें।

मात्रा—२ रत्ती। जरा जरा करके चाटें फांके नहीं, फांकने से कास पैदा हो जाती है।

गुण—भूख खूब लगाता और खाना शीघ्र पाचन करता है, खाने में अत्यन्त स्वादिष्ट है।

जुलाब के लिये—

['धन्वन्तरि' वर्ष १२ पृष्ठ ७१० योग नं० १५५६]

सौंफ, गुलबनफ्शा, गुलाब के फूल, मुनक्का, उसारेरेवन, मिश्री, हर्र, कालानमक प्रत्येक १-१ तोला लेकर कपड़छान कर अमलतास के काढ़े में ६-६ माशा की गोली बनावें।

व्यवहार—एक गोली प्रातः खाकर ऊपर से गरम जल पिलावें।

गुण—५-६ दस्त होते हैं। गर्मी व बैचेनी नहीं करता। पेट साफ होजाता है।

—वैद्य दरबारीलाल आयु० भिषक

फतेहगढ़ (उ० प्र०)

+ + +

लाइसेन्स नं. I./S. G./P.

आयुर्वेदिक यूनानी एवं होम्यो इंजेक्शन

"सरकारी द्वारा मान्यता प्राप्त"

वैज्ञानिक रसायनशाला में सरकारी मान्यता प्राप्त वैज्ञानिकों केमिष्टों की देख रेख में निर्मित होते हैं, आधुनिक एयर-कण्डीसन विद्युत् यन्त्रों से सुसज्जित विशुद्ध प्रामाणिक, निरापद आशुगुणकारी और पूर्ण लाभकारी होने की हम गारण्टी देते हैं। चमत्कारी इञ्जेक्शनों की परीक्षा प्रार्थनीय है। सूचीपत्र मुफ्त प्राप्त करें। हर जगह एजेन्टों की आवश्यकता है।

एक मात्र विश्वसनीय निर्माण शाला—

बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक यूनानी फार्मेसियूटीकल वर्क्स एण्ड ट्रेनिंगसेन्टर, मानिक चौक झांसी।

केन्द्रीय सरकार और देशी चिकित्सासंद्धांतियां

लेखक—श्री राजवैद्य सुधनवा

विज्ञ पाठकों को सुविदित है कि हमारे देश का यह सौभाग्य एवं गौरव रहा है कि संसार के हितार्थ स्वास्थ्य विज्ञान या जीवन-स्वास्थ्य-ज्ञान का आदि नाद वेदों द्वारा सर्व प्रथम इस देश में ऋषियों ने दिया। ऐतिहासिक विद्वान इस सचाई के पूर्णतया समर्थक हैं कि अथर्ववेद के उपवेद से आयुर्वेद विज्ञान की उत्पत्ति हुई। आयुर्वेद-ज्ञान इसी देश से भारत के पूर्व पश्चिम दक्षिण एवं उत्तर के पड़ौसी देशों में भिन्न भिन्न समयों में फैला। बौद्धकाल से पूर्व तक का आयुर्वेद शास्त्र जड़ी बूटियां द्वारा की जाने वाली चिकित्सा प्रधान रहा।

बौद्ध भिक्षुओं ने अपने धर्म प्रचार के हेतु इस शास्त्र को सीखा और इसी विज्ञान की सहायता से लंका, चीन, काबुल, अफगानिस्तान, पामेर, नेपाल, तिव्बत के कठिन से कठिन पहाड़ी दर्रों को पार कर सुदूर रूस देश के साईबेरिया प्रांत तक पहुंचे। बौद्ध भिक्षुओं की सर्वलोकहितायवादी धार्मिक प्रचार लालसा को सिद्धि की सीमा तक पहुंचाने का श्रेय उनकी आयुर्वेद विज्ञान की सहायता को था जिसके द्वारा वे अपनी संस्कृति को इन देश देशान्तरों में जाकर फैला सके।

इसी प्रकार भारत देश से अरेबिया, इराक, ईरान, आदि देशों में आयुर्वेद विज्ञान फैला, और वहां से यूरोप के यूनान देश में पहुंचा। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिकों द्वारा स्वास्थ्य-विज्ञान पर वैज्ञानिक एवं तात्त्विक गवेषणाऐं की गईं और यूनान से यही विज्ञान पुनः दो दिशाओं में फैल गया-एक तरफ यूरोप में गया और दूसरी दिशा अरब के खलीफाओं द्वारा पुनः उनके देश में यूनानी-चिकित्सा विज्ञान के नाम से अरबी भाषा में संकलित एवं परिसंस्कारित होकर प्रसिद्ध हुआ। अरब देश के खलीफाओं के दरबारों में भारत देश के बनारस एवं तक्षशिला विश्व-विद्यालयों के अनेक विद्वान् वैद्य सादर आमंत्रित किए गए थे। उस काल में भारत देश और अरब देश में शरीर शास्त्र विज्ञान के आदान प्रदान विशेष हुए। आयुर्वेद विज्ञान का यह एक उज्वल युग था।

बौद्ध काल के समकालीन युग में जैन, सिद्ध और नाथ सम्प्रदायों के विद्वान संतों द्वारा आयुर्वेद विज्ञान में पारद, गंधक, रजत, ताम्र, लोह आदि धातु भस्मों की चिकित्सा का नव-प्रवेश हुआ जिसे देश के वैद्य-सम्प्रदाय ने सहर्ष स्वीकार किया। यहीं से रस चिकित्सा की नींव पड़ी। चरक संहिता की ब्राह्मी चिकित्सा में रस-चिकित्सा का समन्वय वैद्य एवं प्रजा दोनों को वांछित लगा। सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय के विद्वानों ने ही रस चिकित्सा के अतिरिक्त पारद ताम्र रजत द्वारा सुवर्ण बनाने की विधियों का भी आविष्कार किया और उसे एक अत्यंत गोपनीय मंत्र के रूप में रखा। यह स्वर्ण बनाने की कीमियागिरि की विद्या इसी देश से अरब के खलीफाओं ने चाही और भारतीय सिद्धों द्वारा सीखी-इस विद्या की सनक अनेक वर्षों तक उनको सताती रही, सारांश यह कि इस देश द्वारा उत्पन्न आयुर्वेद विज्ञान का प्रसार और प्रचार संसार के भिन्न-भिन्न देशों में भारत देश से फैला। यह शास्त्र सदा से प्रगतिशील रहा है। इस शास्त्र में नए नए विज्ञानों का आदान प्रदान सदा से स्वीकृत किया गया है। बंगाल की राजधानी कलकत्ता में सम्पन्न एक स्वागत गोष्ठी में भाषण देते हुए बंगाल के भूतपूर्व राज्य-पाल श्री चक्रवर्ती राजा गोपालाचार्य जी ने ठीक ही कहा था कि "सचाई सदा से एक ही रही है। सच और रूप में भेद हुआ करता है। सचाई और सचाई

में कभी भेद नहीं होता। आयुर्वेद विज्ञान इस देश में पैदा हुआ और इसी देश से संसार के भिन्न-भिन्न भागों में फैला। वहां के विद्वानों ने इस शास्त्र की सचाइयों को जाना और परखा। संसार की भिन्न-भिन्न चिकित्सा पद्धतियों में इसी कारण एक ही सचाई का आधार विद्यमान है। सत्य के अन्वेषी विद्यार्थी के लिए आयुर्वेद विज्ञान के आधारभूत सत्य को सदा दृष्टि के सामने रखते हुए अन्वेषण एवं गवेषणा के कार्यक्रम को बढ़ावा देना चाहिए। भारत से पूर्व काल में गई हुई चिकित्सा पद्धतियां एक लम्बे, एतिहासिक चक्कर को काट कर पुनः इस देश में भिन्न-भिन्न नाम रूपों से लौटी हैं। इनके द्वारा राष्ट्र के स्वास्थ्य निर्माण में एक रूपता एवं समता के दृष्टिकोण को सदा अपनाना चाहिए। विभाग विद्रोह और विच्छेद की भावना से नहीं। देश के हित के लिये राष्ट्र में एक ऐसी चिकित्सा पद्धति की आवश्यकता है जिसमें सर्वगुण उपलब्ध हों और जो स्वदेशी होती हुई साथ में सर्वजनहितकारी सिद्ध हो सके। सरल और सस्ती होने के साथ-साथ सर्वजन-सुलभ होवे।

उक्त गुण देश की प्रचलित देसी चिकित्सा पद्धतियों में पाए जाते हैं। यूनानी तिब्ब चिकित्सा मुगल बादशाहों के साथ जब से भारत में आई तभी से इस देश की हो गई। इस चिकित्सा पद्धति का भारतीयकरण हो जाने के हेतु यह भारतीय संस्कृति की एक शाखा के रूप में आयुर्वेद के विज्ञान के साथ हिलमिल गई अतः देशी चिकित्सा ही बन गई। यहां यह संकेत रूप में लिखना आश्चर्य-जनक न होगा कि अंग्रेजी शासन के साथ आई ऐलोपैथी सदा से इस देश की भावनाओं से अलग अलग बनी रही और उसके द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले चिकित्सकवर्ग ने अपने आप को देश की संस्कृति से पृथक ही रखा और इस चिकित्सा पद्धति का भारतीयकरण न किया हालांकि ऐलोपैथी में वर्ती जाने वाली ८० प्रतिशत औषधियां भारत देश की उपज हैं। यह एक दुःख और क्षोभ का कारण है कि देश के डाक्टरों में यह सुबुद्धि आज तक नहीं आई कि वे एलोपैथिक चिकित्सा का भारतीयकरण करें और उसे यूनानी तिब्बी की तरह इस देश की पद्धति समझें और देश की अन्य पद्धतियों के साथ कदम मिलाकर चलें। देश से विदेशी शासक तो बिदा हुए परन्तु उनके सिखाए ऐलोपैथिक-डाक्टर चेले अभी तक पश्चिम उन्मुख हैं और पाकिस्तान के समान सदा अपनी नजर उधर लगाये रहते हैं। देश की सरकार भी दुर्भाग्य से इस अभारतीय दृष्टिकोण को हटाने में राष्ट्र का साथ नहीं दे रही और स्वराज प्राप्ति के १२ वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह एक अभारतीय-विदेशी चिकित्सा पद्धति को अपनाए जारही है। यह देश के लिए एक विचित्र-विधि-विडंबना रही कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें अपनी देशी चिकित्सा पद्धतियों का तिरस्कार कर उनके साथ सौतेली मां का सा अन्यायपूर्ण बर्त्ताव कर रही हैं और विदेशी चिकित्सा पद्धति को आर्थिक सहायता द्वारा सम्मानित करती जा रही हैं।

इस प्रांसागिक विवेचना के बाद पुनः उक्त विषय पर विचार करने पर यह सिद्ध हुआ कि देश के स्वास्थ्य, हित साधना के लिए देशी चिकित्सा पद्धतियों को उभारना, प्रगतिशील बनाना और उनके द्वारा राष्ट्र के स्वास्थ्य की योजनाएं चलाना देश की सरकार की अन्यतम जिम्मेवारी है।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद के काल पर दृष्टिपात करने पर पाठकों को स्पष्ट समझ आवेगा कि केन्द्र में स्वास्थ्य विभाग का अधिकार एक ऐसी महिला को सौंपा गया जिनकी विचारधारा विदेशी थी। श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर लगभग २० वर्ष तक केन्द्रीय स्वास्थ्य सचिवालय की निर्देशिका मन्त्राणी रहीं। इनके कार्यकाल में देशी चिकित्सा पद्धतियों की न सिर्फ अवांछनीय अन्यायपूर्ण उपेक्षा ही की गई अपितु देश के स्तर से इन पद्धतियां के नामो-

निशान को मिटाने की अराष्ट्रीय गर्हित कुयोजनाएं भी बनाई गईं।

सन् १९४६ के काल में केन्द्रीय स्वास्थ मन्त्री राजा गजनफर अली खां थे। वे मुसलिमलीगी पार्टी के थे। उन्होंने डा० चौपड़ा की अध्यक्षता में देश की भिन्न-भिन्न चिकित्सा पद्धतियों द्वारा देश का स्वास्थ्य स्तर किस प्रकार उन्नत किया जा सकता है और यह भारतीय चिकित्सा पद्धतियां इस दिशा में किस प्रकार सफल हो सकती भी हैं या नहीं? इत्यादि समस्याओं को हल करने के लिए उक्त कमेटी का सर्वप्रथम केन्द्र सरकार द्वारा आयोजन किया। यदि श्रीमती अमृतकौर का बस चलता तो वे इस प्रकार की कमेटी की योजना कभी न होने देतीं। उनकी बला से जब चौपड़ा कमेटी की रिपोर्ट बन कर तैयार हुई तब तक यह केन्द्र में स्वास्थ मन्त्राणी के पद पर आसीन हो चुकी थीं। उस समय इंडियन मेडिकल कोंसिल की सलाह से श्रीमती राजकुमारी जी ने डा० चौपड़ा कमेटी की आयुर्वेद समर्थक सिफारिशों को प्रभावहीन करने की निष्फल अनेक योजनाएं रचनीं प्रारम्भ करदीं। देश का वैद्य और यूनानी चिकित्सक वर्ग डा० चौपड़ा कमेटी की उपयोगी सिफारिशों का पूर्ण समर्थक बना और केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय की इस विषयक अनेक कुचालों एवं गोपनीय (कोनफिडेंशल) आदेशों एवं सरकारी विज्ञप्तियों के भी बाबजूद प्रान्तीय सरकारों द्वारा डा० चौपड़ा कमेटी की सिफारिशों को पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। सन १९५७ की बात है जब कि देहली में केन्द्रीय स्वास्थ मन्त्रालय द्वारा हेल्थ मिनिस्टरों की एक कानफ्रेंस इस विषयक बुलाई गई कि डा० चौपड़ा कमेटी की सिफारिशों पर केन्द्रीय सरकार क्या रुख अपनाए। विज्ञ पाठकों को विदित ही है कि कान्फ्रेंस के बहुमत ने अपना मत डा० चौपड़ा कमेटी की रिपोर्ट के पक्ष में दिया और यह प्रथम मौका था जबकि केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय सरकारों के आयुर्वेदीय पक्षपाती रुख के सन्मुख झुकना पड़ा। इसी स्वास्थ्य परिषद द्वारा यह भी निश्चय किया गया कि स्वास्थ के विषय के विस्तार की जिम्मेवरी भविष्य के लिए प्रान्तीय सरकार को दे दी जावे। केन्द्रीय स्वास्थ मन्त्रालय तो आयुर्वेद अनुसन्धान सम्बन्धी योजनाओं से ही सम्बन्ध रखेगा। सन् १९५० के बाद के समय में श्रीमती अमृतकौर के केन्द्रीय मन्त्रालय द्वारा अनेक देशी चिकित्सा को हानि पहुंचाने वाले बिलों, एवं कानूनों की सृष्टि की गई। इनमें से मुख्य मुख्य केन्द्रीय बिल यह हैं—ड्रगरुल्स एक्ट १९४५ टाइलेट प्रपेरेशन (एकसाईज ड्यूटी) एक्ट, डेंजरस एण्ड पाओजन्स ड्रग एक्ट, स्पिरिट्स मेडिसन एक्ट, ड्रग एंड मेजिक रेमेडी एक्ट १९५७ आदि।

इन सब कानूनों की सृष्टि श्रीमती राजकुमारी जी के कार्यकाल में ही केन्द्र द्वारा सम्पन्न हुई। इन सबके द्वारा भिन्न-भिन्न दिशाओं से देशी चिकित्सकों एवं देसी औषधि निर्माताओं पर भयानक कानूनी प्रहार किये गये। जब स्वास्थ का विषय प्रान्तीय सरकारों की साक्षात जिम्मेवरी का बता दिया गया और उन्हें इस विषय की कुल जिम्मेवरी सौंप दी गई, तब पुनः केन्दीय सरकार द्वारा इस प्रकार के देसी चिकित्सा के लिये अहितकारी कानून बनाकर उससे छेड़खानी करना एक अवैधानिक हंसी मजाक करने के समान अनुचित है। वैद्य वर्ग एवं हकीमों की समाज को इस प्रकार के प्रहारों को चुनौती देनी है और सर्व प्रकार से संगठित हो इनका मुकाबिला करना है। इन विविध प्रकार के कानूनों से देश का देशी चिकित्सक एवं देशी औषधि निर्माता बहुत परेशान एवं बेचैन है। इन परिस्थितियों से देशी चिकित्सा विज्ञान को ऊपर उभारना है। इस चक्रव्यूह का सफलतापूर्वक भेदन कर इस विज्ञान को स्वतन्त्र करना है। देश के चिकित्सक एवं फार्मेसी सम्प्रदाय को अपनी मोह निद्रा से जाग कमर बांधकर कर्मक्षेत्र में उतरना है। यह घातक प्रहार असह्य होते जा रहे हैं। इनका निराकरण होने से ही देशी चिकित्सा विज्ञान जीता जागता रह सकता है, वरना लापरवाही करने से मृत्यु

सामने खड़ी है।

इण्डियन मेडिकल कौंसिल की जमात देशी इलाज को इस देश में पनपता नहीं देखना चाहती यह न सिर्फ केन्द्र में अपितु देश के सब प्रान्तों में अपने गढ़ बनाकर ईसाई मेडिकल मिशनरियों के समान विज्ञान की रक्षा के नाम पर भिन्न-भिन्न मंचों से सांघातिक प्रहार हमारी चिकित्सा पद्धतियों पर कर रही है। देश के चिकित्सकों और औषधि निर्माताओं को जागरुक होकर इससे मोर्चा लेना चाहिए। यह शत्रु कभी प्रत्यक्ष और कभी सरकार के कन्धों पर बन्दूक रखकर प्रहार कर रहा है। आईए इसके प्रमाणरूप कुछ सामयिक उदाहरण आपके सन्मुख रखकर स्थिति को अधिक स्पष्टकरें।

पिछले दिनों राजधानी में स्वास्थ-मंत्रालय द्वारा प्रस्तुत एक असाधारण गजट दिनांक १७ जनवरी ५६ का ड्रगरुल्ज १६४५ में रजिस्टर्ड-मैडीकल प्रेकटिशनर की परिभाषा में संशोधन सम्बन्धी देखने में आया। इसके द्वारा रजिस्टर्ड मैडीकल प्रेकटिश्नर की श्रेणी में से देशी रजिस्टर्ड वैद्य हकीमों को निकाल बाहर करना था। जिससे यह लोग ड्रग रुल्स १६४५ की औषधियों को व्यवहार न कर सकें और यह सुविधा सिर्फ एकमात्र एलोपैथिक डाक्टरों तक ही सीमित रहे। ऐसे निकम्मे कार्य से देश के भिन्न भिन्न प्रान्तीय देशी चिकित्सा बोर्डों द्वारा रजिस्टर्ड वैद्य और हकीमों का रजिस्ट्रेशन स्वतः स्थगित एवं स्खलित होजाता है। इस गुप्त सरकारी गजट के विरुद्ध राजधानी के वैद्य हकीमों ने भरपूर हलचल की। पारलियामेंट के मेम्बरों से व्यक्तिशः तालमेल किया गया और उन्हें उक्त प्रस्तावित कार्यवाही के प्रभावों के फल से अवगत कराया गया। न जाने बैठे बिठाये इस छेड़खानी की स्वास्थ मंत्रालय के अधिकारियों को क्या सूझी। दिनांक २६ मार्च ५६ को लोकसभा नई दिल्ली में स्वास्थ मन्त्रालय का वार्षिक बजट पेश होने जा रहा था। इस मौके से पूर्व पर्याप्त रूप से दौड़ धूप करने का यह प्रभाव हो सका कि दिनांक २६ मार्च ५६ को लोकसभा में संसद सदस्यों के जोरदार भाषण इस सम्बन्ध में जब हुए तो स्वास्थ मन्त्री जी ने अपने भाषण में माना कि इस प्रकार का कोई भी संशोधन रजिस्टर्ड मैडिकल प्रेकिटशनर की परिभाषा में ऐसा न किया जायगा जिसके फल स्वरूप देशी चिकित्सा के रजिस्टर्ड वैद्य और हकीमों का बहिष्कार हो सके। भगवान् की कृपा से बला टली।

इसी प्रकार का एक दूसरा मौका राजधानी में दिनांक २१ और २२ अप्रैल १६५६ को राज्य सभा में देखा गया। यह समस्या तो पहिली से भी ज्यादह उग्र थी। भारतीय लोकसभा से स्वास्थ मन्त्रालय ने फार्मेसी एमेंडमेंट बिल १६५६ नाम से एक बिल इस आशय का पारित करा लिया जिसके द्वारा कम्पाउन्डरों, केमिस्ट और ड्रगिस्ट की दूकानों में काम करने वाले कर्मचारियों का रजिस्ट्रेशन सम्भव हो सके जिससे भविष्य में यह श्रेणी अधिक साक्षर, सुबोध और अनुभवी सुलभ हो। इस बिल के उद्देश्यों से किसी को भी मतभेद क्यों होने लगा। जाहिरा तौर पर बिल ठीक जचता था परन्तु इस बिल में एक न्यूनता ऐसी छिपी हुई देखी गई जिसके हेतु देशी रजिस्टर्ड चिकित्सक (वैद्य और हकीम) इस बिल के व्यवहार काल में अधिकारों से सर्वथा वंचित हो जाते थे जो कि एलोपैथी डाक्टरों, दांत चिकित्सकों और पशु चिकित्सक एलोपैथिक डाक्टरों को इस बिल की रूह से सुलभ होजाते थे। यह लोक सभा से पास शुदा बिल था, परन्तु अहितकारी था। फलतः पुनः स्थानीय वैद्य हकीमों ने पर्याप्त परिश्रम और उत्साह से काम किया, रात दिन दौड़ धूप कर राज्य सभा के मेम्बरों को सब समस्या को लाभ हानियों से अवगत कराया गया। राज्य सभा में इसी मामले पर श्री जेठालाल एच जोशी, श्री राजबहादुर और डा० सुब्बाराव, श्री मौलाना मियां फारुकी, श्री पाटिल आदि संसद सदस्यों के युक्त पूर्वभाषण हुए। श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल का भाषण

शेषांश पृष्ठ ७५० पर।

समाचार एवं सूचनाएँ

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की—

नवनिर्वाचित कार्य समिति का प्रथमाधिवेशन

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की नवनिर्वाचित कार्य समिति का प्रथमाधिवेशन श्री माधव आयुर्वेदिक चिकित्सालय जोधपुर में दिनांक २५ जून ५६ को श्री आचार्य नित्यानन्द जी के सभापतित्व में प्रारम्भ हुआ। राज्य के विभिन्न जिलों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। उदयपुर के महंत श्री गंगादास जी के स्वर्गवास पर शोक प्रस्ताव के बाद निम्न महत्वपूर्ण निर्णय हुये—

१—सम्मेलन के स्थाई कार्यालय के लिये भूमि ग्रहण करने के लिये वैद्यराज श्री मोहनलाल जी आयुर्वेदाचार्य संयुक्त मंत्री के संयोजकत्व में तथा अर्थ संग्रह के लिये वैद्यराज सीताराम जी मिश्र, उपाध्यक्ष के संयोजकत्व में उपसमितियां बनीं।

२—आयुर्वेदोन्नति के लिये सरकार के पास भेजे जाने वाले प्रस्तावों को क्रियान्वित करने के लिये वैद्यराज श्री बहादुरसिंह जी एम० एल० सी० के संयोजकत्व में उप समिति बनी।

३—सम्मेलन की जिला सभाओं का संगठन और भी दृढ़ करने का निश्चय हुआ।

४—भारत विख्यात वैद्यराज श्री मणिराम जी महाराज की हीरक जयन्ती मनाने के सम्बन्ध में एक समिति का निर्माण हुआ।

५—राजस्थानी बनौषधियों का निघंटु शास्त्र ग्रन्थ बनाया जाये।

६—स्त्रियों में आयुर्वेद शिक्षा को प्रोत्साहन देने के उपायों पर विचार हुआ।

७—राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन पत्रिका को आत्म निर्भर बनाने के लिये कविराज परमानन्द जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य के संयोजकत्व में एक समिति बनाई गई तथा सम्पादक मंडल के परामर्श से पत्रिका को उन्नत करने का निश्चय हुआ।

८—आयुर्वेदीय वातावरण के लिये श्री अध्यक्ष महोदय प्रदेश के विभिन्न भागों का दौरा करेंगे।

९—कार्य समिति का द्वितीयाधिवेशन दिल्ली में तथा तृतीयाधिवेशन पाली में होगा।

१०—निर्णय हुआ कि नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन को आगामी अधिवेशन उदयपुर में करने का निमन्त्रण भेजा जाये। —प्रधान मंत्री।

× × ×

आयुर्वेद सम्मेलन सम्पन्न—

हरिद्वार १५-४-५६। कन्या गुरुकुल कनखल के २५ वें उत्सव पर आयुर्वेद सम्मेलन १२-४-५६ को डा० अनन्तानन्द जी की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम वैद्य योगेन्द्रपाल शास्त्री-मुख्याधिष्ठाता कन्यागुरुकुल ने प्रस्ताविक भाषण दिया। अन्य विद्वानों के भाषणोपरान्त पं० रामनाथ आयुर्वेदाचार्य प्रोफेसर-आयुर्वेद कालिज गुरुकुल कांगड़ी ने नारियों के लिये आयुर्वेद की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। तदनन्तर वैद्य बाबूराम जी ऋषिकुल ने पाक विधि पर विचार प्रकट किये। अन्त में कन्या गुरुकुल के संस्थापक डा० संसार सिंह जी ने विशुद्धायुर्वेद के सम्बन्ध में अपने विचार रखे।

हरिद्वार १५-४-५६। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्वर्ण जयन्ती पर आयोजित आयुर्वेद सम्मेलन १५-४-५६ को स्वामी दयानिधि जी ऋषिकेश के सभापतित्व में हुआ। भारी भीड़ के समक्ष सभापति भाषणोपरान्त वैद्य रामनाथ आयुर्वेदाचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने सार-

गर्भित भाषण देते हुये सरकार से आयुर्वेद की राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित करने की अपील की। तदनन्तर वैद्य श्री अमरनाथ देहरादून प्रधान मन्त्री उ० प्र० वैद्य सम्मेलन एवं गुरुकुल ज्वालापुर के कुलपति श्री नरदेव जी शास्त्री के रोचक व सारगर्भित भाषण हुये।

+ \+ \+

उत्तर प्रदेश में समस्त रजिस्टर्ड वैद्यों तथा हकीमों से

प्रार्थना

जिन वैद्यों तथा हकीमों ने अपने कार्यस्थल के पते भेजे हैं उनको मैं हार्दिक बधाई देता हूं। इस विषय में प्रगति अवश्य हुई है परन्तु यथा वांछित प्रगति में अद्यावधि अभाव सा है। जिन महानुभावों ने पते भेजने का कष्ट उठाया है वे अभी कार्यालय से उत्तर पाने की आशा न करें। पते ठीक करने के उपरान्त कार्यालय जिनकी सूचना पाने में असमर्थ रहेगा, उन महानुभावों के नाम उसी पत्र में जिलेवार पुनः मुद्रित कराये जायेंगे। हकीम तथा वैद्य महानुभावों से आशा है कि वे अपने अपने पते उर्दू अथवा हिन्दी भाषा में (स्पष्ट अक्षरों में) निम्न प्रपत्र पर देने की कृपा शीघ्र करें। हमारे प्राचीन रजिस्टर जिनसे गत एलक्टररोल मुद्रित हुए थे, अंग्रेजी से ही हिन्दी में रूपान्तरित किये गये थे जिससे मात्राओं तथा व्यञ्जनों की अशुद्धता उनमें प्रायः दृष्टिगोचर होती है। अतः आंग्ल भाषा प्रेमी वैद्यों तथा हकीमों से विशेष अनुरोध है कि वे पुनः कार्यालय को अशुद्ध लिखने के लिये बाध्य न करें।

प्रपत्र

१. नाम वैद्य/हकीम
२. पिता का नाम
३. रजिस्ट्रेशन नम्बर

प्राचीन पता

१. औषधालय का नाम—
२. स्थान—
३. पत्रालय—
४. जिला—

नवीन पता

१. औषधालय का नाम--
२. स्थान--
३. पत्रालय--
४. जिला--

--रजिस्ट्रार

× × ×

दिल्ली। ४३ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के स्वागत समिति के सदस्य गणों ने सूचित किया है कि-"देहली के वैद्य समाज ने महासम्मेलन के ४३ वें वार्षिक अधिवेशन को दिल्ली में आमंत्रित किया। सम्मेलन सफलतार्थ स्वागत समिति ने हर सम्भव उपाय किया। राष्ट्रपति महोदय ने उसका उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया था। परन्तु बम्बई तथा नागपुर के वैद्य महानुभावों ने न्यायालय की शरण लेकर हमारे कार्य में बाधा उपस्थित करदी। इतना ही नहीं प्रत्युत नागपुर और दिल्ली में होने वाली स्थायी समिति तथा कानपुर में कार्य कारिणी समिति के अधिवेशनों को भी उन्होंने स्थगनादेश से स्थगित करा दिया है। ऐसी स्थिति में आयुर्वेद के लिये यह संकटकाल है। अतः हम भारत के वैद्य समाज से प्रार्थना करते है कि वह अपने प्रभाव को उपयोग में लाकर सम्मेलन के वर्त्तमान गत्यवरोध को दूर कर किसी प्रकार भी इस क्षुब्ध एवं अस्वस्थ वातावरण से संस्था को मुक्त करा कर आयुर्वेदोन्नति के पुण्य कार्य में सहयोग के भागी बनें।"

--स्वागत समिति के सदस्यगण

+ \+ \+

नवीन सत्र के लिये प्रवेश—

सरदारशहर। आयुर्वेद विश्वभारती ग्रामज्योति केन्द्र के सरकारी मान्यता प्राप्त आयुर्वेद विशेष योग्यता पाठ्यक्रम रिफ्रेसर कोर्स एवं भिषग्वर कोर्स के नये सत्र की भर्ती १ जौलाई १६५६ से होगी। मान्य संस्थाओं से उत्तीर्ण व पंजीकृत वैद्य प्रवेश पा सकेंगे। छात्रावास, पुस्तकालय,

आतुरालय, रसायनशाला, शवच्छेद आदि की समुचित व्यवस्था है। योग्य एवं अभाव ग्रस्त छात्रों को छात्रवृति दी जावेगी। नियमावली के लिये ६२ नए पैसे का मनीयार्डर भेजिए।

—वैद्य मणीराम शर्मा, प्रिंसीपल।

+ + +

सीकर (राज०) श्री परशुरामपुरिया राजस्थान आयुर्वेदिक कालेज सीकर का नवीन सत्र सन् ५९ की ७ जौलाई से प्रारम्भ होगा। प्रवेशार्थियों को शीघ्र अपना स्थान सुरक्षित करवा लेना चाहिए। प्रवेश योग्यता मध्यमा उपाध्याय संस्कृत से मैट्रिक या अन्य तत्सम परीक्षा अपेक्षित है।

यहां आतुरालय, औषधालय, पुस्तकालय, रसायनशाला, शवच्छेदनालय आदि सभी साधनों का समुचित प्रबन्ध है। योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियां सीमित हैं छात्रावास में सभी सुख सुविधा का प्रबन्ध है। —वैद्य हनुमत्सहाय, प्रिंसपल।

× × +

श्री सनातन धर्म पी० जी० कालेज—

समस्त कालेज के स्नातकों को यह जान कर आनन्द होगा कि लाहौर वाला सनातन धर्म पी० सी० आयुर्वेद कालेज सनातन धर्म सभा जींद पंजाब के विशाल भवन में सन् ५८ से पुनः भूत पूर्व प्रिंसपल कविराज पं० नरेन्द्रनाथ शास्त्री की अध्यक्षता में सुव्यवस्थित ढङ्ग से आरम्भ होगया है।

कालेज कमेटी ने अपने स्नातकों की उन्नति के लिये यह सुविधा प्रदान की है कि कालेज का वैद्यशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कविराज परीक्षा में, कविराज उत्तीर्ण चतुर्थ वर्षीय आयुर्वेदाचार्य परीक्षा में तथा एम.ए. एम. एस. परीक्षा उत्तीर्ण स्नातक पंचवर्षीय आयुर्वेदाचार्य जी. ए. एम. एस परीक्षा में सम्मिलित हो सकता है। स्नातक शीघ्र आवेदन करें, तथा अपना पता कालेज को शीघ्र भेजदें।—रजिष्ट्रार।

+ + +

शैक्षणिक यात्रा—

प्रति वर्ष की भांति होने वाली आयुर्वेद विश्वभारती सरदार शहर कालेज की शैक्षणिक यात्रा जिसमें ३३ छात्र थे कालेज के वाइस प्रिंसपल श्री योगेन्द्रदत्त जी के नेतृत्व में आरम्भ हुई। इस १६ दिन की यात्रा में दिल्ली सहारनपुर देहरादून मंसूरी हरिद्वार ऋषिकेश लक्ष्मणझूला गुरुकुल-कांगड़ी विश्वविद्यालय कनखल आदि विविध स्थानों में भ्रमण कर अनेक सुरम्य दर्शनीय स्थानों को देखा और आयुर्वेद दृष्टि से अनेक द्रव्यों, औषधियों, कालेजों के आधुनिक उपकरणों, साज सज्जा आदि को देखा जिससे छात्रों को विविध अनुभव हुए। इन यात्राओं से बड़ा लाभ होता है छात्रों को प्रत्यक्ष देखने का सुअवसर मिलता है अतः सभी कालेजों को ऐसी यात्राओं का प्रबन्ध अवश्य करना चाहिए। —अध्यक्ष, छात्र संघ।

× × ×

पारद अनुसन्धान सम्मेलन—

कालेड़ा कृष्णगोपाल दि. २७।३।५९। प्रातः प्रारम्भिक कार्यवाही के अनन्तर ९ बजे कोटा के युवराज कुमार श्री वृजराज सिंह जी द्वारा सभा मंडप में रसेश्वर भगवान का पूजन तथा उद्घाटन हुआ। भारत के सभी प्रान्तों के दूर दूर के वैद्य बन्धु करीब ३५० की संख्या में उपस्थित थे।

स्वागताध्यक्ष रायसाहब श्री ब्रह्मदत्त जी भार्गव B. A., L. L. B. ने आगन्तुक वैद्यों का स्वागत किया एवं अपना भाषण दिया। पश्चात् प्रदर्शनी उद्घाटन राजस्थान के उपस्वास्थ्य मंत्री श्री भीखा भाई ने किया। प्रदर्शनी में श्री शांतीलाल जोशी रसायनाचार्य ने प्रत्येक पारद निर्मित औषधियों रसायनों सत्वों रंजक द्रव्यों का पूरा व्योरेवार विश्लेषण किया तथा प्रत्येक द्रव्य की निर्माण विधि बताई। सभी मान्य अतिथियों ने बड़ी दिलचस्पी ली और बहुत सराहना की। पश्चात् २ बजे से ४ बजे तक शांतीलाल जी ने रसवाद की सारी

क्रियायें क्रमशः पारद के संस्कार गंधक स्वर्णमाक्षिक व पारद से स्वर्ण का जारण प्रत्यक्ष करके बतलाए। सायंकाल रसायन शास्त्री श्री वासुदेव भाई प्रिंसपल रिसर्च इंस्टीट्यूट जामनगर के सभापतित्व में श्री शांतीलाल ने तथा अन्त में सभापति महोदय ने रसवाद पर विश्लेषणात्मक भाषण दिया।

रात्रि को श्री नारायण स्वामी कनखल की अध्यक्षता में रसशास्त्र सेमिनार हुआ।

तारीख २८ को श्री शांतीलाल ने पारद के विभिन्न कार्य प्रत्यक्ष करके दिखाये इस दिन रसायन सभा की कार्यवाही अनेक उच्च विद्वानों के भाषण से हुई। तथा विद्वत्परिषद में रसायन शास्त्र विषय में प्रशस्त चर्चा हुई। सायंकालीन बैठक में वैद्यराज पं. प्रेमशंकर जी संचालक आयुर्वेद विभाग राजस्थान अध्यक्ष थे। उस समय सर्व सम्मति से अ. भारतवर्षीय पारद अनुसन्धान के बारे में एक कमेटी नियुक्त की गई। श्री शांतीलाल जोशी ने रसायन सेवन के मार्मिक रहस्यमय विधियों पर गवेषणात्मक भाषण दिया और त्रिगर्भा कुटीर व सप्तगर्भा कुटीर के प्रत्यक्ष नमूने तथा वातातपिक एवं कुटी प्रावेशिक विधियों का दिग्दर्शन कराया। रात्रि को फिर श्री नारायण स्वामी की अध्यक्षता में रसायन शास्त्र की चर्चा हुई। तीसरे दिन २९ ता. को प्रदर्शनी भवन में श्री जोशी ने तलस्थ पूर्ण चन्द्रोदय, अग्नि स्थायी पक्षच्छिन्न पारद, कृष्टियां, संस्कृत पारद के अनेक रूप रूपान्तर, विट् निर्माण, सत्व निष्कासन, पारद बुभुक्षित, गंधक जारण के विधि विधान बताए।

× × ×

नागरिक वैद्य सभा कानपुर–

नागरिक वैद्य सभा कानपुर निरन्तर वर्षों से आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के व्यापक प्रचार एवं प्रसार का कार्य करती चली आरही है उसका ५७-५८ का कार्य विवरण हमें प्राप्त हुआ है। स्थानाभाव के कारण उसे हम पूर्णतः प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। सभा ने सभी कार्य बड़ी लगन और सफलता से किये हैं उसकी रिपोर्ट देखने से ऐसा पता लगता है। भावी कार्य क्रम में इस वर्ष पूर्व संचालित अनेकों कार्यक्रमों के साथ साथ नगर के किसी उपयुक्त मार्ग में आतुरालय संचालन की व्यवस्था करना एवं आयुर्वेदिक शास्त्र चर्चा परिषद् द्वारा वैद्यों एवं वैज्ञानिकों के भाषणों की व्यवस्था कर वैद्य समाज एवं जन साधारण में आयुर्वेद ज्ञान की वृद्धि करने हेतु बृहद् योजना बनाई गई है।

—मंत्री

+ + +

अयोध्या शिवकुमारी आयु० महाविद्यालय

बेगूसराय (मुंगेर) में त्रिदोष-व्याख्यान माला–

बेगूसराय २०-१-५९। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय के यशस्वी प्रिंसपल आचार्य निरंजनदेव 'प्रियहंस' आयुर्वेदालङ्कार त्रिदोष व्याख्यान माला के लिये १५ जनवरी को पधारे। आचार्य महोदय ने अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय के समस्त विभागों का निरीक्षण किया। आपने उनका समुचित प्रबन्ध देखकर सन्तोष व्यक्त किया। बिहार के पांच आयुर्वेद विद्यालयों में केवल बेगूसराय में ही शवच्छेद का उचित प्रबन्ध है।

तदुपरान्त ढाई बजे से चार बजे तक श्री प्रियहंस जी का प्रथम व्याख्यान 'त्रिधातु के देहधारक या प्राकृत रूप का परिणाम' विषय पर हुआ। कालेज के अध्यापकों, छात्रों, प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा विधिवत् स्वागत किया गया।

इसी दिन पुनः आपका दूसरा व्याख्यान त्रिदोष विषय के अन्तर्गत 'सजीव शरीर में दोषों की उत्पत्ति' विषय पर गवेषणा पूर्वक हुआ।

दूसरे दिन १६ जनवरी को श्री निरंजनदेव जी का तीसरा व्याख्यान 'प्राकृत वात पित्त कफ का प्राकृत स्वरूप विवेचन' पर हुआ। आपके व्याख्यान माला के प्रवाहमयी भाषण से तथा ऐसे गहन विषय

को सरल ढङ्ग से अभिव्यक्त करने की शैली से सभी आयुर्वेदज्ञ तथा छात्र प्रभावित हुए। आपने उनकी अनेक शंकाओं का भी निराकरण किया। इस अवसर पर आपके सम्मान में एक प्रीतिभोज का आयोजन किया गया था। आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा ने आपको अनेक धन्यवादों के साथ विदा किया और आशा व्यक्त की कि इस प्रकार का आयोजन विभिन्न कालेजों में ताकि आयुर्वेद का विकास हो सके।

× × ×

धन्वन्तरि परिषद का

वार्षिक चुनाव एवं प्रीति सम्मेलन

दि. १।४।५९ कलकत्ता की प्रधान आयुर्वेदिक संस्था श्री धन्वन्तरि परिषद की ओर से श्री श्रीनिवास खेडवाल के सभापतित्व में प्रीति सम्मेलन का आयोजन धन्वन्तरि परिषद कार्यालय में हुआ।

सभापति पद से श्री खेडवाल का श्री श्रीनिवास शास्त्री एवं वैद्य श्री रामप्रसाद जी शास्त्री के उत्तम सारगर्भित आयुर्वेद विषय पर भाषण हुए।

प्रीति सम्मेलन के पाश्चात धन्वन्तरि परिषद का वार्षिक चुनाव सम्पन्न हुआ और आगामी वर्ष के पदाधिकारी सर्व सम्मति से निर्वाचित हुए। पच्चीस व्यक्तियों की एक कार्य कारिणी समिति का गठन किया गया।

परिषद के उत्साही एवं योग्य मंत्री श्री दामोदर प्रसाद जी शास्त्री ने गत वर्ष की कार्यवाही पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालते हुए आय व्ययका विवरण उपस्थित किया जिसे सर्व सम्मति से स्वीकार किया गया।

चुनाव समाप्त होने के पश्चात् श्री लक्ष्मीकांत पाण्डेय ने कहा कि पश्चिम बंगाल की सरकार आयुर्वेद के उत्थान के प्रति अभी तक उदासीन है अतः हमें स्वयं इस काम को पूरा करना है और आयुर्वेद की विशेषताओं एवं इस आशुकारी चिकित्सा पद्धति की उपादेयता हमें अपने व्यवहारिक कार्यों द्वारा जनता के समक्ष रखनी होगी।

श्री पाण्डेय ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि कलकत्ता महानगरी में शिशु चिकित्सालय का कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं है। बच्चों की चिकित्सा आयुर्वेदिक पद्धति द्वारा सिद्ध हो सकती है। अतः शिशु चिकित्सा के निर्माण निमित्त हमें एक आयुर्वेदिक अस्पताल धन्वन्तरि परिषद के तत्वावधान में अवश्य खोलना होगा और यदि हम लोग ऐसा कर सके तो इसके द्वारा आयुर्वेद का मस्तक ऊंचा करने में हमें सफलता अवश्य मिलेगी।

अन्त में नव निर्वाचित मंत्री श्री शिव प्रसाद गोस्वामी ने अपने संक्षिप्त भाषण में उपस्थित वैद्यों से पूर्ण सहयोग देने के लिये जोरदार निवेदन किया जिससे आगामी वर्ष में धन्वन्तरि परिषद अपने आयुर्वेद के उत्थान कार्य में दिनोंदिन अग्रसर होता जाय।

× × ×

फैजाबाद जिला वैद्य सम्मेलन—

जिला वैद्य सभा फैजाबाद का एकादश वार्षिक अधिवेशन दिनाङ्क २८ दिसम्बर सन् ५८ को उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलनाध्यक्ष आयुर्वेद वृहस्पति आचार्य पं० बाबूराम जी शर्मा मिश्र हापुड़ की अध्यक्षता में सानन्द समाप्त हुआ। जिले के सभी क्षेत्रों से लगभग १५० वैद्य बन्धु आए थे। अनेक प्रतिष्ठित नागरिकों ने सहयोग दिया। आयुर्वेद जगत के लाभ के लिये अनेक प्रस्ताव पास हुए जिसमें पाचवां प्रस्ताव आसवारिष्टों के सम्बन्ध में पास हुआ और इण्डियन ड्रग्स एक्ट, सेन्ट्रल ड्रग्स एण्ड मेजिक रेमीडीज एक्ट, इण्डीसेन्ट एडवर्टाइज एक्ट, डी मेडिसनल टाइलेट प्रप्रेशन एण्ड ऐक्साइज ड्यूटी एक्ट आदि के निर्माण से होने वाली आयुर्वेद की अवनति का ध्यान कर उक्त कानूनों को आयुर्वेद के लिये घातक बताया तथा वैद्यों एवं हकीमों पर लगाए प्रतिबन्धों एवं लाइसेन्सों की प्रणाली आदि की निन्दा की गई और

सरकार से अनुरोध किया गया कि उक्त कानूनों को तत्काल सुधार कर चिकित्सकों को स्वतन्त्रता पूर्वक जन सेवा करने का अवसर प्रदान करें।

मन्त्री।

+ + +

नेशनल मैडीकल एसोशियेसन उ० प्र० की

कार्यकारिणी की मीटिंग

नेशनल मेडीकल एसोशियेसन उत्तर प्रदेश की कार्यकारिणी की बैठक दि० १३-४-५९ को मेरठ आयुर्वेदिक कालेज में सम्पादित हुई एवं महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए। इसी अवसर पर मेरठ डिवीजन का क्षेत्रीय वार्षिक सम्मेलन भी सफलता के साथ मनाया गया। कार्यकारिणी के द्वारा एवं क्षेत्रीय सम्मेलन में अनेक महत्त्व पूर्ण प्रस्ताव-स्वीकृत हुये। कार्य कारिणी में स्वीकृत प्रस्तावों का सारांश इस प्रकार है।

१—प्रथम प्रस्ताव में एसोशियेसन को आयुर्वेद विरोधी होने के आरोप का खण्डन किया।

२—द्वितीय प्रस्ताव में ड्रग एक्ट में प्रस्तावित संशोधन (जिनके अनुसार आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सकों के अधिकार समाप्त किये जा रहे हैं) काविरोध किया गया।

३—तृतीय प्रस्ताव में राष्ट्रपति महोदय से प्रार्थना की गई कि वे फार्मेसी एक्ट के १९५८ के सरकारी संशोधन पर हस्ताक्षर करने से पूर्व लोकसभा को पुनः विचार के हेतु वापिस करदें।

४—चौथे प्रस्ताव में एसोशियेसन ने चिन्ता व्यक्त की है कि मैडीकल कौंसिल के संकीर्ण एवं एक पक्षीय दृष्टिकोण से केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारें प्रभावित होती जाती हैं अतः एसोशियेसन चेतावनी देना कर्त्तव्य समझती है कि उसकी ये कार्यवाही राष्ट्रीय भावना एवं स्वास्थ्य योजना की ध्वंसात्मक कार्यवाही है।

५—पांचवे प्रस्ताव में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रचलित आयुर्वेदाचार्य पाठ्यक्रम चालू किया गया है एसोशियेसन उसका विरोध करती है।

६—केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों में भारतीय चिकित्सा का डाइरेक्टर पृथक से होना चाहिए।

७—कार्यकारिणी भारतीय चिकित्सा परिषद उत्तर प्रदेश से निवेदन करती है कि आयुर्वेदिक एवं यूनानी स्नातकों के रजिस्ट्रेशन में श्रेणी/

पृष्ठ ७४४ का शेषांश

ओजस्वी था। हर्ष का विषय है कि वर्त्तमान स्वास्थ मन्त्री श्री करमरकर जी ने इस बिल में एक ऐसे संशोधन को शामिल कर लिया जिस के कारण देशी रजिस्टर्ड चिकित्सकों के अधिकारों की रक्षा सुरक्षित हो सकी।

संक्षेप और सारांश में यह सफलता एक ऐसी महती सफलता है जबकि एक केन्द्रीय सरकारी बिल में देशी चिकित्सकों के अधिकारों को मान्यता मिल सकी है। इस कार्य के लिये वैद्य समाज को उक्त संसद सदस्यों का जहां आभार मानना चाहिए वहां श्री स्वास्थ मन्त्री जी को भी धन्यवाद देना चाहिए कि जिनके भारतीय संस्कृति पर अनुरागवश ऐसा सम्भव होसका। केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय का रुख आगे से ज्यादह भारतीय होरहा है ऐसा तब से दीखने लगा है; देश के वैद्य हकीमों और देशी औषधि निर्माता वर्ग को अभी बहुत से कंटकाकीर्ण मार्ग को साफ कर आगे संगठित रूप में बढ़ना है। "संघे शक्ति कलौयुगे" के महामन्त्र में दीक्षित होकर देशी चिकित्सा विज्ञान को देश की दरिद्र जनता की सेवा हेतु बढ़ावा देकर प्रगति के उस शिखर पर ले जाना है जहां यह किसी अतीत स्वर्ण काल में विराजता था।

—श्री राज वैद्य सुधनवा
संसदीय आयुर्वेद औषधालय
नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली

(पैरा) में कोई भेद भाव नहीं होना चाहिये ।

८—नेशनल मेडीकल एसोशियेसन उत्तरप्रदेश की कार्यकारिणी प्रान्त के राज्यपाल से अनुरोध करती है कि प्रान्त की स्वास्थ निरीक्षक तथा हैल्थ आफीसर पदों पर उभयात्मक चिकित्सा के स्नातकों की नियुक्ति का नियम होना चाहिये तथा उपरोक्त पदों पर नियुक्त आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एवं उभयात्मक विज्ञान के स्नातकों में वेतन स्तर एवं सुविधाओं में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए ।

कार्य कारिणी ने निश्चय किया कि स्नातकों को एक सूत्र में संगठित करने के लिए सक्रिय कदम उठाया जावे तथा इस हेतु प्रत्येक डिवीजन में क्षेत्रीय नेशनल मेडीकल एसोशियेसन के सम्मेलन के आयोजन की रूप रेखा तैयार की गई ।

—प्रधान मन्त्री ।

+ + +

आसव और अरिष्ट पर लगे प्रतिबंध

का कड़ा विरोध

सहारनपुर २४।२।५६ जिला वैद्य सम्मेलन सहारनपुर का यह अधिवेशन सर्व सम्मति से निश्चित करता है कि आसव और आरिष्टों पर लगा प्रतिबन्ध अनुचित है उसके सभी प्रकार के व्यवहार पर छूट दी जावे, दूसरे वैद्यों से विदित हुआ कि ड्रग इन्सपेक्टर महोदय वैद्यों को अनुचित रीति से दबाने का प्रयत्न करते हैं अतः सम्मेलन सरकार से सानुरोध प्रार्थना करता है कि उनके इस व्यवहार की उचित देखभाल की जावे ।

—मंत्री जिला वैद्य सभा ।

+ + +

फीरोजाबाद । १५-२-५६ को तहसील वैद्य सभा फीरोजवाद की मासिक सभा वैद्य रामजीलाल की अध्यक्षता में हुई जिसमें निश्चय हुआ कि यह सभा भारत सरकार से आसवारिष्टों के निर्माण एवं प्रयोग पर जो प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है उस पर रोष प्रकट करते हुए विरोध करती है और सरकार की एक पक्षीय वृति की निन्दा करती है । इनके बनाने और प्रयोग पर वैद्यों का जन्म सिद्ध अधिकार है अतः सभा अनुरोध करती है कि सरकार इस प्रतिबन्ध को न लगाए ।

—मन्त्री तहसील वैद्य सभा ।

+ + +

वार्षिक चुनाव—

मैनपुरी ७ अप्रैल—पंचम जिला आयुर्वेद सम्मेलन मैनपुरी स्थान नगरपालिका कैम्प ग्राम सुधार प्रदर्शनी में श्री आचार्य पं० बाबूराम जी मिश्र (अध्यक्ष उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन) के सभापतित्व में हुआ । अनेक प्रस्ताव पास हुये । जिले के सभी गण्यमान वैद्यबन्धु उपस्थित थे । जिनमें प्रस्ताव नं० १ व २ में आसव अरिष्टों के निर्माण पर एक्साइज ड्यूटी के अन्तर्गत प्रयुक्त प्रतिबन्धों को सर्वथा अनुपयुक्त एवं अन्यायपूर्ण बताया और सरकार से मांग की कि इन पर से सभी प्रतिबन्ध हटाकर इनके बनाने को हर प्रकार से मुक्त कर दें ।

इसी अवसर पर निम्न प्रकार निर्वाचन हुआ —

सभापति—श्री पं. देवीदयाल जी त्रिपाठी
उपाध्यक्ष—श्री गोस्वामी बाबूलाल जी मैनपुरी तहसील
श्री पं० मिट्ठनलाल जी शिकोहाबाद मैनपुरी तहसील
श्री मदनकुमार जी जैन करहल मैनपुरी तहसील
श्री पं० अंजनीकुमार जी भोंगाव मैनपुरी तहसील
श्री रामचन्द्र जी जसराना मैनपुरी तहसील
प्रधानमन्त्री—श्री तोताद्रीदास जी म्यू० कमिश्नर मैनपुरी
संयुक्तमन्त्री—श्री रतनमल जैन
श्री नरेन्द्रदेव जी आर्य

कोषाध्यक्ष—श्री पुरुषोत्तमलाल गोस्वामी
कार्यवाहक मन्त्री—श्री शङ्करदेव जी शास्त्री

इनके अतिरिक्त प्रत्येक तहसील के मन्त्रीगणों के नाम निर्वाचित कर उपाध्यक्षों द्वारा एक सप्ताह में केन्द्र को सूचित करना निश्चित् हुआ।

इसी अवसर पर बैठक कार्यकारिणी १६ वां उत्तरप्रदेशीय वैद्य सम्मेलन मैनपुरी सम्पन्न हुई। इसका अध्यक्षपद श्री बाबूराम जी मिश्र आचार्य अध्यक्ष उत्तरप्रदेश वैद्य सम्मेलन ने संभाला। इस में सम्मेलन की तिथियां व्यास पूर्णिमा एवं प्रतिपदा और द्वितीया अर्थात् २०-२१-२२ जौलाई निश्चित् हुई। कार्यकारिणी की सदस्यता, सम्मेलनार्थ धनसंग्रह सम्बन्धी विचार एवं सदस्यता शुल्क पर विचार हुआ। इसी अवसर पर सम्मेलन की विशेषता देखते हुए भिन्न कार्यों के लिए १७ सदस्य कार्य बाह निश्चित किये गये।

× × ×

जगराओं—

मालवा आयुर्वेद मण्डल जगराओं के सर्वसाधारण अधिवेशन में निम्न चुनाव सर्व सम्मति से हुआ।

प्रधान—श्री स्वामी दर्शनदास जी (मोना)
उपप्रधान—श्री सन्त सरूपानन्द जी
श्री सन्त आत्मानन्द जी
श्री महन्त प्रतापसिंह जी
प्रधान मन्त्री—सत्यपाल गुप्त आयुर्वेद भास्कर
सहायक मंत्री—वैद्य संतसिंह जी तथा ठाकुरसिंह जी
प्रचार मन्त्री—वैद्य ऊजागिर सिंह जी, वैद्य हरिसिंह जी, वैद्य जोगिन्द्रसिंह जी
कोषाध्यक्ष—कुन्दनसिंह जी
आय व्यय निरीक्षक—वैद्य चिरञ्जीतसिंह जी ठोलन
संरक्षक—स्वामी सुन्दरदास जी M. Sc. A. वैद्य रामजीदास जी चूहड़चक

इलाकाबार संघठन मन्त्री चुने गये तथा कार्यकारिणी का चुनाव किया गया।

—श्री सत्यपाल गुप्त, प्र. मन्त्री।

महेन्द्रगढ़—दि० ६-१-५६ को श्री ताराचन्द्र औषधालय में श्री शङ्करदत्त जी वैद्य की अध्यक्षता में सर्व सम्मति से वैद्यमण्डल तहसील महेन्द्रगढ़ का निर्वाचन निम्न प्रकार हुआ—

१. प्रधान—श्री ग्यारसीलाल जी अ. आचार्य
२. उपप्रधान—श्री शङ्करदत्त जी शास्त्री वै. मार्त्तण्ड
३. प्र. मन्त्री—श्री चन्द्रदत्त जी
४. कोषाध्यक्ष—श्री शिवदयाल जी वैद्य
५. उपमन्त्री—श्री मनुदत्त जी गौड़
६. श्री जगदीशप्रसाद आ. आ. एवं श्री भोलानाथ जी आदि कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये।

—श्री जगदीशप्रसाद जोशी।

× × ×

बरनाला दि. २८।३।५६ को श्री आयुर्वेद विद्यालय बरनाला में तहसील वैद्यमण्डल का चुनावकार्य पण्डित राधाकृष्ण जी की अध्यक्षता में निम्नलिखित विधि से सम्पन्न हुआ।

प्रधान—श्री पं० हरिकृष्ण सिंह
उपप्रधान—वैद्य हरिनामसिंह बरनाला वाले
पं० राधाकृष्ण भट्टालकलां वाले
मन्त्री—बाबूराम जी बरनाला
उपमन्त्री—प्रीतमसिंह राही
कोषाध्यक्ष—श्री पं. मधुसूदन बरनाला
निरीक्षक—श्री वृन्दावनलाल

साथ ही इलाकेबार मन्त्रियों का चुनाव किया तथा चार सरपरस्त चुने गये।

× × ×

वैद्य सभा जिला आगरा—

आगरा ६-२-५६ को वैद्य जिला सभा का चुनाव श्री पं. प्रयागदत्त जी के सभापतित्व में निम्नानुसार हुआ।

प्रधान—श्री पं. मदनमोहन जी शर्मा वैद्य शास्त्री
उपप्रधान—श्री पं. श्यामलाल जी गौतम
उपप्रधान—श्री पं. रामजीलाल शास्त्री फीरोजाबाद,

प्र. मंत्री—आचार्य रणवीरसिंह जी शास्त्री
सहायक मंत्री—वैद्य सूर्यभान जी गुप्ता चौधरी
संगठन व प्रचार मन्त्री—वैद्य राधाकृष्ण जी यादव
कोषाध्यक्ष—श्री पं. हुक्मचन्द जी जैन वैद्य
आय व्यय निरीक्षक—श्री वैद्य लक्ष्मीनारायण जी

इनके अतिरिक्त ३० सदस्यों की अन्तरंग समिति भी बनाई गई।
—श्री रणवीरसिंह, मन्त्री।

× × ×

सूरत वैद्य सभा —

वैद्य सभा का चुनाव निम्न प्रकार हुआ है।

प्रमुख—वैद्यराज हरीलाल गुलाबदास भिषगवर
उपप्रमुख—वैद्यराज वाडीलाल मणीलाल गोहेल
मंत्री—वैद्यराज गमनलाल जमीयतराय वैद्य (रंजन)
वैद्यराज जगजीवनदास मोहनलाल वैद्य
कोषाध्यक्ष—जसवंतलाल उत्तमचन्द शार
अन्वेषक वैद्यराज चन्द्रशंकर रेवाशंकर भट्ट
पुस्तकाध्यक्ष—वैद्यराज शान्तीलाल डाकोरदास सरैया
वैद्यराज देवजी ठाकरसी केसरिआ

इनके सिवाय ७ वैद्यों की कार्यकारिणी समिति का भी चुनाव हुआ।

—श्री गमनलाल वैद्य, मंत्री।

× × ×

वैद्य मण्डल नाभा —

२६-३-५६। वैद्य मण्डल तहसील नाभा की बैठक भादसों में हुई जिसमें जिला वैद्य मण्डल राजपुरा के सदस्य भी सम्मिलित हुए। नए वर्ष का चुनाव निम्न प्रकार से हुआ—

प्रधान—वैद्य कृष्णमूर्ति शर्मा भादसों
उपप्रधान—देवीदयाल शर्मा नाभा
प्रधानमंत्री—जोगेन्द्रसिंह ठाकुर भादसों
प्रचारमंत्री—प्रेमसिंह सहोली
सहायक मंत्री—परशुराम शर्मा भादसों
कोषाध्यक्ष—प्रीतमचन्द शर्मा नाभा
निरीक्षक—वंशीसिंह शर्मा कालसना

कई प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुए। प्रथम प्रस्ताव में नवीन यंत्रादि के प्रयोग तथा इञ्जेक्शनों के प्रयोग पर पावन्दी न लगाई जाय। द्वितीय में वैद्यों के किसी प्रकार के विषों उपविषों के प्रयोग में पावन्दी न हो जैसे डाक्टर मार्फिया आदि का प्रयोग करते हैं। तृतीय में सभी देशी जड़ी बूटियों को ड्रग एक्ट की पावन्दी से मुक्त कर दिया जावे चौथे में भारत की जड़ी-बूटियों को बी० पी० (बृटिश फार्माकोपिया) में सम्मिलित न किया जावे तथा यदि किया जावे तो उसका प्रयोग अधिकार वैद्यों को भी हो। पांचवे में आसव अरिष्टों पर पावन्दी का घोर विरोध किया गया। —वैद्य कृष्णमूर्ति देवगुण, प्रधान।

× × ×

फतेहपुर—

२५-४-५६। जिला सम्मेलन फतेहपुर के द्वारा आयुर्वेद महासम्मेलन के संस्थापक श्री पं० शंकरदाजी शास्त्री पदे जयन्ती समारोह सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। यह जयन्ती १ अप्रैल सन् ५६ से ५ अप्रैल सन् ५६ तक मनाई गई। १-४-५६ को विशनपुर में श्री द्वारिकाप्रसाद अग्रवाल के सभापतित्व में और ३-४-५६ को एकडला में महावीरप्रसाद शर्मा वैद्य मंत्री जिला वैद्य सम्मेलन के सभापतित्व में मनाया गया। अनेक वक्ताओं के भाषण एवं सामयिक कविता पाठ हुआ। श्री शंकरदाजी पदे एवं जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आयुर्वेद पंचानन के त्याग एवं तपस्यापूर्ण कार्यों का विशद वर्णन किया गया।

—श्री महावीरप्रसाद शर्मा वैद्य
मंत्री, जिला वैद्य सभा
फतेहपुर

+ + +

बांदा—

बांदा जिला वैद्य सभा ने जिला के वैद्यों के संगठन हेतु यह निश्चय किया है कि आयुर्वेद प्रचार की दृष्टि से यह संगठन अत्यन्त आवश्यक है।

सभा में एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय किया गया कि जिले की प्रत्येक तहसील में वैद्य मण्डलसभा स्थापित की जावें। इसके लिये सात सदस्यों की एक समिति पं० देवीदीन वाजपेयी की अध्यक्षता में गठित की गई।

इस समिति द्वारा बांदा मण्डल वैद्य सभा तथा नरैनी मण्डल वैद्य सभा की स्थापना हो चुकी है। अन्य मण्डल बनाने का प्रयत्न हो रहा है। समिति का कार्य सराहनीय है। इन दोनों समितियों का चुनाव हो गया है। स्थानाभाव से हम पूर्ण विवरण देने में असमर्थ हैं।

÷ ÷ ÷

शोक समाचार—

१—अत्यन्त दुख के साथ सूचित करना पड़ता है कि धन्वन्तरि के पुराने वयोवृद्ध लेखक तथा चिकित्सा जगत के योग्य सफल चिकित्सक श्री पं. रामगोपाल जी मिश्र गोदियां का देहावसान १४-३-५६ को हो गया। श्री हर्षुल जी मिश्र वैद्य आपके सुपुत्र हैं। हम सन्तप्त परिवार के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट करते हैं और दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

२-अगार से श्री वैद्य गोपालनरायन सूचित करते हैं कि आयुर्वेद के होनहार आयुर्वेदरत्न वैद्य रमेशचन्द्र गोपाल केवल २५ वर्ष की अल्पायु में ही संसार से चल बसे हैं। उनकी आत्मा को तथा दुखी आत्मजनों को ईश्वर शान्ति एवं धैर्य प्रदान करें।

३-श्री अवन्तिका देशी चिकित्सक मण्डल उज्जैन के प्रधान मंत्री वैद्य बाबूलाल जी मित्तल ने सूचना दी है कि दि. ८-३-५६ को मण्डल की शोक सभा हुई जिसमें श्री सर सेठ हुकुमचन्द्र जी इन्दौर के असामयिक निधन पर नगर के सम्पूर्ण वैद्यों और हकीमों की ओर से श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई। साथ ही श्री पं. मधुसूदन जी व्यास उज्जैन के निधन पर उन्हें श्रद्धांजलि प्रदान की गई।

४-वैद्य रामबाबू गुप्त, कसौंधन आयुर्वेदिक फार्मेसी पीला शिवाला की गली कटरा प्रयाग के पिता वैद्य अम्बिकाप्रसाद जी का ५० वर्ष की अवस्था में ता. २२-३-५६ को स्वर्गवास हो गया। आप दो वर्ष से मोटर साईकिल से गिर जाने के कारण अशक्त थे। प्रभु दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

"मार्तण्ड के आयुर्वेदिक इन्जेक्शन"

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स बड़ौत भारतवर्ष में एक मात्र इलेक्ट्रिक ओटोमेटिक मशीनों तथा आधुनिकतम वैज्ञानिक यन्त्रों से सुसम्पन्न वातानुकूल (एयर-कन्डिशन्ड) लेबोरेट्री है जिसमें सरकार द्वारा प्राप्त लाईसेन्स के आधीन सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अनुभवी केमिष्टों की देख-रेख में आशुगुणकारी सर्वथा निरापद आयुर्वेदिक इन्जेक्शनों का निर्माण विशुद्ध वैज्ञानिक रीति से होता है। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय क्वाथों के टिंचर्स तथा पूर्ण शास्त्रीय ढङ्ग से रस, रसायन, भस्म आदि का निर्माण होता है। कृपया रिसर्च, सचित्र साहित्य तथा "मार्तण्ड मासिक पत्रिका" की एक प्रति मुफ्त मंगाइये।

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत
S. S. Rly. (उ. प्र.)

धन्वन्तरि का आगामी विशेषाङ्क

नारी-रोगांक

वर्ष ३४ (१९६०) में धन्वन्तरि का विशाल विशेषाङ्क नारीरोगांक प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। हिन्दी भाषा में नारीरोगों का विस्तृत वर्णन, चिकित्सादि युक्त स्वतन्त्र पुस्तकों की बहुत कमी है। लगभग १८ वर्ष पूर्व हमने धन्वन्तरि का एक विशेषांक नारीरोगांक प्रकाशित किया था जो ग्राहकों ने अत्यधिक पसन्द किया तथा वह उसी वर्ष समाप्त होगया। उसके बाद उसी विशेषांक का द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया था वह भी थोड़े समय में समाप्त हो गया। इससे यह प्रमाणित होता है कि हिन्दी में इस प्रकार के साहित्य की अत्यन्त आवश्यकता है। इसीलिये इस बार का विशेषांक "नारीरोगांक" प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें प्रायः सभी स्त्री-रोगों की विस्तृत विवेचना, सफल चिकित्सा विधि एवं सफल प्रक्रियाओं का वर्णन दिया जायगा। संक्षिप्त विषय सूची आगे प्रकाशित कर रहे हैं। धन्वन्तरि के मान्य लेखकों तथा आयुर्वेद के विद्वानों से साग्रह निवेदन है कि वे अपने अनुभवपूर्ण लेख, चिकित्सा विधि, सफल प्रयोगादि शीघ्र भेजकर हमको अधिक से अधिक सहयोग दें। लेखकों के सहयोग से ही हम धन्वन्तरि के इतने उत्कृष्ट एवं उपयोगी विशेषांक प्रकाशित करने में सफलता प्राप्त करते हैं। हमको पूर्ण विश्वास है कि इस बार भी लेखकों एवं विद्वानों से पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। लेखकों की सेवा में पृथक भी पत्र भेज रहे हैं किन्तु उन विद्वानों से जिनके पास हम पत्र नहीं भेज सकें तथा जो हमारे इस प्रयास में सहयोग दे सकें, साग्रह एवं नम्र निवेदन है कि वे इसी प्रकाशित विज्ञप्ति को हमारा पत्र समझ कर अपना सहयोग अवश्य दें। आपके सहयोग से हम इस विशेषाङ्क को अपने विषय का सर्वांगपूर्ण साहित्य बनाने में सफल होसकेंगे।

नारीरोगांक की संक्षिप्त विषय सूची

१—स्त्री जननेन्द्रिय रचना (सचित्र)
२—मासिक धर्म चक्र, ऋतुकाल चर्या
३—स्त्री परीक्षा (Gynaecological diagnosis)
४—कृच्छ्रार्तव (Dysmenorrhoea)
५—आर्तव क्षय (अनार्तव) (Amenorrhoea)
६—प्रदर
७—योषापस्मार
८—योनि रोग (योनि व्यापद्)
९—बन्ध्यत्व
१०—मक्कल शूल
११—सूतिका ज्वर
१२—गर्भश्राव एवं गर्भपात—निदान एवं चिकित्सा
१३—गर्भावस्था के रोग ,, ,,
१४—गर्भाशय में गर्भ की स्थिति
१५—भ्रूण का रक्तपरिभ्रमण
१६—गर्भाशय का स्थान च्युत होना (Displacements of uterus)
१७—योनि कण्डू
१८—स्त्री रोगों में वस्ति चिकित्सा
१९—स्तन रचना
२०—स्तनों के रोग
२१—स्तन्य नाश एवं उसकी चिकित्सा
२२—स्तन कीलक
२३—फिरङ्ग (Syphilis)
२४—उपदंश (Gonorrhea)
२५—सोमरोग
२६—सन्तति निरोध (Contraception)
२७—योनिकन्द
२८—गर्भाशय के अर्बुद
२९—गर्भाशय के शोथ
३०—डिम्ब ग्रंथि के रोग
३१—स्त्री रोगों पर परीक्षित प्रयोग
३२—"स्त्री रोग" का अष्टांग आयुर्वेद में स्थान
३३—गर्भाक्षेपक
३४—गर्भिणी का शोथ
३५—स्त्री और व्यायाम
३६—स्त्री रोगों पर वनस्पतियां—अशोक, ओलटकम्बल, दशमूल, कार्पासमूल, लोध्र, लाङ्गली आदि
३७—रक्त गुल्म

आदि-आदि

लेखकों को ध्यान देने योग्य कुछ संकेत

१—नारीरोगांक में प्रकाशनार्थ लेख अगस्त के अन्त तक अवश्य भेज देने की कृपा करें। लेख किस विषय पर कब तक भेज रहे हैं इस विषय की सूचना शीघ्र ही दीजियेगा।

२—लेख में शास्त्रीय ग्रन्थों के उद्धरण देते समय उसका सन्दर्भ अवश्य लिखें। श्लोक आदि स्पष्ट अक्षरों में एवं शुद्ध लिखें।

३—लेख कागज की एक ओर कुछ मार्जिन छोड़ कर स्पष्ट अक्षरों में लिखें।

४—लेख में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कम से कम करें, धन्वन्तरि के अधिकांश पाठक अंग्रेजी भाषा नहीं जानते, इसका ध्यान रखें।

५—लेख अनावश्यक विस्तृत न करें तथा आवश्यक विषय लिखने में संकोच भी न करें।

यह विशेषाङ्क पहिले विशेषाङ्कों से

● अधिक विशाल ●● अधिक उपयोगी ●●● अधिक सुन्दर

प्रकाशित कर सकें, इसके लिए आपका सहयोग अत्यावश्यक है।

कायचिकित्साङ्क

के विषय में

आयुर्वेद-विद्वानों के उद्‌गार

(१) आयुर्वेद बृहस्पति आयुर्वेद पंचानन श्री पं. जगन्नाथप्रसाद शुक्ल राजवैद्य, प्रयाग का आशीर्वाद—

प्रियवर,

आशीर्वाद । "धन्वन्तरि" का विशेषांक प्राप्त हुआ। इस सफलता के लिए अकातर भाव द्रव्य लगाने वाले आप दोनों बन्धु और पूर्ण परिश्रम करने वाले सम्पादक त्रिवेदी जी धन्यवाद के पात्र हैं । मैं उन पुत्रों को धन्य समझता हूँ जो अपने पिता के आरम्भ किये हुए कार्य को सफल और पूर्ण बनाने में मनोयोग देते हैं । पिता के चरण चिन्हों पर चल कर स्वयं धन्य होते हैं और पिता को सन्तुष्ट करने का महान् पुण्य अर्जन करते हैं। आपके पूज्य पिता ने जिस कार्य को स्वल्पारम्भ रूप में आरम्भ किया था उसे आपने पूर्णता को पहुँचा कर स्वयं धन्य हुए हैं और आयुर्वेद का महत्त्व प्रकट करने में कारिणीभूत हुए हैं । आपके पिता के मित्र के नाते मैं अपना सन्तोष प्रकट करता हुआ आप दोनों भाइयों को आशीर्वाद प्रदान करता हूँ। यह अङ्क अपने में कायचिकित्सा का एक महत्त्वपूर्ण संकलन है। बधाई।

(२) अ. भा. शारीर शास्त्रचर्चा परिषद् के अध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद कालेज के विख्यात प्राध्यापक, नवीन प्राचीन चिकित्सा शास्त्र के माने हुए विद्वान—आचार्य श्री पं. दामोदर शर्मा गौड़ के कायचिकित्साङ्क देखने पर प्रगटित उद्‌गार—

नाना व्याधि समाक्रान्त वैद्यकायं चिकित्सता ।
भेषजं साधु निर्दिष्टं पञ्चलक्षणलक्षितम् ॥
अंके कृत्योपचरणं पुष्पितस्यापि प्राणदम् ।
दृष्ट्वा ते सिद्ध हस्तस्य मन्ये वीरायितं परम् ॥

(अनेक रोगों से पीड़ित निदान, पूर्वरूप रूपादि पञ्च लक्षणों से परीक्षित इन्द्रिय स्थानस्थ पुष्पितादि अरिष्ट लक्षणों से संकुलित अखिल भारतव्यापी वैद्य-रूप काया को अपने अङ्क (गोद एवं विशेषांक) में लेकर उचित औषधि निर्देश पूर्वक की गई प्राणदायक चिकित्सा को देखकर यह मैं मानता हूँ कि सिद्धहस्त विशेषांक सम्पादक के नाम में निहित 'वीर' शब्द परम वीरत्व को प्राप्त हो गया है ।)

(३) आयुर्वेद विश्वभारती सरदारशहर (राजस्थान) के प्रिन्सिपल श्री वैद्य मणिराम शर्मा भिषगाचार्य, आयुर्वेदाचार्य—

बहो कालात् प्रतीक्षित मनभ्र वर्षणमिव समागतं धन्वन्तरि कायचिकित्साङ्क मवलोक्य परां मुदमावहति चेतो मे । यतोऽत्र दिग्गजानां विद्वद् वैद्यानां मार्मिकाः सुलेखाः सुलिखिताः । धन्वन्तर्यङ्काः बहवः प्रकाशमुपगताः परं यादृशोऽयमभूत पूर्वाङ्कः प्रकाशितस्तत् समानान्ये भूतपूर्वा अंका इति ।

आयुर्वेदोन्मत्यै स्वार्थहानि मगणयन्तः सम्पादक महोदयाः वैद्यानांछात्राणां च सौकर्य्याय-लाभाय-ज्ञान-विज्ञान विवृद्धये च नितरां प्रकाशयन्ति प्रतिवर्ष विशेषांका नित्यह औदार्य्यम् ।

(४) कविराज श्री नित्यानन्द शर्मा डी. एस-सी (ए.) वैद्य वाचस्पति, बूंदी (राजस्थान)

धन्वन्तरि का वृहद्‌काय "काय चिकित्सांक" विशेषांक प्राप्त हुआ, उसके लिये धन्यवाद । आयुर्वेदिक क्षेत्र में आपने "विशेषांक विशेषज्ञ" का पद प्राप्त कर लिया है यह कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । विशेष विद्वान् एवं अनुभवी सम्पादकों के सम्पादकत्व में प्रायः कोई न कोई

उपयोगी विशेषांक समय समय पर प्रकाशित करके इस संकट काल में आप आयुर्वेद विज्ञान की बहुत सेवा कर रहे हैं इसमें दो राय नहीं हो सकती हैं। आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद जी द्वारा सम्पादित यह "काय चिकित्सांक" काय चिकित्सकों के लिये नित्य चिकित्सा कार्य में मार्ग प्रदर्शक का कार्य करेगा और एक ही स्थान पर वैद्य को प्रत्येक वाञ्छित सूचना और सहायता प्राप्त करने में सरलता प्रदान करेगा। इसके साथ ही सम्पादक का सम्पादकीय बहुत ही सुन्दर और विचार प्रेरक है जिसमें आयुर्वेद की लगभग सब ही जटिल समस्याओं–शोध, शिक्षा, संगठन, प्रगति आदि पर बड़े सुलझे हुए ढङ्ग से प्रकाश डाला है जो प्रत्येक विचारक को सोचने और कुछ करने के लिए प्रेरित करता है।

(५) श्री वैद्य श्रीनिवास शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
प्रधान चिकित्सक–श्री विशुद्धानन्द सरस्वती
मारवाड़ी अस्पताल, कलकत्ता ६

साहित्य विज्ञान की आत्मा है और वस्तुतः विशेषतः वह साहित्य जो उस विज्ञान में प्रतिदिन नवनवोन्मेष की सूचना देता हो। आधुनिक संसार के सन्त्रस्त मानव को मानसिक एवं शारीरिक शान्ति के साथ आनन्दमय उल्लाद्य जीवन बिताने का एक मात्र साधन आयुर्वेद विज्ञान में सत्साहित्य प्रदान की दिशा में निरन्तर उद्युक्त आयुर्वेद जगत का प्रदीप्तप्रभ ज्ञान नक्षत्र धन्वन्तरि का प्रयास नवीन नहीं है। वह आधुनिक युग के दोषों से अस्पृष्ट उद्देश्यैक लक्ष्य साधक की तरह अव्याहत गति से अपने सिद्धान्तों के प्रचार का उन्नतध्वज निरालस्य भाव से उठाये हुये बढ़ ही रहा है। यदा कदा प्रतिमास धन्वन्तरि का साक्षात्कार होता है तदा तदा ईर्ष्या और स्पर्धा का युगपदुदय होता है, पर कार्य व्यासत मानव इन नरपुङ्गवों को धन्यवाद के अतिरिक्त कुछ अन्य देने में अक्षम ही रहता है।

पाठकों का कर्त्तव्य है कि वे इस पत्र की श्रीवृद्धि के लिये प्रयास पूर्वक १-२ ग्राहक अवश्य बढ़ावें। यह कार्य उनके लिये अत्यन्त अल्प प्रयत्न साध्य है।

साथ साथ मेरा परामर्श है कि प्रत्येक चिकित्सक काय चिकित्साङ्क की प्रत्येक पङ्क्ति को ध्यानपूर्वक पढ़े।

(६) आयुर्वेद सूरिः आयुर्वेदाचार्य श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी. ए., जबलपुर

धन्वन्तरि का "काय चिकित्साङ्क" नामक विशेषाङ्क वास्तव में ही अपनी विशेषता रखता है। संक्षेप में इसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१. सम्पादकीय लेखनी से प्रस्तुत आयुर्वेदीय स्थिति निर्देशक एवं उत्थानीय उपाय सूचक ५५ पृष्ठों का विस्तृत लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है।

२. 'काय चिकित्सा' के काय शब्द का महत्वपूर्ण विश्लेषण एवं काय चिकित्सा के क्षेत्र का सर्वाङ्गीण विवरण तथा चरक कालीन आतुर परीक्षा, पञ्चमहाभूत और तन्मात्रा, सांख्यतत्व, आयुर्वेदीय चिकित्सा के आधारभूत सिद्धान्त, चिकित्सा सूत्र आदि कतिपय विशुद्ध वैज्ञानिक विषयों का विषद विवेचन किया गया है।

३: पांडुरोग, राजयक्ष्मा, हृद्रोग, रक्तदबाव, रक्तपित्त, मूत्रसंस्थानगत विकार, धातुरोग, वातरक्त, गण्डमाला, अर्श, ऊरुस्तम्भ, श्लीपद, आतशक या फिरंग रोग, कैंसर तथा ज्वर के आंत्रिक ज्वर, संधिक ज्वर आदि विभिन्न प्रकारों पर सचित्र चिकित्सा प्रदर्शित की गई है। रुग्णावस्था में विशेष औषधियों का प्रभाव शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों पर किस प्रकार होता है यह सचित्र दर्शाया गया है।

यह विशेषाङ्क आयुर्वेद हितैषियों के लिए आयुर्वेदीय शिक्षण संस्थाओं के लिये तथा आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिये महान उपयोगी एवं संग्रहणीय है।

इसके प्रकाशन में धन्वन्तरि कार्यालय के संचालकों का निस्वार्थ भाव प्रशंसनीय है। बहुत भारी आर्थिक संकट उठाते हुए उन्होंने केवल आयुर्वेद हित की दृष्टि से ही इस विशाल सचित्र विशेषांक को प्रकाशित किया है। जिसमें आयुर्वेद का टिमटिमाता हुआ दीपक पुनः प्रज्वलित होकर संसार को आलोकित करे।

आचार्य आयुर्वेद वाचस्पति श्री पं० रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी ने इस विशेषांक के सम्पादन में विशेष

उद्योग किया है। उनके कार्य की विशेषता प्रत्येक पृष्ठ पर झलकती है।

(७) श्री कविराज माधवप्रसाद शास्त्री

डी. एस. सी. (ए.) जोधपुर

यह प्रसन्नता की बात है कि इस बार विशेषांक को बहुत ही उच्चकोटि के मनीषी विद्वान् वैद्यों का सहयोग प्राप्त हुआ है। जिससे यह विशेषांक सभी के लिये संग्रहणीय बन गया है। इतने अल्प मूल्य में इतना विशाल साहित्य आयुर्वेद जगत को प्रदान करने की 'धन्वन्तरि' के प्रकाशकों की साधना वास्तव में उनके आयुर्वेद प्रेम की महानता को प्रगट करती है।

इस नये प्रकाशन के लिये मेरी अनन्त शुभकामनायें स्वीकार करें।

(८) श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

आयुर्वेद के चिकित्सा साहित्य में धन्वन्तरि ने अपना ऊंचा स्थान प्राप्त कर रखा है। प्रस्तुत विशेषांक ने अपने पूर्व गौरव में और अधिक अभिवृद्धि की है। इसमें प्राणियों की देहों को सताने वाले विभिन्न रोगों के निराकरण के उपाय अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं। लेखों के चयन में सम्पादक महोदय ने विशेष प्रयत्न किया है। विषय को स्पष्ट करने के निमित्त अनेक चित्रों का समावेश किया गया है। साढ़े पांच सौ के लगभग पृष्ठों वाला यह विशाल काय विशेषांक भी प्रकाशक महोदय धन्वन्तरि के सामान्य वार्षिक शुल्क ५॥) में ही दे रहे हैं। धन्वन्तरि के संचालकों को मैं इस अनुपम प्रकाशन के लिये बधाई देता हूं। भगवान् उन्हें आयुर्वेद की सेवा करने का बल दें।

(९) श्री वैद्य सोमदेव शर्मा सारस्वत,

रीडर गवर्नमेंट आयु० कालेज रायपुर (म० प्र०)

धन्वन्तरि का 'कायचिकित्साङ्क' नाम का विशाल काय-विशेषांक प्राप्त हुआ।

यह विशेषांक 'धन्वन्तरि' की परम्परा के अनुरूप ही विद्वन्मूर्धन्य वैद्यवृन्द के परमोपादेय, चिकित्सकोपयोगी एवं सारगर्भित लेखों से परिपूर्ण होने के कारण चिकित्सकों, विद्यार्थियों और सर्वसाधारण आयुर्वेद प्रेमियों के लिये संग्राह्य है।

(१०) श्री वैद्य ताराशङ्कर मिश्र आयुर्वेदाचार्य,

प्रिंसिपल अर्जुन आयु. महाविद्यालय, वाराणसी

'धन्वन्तरि' के कायचिकित्साङ्क का दर्शन किया। इसके लेखों में शास्त्र की गम्भीरता का अनुभव कर प्रसन्न हुआ। ऐसे लेखों का प्राप्त करना साधारण श्रम नहीं और फिर उन्हें सजाकर यथा स्थान रखना तो बहुत बड़ी बात है। इसमें विशेषांक सम्पादक सफल हुए हैं। इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

विशेषाङ्क की छपाई आदि धन्वन्तरि के उत्तरोत्तरीय प्रकाशन का संकेत कर रही है। इसके लिये प्रकाशक भी धन्यवादार्ह हैं।

कुल मिलाकर विशेषांक वैद्यों एवं छात्रों के लिये उपादेय है।

(११) वैद्य वाचस्पति श्री गुलराज शर्मा मिश्र

आयुर्वेदाचार्य, अध्यक्ष—मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य मण्डल, सदस्य आयुर्वेद यूनानी चिकित्सक बोर्ड, नागपुर।

यों तो "धन्वन्तरि" आयुर्वेद जगत के लिये सर्वोत्तम और सर्वप्रिय पत्र है ही, साथ ही उसमें राजनीति, वर्गवाद और पक्षोपपक्ष नहीं है। इसलिए भी धन्वन्तरि किसी भी एक पक्ष का पत्र नहीं है। अतः मैं हृदय से इसका आदर करता हूँ और उन्नति चाहता हूँ। यह केवल वैज्ञानिक विषय का ही अवलम्बन करता है जो सर्वमान्य है अर्थात् दोनों पक्षों के लिये ग्राह्य है। इसीलिये इसका सर्वोच्च स्थान है। उसका स्वरूप इस प्रकार है—

हीनैकपक्षं हि द्वैपाक्षिकं च
धन्वन्तरिर्मासिकमप्रबुद्धम्।
जनं प्रबुद्धं सुतरां विधत्ते
संशोधितैर्ज्ञानचयैः सुलेखैः ॥१॥

कायचिकित्साङ्क के सम्पादकीय विचार इतने सुलझे हुए और सामयिक हैं जिनसे प्रत्येक क्षेत्र के विद्वान् कार्यकर्त्ता को उचित दृष्टिकोण मिलता है और कार्य सम्पादन में सहायता मिलती है। उसका स्वरूप इस प्रकार है—

अष्टसप्ततीसंख्याकैः शीर्षकैः सविवेचितम् ।
सम्पादकीयमालोकि कायांके रघुवीरजम् ॥ २ ॥
प्रत्येकशीर्षके ज्ञानं संसारस्थितिहेतुजम् ।
स्वानुभूतसमायुक्तं दृष्टप्रत्ययनिर्भरम् ॥ ३ ॥
निगमागमभावाख्यं प्राच्यपाश्चात्यमिश्रितम् ।
तुलनात्मकदृष्ट्या च आयुर्वेदमहत्त्वगम् ॥ ४ ॥
पक्षपातैकहीनानां शासकानां सुचेतसाम् ।
जनारोग्यहितेच्छुनां सुकृतकृतिनां सदा ॥
भिषजां साधुवृत्तानां सर्वेषां प्राणिनां तथा ।
उपकाराय बोभूयात् दृढा मे संमतीति च ॥

काय चिकित्सा के अन्य लेखों के विषय में —

कायाङ्के कलिता लेखाः सर्वे सर्वोत्तमा अपि ।
चटर्जी-गोखले-शास्त्री द्विवेदी-पाठकावुभौ ॥
द्वारकानाथ-पाण्डेयः वैद्य-व्यासश्च हर्षुलः ।
शुक्ल-दीक्षित-मिश्राश्च पन्त-रावल-चौधरी ॥

इत्येतेषां विशेषेण प्रबन्धाः ललिताः शुभाः ।
विद्याबुद्धिवयोमानात् ज्ञान विज्ञान संकरात् ॥
अलंकुर्वन्ति कायाङ्कं पाठकान् रंजयन्ति च ।
प्रशंसन्ति गुणज्ञा वै तुष्यन्ति च पठन्ति च ॥

प्रस्तुत अङ्क के विषय चयन, सम्पादन और निर्माण में एक मात्र आचार्य श्री रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी जी ही सब कुछ हैं उनको ही इसका सर्वस्व सफलाधिकार है। यह त्रिवेदी जी की बुद्धि, वैभव और ज्ञान की ज्योतिस्वरूप कृति है जो विद्वानों के लिये भी ज्ञानालोक सिद्ध होगी —

रघुवीरप्रसादस्य बुद्धि वैभव ज्ञानजा ।
कृत्तिरेषा सुधीनां च प्रज्ञालोककरा सता ॥

पत्र के लिये शुभाकांक्षा —

पत्रस्यास्योन्नतिं याचे भगवतो धन्वन्तरेः ।
प्रचारो भारते भूयात् ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे ॥

साधारण संस्करण समाप्त हो गया

●

धन्वन्तरि कायचिकित्सांक की मांग अत्यधिक है प्रतिदिन बीसियों नवीन ग्राहक बन रहे हैं। साधारण संस्करण समाप्त हो गया है। ग्लेज कागज पर छपा गत्ते (पट्ठे) से मढ़ा राजसंस्करण शेष है नवीन ग्राहक बनने वाले सज्जनों से निवेदन है कि वे वार्षिक मूल्य ५।।) के स्थान पर ६।।) भेजकर राजसंस्करण मंगावें। साधारण संस्करण नहीं भेज सकेंगे। राजसंस्करण भी शीघ्र समाप्त हो जाने की आशा है।

धन्वन्तरि के उपयोगी विशेषाङ्क

माधव निदानाङ्क—सम्पूर्ण माधव निदान हिन्दी टीका तथा विस्तृत वक्तव्य सहित। सैकड़ों चित्रों द्वारा विषय को स्पष्ट समझाया गया है, पृष्ठ संख्या ६४८। चित्र संख्या १५५। प्रारम्भिक १०० पृष्ठों में निदान विषयक विद्वानों के उपयोगी सारगर्भित लेख हैं। यह विशेषाङ्क आयुर्वेद विद्यार्थियों के लिये अति उपयोगी है, मूल्य ८॥)।

सुप्रसिद्ध प्रयोगाङ्क (चतुर्थ भाग) राज-संस्करण—५२६ पृष्ठों में २७० अनुभवी चिकित्सकों के १३०८ उत्तमोत्तम सफल प्रयोगों का विशाल संग्रह। इस विशेषाङ्क को जिसने पढ़ा उसी ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इस विशेषांक में सैकड़ों ऐसे प्रयोग हैं जो आयुर्वेद चिकित्सकों को चिकित्साकार्य में विपुल यश धन देने वाले हैं। गृहस्थों व चिकित्सकों सभी के लिये उपयोगी विशेषाङ्क है। मूल्य ८॥)

चरक चिकित्सांक—पृष्ठ संख्या ७०४। चित्र संख्या ८०। इस विशेषाङ्क में चरकसंहिता चिकित्सा स्थान सटीक प्रकाशित किया गया है। स्थान-स्थान पर विशेष वक्तव्य द्वारा विषय को बड़ी सरलता के साथ समझाया है। विशेष वक्तव्यों की संख्या ५०८ है जिससे आप समझ सकते हैं कि विषय को सुबोध बनाने में बड़ा परिश्रम किया गया है। प्रारम्भिक १०० पृष्ठों में विविध विद्वानों के सारपूर्ण लेखों द्वारा चरक चिकित्सा की विशेषतायें, चरक-संहिता का इतिहास आदि अनेक ज्ञातव्य विषयों पर खोजपूर्ण विवेचन किया गया है। शुद्ध प्रमाणित मूलपाठ एवं भाषानुवाद, सारभूत व्याख्या व वक्तव्य, आधुनिक मत से यत्र तत्र समन्वय आदि पढ़ने से वैद्यों एवं विद्यार्थियों को बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होगा। ग्लेज कागज पर छपे सुन्दर राज-संस्करण का मूल्य ८॥)

चिकित्सा समन्वयाङ्क (प्रथम भाग)—इसके सम्पादक हैं पं० ताराशङ्कर जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य। इसमें आयुर्वेद और ऐलोपैथी का समन्वय किस प्रकार हो सकता है उससे लाभ क्या है तथा हानि क्या है यह सभी विषय अधिकारी लेखकों के द्वारा वर्णित हैं। इसके पश्चात् ज्वर, (पित्तज्वर, वातज्वर, श्लेष्मज्वर, इन्फ्लुएञ्जा, बैरी-बैरी कालाज्वर विषम ज्वर आदि) अतिसार, अर्श, कृमिरोग, विसूचिका, अम्लपित्त पाण्डुरोग, कामला, वमन, यकृद्दाल्युदर तथा प्लीहोदर, जलोदर, फुफ्फुस राजयक्ष्मा, क्षय, कास, तमक श्वास, श्वसनक ज्वर, हृद्रोग, मदात्यय, उन्माद, अपस्मार, (मृगी) अतत्वाभिनिवेश, प्रज्ञापराध रोगों की आयुर्वेद एवं एलोपैथी मिश्रित चिकित्सा से किस प्रकार सफलता पूर्वक चिकित्सा की जा सकती है वर्णित है। इस विशेषाङ्क के निर्माण में डा० प्राणजीवन मेहता, पूज्य यादव जी महाराज, पं० सत्यनारायण जी, पं० शिवशर्मा जी, कविराज सतोन्द्रनाथ बसु, कविराज हरिनारायण शर्मा, श्री अत्रिदेव गुप्त आयुर्वेदालंकार आदि ५५ विद्वानों ने सहयोग दिया है। पृष्ठ संख्या ३६४ अनेकों रङ्गीन एवं सादे चित्र मू. ४) द्वितीय भाग (परिशिष्टांङ्क) पृष्ठ संख्या १६४, मूल्य २)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़।
प्रकाशक—वैद्य देवीशरण गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़।

शारीरिक–चित्र

ये चित्र अनेक रंगों में आफसैट प्रैस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये गये हैं। इन सभी चित्रों का साइज एक समान २०" इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढ़े हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर उनकी शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी अवयवों का विवरण हिन्दी में लिखा गया है।

नं. १–अस्थि पञ्जर —

इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढंग से दर्शाया गया है। हाथ की अंगुलियों की, पैर की, रीढ़ की, छाती की सभी अस्थियां स्पष्ट समझ में आ सकती हैं मूल्य ५)

नं० २–रक्त परिभ्रमण—

इस चित्र में शुद्ध-अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिराऐं अपने प्राकृतिक रंगों में दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्त भ्रमण का पृथक् चित्र है। हृदय एवं सम्बन्धित शिरा धमनी का पृथक् चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर में सम्पूर्ण धमनी तथा दूसरे हाथ और दूसरे पैर में शिराऐं दर्शाई हैं। मूल्य ५)

नं० ३–वातनाड़ी संस्थान —

इस चित्र में सम्पूर्ण वात-नाड़ी मण्डल (Nervous System) का सुन्दर व स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वग-वात नाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क के सम्बन्ध का चित्रण पृथक किया गया है। चित्र अपने ढङ्ग का निराला है। मू. ५)

नं० ४–नेत्र रचना एवं दृष्टि विकृति—

इस चित्र में पृथक्-पृथक् ६ चित्र हैं। १–दक्षिण चक्षु–इसमें चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाए हैं। २–पटलों और कोष्ठ को दिखाने के लिये चक्षु का क्षितिज काट। ३–चक्षु से सम्बन्धित नाड़ी। ४–दृष्टि-भेद (दर्शन सामर्थ्य)। ६–साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ में आएगा। मूल्य ५)

चारों चित्र एक साथ मंगाने पर मूल्य केवल १६) पोस्ट व्यय १।।≡) पृथक्

सादा चित्र (लकड़ी तथा कपड़े रहित केवल छपे हुए) शीशा
में मढ़ने के लिये यदि आप मंगाना चाहें तो सादा
चारों चित्रों का मूल्य १०) १ चित्र का ३।।)

पता–धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ अलीगढ़

A. 285

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

लघु विशेषांक

★

इस वर्ष श्वास एवं मधुमेह रोगों पर २ लघु विशेषांक प्रकाशित करने का निश्चय किया गया था। हमारे कृपालु लेखकों ने बड़े उत्साह से इन रोगों पर अपने लेख भेजे हैं। श्वास रोग पर जामनगर रिसर्च विभाग से एक विस्तृत निबंध (थीसिस) प्राप्त हुआ है जो फुलस्केप साइज के टंकणयुक्त ९२ पृष्ठों में है यह अति महत्वपूर्ण एवं उपयोगी निबन्ध है। सितम्बर का 'मधुमेह' अंक तथा अक्टूबर का श्वास-अङ्क प्रकाशित किया जायगा। नवम्बर या दिसम्बर के अङ्क में उक्त थीसिस प्रकाशित करने का विचार है। पाठक इन अङ्कों को अवश्य पसन्द करेंगे एसा विश्वास है।

—सम्पादक।

सम्पादक:—
आयुर्वेदोपाध्याय देवीशरण गर्ग · ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी.एस-सी

जौलाई १९५९

—धन्वन्तरि के ग्राहक बनने के नियम—

१—धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य ५।।) है। एक वर्ष से कम के लिए ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

२—धन्वन्तरि का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है तथा दिसम्बर में समाप्त होता है।

३—धन्वन्तरि के ग्राहक वर्ष के प्रारम्भ अर्थात् जनवरी से बनाये जाते हैं। वर्ष में जब भी चाहें ग्राहक बन सकते हैं, लेकिन जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क भेजकर नवीन ग्राहक को भी जनवरी से ही ग्राहक बना लिया जाता है।

४—प्रतिवर्ष एक विशाल-सचित्र विशेषांक प्रकाशित किया जाता है। यह विशेषांक भी ग्राहक को उक्त वार्षिक मूल्य ५।।) के अन्तर्गत ही मिलता है। इस वर्ष काय-चिकित्सांक प्रकाशित किया गया है।

५—ग्राहक को किसी भी माह का अङ्क मिलने पर यह देख लेना चाहिए कि उससे पहिले माह का अङ्क मिला है या नहीं। यदि नहीं मिला है तो तुरन्त अपना पूरा पता तथा ग्राहक नम्बर लिखते हुए सूचित करना चाहिए। वर्ष के अन्त में या ४-६ माह बाद एक साथ ४-४, ६-६ अङ्कों की शिकायत लिखना उचित नहीं।

६—धन्वन्तरि के प्रकाशन में हमको बहुत घाटा रहता है। अतः इसके वार्षिक मूल्य में हम किसी को किसी प्रकार की रिआयत नहीं करते। अतएव कमीशन या रिआयत के विषय में लिखना व्यर्थ होगा।

७—वार्षिक मूल्य पहिले ही मनियार्डर से भेजना चाहिए, या जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क और विशेषांक वार्षिक मूल्य ५।।) वी. पी. से भेजने की आज्ञा देनी चाहिए।

इस अङ्क में पढ़िये

प्रातःस्नान का महत्व	... ...	८१७
आयुर्वेद वर्णित द्रव्यों का मात्रा निर्णय	—श्री कृष्णचन्द्र महन्ति	८१८
जीवाणु विज्ञान व त्रिदोष वाद	—श्री एम० प्रसाद आयुर्वेदाचार्य	८२२
वैदिक कालीन अध्यापक और छात्र	—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी	८२६
रक्तचाप	—श्री कविराज एस. एन. बोस	८२७
श्वसनक ज्वर चिकित्सा	—श्री गोवर्धनदास चागलानी	८३२
विचर्चिका (एक्जिमा) पर प्रयोग	—श्री पी० डी० जोशी	८३६
गर्भावस्था की प्रातः वान्ति	—विमलादेवी शर्मा	८३८
ईसफगुल और स्वास्थ्य	—डा० कुलरञ्जन मुखर्जी	८४०
अनुपानों में श्रेष्ठ "मधु"	—श्री जयकुमार जैन "सुधाकर"	८४२
आक	—वैद्य मोहरसिंह यादव "हितैषी"	८४४
स्वास्थ्यप्रद बथुआ	—श्री लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल शास्त्री	८४६
ईख और उसके गुण	—श्री महावीरसिंह "माधव"	८४८
अशोक	—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार	८५०
श्री रामचन्द्र गौनियाल आयुर्वेद भास्कर का वक्तव्य		८५५
गुप्तसिद्ध प्रयोग	... ...	८५८
परीक्षित प्रयोग	... ...	८६१
समाचार एवं सूचनाएं	... ...	८६४

धन्वन्तरि के

—ग्राहक बनाइये—

धन्वन्तरि आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक पत्र है। इसके विशाल विशेषांकों ने आयुर्वेद साहित्य सृजन में एक क्रान्ति पैदा की है। इस वर्ष के विशेषांक ने पहिले सभी विशेषांकों से उत्तम एवं उपयोगी साहित्य प्रस्तुत किया है। लगभग ६०० पृष्ठ, और सैकड़ों चित्र होते हुए भी वार्षिक मू. ५।।) में ही वर्ष के अन्य अङ्कों सहित दिया गया है। स्वयं ग्राहक बनें तथा अपने परिचित अन्य वैद्यों को ग्राहक बनावें।

मुद्रक-वैद्य देवीशरण गर्ग।
धन्वन्तरि प्रेस विजयगढ़।
प्रकाशक-वैद्य देवीशरण गर्ग।
धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़।
वार्षिक मू. ५।।), एक अङ्क का ।।)

धन्वन्तरि

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ —चरक सू० अ० १-४०

भाग ३३
अङ्क ७

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़
का मुख पत्र

जौलाई
१९५९

प्रातः स्नान का महत्त्व—

प्रातः स्नानमलं च पाप हरणं दुःस्वप्न विध्वंसनम् ।
शौचस्यायतनं मलापहरणं सम्वर्धनं तेजसाम् ॥
रूपद्योतकरं शरीरसुखदं कामाग्निसंदीपनम् ।
स्त्रीणां मन्मथगाहनं श्रमहरं स्नाने दशैत गुणाः ॥

प्रातःकाल का स्नान पाप नाशक, बुरे स्वप्नों को नष्ट करने वाला, पवित्रता का घर, मल नाशक, तेज वर्धक, रूप को निखारने वाला, शारीरिक सुख को देने वाला, कामाग्नि दीपक, स्त्रियों में काम को उद्दीपित करने वाला तथा थकावट दूर करने वाला है।

[नवीन सभ्यता के युग में पले, देर से उठने वाले तथा उठकर शौचादि क्रिया निवृत्त होने से पूर्व चाय-चुरट सेवन करने वाले, सभ्य व्यक्ति प्रातः स्नान की महान उपयोगिता नहीं जान सकते।]

आयुर्वेद वर्णित द्रव्यों के मात्रा निर्णय

श्री कृष्णचन्द्र महन्ति

प्राचीनकाल में हमारा द्रव्य गुण विज्ञान एक जीवित शास्त्र था महर्षियों ने दीर्घकाल के परिश्रम और अनुभव से द्रव्यगुण विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्त स्थापित किये थे। कोई भी नया द्रव्य उनके सामने आता था तो वे अपने ईश्वरसृष्ट यन्त्रों (जिह्वा, नेत्र, कर्णादि) द्वारा उसके पञ्चभौतिक संगठन रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव, और कर्म निश्चित करते थे और मनुष्यादि शरीर पर उसका परीक्षण करके सिद्ध होने पर उस द्रव्य को ग्रन्थों में स्थान देते थे। परन्तु आजकल हमारे यह शास्त्र मूर्च्छितावस्था में है। इन दिनों किसी भी उपयोगी नवीन द्रव्य का हमारी आर्षपद्धति से परीक्षण करके द्रव्यगुण के ग्रंथों में उसका समावेश कर लेने का विशेष उदाहरण नहीं पाया जाता। इसी परिस्थिति में पाश्चात्य वैद्यक शास्त्रों पर मेरी दृष्टि पड़ी अर्थात् वैद्यक शास्त्रों में जैसे प्रति द्रव्यों के जीवनिका (vitamin) और उसका स्नेह आदि उपादानों की अनुपात उपलब्धि होती है, ऐसे ही आयुर्वेद वर्णित द्रव्यों के रस, गुण वीर्य और कर्म की मात्रा निर्णय परिमाण स्वरूप सम्भव होता तो रसादि विज्ञान और दोषों की अंशांशकल्पना के साथ उनका उपक्रम संशय रहित हो जाता। ये भाव मेरे चित्त में बारम्बार उदय होने पर प्राचीन ग्रन्थों के ऋषि वचन अवलम्बन से उपलब्ध वक्ष्माण अनुपात को स्थिरीकरण कर रहा हूँ। उक्त ग्रंथों के सूत्रों से हुआ रसादि अनुपात नीचे वर्णित होगा। तब आयुर्वेद शास्त्रों में रस, विपाक, वीर्य और प्रभाव को उत्तरोत्तर वलवान स्वीकार किया है परन्तु अचिन्त्य शक्ति के लिए प्रभाव का बल निर्णय करना सुकर न होने के कारण से रस, गुण, वीर्य और कर्मों की मात्रा निर्णय करने का मैंने प्रयास किया है।

वैद्य भाइयों से निवेदन करता हूं कि जिनका मन इधर इच्छित हो वे इस "मात्रानिर्णय" को देखें और इसमें गलती निकालें एवं यह निर्दोष जैसा होगा अनुगृह कर धन्वन्तरि पत्रिका में अपना अभिमत प्रकाश कर मुझे निःसंशय करें और साथ ही आयुर्वेद का नवीन दृष्टिकोण उद्भावित करें।

मात्रा निर्णय की नियमावली—

> गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये।
> रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्योपचारतः॥
> (अ. हृ. सू. अ. ९)

गुरु, लघु, शीत, उष्ण आदि गुण रसों के आश्रयभूत पार्थिव आदि द्रव्यों के अन्दर ही रहते हैं, क्योंकि गुण गुण का आश्रय करके अर्थात् गुण गुणों में नहीं रह सकता है, इसलिए मधुरादि रसों के जो गुण कहे गये हैं वे मधुरादि रस वाले द्रव्यों के ही जानने चाहिए। मधुरादि रस और गुर्वादि गुणों का नित्य साहचर्य (साथ रहने का सम्बन्ध) होने से गुर्वादि गुण यद्यपि मधुरादि रस वाले द्रव्यों के हैं, तथापि औपचारिक भाषा में मधुर रस गुरु है, अम्ल रस लघु है इत्यादि रूप में कहा जाता है अर्थात् विपाक, वीर्य तथा कर्म अपने अपने रसों के अनुरूप होते हैं।

रसों के गुण का तारतम्यः—

> रौक्ष्यात् कषायो रूक्षाणामुत्तमो मध्यमः कटुः।
> तिक्तोऽवरस्तथोष्णानामुष्णत्वाल्लवणः परः॥
> मध्योऽम्लः कटुकश्चान्त्य स्निग्धाना मधुरः परः।
> मध्योऽम्लः लवणश्चान्त्यो रसः स्नेहा निरूप्यते॥
> मध्योत्कृष्टावराः शैत्यात् कषाय-स्वादु तिक्तकाः।
> स्वादुगुरुत्वादधिकः कषायल्लवणोऽवरः॥
> अम्लात् कटुस्ततस्तिक्तो लघुत्वाद्रुत्तमोत्तमः।
> (च. सू. अ. २६)

रूक्ष रसों में कषाय उत्तम (रूक्षतम) कटु मध्यम (रूक्षतर) और तिक्त अवर (रूक्ष) है। उष्ण रसों में लवण उत्तम (उष्णतम), अम्ल मध्यम (उष्णतर) और कटु अवर (उष्ण) है। स्निग्ध रसों में मधुर उत्तम (स्निग्धतम) अम्ल मध्यम (स्निग्धतर) और लवण अवर (स्निग्ध) है। शीत रसों में मधुर उत्तम (शीततम) कषाय मध्यम (शीततर) और तिक्त अवर (शीत) है। गुरु रसों में मधुर उत्कृष्ट (गुरुतम), कषाय मध्यम (गुरुतर) और लवण अधम (गुरु) है। लघु रसों में तिक्त उत्तम (लघुतम), कटु मध्यम (लघुतर) और अम्ल अधम (लघु) है। कई आचार्य लवण रस को लघुओं में मानते हैं। (परन्तु इसी लेख में अम्ल रस को लघुओं में माना गया है।)

औषधाहार भेद से द्रव्य दो प्रकार के हैं—

(औषधाहारभेदनापि) द्रव्य तावद् द्विविधं-वीर्यप्रधान औषधद्रव्यं, रसप्रधानमाहार द्रव्यं च तत्राप्योषधद्रव्य त्रिविधं वीर्यभेदात् तीक्ष्णवीर्यं मध्यवीर्यं, मृदुवीर्यं चेति (च० सू० अ० २ चक्रदत्त)

द्रव्यों के औषधि और आहार भेद से दो भेद होते हैं, जो द्रव्य वीर्य प्रधान हो अर्थात् जिसके उपयोग से शरीर में वीर्यसंज्ञक शीत और उष्ण गुण की उत्पत्ति प्रधानतया होती हो, शरीर के रसादि धातुओं का पोषण जिसका प्रधान कार्य न हो उसको औषध द्रव्य कहते हैं; जैसे--सोंठ पीपर आदि। जो द्रव्य रसप्रधान हो अर्थात् जिसके उपयोग से शरीर में रस तथा रस से पुष्ट होने वाले रक्तादि धातुओं का पोषण प्रधानतया होता हो शीतादि वीर्यसंज्ञक गुणों की उत्पत्ति (गुणों के असर) प्रधानतया न होती हो, उसको आहार द्रव्य कहते हैं। जैसे-चावल, गेहूँ, दूध आदि।

इसी मात्रा निर्णय लेख में शीत और उष्ण इन दोनों को वीर्य (उत्तमशक्ति रूप) में, तीक्ष्ण को उष्णतम रूप में और गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु इन ५ को मध्यम शक्ति रूप में एवं अपर बारह गुणों तथा मधुरादि छह रसों को अधम शक्ति रूप में मानकर मात्रा निर्णय किया जायगा।

मधुरादि रस और गुणों के विषय में सुश्रुत ने कहा है कि रस गुणों का ही एक भेद है। इस लिए रस प्राधान्य, गुण प्राधान्य भी सिद्ध होता है।

"रसेषु गुणसंज्ञा इति यस्माद्रसानां गुणसंज्ञा तस्माद्रसप्राधान्य निरूपणादेव तदितरेषा गुणानामपि प्राधान्यं निरूपितमित्ययमाशः"।

गाय दूध आदि कुछ आहार द्रव्यों पर हिमाद्रि टीकाकार ने स्वतन्त्र नियम कहा है—

"गव्यं स्नेहतमं, ततो जघन्यं माहिषं तत आजं तत आविकमिति जघन्यत्व मानं चोक्तं तेनैवगुरु शीततरं गव्यात्सोप्नलं महिषं पयः चतुर्थभाग स्नेहोनं पित्तघ्न च विशेषतः (अ. हृ. सू. अ ५) ॥

गाय का दूध स्नेह गुण में उत्तम, भैंस का दूध गाय दूध से जघन्य (निकृष्ट), बकरी का दूध भैंस से जघन्य तथा बकरी के दूध से स्नेह-गुण में मेषी का दूध जघन्य होता है। गाय के दूध से भैंस का दूध गुरुतर और शीततर होता है। परन्तु स्निग्ध गुण में गाय के दूध से भैंस का दूध उसका चार भाग से एक भाग कम होता है। विशेषतः निद्राजनक और पित्तनाशक होता है। (इस टीकाकार के मत में स्पष्ट प्रतीत होता है कि तारतम्यादि भेद से उत्तम का मान प्रतिशत १००, मध्यम का मान प्रतिशत ५० और अधम का मान प्रतिशत २५ है)

सर्पि मज्जावसा तैलं स्नेहेषु प्रवरंमतम्।
घृतातैलं गुरुवसा तैलान्मज्जा ततोऽपिच ॥
(अ. हृ. सू. अ. ६)

जितने प्रकार के स्नेह पदार्थ हैं। उनमें घी, मज्जा, वसा और तैल उत्कृष्ट होते हैं। घी से तैल (तैलवाला द्रव्य) गुरुतर, तैल से वसा गुरुतर और वसा से मज्जा गुरुतर है।

"केचिच्च रसमनपद्येव द्रव्येनिवसन्ते यथा मधुर रसमुकुष्ट तण्डुलीयादौ रूक्षादयोगुणाः।

केचिद्गुणा रससहचरिता द्रव्ये निवसन्ति, इदृशं च विशेषमुद्दश्य तत्रक्रुद्धिमधुरादि रसानां स्निग्धादि गुणा वर्णिता वैद्याः" (अ. हृ. सू. अ. ५ अरुणदत्त) ॥

अर्थात पञ्चमहाभूतों से किसी के उत्कर्ष और किसी के अपकर्ष कारण से रस, वीर्य और विपाक एक रूप से (एक से परस्पर प्रतिकूलता से) द्रव्यों में रहते हैं। जैसे—दूध में रसादि एक रूप से रहते हैं। परन्तु मधुर रस द्रव्यों में बन-मूँग और तण्डुलीयादि में रूक्षादि गुण विरूप से रहते हैं।

"प्रत्यक्षतोऽनुमानादुपदेशतश्च रसानामुपलब्धिः (र. वै. अ. ३, सू. १०८) ॥

अर्थात् कहीं स्वाद से, कहीं कार्य देखकर अनुमान से और कहीं शास्त्रोपदेश से रसों का ज्ञान होता है। जैसे—नींबू के अम्ल रस का प्रत्यक्ष से और सुवर्ण के कषाय एवं मधुर रस का ज्ञान शास्त्रोपदेश से तथा सुवर्ण के कार्य देखकर अनुमान से होता है।

मान सूचनाः—

औषध द्रव्यों में रहने वाले उत्तमशक्ति (शीतादि वीर्यों) का प्रतिशत मान १०० है। मध्यम शक्ति (गुर्वादि गुणों) का मान ५० है। अधमशक्ति (मधुरादि रसों) का मान २५ है और अधम शक्ति (अनुरसों) का मान १२½ है।

आहार द्रव्यों में रहने वाली उत्तम शक्ति (मधुरादि रसों) का प्रतिशत मान १०० है। उत्तम शक्ति (अनुरसों) का प्रतिशत मान ५० है। मध्यम शक्ति (शीतादि वीर्यों) का प्रतिशत मान २५ है और अधमशक्ति (गुर्वादि गुणों) का प्रतिशत मान १२½ है।

निम्नलिखित मात्रा निर्णय में इस साधारण नियम से भिन्न उपरोक्त विशेष-विशेष नियमों और रसों के तारतम्य भेद से गुण तारतम्य अर्थात् उन्हीं का हीन मध्य अति मात्राओं को भी दिखाना होगा।

कुछ औषधि द्रव्यों में रहने वाले, रस, वीर्य और कर्म का मान निर्णय—

द्रव्य	रस	अनुरस		गुरु	लघु	स्निग्ध	रूक्ष	शीत	उष्ण	तीक्ष्ण
				वृंहण	लंघन	क्लेदन	शोषण	स्तंभन	स्वेदन	शोधन
सोंठ	कटु १२½	......	......	......	२५	६¼	...	...	५०	...
कालीमिर्च	कटु २५	......	......	......	...	...	२५	...	२५	१००
कुट	कटु १२½	मधुर ६¼	......	......	२५	...	...	...	५०	...
भार्गी	तिक्त २५	कषाय २५	कटु ६¼	......	५०	...	५०	...	५०	...
अडूषा	तिक्त २५	कषाय ६¼	......	......	५०	...	...	५०	...	...
धमासा	मधुर २५	कषाय १२½	तिक्त ६¼	......	५०	...	...	१००	...	...
कुटकी	तिक्त २५	कषाय ६¼	......	......	५०	...	१२½	५०	...	...
लालचंदन	मधुर २५	तिक्त ६¼	......	५०	...	...	...	१००	...	...
देवदारु	तिक्त २५	......	......	......	५०	२५	...	...	५०	...
विडङ्ग	कटु १२½	......	......	......	२५	...	२५	...	२५	१००
यमानी	कटु २५	तिक्त १२½	......	......	५०	...	...	...	२५	१००
कट्फल	कषाय १२½	तिक्त ६¼	कटु ६¼	......	...	...	...	...	...	...

कुछ आहार द्रव्यों में रहने वाले रस, गुण, वीर्य और कर्म का माननिर्णय—

द्रव्य	रस	अनुरस	गुरु बृंहण	लघु लंघन	स्निग्ध क्लेदन	रूक्ष शोषण	मृदु श्लक्षण	शीत स्तंभन	उष्ण स्वेदन
गाय दूध	मधुर १००	....	२५	...	२५	...	२५	२५	...
भैंस दूध	,, १००	....	५०	...	१८⅓	...	...	५०	...
बकरी दूध	,, ७५	कषाय २५	...	२५	१२½	...	...	२५	...
लालशाली चावल	,, ७५	,, २५	...	१२½	६¼	...	२५	...	...
गेहूं	,, १००	....	२५	...	६¼	...	...	२५	...
जौ	,, ७५	कषाय २५	१२½	...	...	१२½	...	२५	...
बकरा का मांस	,, ७५	....	...	१२½	२५	...	...	२५	...
भाकुट मछली	,, ५०	....	२५	...	...	...	...	...	२५
मूग	,, ५०	....	...	१२½	...	१२½	...	२५	...
अरहर	,, ७५	कषाय २५	...	१२½	...	२५	...	१२½	...
नूतन गुड़	,, १००	....	२५	...	६¼	...	...	...	...
चीनी	,, १००	....	...	...	...	...	...	२५	...
सैंधानमक	लवण ५०	मधुर २५	...	१२½	६¼	...	...	२५	...
बैंगन	मधुर ५०	....	...	२५	...	...	...	...	...
कच्चा केल	,, १००	....	...	...	६¼	...	...	२५	...
छोटी मूली	कटु ५०	....	...	१२½	...	...	...	...	२५
खरबूजा	मधुर १००	....	१२½	...	...	...	...	२५	...
जामुन	कषाय ५०	मधुर २५ अम्ल २५	...	...	...	२५	...	२५	...
पालकशाक	....	....	२५	...	...	...	...	२५	...

—श्री कृष्णचन्द्र महन्ति आयुर्वेदाचार्य।
निराकार पुर (पुरी)

* * *

जीवाणु विज्ञान व त्रिदोषवाद

डा० एम० प्रसाद आयुर्वेदाचार्य

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों पर दृष्टिपात करने पर यह बात भली-भांति स्वीकार की जा सकती कि जीवाणु विज्ञान के प्रथम आविष्कर्त्ता आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान नहीं बल्कि प्राचीन भारतीय ऋषि हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सा का निदान प्राचीन त्रिकालज्ञ महर्षियों के अखण्ड त्रिदोष-सिद्धांत पर अवलम्बित है। जिस प्रकार अग्नि जल, वायु, पृथ्वी और आकाश पञ्चतत्वों के समान रहने पर प्रकृति की कार्यप्रणाली में किसी प्रकार का क्षोभ उत्पन्न नहीं हो पाता परन्तु किसी भी तत्व के न्यूनाधिक होने पर विषमता उत्पन्न हो जाती है ठीक इसी प्रकार मानव शरीर में भी त्रिदोष तत्वों वात, पित्त, श्लेष्म के न्यूनाधिक होने पर अनेक व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं।

वायुमण्डल में जो कि हमारे चारों ओर वर्तमान है विभिन्न प्रकार के असंख्य सूक्ष्म जीवाणु हवा में तैरते रहते हैं। जब कोई वस्तु अथवा जीव (Organism) बहुत दिनों तक यों ही गतिहीन रूप में पड़ा रहता है तो ये सूक्ष्म जीवाणु उस पर बस जाते हैं तथा अपनी संख्या-वृद्धि प्रारम्भ कर देते हैं। शनैः शनैः ये उस स्थान में करोड़ों की संख्या में उत्पन्न हो जाते हैं। इनकी वृद्धि के परिणाम स्वरूप एक प्रकार का रासायनिक परिवर्तन होता है जिससे सड़ांद पैदा होकर दुर्गन्ध निकलती है।

मानव शरीर में जब वात-पित्त-श्लेष्म न्यूनाधिक होता है तो उससे सम्बन्धित अङ्ग अवरुद्ध होकर गतिहीन हो जाते हैं जिससे उसमें प्रवेश प्राप्त नाना प्रकार के कीटाणु शीघ्र ही संख्या में बढ़ने लगते हैं और अनेक रोगों के लक्षण प्रकट करते हैं।

संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक तथा भा तीय संस्कृति एवं सभ्यता का आदि स्रोत वेद है अथर्ववेद में जिसका उपवेद आयुर्वेद है, अ स्थानों पर जीवाणुओं का वर्णन मिलता है। शा में जीवाणु के प्रविष्ट होने से व्याधि का उत्प होना तथा बच, सूर्य की रश्मियों (किरणों) आ प्राकृतिक साधनों के द्वारा उनके विनाशादि उपा का वर्णन अथर्ववेद के अनेक स्थानों पर देख को मिलता है। यथा—

"अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमिन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमिन् वचसा जम्भयामासि॥"

तथा

"ये क्रिमयः पर्वतेषु वने-
ष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
येऽस्याकं तन्वभाविविशुः सर्वं
तद्धिन्मि जनिम क्रिमीणाम्॥"
"यो अक्ष्यौ परिसर्पति
यो नासे परिसर्पति।
दतां यो मध्यं गच्छति
तं क्रिमिं जम्भयामासि॥
उत्पुरस्तात् सूर्य एति
विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
दृष्टांश्च घ्नन् अदृष्टांश्च
सर्वांश्च प्रमृणन क्रिमीन्॥"

चरक तथा वाग्भट्ट की उक्तियों से जी की सूक्ष्मता एवं अदृश्यता प्रदर्शित होती यथा—

"सूक्ष्मत्वाच्चै के भवन्त्यदृश्याः"

मैथुन, शरीर स्पर्श, सहभोजन, निःश्वास, शय्या पर शयन, रोगी का वस्त्र तथा पुष्प

का धारण करना आदि व्यवहार से औपसर्गिक रोगों (छूत रोगों) का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर संक्रमित होने के विषय में सुश्रुत ने निम्न शब्दों में सम्यक् प्रतिपादन किया है—

प्रसंगात् गात्र संस्पर्शा न्निश्वासात्सहभोजनात् ।
सहशय्या सनाचापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥

भावमिश्र ने तो कण्डु, उपदंश, भूतोन्माद और घाव को भी संक्रामक रोग माना है। यथा—

कण्डु कुष्ठोपदंशाश्च भूतोन्माद व्रण ज्वराः ।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥

इन उक्तियों से सिद्ध है कि जीवाणु न केवल मुख या खान पान द्वारा ही अपितु नाक और त्वचा द्वारा भी शरीर में प्रवेश करते हैं। मन्थर ज्वर, विसूचिका आदि रोगों के जीवाणु मुख द्वारा राजयक्ष्मा, श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया), कालीखांसी आदि के जीवाणु नासिका द्वारा तथा कण्डु, उपदंश फिरंग आदि के जीवाणु त्वचा द्वारा शरीर में प्रविष्ट होते हैं।

यजुर्वेद के १६ वें अध्याय में विभिन्न रङ्ग रूप के जीवाणुओं का वर्णन मिलता है। यहां जीवाणुओं को 'रुद्र' की संज्ञा दी गई है। क्योंकि "रोदयन्नीति रुद्राः" के अनुसार रुलाने वाले को रुद्र कहते हैं जिसका आशय जीवाणु ही होता है।

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवंरुद्रा उपश्रिताः ।
नीलग्रीवा, शितिकण्ठा शर्वाः अधः क्षमाचराः ॥
अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि ।
ये भूतामधिपति ये विशिखासः कपर्दिना ॥
असौयोऽव सर्पति नीलग्रीवो विलोहिता ।
असौ यस्ताम्रो अरूण उतबभ्रुः सुमङ्गलः ॥
ये वृक्षेशु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः ।
ये तीर्थानि प्रचरन्ति शृकाहस्ताः निषङ्गिण ॥
असंख्याता सहस्राणियेरूद्रा अधिभूम्याम् ।

अर्थात् नीली गर्दन वाले, सफेद गर्दन वाले, रोम वाले तथा बिना रोम (hair) वाले कुछ लाल वर्ण तथा अरूण वर्ण वाले तथा भूरे वर्ण वाले जीवाणु (रुद्र) हैं। पृथ्वी, समुद्र और आकाश इनके स्थान हैं। कुछ वृक्षों पर भी रहते हैं, उनका वर्ण हरा है और कुछ का वर्ण लाल तथा गर्दन नीली है। कुछ ऐसे भी हैं जो मार्ग में भ्रमण करते हुए मिलते हैं। ऐसे रुद्रों जीवाणुओं की संख्या एक या दो नहीं वरन् सहस्रों और असंख्य हैं।

अथर्ववेद के कई स्थलों पर लिखा है कि जीवाणुओं का वास स्थान आकाश है तथा इनका आक्रमण हवन न करने तथा अपवित्र रहने वालों पर होता है। इसका आशय यह है कि जीवाणु असंख्य की संख्या में हमारे चारों ओर के वायुमण्डल में विचरण करते रहते हैं तब हमें अपवित्र तथा हमारे अङ्गों को गतिहीन और निष्क्रिय पाते हैं तो आक्रमण कर बैठते हैं। प्राचीन समय में प्रत्येक हिन्दू के घर में प्रतिदिन हवन होता रहता था जिसके प्रभाव से आस पास के सभी जीवाणु नष्ट हो जाते थे और वायुमण्डल शुद्ध होजाता था। परन्तु दुःख है कि आज के हिन्दू हवन करना लज्जा की बात समझते हैं।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि प्राचीन आयुर्वेदाचार्य-प्रवरों को भी जीवाणु विज्ञान का पूर्ण ज्ञान था। परन्तु फिर भी उन्होंने इस विज्ञान को प्राथमिकता नहीं दी, इसका एक मात्र कारण यह है कि आयुर्वेदीय चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार समस्त शारीरिक क्रियाओं के कारण तीन मूल पदार्थ हैं जिन्हें त्रिदोष-वात, पित्त, कफ कहते हैं। साम्यावस्था में तथा परस्पर अवरोधाभाव से शरीर में इनकी उपस्थिति स्वस्थावस्था है और मिथ्या आहार विहार कायदोष (Physical fault), ऋतु दोष, आयुस्वभाव तथा वंश परम्परादि प्राप्त दौर्बल्य आदि कारणों से किसी भी दोष की न्यूनाधिकता के द्वारा शरीर

में इनकी विषमता का नाम ही व्याधि या रोग होता है। अतएव त्रिदोषों (वात, पित्त और श्लेष्म) के साम्यावस्था में रहने पर ये जीवाणु शरीर में उपस्थित रहते हुए भी किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं कर सकते। क्योंकि इस अवस्था में वे पूर्ण निष्क्रिय रहते हैं। परन्तु दोषों के वैषम्य होने पर ये शीघ्र ही क्रियाशील (active) होकर अनेकों विकार उत्पन्न कर देते हैं और मनुष्य रोगी (रुग्ण) बन जाता है।

शरीर-व्यवच्छेदन (Dissection of human body) के समय यह देखा गया है कि बहुत से स्वस्थ मनुष्यों की त्वचा, कपोल (गाल), तालु, नासा, अन्त्र (intestine), सर्वकिण्वी (pancreas), आमाशय आदि की श्लेष्मकला (mucus membrane) पर अनेक प्रकार के व्याधिजनक जीवाणु उपस्थित हैं परन्तु मिथ्या आहार-विहार एवं असंयम के अभाव में किसी भी विकार को उत्पन्न करने में असमर्थ हैं। अतः यह स्पष्ट है कि केवल जीवाणु संक्रमण से ही रोग या व्याधि उत्पन्न नहीं होती वरन् रोग की उत्पत्ति के लिए जीवाणु को त्रिदोष की न्यूनाधिकता (वैषम्यता) आवश्यक है जो कि उसका क्षेत्र है।

जिस प्रकार अयोग्य क्षेत्र में बीज की अंकुरोत्पत्ति (germination of seed) नहीं हो सकती, उसी प्रकार स्वस्थ शरीर में जो कि जीवाणुओं (micro-organisms) की वृद्धि के लिए अयोग्य क्षेत्र है, जीवाणु की संख्या-वृद्धि नहीं हो सकती। यदि मनुष्य में रोग दमन की शक्ति (immunity) विशेष रही तो उसके द्वारा जीवाणुओं का भी नाश हो सकता है। यही कारण है कि आयुर्वेद मनीषियों ने जीवाणु की अपेक्षा शरीर पर अधिक ध्यान दिया क्योंकि जीवाणुओं के सर्वव्यापी, सूक्ष्म एवं असंख्य होने के कारण उन्हें सर्वथा नष्ट नहीं किया जा सकता। इसी हेतु जीवाणुओं की उपस्थिति एवं उनकी रोग संक्रामक शक्ति का पूर्ण ज्ञान रहने पर भी जीवाणुओं को रोग का प्रधान कारण नहीं माना गया। उन्होंने त्रिदोष सिद्धान्त द्वारा शरीर रूपी क्षेत्र को ही शक्तिशाली एवं पवित्र बनाने का कठोर आदेश दिया जिससे उसके शत्रु जीवाणु का उस पर कोई वश नहीं चल सके। परन्तु आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान जीवाणु रूपी शत्रु-बीज को कृत्रिम साधनों से निर्मूल करने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहा है जिसके परिणाम स्वरूप आज चिकित्सा-क्षेत्र में लाखों रुपये व्यय करके नित नवीन अनुसंधान होने पर भी मानव-स्वास्थ्य की समस्या दिन प्रतिदिन दुःसाध्य (जटिल) ही होती जा रही है। विश्व के लोग आयुर्वेदीय मतानुसार शरीर रूपी क्षेत्र को व्याधिक्षम बनाने के सद्यफलप्रद एवं सरल त्रिदोष सिद्धान्त को न अपनाकर भूमण्डल के असंख्य एवं अति सूक्ष्म जीवाणुओं को निर्मूल करने के असम्भव कार्य के दुर्गम, कठिन एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं। जीवाणुओं को नष्ट करने के निमित्त विभिन्न तीव्र औषधियों के प्रयोग से आज सारा वातावरण विशाक्त हो गया है। हमें जल, भोजन, वायु, वस्त्र, गृह, औषधि प्रभृति सभी वस्तुओं में जीवाणुनाशक तीव्र औषधियों का कुछ न कुछ अंश अवश्य ही सेवन करना पड़ता है जिससे विभिन्न जीवाणु मर-मर कर हमारे शरीर में इकट्ठे होते रहते हैं तथा हमारे रक्त को विषाक्त करते हैं।

परन्तु दुःख है कि आधुनिकों के जीवाणु नाशक कार्य में इतने प्रयत्नशील रहने पर भी आज अपने आसपास के वातावरण में अनेकों ऐसे विभिन्न प्रकार के जीवाणु वर्तमान हैं जो अभी तक अति उच्च शक्ति के सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope of very high magnifying power) से देखने पर भी अदृश्य से हैं।

किन्तु फिर भी विज्ञान की दृष्टि से जीवाणुओं का अध्ययन प्रत्येक चिकित्सक के लिए

आवश्यक है। अतः इस ओर भारतीय वैद्यों को भी अग्रसर होना चाहिए।

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में जीवाणु-विज्ञान के आविष्कार का इतिहास इस प्रकार है। १६ वीं शताब्दी से पूर्व यूरोप के चिकित्सा-शास्त्री (Doctors of European countries) जीवाणुओं (bacterias and microorganisms) के अस्तित्व में भी विश्वास नहीं करते थे। किन्तु सन् १८४० ई० में हेनल नामक एक अंग्रेज विद्वान ने सर्व प्रथम इन सूक्ष्म जीवाणुओं (micro-organisms) का सम्बन्ध औपसर्गिक (छूत होने वाले) रोगों के साथ जोड़ा और कुछ समय पश्चात् काक नामक चिकित्सक ने जीवाणु तथा रोग का निश्चित सम्बन्ध सिद्ध करने के लिए चार नियम बनाये तथा जीवाणु के सम्बर्धन आदि की कृत्रिम विधियों का आविष्कार करके जीवाणु-विज्ञान की नींव डाली तत्पश्चात् आर्भरहरमेन, शिगा, फ्रेन्कील, नीसर, बोर्डे, गैगो, शौदिन, यर्सिन, फिटासाटो आदि चिकित्सा-शास्त्र-वेत्ताओं ने ट्यूबर वैसीलस, वैसीलस लैप्री, कौलेरा बैसीलस, वैसीलस टाइफोसस, न्यूमोकोकस, गोनोकोकस, वैसीलस पर्ट्युसिम, ट्रिपोनेमा पालीडम, वैसीलस पैस्टिस आदि जैसे अनेकों जीवाणुओं का आविष्कार कर इस विज्ञान में अभूतपूर्व उन्नति की। अब तो ऐसा हो गया है कि इसके अभाव में आधुनिक चिकित्सा पंगु ही समझी जाती है। इतना होने पर भी मुख्य-मुख्य सभी हानिकारक जीवाणुओं का पता लग चुका ऐसा नहीं कहा जा सकता।

पाश्चात्य (एलोपैथिक) चिकित्सा विज्ञान की तो आज ऐसी दशा है कि आज जो औषधि आविष्कृत होती है, उसे वे रोग विशेष के लिए सर्वगुण सम्पन्न समझते हैं तथा उसके गुण वर्णन में मेडिकल जनरलों तथा दैनिकपत्रों के सैकड़ों पृष्ठ रङ्ग दिये जाते हैं। परन्तु कुछ समय पश्चात् ही जब वह औषधि अनुपयोगी एवं अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होती है तो आविष्कारक महोदय किसी दूसरी अच्छी औषधि का आविष्कार करने की ओर मुड़ते हैं।

इस तरह नित नए आविष्कार होते रहते हैं जो कुछ समय तक अव्यर्थ मानी जाकर फिर स्वयं व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं।

अतः जीवाणु विज्ञान पर आधारित यह पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान अपना नित नवीन चोला बदलता रहता है। परन्तु इस विषय में हमें गर्व है कि हमारा आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान उस भांति नहीं है। हमारे त्रिकालज्ञ आयुर्वेद मनीषियों ने विभिन्न देश काल, वातावरण एवं प्रकृति के अनुसार अनेकों ऐसी औषधि एवं चिकित्सा प्रणाली का आविष्कार किया जिसके सिद्धान्तानुसार चलने और औषधि सेवन करने पर मनुष्य उसी प्रकार रोग एवं जरा से पूर्ण मुक्त होकर स्वास्थ्य लाभ कर सकता है जैसा कि बहुत पहले के भारतीय लोग प्राप्त करते थे।

आयुर्वेदीय चिकित्सा का प्रत्येक सिद्धान्त अपरिवर्तनशील है अर्थात् ध्रुवतारा की तरह अटल, स्थिर एवं सत्य है। आवश्यकता है हमारे उन मूल्यवान सिद्धान्तों को ढूंढ निकालने की जिसके लिए अहर्निश कठिन अनुसन्धान अपेक्षित है।

—डा. एम. प्रसाद एम. बी. एस. ए., आयुर्वेदाचार्य
श्री ईश्वरीयसूर्यम् स्वास्थ्य सुरक्षा संस्थान
मंगलगढ़ (दरभंगा)

*

वैदिक कालीन अध्यापक और छात्र

श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य

श्रीमद् भागवत् द्वादश स्कन्ध अध्याय ६ और ७ में श्री शौनक जी सूत जी से जिज्ञासा करते हैं कि वेद के आचार्य "पैल" आदि व्यास के शिष्यों ने वेद कितने भागों में विभक्त किये ? तब सूतजी उत्तर देते हैं जिस समय एकाग्रचित्त ब्रह्मा विष्णु के नाभि कमल में स्थित थे उस समय आकाश से एक ओङ्कार की उत्पत्ति हुई जिसके

—शेषांश पृष्ठ ८२८ पर।

—: वैदिक कालीन अध्यापक उनके पुत्र तथा छात्रों की तालिका : —

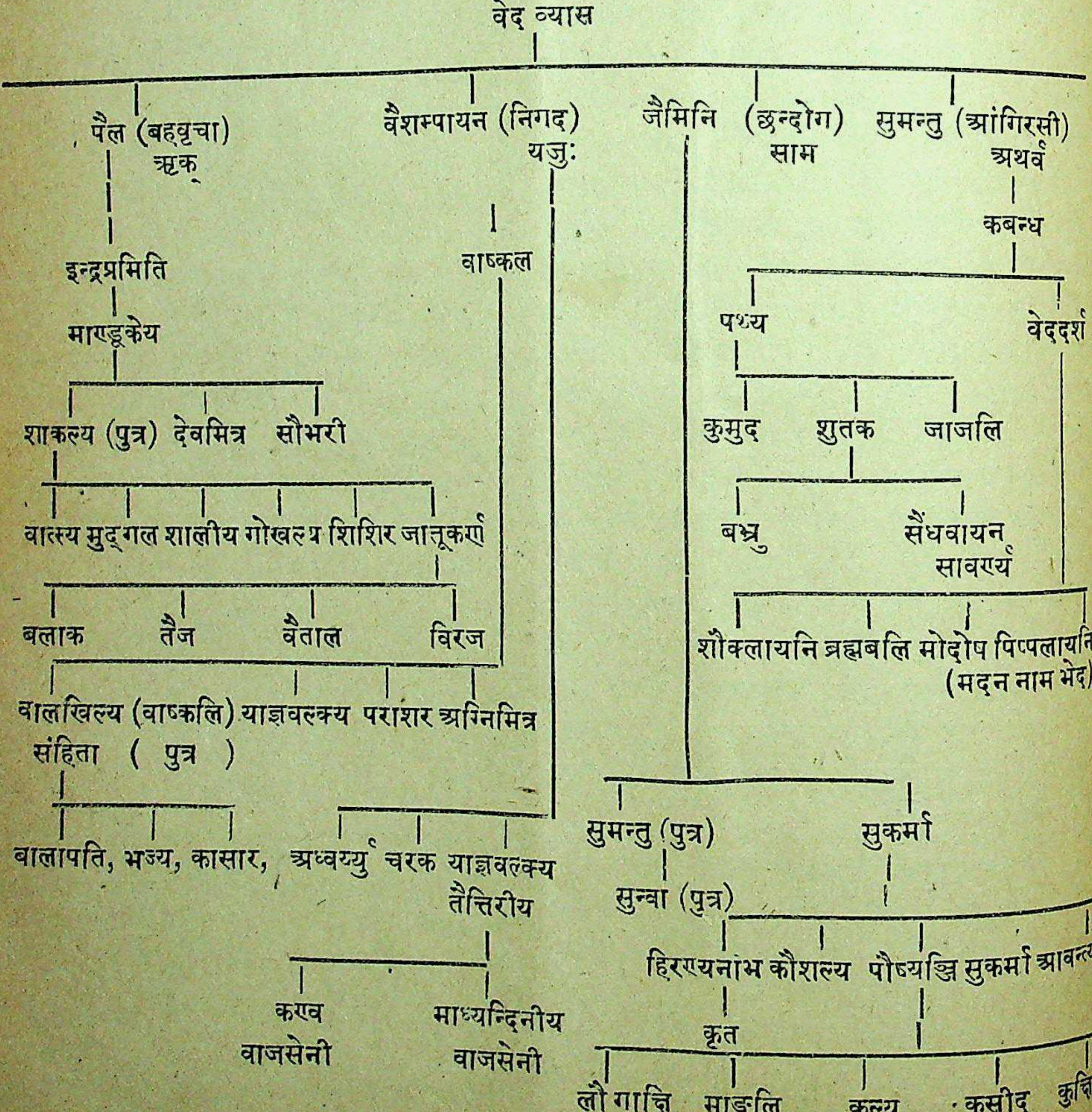
वेद व्यास
पैल (बह्वृचा)
ऋक्
वैशम्पायन (निगद)
यजु:
जैमिनि (छन्दोग)
साम
सुमन्तु (आंगिरसी)
अथर्व
इन्द्रप्रमिति
वाष्कल
कबन्ध
माण्डूकेय
पथ्य
वेददर्श
शाकल्य (पुत्र)
देवमित्र
सौभरी
कुमुद
शुतक
जाजलि
वात्स्य
मुद्गल
शालीय
गोखल्य
शिशिर
जातूकर्ण
बभ्रु
सैंधवायन
सावर्ण्य
बलाक
तैज
वैताल
विरज
शौक्लायनि
ब्रह्मबलि
मोदोष
पिप्पलायनि
(मदन नाम भेद)
वालखिल्य (वाष्कलि)
संहिता (पुत्र)
याज्ञवल्क्य
पराशर
अग्निमित्र
वालापति,
भज्य,
कासार,
अध्वर्यु
चरक
याज्ञवल्क्य
तैत्तिरीय
सुमन्तु (पुत्र)
सुकर्मा
सुन्वा (पुत्र)
हिरण्यनाभ
कौशल्य
पौष्यञ्जि
सुकर्मा
आवन्त्य
कण्व
वाजसेनी
माध्यन्दिनीय
वाजसेनी
कृत
लौगाक्षि
माङ्गलि
कुल्य
कुसीद
कुक्षि

रक्तचाप

श्री कविराज एस. एन. बोस

रक्तचाप (Blood Pressure) क्या है। साधारणतया Blood Pressure कहने से एक रोग की प्रतीति होती है परन्तु Blood Pressure कोई रोग नहीं है। मानव शरीर में रक्त का संचालन एक निर्दिष्ट दबाव से होता है और इस दबाव को ही Blood Pressure या रक्तचाप कहा जाता है। रक्त संचालन में इस दबाव का संरक्षण चार कारणों पर निर्धारित है। १–हृत्पिण्ड की क्षमता २–रक्त का परिमाण व घनत्व ३–धमनी प्राचीरों की स्थिति स्थापकता ४-केशिकाओं में अवरोध। जैसा कि हम देखते हैं कि जल के प्रवाह में १–पानी के भण्डार का अवस्थान के कारण वेग की उत्पत्ति २–पानी का परिमाण ३-नल की मुटाई और ४–टूंटी की निर्गम शक्ति पर निर्भर है वैसे ही शरीर में रक्त संचालन भी उपर्युक्त कारणों पर निर्भर है। स्वाभाविक अवस्था में रक्त का दबाव आयु के साथ ९० जोड़कर Systolic अर्थात् प्रक्षेपक और उसका २/३ भाग आवस्थानिक या Diastolic माना जाता है। तो भी साधारणतया एक स्वस्थ युवक के लिए १२०/८० रक्तचाप को स्वाभाविक माना जाता है। बाल्यकाल में रक्त का दबाव कम रहता है और आयु की वृद्धि के साथ-साथ बढ़ता रहता है। एक प्रौढ़ व्यक्ति के लिए १४० से १५०/९० से ९५ तक के रक्तचाप को स्वाभाविक माना गया है।

आयुर्वेद के मतानुसार रक्त का संचालन वायु के कारण है। रक्त के पित्तधर्मी होने के कारण इस का परिमाण तथा घनत्व शरीर में पित्त धातु का द्योतक ही माना जाता है। धमनियों की स्थितस्थापकता इनका स्वाभाविक गुण है जो कि धातु तथा दोषों की साम्यावस्था से उत्पन्न होता है। अतः हम अनुमान कर सकते हैं कि स्वस्थ शरीर में कफ की साम्यावस्था में प्रधानतः वायु तथा पित्त के द्वारा रक्तचाप का संरक्षण होता रहता है और Hypertension जिसको हम रक्तचाप की विवृद्धि के अर्थ में प्रयोग करते हैं वह वायु और पित्त की विकृति के कारण ही उत्पन्न होता है। अवश्य हम कफ की अवहेलनानहीं कर सकते हैं। क्योंकि वायु व पित्त की विकृति होने से कफ की विकृति की भी सम्भावना रहती है तो भी कफ की साम्यावस्था में केवल विकृत वातपित्त रक्तचाप में विवृद्धि अथवा न्यूनता उत्पन्न कर रोग लक्षण उत्पन्न कर सकते हैं।

रक्तचाप की परीक्षा के लिए हम जिस यन्त्र की सहायता पाश्चात्य विज्ञान से लेते हैं उसे Sphygmomanometer या साधारण भाषा में Blood pressure Instrument कहा जाता है। रक्तचाप की परीक्षा की दो पद्धतियां हैं, स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा तथा श्रवणेन्द्रिय के द्वारा। Stethescope की सहायता से स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा केवल प्रक्षेपक रक्तचाप अर्थात् Systolic Pressure का ज्ञान हो सकता है परन्तु श्रवणेन्द्रिय के द्वारा प्रक्षेपक तथा आवस्थानिक दोनों प्रकार के रक्तचाप का ज्ञान सम्भव है। प्रक्षेपक रक्तचाप से धमनियों के अन्दर रक्त किस वेग से प्रवाहित होता है इसका ज्ञान हो सकता है परन्तु आवस्थानिक रक्तचाप से हृत्पिण्ड के दो बार रक्त प्रक्षेप के मध्य में धमनियों के अन्दर रक्त प्रवाह के वेग का परिमाण ज्ञात होता है। प्रथमोक्त रक्तचाप हृत्पिण्ड की संकुचित अवस्था में द्वितीय रक्तचाप हृत्पिण्ड की प्रसारित अवस्था का परिचय देता है। वस्तुतः रोगी के दशा निर्णय में आवस्थानिक रक्तचाप का महत्व अधिकतर माना जाता है। क्योंकि इस समय हृत्पिण्ड प्रसारित तथा विरामावस्था में रहता है। प्रक्षेपक रक्तचाप या Systolic pressure रक्त सम्वाहन के वेग का द्योतक होता है जो कि आयुर्वेदीय मतानुसार वायु की अवस्था परिचायक माना जाता है।

आवस्थानिक रक्तचापके उत्पादन में रक्त का परिमाण तथा घनत्व (Volume and density) का विशेष महत्व का है जिसे हम आयुर्वेदीय मतानुसार पित्त की अवस्था का परिचायक मानते हैं। नाड़ी परीक्षा में भी गति, यति, आकृति तथा संहति के भीतर केवल संहति ही रक्तचाप का परिचायक होता है। इसमें दो भाग हैं–१. रक्तप्रवाह का वेग जो कि वायु के कारण होता है और दूसरा २. नाड़ी वेग के मध्य में धमनीस्थित प्रवाह हीन रक्त का दबाव जो कि पित्त के कारण उत्पन्न होता है। इन दोनों भागों के सम्मिलित रूप को संहति कहा जाता है। इसी विचार से हम रक्तचाप को शारीरिक रक्त सम्वाहन में वायु तथा पित्त की अवस्था का द्योतक मान सकते हैं।

रक्तचाप की विवृद्धि अथवा Hypertension या High blood pressure हम तभी कह सकते हैं जबकि किसी व्यक्ति में लगातर कुछ दिनों तक रक्त का दबाव बढ़ा हुआ रहे। युवकों में १५० से १६०/९० से ९५ से ऊपर हो अथवा प्रौढ़ व्यक्तियों में १७०/१०० के ऊपर हो। इस निर्णय के लिये यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार के रक्तचाप की विवृद्धि स्थायी रूप से हो। विशेष रूप से प्रक्षेपक रक्तचाप में वृद्धि मानसिक कारणों से अथवा शारीरिक श्रम के कारण हो सकती है जिसको विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। Sir Cllifferd Allbutt ने वृक्क के रोग तथा धमनियों के रोग के अलावा उत्पन्न रक्तचाप की लगातार विवृद्धि को Hyperpiesia संज्ञा दी थी, इसके अलावा रक्तचाप की विवृद्धि को दो पृथक भेदों से विभक्त किया गया है एक Essential or Primary Hypertension (Hypertensive Cardio-Vascular disease) जिस में कि वृक्क का रोग अथवा धमनियों के रोग कारणभूत नहीं है परन्तु उसमें जो यान्त्रिक परिवर्तन उत्पन्न हुआ हो वह विवृद्ध रक्तचाप के कारण अथवा रक्तचाप विवृद्ध के साथ साथ दूसरे कारणों से उद्भूत हुआ। दूसरे प्रकार अर्थात Secondary Hypertension अन्य रोगों के जैसे कि वृक्क प्रदाह, वृक्कान्तार्बुद मूत्राघात, मूत्राजठर, रजारोध मस्तिष्क में रक्त-

---

पृष्ठ ८२६ के दूसरे कालम का शेषांश।

ध्यान करने से योगिजन सिद्धपद की प्राप्ति करते हैं और वह ब्रह्म का वाचक तथा सभी मन्त्र उपनिषद वेदों का बीज और सनातन है। उस ओंकार के तीन वर्ण (अ, इ, उ) हैं उक्त तीनों वर्ण तीनों (सत्व, रज, तम) भावों को धारण करते हैं, इसी से अक्षर समाम्नाय की रचना की गई, इसी से अन्तस्थ (य र ल व) ऊष्म (श स ष ह) स्वर (अ आ इ ई आदि) स्पर्श (क से लेकर म तक) तथा ह्रस्व दीर्घ प्लुत आदि की उत्पत्ति हुई, इन सबके सहारे से ब्रह्मा जी ने चार मुखों से चार वेदों का व्याहृति तथा ओंकार सहित सृजन किया। इसके पश्चात् इन चारों वेदों का अध्ययन अपने पुत्रों को ब्रह्मा ने कराया उन्होंने धर्म का प्रचार करने वाले अपने पुत्रों को उपदेश दिया।

इस प्रकार अगली-अगली पीढ़ियां ज्ञानार्जन करने लगीं यह ज्ञान उन महर्षियों के द्वारा चारों युगों में फैल गया। तदनन्तर समय के प्रभाव से प्राणियों को क्षीण आयु ओज रहित एवं मूर्ख देख कर ब्रह्मा शिव आदि लोकपालों ने धर्म की रक्षा के लिए भगवान से प्रार्थना की। तब सर्वव्यापी भगवान् ने सत्यवती के गर्भ से जन्म लेकर ऋक अथर्व, यजु, साम, इन चार वेदों की ज्ञान राशि को लेकर चार संहितायें बनाईं, उनका उपदेश देने के लिए चार शिष्यों को अपने पास बुलाया और क्रमशः एक-एक संहिता का एक-एक शिष्य को उपदेश दिया जिसको समझने में अधोलिखित तालिका आपका साहाय्य करेगी।

पृष्ठ ८२६ पर तालिका देखिये।

स्राव अथवा त्रिषमतया एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की विकृति के कारण उत्पन्न रोगों के उपसर्ग के रूप में उत्पन्न हो सकता है ।

प्राथमिक अथवा Essential Hypertension जो कि हृत्पिण्ड तथा रक्तवाही स्रोतों में रक्तचाप की विवृद्धि के कारण उत्पन्न होता है वह दो प्रकार के हो सकते हैं। एक Benign अर्थात् साध्य व दूसरा Malignant अर्थात् घातक। प्रथमोक्त में लक्षण स्वल्प तथा मृदु होते हैं जिसमें मूत्र में विशेष परिवर्तन नहीं होता है और घातक में इसके ठीक विपरीत अवस्था की उत्पत्ति होती है ।

निदान—

पाश्चात्य मतानुसार अभी तक इसका निदान तथा विकृति का ज्ञान सम्यक् रूप से अवगत नहीं है परन्तु जिन बातों पर पाश्चात्य शिक्षा शास्त्र महत्व देता है वे हैं १. वंशानुक्रमिक प्रकृति २. मध्य आयु में साधारणतया इसकी उत्पत्ति, ३. मानसिक दुश्चिन्ता, उद्वेग भाव, प्रौढ़ता, शारीरिक स्थूलता, कद की विवृद्धि, अत्यधिक मद्यपान व धूम्रपान, गुरु भोजन, इत्यादि आयुर्वेद के मतानुसार हम वायु तथा पित्त प्रवर्धक आहार विहार को ही प्रधानता देते हैं।

शारीरिक विकृतिः–धमनियों के अन्त में केशिकाओं में अवरोध की विवृद्धि के कारण हृदय के ऊपर अत्यधिक दबाव पड़ता है, जिससे हृत्पिण्ड विशेषरूप से वामालिंद प्रसारित व स्थूल हो जाते हैं, किन्हीं विद्वानों का मत है कि वृक्कों को रक्त-प्रवाह में अल्पता के कारण Renin नामक एक प्रकार की रक्त चाप की विवृद्धि के कारक पदार्थ की सृष्टि होती है जो कि रक्त में संचारित होकर रक्तचाप में विवृद्धि उत्पन्न करती है ।

लक्षण—

विवृद्ध रक्तचाप के लक्षण निम्न प्रकार हैं मस्तिष्क में भारीपन तथा रक्त संचार के समय धक-धक की आवाज आना, सामयिक भ्रम अर्थात् चक्कर आना, सामयिक लालिमा, निद्रानाश, हृत्पिण्ड की गति में वृद्धि तथा अनुभूति, अकारण श्रान्ति शिरोवेदना विशेष रूप से मस्तिष्क के पश्चिम भाग में जिसका प्रातः अधिक अनुभव होता है, स्मृति शक्ति की न्यूनता, मानसिक अस्थिरता, चिड़चिड़ापन तथा धैर्य का अभाव आदि ।

कभी कभी रक्तचाप के पूर्व लक्षण स्वतः ही लुप्त होजाते हैं कभी कभी सुचिकित्सा के द्वारा भी वे लक्षण लुप्त हो जाते हैं हृल्लास, अतिसार, नासा मार्ग से रक्तस्राव, आमाशय, अन्त्र, वृक्क आदि से भी रक्तस्राव हो सकता है। नेत्रों में भी लालीपन, प्रदाह तथा दृष्टि पटल (Retina) में रक्त स्राव हो सकता है किसी भी अंग में खल्ली स्तब्धता या विभिन्न प्रकार की अनुभूति आदि लक्षण प्रगट हो सकते हैं।

रक्तचाप में मृत्यु साधारणतया हृत्पिण्ड में विभिन्न परिवर्तनों के कारण होती है इनमें से अत्यधिक रक्त संचारण के कारण हृदय का अवसाद तथा हृच्छूल प्रधान है। कभी कभी हृदय में रक्त का पोषण के अभाव के कारण और कभी कभी मस्तिष्क में रक्तस्राव के कारण भी मृत्यु हो सकती है।

Malignant Hypertension दो प्रकार का हो सकता है एक दीर्घदिन तक साधारण रक्तचाप की विवृद्धि (Benign Hypertension) से पीड़ित रहने के कारण तथा दूसरा प्रारम्भ से ही तीव्र लक्षणों के साथ आक्रमण के कारण इसमें विशेष रूप से Diastolic या आवस्थानिक रक्तचाप की विवृद्धि अधिक होती है। साधारणतया २००/१२० या इससे भी अधिक रक्तचाप में वृद्धि से घातक रक्तचाप वृद्धि या Malignant Hypertension का सन्देह करना चाहिए।

लक्षण—

प्रधानतया इसमें निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं । अवसाद, अरुचि, मांसक्षय, तीव्र

शिरोवेदना, पाण्डुता, अधिक मूत्रस्राव विशेषकर रात्रिकाल में बार बार मूत्रस्राव, मूत्र में आपेक्षिक गुरुत्व काफी कम हो जाना, Retina में परिवर्तन तथा रक्तस्राव, मूत्र में Hyeline and Granular casts, Albumin और लाल रक्त कण का मिलना आदि जैसे जैसे रोग बढ़ता जाता है वैसे संस्थान में अधिकतर हानि के लक्षण उत्पन्न होते जाते हैं। साधारणतया मृत्यु रक्त में मूत्र विषमयता (Uraemia) हृद्रोग अथवा मस्तिष्क में रक्तश्राव के कारण होती है। परन्तु विशेष रूप से रक्त की विषमयता के कारण ही इस रोग में अधिकतम मृत्यु होती है।

साध्यासाध्यत्व निर्णय—

साधारण साध्य (Benign) रक्तचाप की विवृद्धि में रोग प्रगति धीरे धीरे होती है और रोगी १०, १५ वर्ष या इसमें भी अधिक दिन तक जीवित रह सकते हैं। घातक रक्तचाप की विवृद्धि में रोगी के जीवन की आशा दो वर्ष से अधिक नहीं मानी जाती है।

चिकित्सा—

पाश्चात्य शास्त्र में इस रोग की चिकित्सा के विचार प्रसंग में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि रक्तचाप वृद्धि की बीमारी एक आदर्श क्षेत्र है जहां रोग की चिकित्सा के बजाय रोगी की चिकित्सा करना ही नितान्त आवश्यक माना जाता है। आयुर्वेद शास्त्र में यह उपदेश प्रत्येक क्षेत्र में दिया गया है तदनुसार यहां भी प्रयोज्य है। रोगी को आश्वासित तथा उत्साहित करना चिकित्सक का कर्त्तव्य होता है। रोगी को रोग की गम्भीरता के सम्बन्ध में अथवा रक्तचाप वृद्धि के परिणाम के सम्बन्ध में ज्ञात न करवाना ही अच्छा होता है। शारीरिक तथा मानसिक विश्राम इन रोगियों के लिये आवश्यक है। रोगी सांसारिक तथा पारिपार्श्विक अवस्था से विदित होना चिकित्सक के लिए परमावश्यक है। साथ ही साथ रोगी की प्रकृति तथा मिजाज, उनका धंधा तथा कार्यकाल, आदतें, निद्रा आदि से भी सुपरिचित होना चाहिए। रोगी के भोजन के सम्बन्ध में इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि रोगी अधिक तथा गुरु भोजन न ले। हृत्पिन्ड के उत्तेजिक पदार्थों तथा गर्म मसाले व अत्यन्त उष्ण भोजन को त्याग दें। तम्बाकू तथा मद्य का सेवन भी उनके लिए वर्जनीय है। चाय या काफी का प्रयोग कम से कम करें। भोजन के साथ पानी अधिक न पीकर दोनों भोजन के मध्यकाल में पानी पीवें। हल्का भोजन जिसमें सब्जियां विशेष रूप से हरी सब्जियां ताजे फल मांसाहारियों के लिए छोटी मछली अथवा छोटे प्राणियों का मांस तथा दूध व दही या मठा आदि इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए हितकर है। नमक का प्रयोग जहां तक हो सकें कम करना अच्छा है। आजकल Ruthmol, K-Salt इत्यादि नमक निकले हैं जिससे स्वाद में परिवर्तन नहीं होता हैं। रक्तचाप के रोगी इस नमक से अपना काम चला सकते हैं। रोगी को कोष्ठशुद्धि पर विशेष ध्यान देना इस रोग की चिकित्सा में परमावश्यक है। आवश्यक होने से वस्ति क्रिया अथवा रेचक औषधियों से सहायता ली जा सकती है।

सर्पगन्धा इस रोग के लिए श्रेष्ठ औषधि मानी जाती है। सर्पगन्धा के ऊपर विभिन्न प्रकार के अन्वेषण हो रहे हैं और विभिन्न प्रकार के औषधि तत्वों का पता लग चुका है। बहुत सी नई औषधियां बाजार में आ चुकी हैं उसका प्रयोग भी अधिक मात्रा में हो रहा है। इनके भीतर Reserpin या Serpasil विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विभिन्न तत्वों से जिस प्रकार आशुलाभ होता है उसी प्रकार हानि भी हो सकती है और स्थायी फल भी नहीं मिलता है। अभी तक वैज्ञानिकों का यह विचार है कि सर्पगन्धा में वर्तमान सभी तत्वों का समवेत प्रयोग किसी विभिन्न आशुफलदायी तत्वों से अधिकतर लाभदायक हैं और इसमें हानि की

आशंका भी बहुत कम रहती हैं। मेरे विचार में Himalaya Drug. Co. का Serpentine Tablets अधिकतर उपयोगी सिद्ध हुआ है। सर्पगन्धा भारत के विभिन्न प्रान्तों में मिलती है और विभिन्न प्रान्तों के जलवायु के कारण इस भेषज के गुणों में अन्तर आ जाता है। परीक्षा से सिद्ध हुआ है कि उत्तरी भारत से प्राप्त सर्पगन्धा में रक्तचाप को कम करने का गुण अधिक हैं, बिहार में प्राप्त सर्पगन्धा में उन्माद रोग को दूर करने की शक्ति अधिक है और बङ्गाल में मिलने वाली सर्पगन्धा में गर्भाशय के ऊपर डालने वाले प्रभाव अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। केरल प्रान्त में मिलने वाली सर्पगन्धा में उत्तरी भारत से प्राप्त सर्पगन्धा में उपलब्ध कुछ तत्व बिल्कुल नहीं रहते हैं। इस ज्ञान के आधार पर हमें देहरादून आदि क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली सर्पगन्धा का प्रयोग रक्तचाप विवृद्धि की चिकित्सा में अधिकतर करना चाहिए।

परन्तु सर्पगन्धा का प्रयोग अधिकतर रूप से सामयिक लाभदायक ही सिद्ध हुआ है। सर्पगन्धा के प्रयोग के साथ-साथ हमें आयुर्वेदीय वायुनाशक औषधियों का प्रयोग करना परमावश्यक प्रतीत होता है। विशेष रूप से रसौषधियों का प्रयोग रक्तचाप की विवृद्धि में स्थायी लाभ के लिये अपेक्षित है। अतः चतुर्मुख रस तथा रसराज रस जिसमें कि स्वर्ण, लौह, वङ्ग, अभ्रक तथा चांदी व रस सिंदूर के अतिरिक्त अश्वगन्धा, लौंग, जावित्री तथा क्षीर काकोली पड़ती है, विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसमें से चतुर्मुख रस प्रातः त्रिफला के शीत कषाय के साथ देने से कोष्ठशुद्धि के साथ मस्तिष्क तथा उदरगत वायु का अनुलोमन होता है। त्रिफला की मात्रा रोगी की प्रकृति के अनुसार निर्णय कर लेना चाहिए। जिससे त्रिफला के कारण ही रोगी को एक बार अधिक कोष्ठशुद्धि हो। सायंकाल रसराज रस, जटामांसी, तगर, पादुका, वच, खुरासानी अजवायन, इलायची, बड़ी इलायची, ब्राह्मी इत्यादि वस्तुओं में से उपलब्ध एक दो पदार्थों का शीतकषाय या स्वरस के साथ प्रयोग करने से काफी लाभ होता है। जटामांसी, वच, खुरासानी अजवायन तथा तगर आयुर्वेदीय मतानुसार वायु नाशक तो हैं ही आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार यह पदार्थ Sedative (अवसादक) भी माने जाते हैं। रसराज रस के अनुपान के रूप में इसका प्रयोग लाभदायक सिद्ध होगा। इसके अलावा योगेन्द्र रस तथा वृ० वातचिन्तामणि रस का प्रयोग भी रक्तचाप की विवृद्धि में लाभदायक सिद्ध हुआ है। मूत्र संस्थान की विकृति अथवा हृत्पिण्ड की विकृति की चिकित्सा तदनुसार होनी चाहिए। सर्वाङ्ग में मर्दनार्थ मध्यमनारायण तैल, विष्णु तैल तथा मस्तिष्क में मर्दनार्थ हिमसागर तैल, ब्राह्मी तैल, वृ० विष्णु तैल इत्यादि उपयोगी हैं। स्निग्ध विरेचन तथा अनुवासन बस्ति का प्रयोग इस रोग में लाभदायक है। अभ्यास के अनुसार स्नान रोगी के लिए हितकर है।

पाश्चात्य शास्त्र में इसकी चिकित्सा (Sedative) अवसादक औषधियों के प्रयोग से करने का उपदेश मिलता है। जिससे सामयिक रूप से लाभ मिलता है। योग्य क्षेत्र में कम से कम एक पाइण्ट रक्त का मोक्षण करवाना चाहिए। रक्तचाप की विवृद्धि में शल्यक्रिया की सहायता भी ली जाती है और Sympathectomy का प्रचार इस समय अधिक हो रहा है। अगर एक वृक्क स्वस्थ प्रतीत हो तो हानि ग्रस्त वृक्क को निकाल भी दिया जाता है। इससे भी लाभ होता है। तीव्र शिरोवेदना के लिए मस्तिष्क में शीतल जल प्रसेक या बर्फ का प्रयोग एवं Phenacetin and caffine citras से सहायता ली जा सकती है। हृदय के अवसाद के लिए मूत्रल औषधियों के साथ Digitalis का प्रयोग पाश्चात्य शास्त्र में उपदिष्ट है। वृक्क में हानि न रहने से पारद घटित मूत्रल औषधियों का प्रयोग विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ। पाश्चात्य शास्त्र से उपलब्धज्ञान का लाभ हम आयुर्वेद से तथा आयुर्वेदीय औषधि भण्डार से भी उठा सकते हैं और यह हमारे लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

श्वसनक ज्वर की सफल चिकित्सा

वैद्य गोवर्धन दास चागलानी

श्वसनक ज्वर वात श्लेष्म प्रधान सन्निपात है। इसे ऐलोपैथी में "न्यूमोनियां" (Pneumonia) कहते हैं। कुछ आयुर्वेदज्ञ इसे 'फुफ्फस सन्निपात" भी कहते हैं। जब यही रोग बच्चों को होता है तब इसे 'बाल निमोनियां' 'डब्बा' ,उत्फुल्लिका, 'पसली चलना' कहते हैं। इस श्वसनक ज्वर में प्रलाप और सन्ताप अधिक रहता है। प्रायः ज्वर मुक्ति के समय पसीना इतने जोर से आता है कि हृदयावसाद होकर सारा शरीर ठण्डा होजाता है। उस समय यदि उपाय न किया जा सके तो रोगी की अचानक मृत्यु हो जाती है। श्वसनक ज्वर की सान्निपातिक अवस्था में अनिद्रा, तन्द्रा और मोह अधिक मात्रा में होते हैं। ज्यों ज्यों रोगी के फुफ्फुस अधिकाधिक आक्रान्त होते जाते हैं त्यों-त्यों रोगी का मस्तिष्क और हृदय पीड़ित और दुर्बल होते जाते हैं। ज्वर का वेग भी अधिकाधिक बढ़ता जाता है। ज्यों ज्यों फुफ्फस रोग से मुक्त अथवा स्वस्थ होता जाता है त्यों त्यों ज्वर का वेग कम होता जाता है। रोगी का हृदय और मस्तिष्क भी स्वस्थ और सुखी होने लगते हैं। इस रोग में जब तक एक फुफ्फुस आक्रांत रहता है तब तक यह रोग साध्य होता है। दोनों फुफ्फुसों के आक्रांत होते ही रोग कष्ट साध्य होजाता है। श्वसनक ज्वर में उन्माद और प्रलाप के साथ ज्वर के तीव्र वेग में नाड़ी का क्षीण होना रोग की असाध्यता का सूचक है। श्वसनक ज्वर में फुफ्फुस पर सूजन होजाने से रोगी कष्ट से श्वास लेता है और कराहता है। इसके अतिरिक्त रोगी की पसलियों में पीड़ा होने लगती है। श्वास-प्रश्वास क्रिया होते समय नाक के नथुने फैलने लगते हैं। रोगी को श्वास लेते समय छाती और पसलियों में अत्यधिक वेदना (पीड़ा दर्द) होने लगती है। अधिकांश रोगियों को प्रथम शीत (जाड़ा) लगकर ज्वर आता है और मुख तथा नेत्र लालामी लिये हुए दृष्टिगोचर होते हैं। छोटे बच्चों को श्वसनक ज्वर होने पर अधिकांश रोगियों को हरे और पीले दस्त होते हैं तथा वमन भी, वमन (उल्टी) में कफ भी निकलता है। अर्थात् माता का दूध पलट देते हैं। ऐसे ही कुछ रोगियों की चिकित्सा का विवरण देकर इस लेख को समाप्त करूंगा।

लगभग ४-५ वर्ष पूर्व एक ठाकुर साहब (जो न्यौराई ग्राम के निवासी हैं) और कुछ वर्षों से एटा में पटियाली दरवाजे रहते हैं मेरे पास रात्रि के ११ बजे के लगभग आये और मुझे रोगी बच्चा दिखलाने के लिये अपने घर लेगये। जाकर देखा कि बच्चे के गले में कफ की घर घराहट, पेट में आध्मान (अफरा) ज्वर १०४॥° डिग्री श्वास लेने में कठिनता, पसलियों के नीचे गढ्ढे पड़ना, कराहना और खांसी का जल्दी जल्दी आना, नाड़ी धीमी चल रही थी। बच्चा अचेतन अवस्था में था। उसने मां का दूध भी दोपहर के बाद पीना छोड़ दिया था। बच्चे की आयु लगभग १ वर्ष की थी। मैंने ठाकुर साहब को रोगकी भयानकता की सूचना देकर कहा कि बच्चे की अवस्था में कुछ सुधार हुआ तो बच्चा इस चक्कर में से निकल जावेगा। यदि आपकी सम्मति हो तो मैं औषधि दूं। इस बात पर उनके स्वीकार करने पर मैंने निम्नलिखित औषध योजना की।

इस बच्चे को मलावरोध भी था। औषधि व्यवस्था पत्र निम्न प्रकार है—

(१) अश्वकंचुकी रस १/४ रत्ती
२ मात्रा
(२) त्रिभुवनकीर्ति रस १/४ रत्ती

अभ्रकभस्म ¼ रत्ती
प्रावालपिष्टी मृगशृंगभस्म चन्द्रामृतरस
—यह तीनों १-१ रत्ती

—पहिले नं० १ की औषधि फिर नं. २ की औषधि १ घंटे बाद फिर २-२ घण्टे पर बारी-बारी से बदल कर गुनगुने (थोड़े गर्म) जल से देने को कह दिया।

(३) दशमूलारिष्ट+द्राक्षारिष्ट का मिश्रण छः माषा। ५-५ बूँद हर दस पन्द्रह मिनट बाद सम भाग जल मिलाकर पिलाने को कह दिया।

(४) तारपीन का तैल (कपूर मिश्रित) और महानारायण तैल मिलाकर गुनागुना कर छाती, पेट और पसलियों पर लगाने और सिकाई करने को कह दिया। उपरोक्त औषधियां देकर मैं घर आकर लेट गया। मुझे बार बार बच्चे की दयनीय दशा की चिन्ता होने लगी और वह दृश्य आंखों के सामने आने लगा। १-१॥ घण्टे तक तो नींद नहीं आई फिर मुझे निद्रा आगई। मैं सुबह उठा तो भी बच्चे की चिन्ता लगी रही। औषधालय खोलकर रोगियों को औषधियां देने लगा तब भी बीच बीच में उपरोक्त बच्चे की फिक्र लगी रही। सुबह १०½ बजे तक कोई समाचार न मिलने पर मेरी परेशानी बढ़ गई। नाना प्रकार की आशंकायें मन में उठने लगीं। कुछ देर बाद उपरोक्त ठाकुर साहब बच्चे को गोद में उठाकर ले आए। उनके चेहरे से प्रसन्नता प्रगट हो रही थी। मैंने पहिले बच्चे का हाल पूँछा फिर बच्चे को देखा, देखकर परमपिता परमात्मा को धन्यवाद देने लगा। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। ठाकुर साहब को देर से आने के कारण मैंने उलाहना दिया, उत्तर में उन्होंने पूरा समाचार कह सुनाया कि रात को पहिले हमने नं. १ औषधि (अश्वकंचुकीरस) दिया तो थोड़ी देर बाद बच्चे को एक उल्टी (वमन) हुई जिसमें कफ निकला। थोड़ी देर बाद एक दस्त कुछ बंधा कुछ पतला हुआ। फिर नं. २ की औषधि (त्रिभुवन कीर्ति आदि मिश्रण) दिया। पीने वाली दवा थोड़ी-थोड़ी देर बाद देते रहे। तीसरी मात्रा रात के २॥-३ बजे के लगभग दी। ४ बजे के करीब बच्चे को १ दस्त और हुआ। उसके थोड़ी देर बाद बच्चा कुछ सावधान हुआ, फिर मां का दूध पिया। दूध पीकर सो गया, तब से सोता रहा, अभी अभी उठा है। १ मात्रा नं. २ की शेष रही थी सो पिलाकर आपके पास ले आया हूं। मैंने औषधि में अश्वकंचुकी रस बन्द कर दिया, त्रिभुवनकीर्तिरसादि मिश्रण में शक्ति के लिये थोड़ी मात्रा में मकरध्वज मिलाकर ४ मात्रा बनादीं। दशमूलारिष्ट और द्राक्षारिष्ट के मिश्रण में से दस्त होने के कारण द्राक्षारिष्ट निकाल कर कुटजारिष्ट कर दिया और उसकी ४ मात्रायें दीं। ज्वर उस समय ९८½ था। तीसरे दिन ज्वर बिलकुल नहीं रहा। बच्चे की माता को मैंने संजीवनी गोली भोजन के बाद गुनगुने जल से लेने को दीं थीं। ठण्डी चीजों से परहेज करने को कह दिया था। ऐसे रोगी बच्चों की माताओं को प्रायः मैं नमकीन रोटी (थोड़ी सी काली मिर्च और नमक डाल कर बनायी गई) चाय के साथ अथवा मसूर की दाल और गेहूं की रोटी पथ्य में बतला देता हूँ।

रोगी नं० २—

पुत्री श्री नाज़र जी, आयु ७ मास।

उक्त श्री नाज़र जी किसी विद्यालय में कर्मचारी हैं और पटियाली दरवाजे एटा में रहते हैं आज से १२-१३ मास पूर्व मुझे रात के ८ बजे के लगभग अपने घर (उन नाज़र जी का घर मेरे औषधालय के पास धर्मशाला में है) बच्ची दिखलाने के लिये ले गये जाकर देखा कि बच्ची की दशा उपरोक्त ठाकुर साहब के बच्चे से भी अधिक

शोचनीय थी। बच्चों ने माता का दूध पीना भी बन्द कर दिया था। खांसी दबी हुई आती थी। ज्वर १०२-१०२½ के लगभग था। इस बच्ची में मैंने एक विशेषता देखी कि मुंह से झाग (फेन) गिर रहे थे पसलियां बड़े जोर से चल रहीं थीं। बच्ची की मां उसे गोद में लेकर रोरही थी। उसे कुछ समझा बुझा कर तसल्ली दी। औषधालय में आकर मैंने बच्ची के पिता नाजर तथा उनके साथ आए मुंशी लक्ष्मीनारायण को साफ कह दिया कि आशा नहीं के बराबर है। "जब तक श्वासा, तब तक आशा" कहावत अनुसार हिम्मत नहीं हारनी चाहिये। आप और किसी चिकित्सक महानुभाव को दिखाना चाहें तो अवश्य ही दिखाइये। उत्तर में उक्त दोनों सज्जनों ने कहा कि आपही औषधि दीजिये। मैंने ईश्वर का नाम लेकर निम्न लिखित औषध दी।

१—त्रिभुवन कीर्तिरस	½ रत्ती
प्रवालपिष्टी	१ रत्ती
श्रृंगभस्म	१ रत्ती
अभ्रक भस्म	½ रत्ती
बनप्सादि वटी	१ गोली

४ मात्रा।

३-३ घन्टे पर माता के दूध या गुनगुने जल से देने को कह दिया।

(२) दशमूलारिष्ट+वासारिष्ट का मिश्रण ५-५ बूंद हर दस पन्द्रह मिनट पर देने को तथा माता को "संजीवनी वटी" की २ गोली दीं।

बच्ची की पसलियों पर लगाने को तारपीन का तेल (कपूर मिश्रित) और दर्द नाशक तैल मिलाकर दिया और हलकी सिकाई को कह दिया। दूसरे दिन प्रातः काल जैसे ही मैं अपने औषधालय में आया तो पता लगा कि रात के दो ढाई बजे के लगभग बच्ची की श्वास बन्द सी होगई। घर के सब लोगों ने रोना पीटना शुरू कर दिया। कुछ ही देर में फिर श्वास चलने लगी। तब फिर उपरोक्त औषधि का मिश्रण दिया। जो कि उनके पास २ पुड़ियां शेष थीं। धीरे-धीरे फिर सुधार होता गया। इस समय बच्ची सो रही है।

२-३ घन्टे बाद औषधालय में ही लाकर उसी बच्ची को मुझे दिखाया गया। उस समय बच्ची स्वस्थ थी। ज्वर आदि नहीं था। मैंने कहा आज और ३ मात्रा औषधि दो। लेकिन बच्ची की मां ने कहा कि, बच्ची अब ठीक है दवा की क्या जरूरत। ईश्वर की कृपा से वह बच्ची ठीक ही रही।

रोगी नं० ३—

पटियाली दरवाजा एटा में एक लकड़ी की टाल वाले सज्जन रहते हैं। उनके पौत्र को भी गत वर्ष श्वसनक ज्वर होगया था। उसकी आयु १॥ वर्ष के लगभग थी। रात के ६ बजे के लगभग मैं उस बच्चे को देखने उनके ग्राम शिवसिंहपुर गया। उसका रोग भी भयंकर अवस्था में था। साथ-साथ पतले दस्त भी थे। रोग की भयंकर अवस्था की सूचना घर वालों को देकर मैंने चिकित्सा प्रारम्भ की। औषधियां निम्न प्रकार दीं।

१—त्रिभुवनकीर्ति रस प्रवालपिष्टी श्रृंगभस्म अभ्रक भस्म बनप्सादि बटी कपूर रस सिद्ध प्राणेश्वर रस जायफल चूर्ण की ४ मात्रा ३-३ घन्टे पर माता के दूध या गुनगुने जल से देने को कह दिया गया। तैल मालिशार्थ "दर्द नाशक तैल" व "तारपीन का तैल" (कपूर मिश्रित)

२—दशमूलारिष्ट कुटजारिष्ट १०-१० बूंद ½-½ घन्टे पर दिलवाया। दूसरे दिन बच्चे को देखने गया तो श्वसनक ज्वर में और दस्तों में बहुत लाभ प्रतीत हुआ। कुछ ज्वर शेष रहने पर मैंने "मंथर ज्वर" और श्वसनक ज्वर सम्मिलित निश्चय किया और औषधि में परिवर्तन कर लक्ष्मीनारायण रस, श्रृंग भस्म, अभ्रक भस्म, प्रवालपिष्टी का मिश्रण दशमूलारिष्ट और कुटजारिष्ट दोनों के साथ दिया।

रोगी नं० ४—

पुत्र मिठ्ठू कुम्हार पटियाली दरवाजा, एटा

आयु लगभग १ वर्ष।

दिनांक ३०-१२-५८ को रात के ६ बजे के लगभग मैं उपरोक्त रोगी बच्चे को देखने गया। इस बच्चे को भी रोग भीषण अवस्था में था। बेचैनी अत्यधिक थी। हृदय की दुर्बलता नाड़ी से प्रतीत हो रही थी। औषधि निम्न प्रकार दी गई। मकरध्वज $\frac{१}{२}$ रत्ती त्रिभुवनकीर्ति रस $\frac{१}{२}$ रत्ती शृंगभस्म १ रत्ती प्रवालभिष्टी १ रत्ती अभ्रक भस्म $\frac{१}{२}$ रत्ती बनप्सादि वटी १ गोली इन सबको घोटकर मिश्रण बनाकर ४ मात्रा दीं।

३-३ घन्टे पर गुनगुने जल से देने को कहा और मालिशार्थ दर्द नाशक तैल, तारपीन का तैल कपूर मिश्रित दिया गया। दूसरे दिन अर्थात् ३१-१२-५८ को सुबह जाकर बच्चे को देखा तो तबियत बिल्कुल ठीक थी। ज्वर का कुछ अंश शेष था। पसलियों का चलना बन्द था। श्वास-प्रश्वास भी ठीक चल रहा था। कराहना भी बन्द था। लेकिन घर वालों ने बताया कि रात से अब तक ३-४ दस्त हो गये हैं। अतः औषधि में कर्पूर रस और सिद्ध प्राणेश्वर रस तथा लघुगंगाधर चूर्ण उपरोक्त मिश्रण में मिलाकर ४ मात्रा बनाकर दी गयी। ईश्वर की कृपा से बच्चा निरोग हो गया। इनके अतिरिक्त उपरोक्त चिकित्सा क्रम से, साधारण अवस्था के 'श्वसनक ज्वर' के छोटे बड़े स्त्री पुरुषों तथा बच्चों सब तरह के रोगियों की उपरोक्त औषधि मिश्रण (त्रिभुवनकीर्ति रस शृंगभस्म अभ्रकभस्म प्रवालपिष्टी बनप्सादि वटी) से सौ से अधिक रोगियों की चिकित्सा करने पर मेरा उपरोक्त मिश्रण पर अत्यधिक विश्वास है। इस लेख में प्रयोग अधिकांश शास्त्रीय हैं। 'बनप्सादि वटी और 'दर्द नाशक तैल' अनुभूत हैं उनकी निर्माण विधि निम्न प्रकार है—

बनप्सादि वटी—

बनप्सा पत्ती २ तोला, मुलहठी १ तोला, सोंठ ६ माशा, कालीमिर्च ६ माशा, पीपल छोटी ६ माशा, काकड़ासिंगी ६ माशा, सुहागे का फूला ३ माशा मिश्री ७$\frac{१}{२}$ तोला सबको कूट पीसकर कपड़छन कर थोड़ा सा जल मिलाकर (अधिक जल मिलने से मिश्री के कारण दवा बहुत पतली हो जाती है) टेबलेट बनाने की मशीन से या हाथ से ४-४ रत्ती की गोली बनाकर सुखाकर रख लें।

गुण—श्वास, कफ, कास, प्रतिश्याय ज्वर और स्वरभंग (आवाज बैठना-गला पड़ना) में दिन भर में ४-६-८ गोली तक मुख में रखकर १-१ गोली चूसने को दें। मैं इन गोलियों को कफ-कास, प्रतिश्याय और स्वर भंग में अधिक प्रयोग करता हूं।

दर्द नाशक तैल—

तैल सरसों एक पाव, गांठ लहसुन (रसोन) एक छटांक, अजवायन २॥ तोला, सोंठ १। तोला, कपूर १। तोला।

निर्माण विधि—पहिले कलई किये हुए बर्तन में तैल गर्म करें। कपूर को छोड़ शेष औषधियां कुछ कुचल कर (जरा कूटकर) तैल में डालकर जलावें। लहसुन को पहिले छील साफकर तब डालें। जब सब चीजें जलकर काले रंग पर आवें तब तैल छानकर कपूर मिलाकर थाली से ढंक देवें। शीतल होने पर शीशी में भर लेवें। इस प्रयोग को मैंने धन्वन्तरि के पूर्व प्रकाशित अङ्कों से लिया है। मूल लेख में वातारि तैल को केवल वात रोगों पर लिखा है।

गुण और उपयोग-इस तैल को दर्द स्थान पर लगाकर सेक कर दें। बहुत जल्दी फायदा दिखायेगा। कान के दर्द में २-४ बूंद तैल थोड़ा गर्म कर कान में डालकर रुई लगा दें। कान से पीव आने (पूय स्राव) पर वैसे ही २-४ बूंद दिन में २ बार डालें। दान्त के दर्द और मसूड़े फूलने पर रुई की फुरैरी से दिन में ३-४ बार लगावें।

नोट—

१-इस तैल को कान में डालने और रस माणिक्य, शुद्ध गन्धक, मुक्ताशुक्ति पिष्टी, शृंग भस्म

—शेषांश पृष्ठ ८३७ पर।

विचर्चिका (एक्जिमा) पर प्रयोग

श्री पी० डी जोशी आयुर्वेदाचार्य, मुरादाबाद।

मेरा लड़का दो वर्ष की आयु में ही इस रोग से पीड़ित हो गया। बच्चा अज्ञानतावश व्रणों को खुजाता रहता था और इसी कारण उसके शरीर पर रोग व्यापक रूप से फैल गया। इस अवस्था में कई दिनों तक पुराने व नये चिकित्सकों के निदान में भी कठिनाई हुई। एक ही पैथी के विशेषज्ञ भिन्न भिन्न रोग निदान करते, किन्तु बच्चे के एक्जिमा रोगी के संस्पर्श में रहने के कारण यह निश्चय हो पाया कि यह एक्जिमा ही है।

विचर्चिका (एक्जिमा) के लक्षण—

हाथ पैरों में एक ही स्थान पर छोटी-छोटी लाल रङ्ग की बहुत सी फुन्सियां निकलना। ५ या ७ दिन में खुजलाहट के साथ स्राव होना। कुछ दिनों बाद स्राव की पपड़ी बनकर उसके चारों ओर नई फुन्सियां और खुजली होना। नीचे घाव और ऊपर पपड़ी बनते जाना। यह रोग स्राव और खुजली द्वारा प्रसार पाता है। उदर शुद्धि के साथ साथ रोग का प्रभाव कम होने लगता है। इसके वेग भी देखने को मिलते हैं। कभी कभी सारे शरीर में खुजली होकर छोटी फुन्सियां निकल आती हैं। स्राव होने लगता है। रोगी सशोथ मालूम होता है। कुछ समय बाद स्वयं या किसी भी दवा से रोगी ठीक होने लगता है, दूसरा शुष्क होता है। इसमें स्राव नहीं होता। परन्तु खुजली बराबर होती है। खुजाने पर त्वचा पर काले दाग और त्वचा मोटी हो जाती है। रोगी द्वारा रोग का प्रसार शीघ्रता से नहीं होता। किन्तु आयुर्वेद में जिसे विचर्चिका कहते हैं यह भी शुष्क होता है ऐसा कहीं देखने में नहीं आया। आयुर्वेद में विचर्चिका के लक्षण इस प्रकार हैं—

सकण्डू पिडकास्रावा बहुस्रावा विचर्चिका।

सुस्पष्ट है। खुजली के साथ कालिमा लिए बहुत पानी देने वाली असंख्य छोटी फुन्सियां होती हैं। इसे विचर्चिका कहते हैं

चिकित्सा—

रोगी की आयुर्वेदीय चिकित्सा कराई गई आयुर्वेद में वर्णित मञ्जिष्ठादि अर्क, कैशौर गुगुल गन्धक रसायन, पारद गन्धक कज्जली और मरिच्यादि तेल का प्रयोग व प्रलेप आदि किये गये। प्रत्येक नवीन औषधि का प्रभाव तीन दिन से अधिक नहीं देखा, इस प्रकार निरन्तर प्रयास विफल होते देख एलोपैथी चिकित्सा प्रारम्भ की। डाक्टर महोदय का पेन्सलीन से सफलता का स्वप्न साकार होता दिखाई नहीं दिया और उनकी ३ माह तक चिकित्सा जारी रही। उपदंश जन्य आदि संदेहात्मक चिकित्सा भी सफल न हुई। अन्त में वर्तमान प्रचलित नव्य पेटेंट दवाऐं प्रारम्भ कीं। एक दर्जन के लगभग सभी प्रचलित दवाऐं प्रयोग की गईं किन्तु परिणाम में निराशा के अलावा कुछ मिला नहीं। भारत में प्रत्येक व्यक्ति वैद्य है कुछ न कुछ दवा बता देता है किन्तु एक जानकर व्यक्ति ऐसा कैसे करता, लिहाजा ऐसे लोगों से नम्रता पूर्वक पीछा छुटाया जाता। एक दिन एक सज्जन घर आये उन्होंने एक काला तेल देते हुए कहा आप बच्चे को इसे लगाऐं। पहले तो उन्हें भी समझाया गया इलाज चल रहा है परन्तु यह मानने वाले थे नहीं; अतः दवा की शीशी रख लेनी पड़ी। रोज रात के लिये तैयार रहना पड़ता, दिन में किसी तरह खुजाने से बचाते किन्तु रात में जहां मौका मिलता बच्चा खुजा लेता और फिर वही चीख पुकार सब घर वालों की नींद गायब। यह

थीं रोज रोज की रात्रियां। एक दिन रात को बच्चे ने खुजाकर रोना शुरू किया, दिल में शीशी का ख्याल आया, मंगवाई और लगाई। लगाते ही बच्चा अधिक चीखा। अपनी मूर्खता पर खेद हो रहा था किन्तु करते भी क्या, सोचा आखिर आज अवैद्य की दवा लगा बैठे। देखते रहे, दर्द नाशक दशा को किन्तु थोड़ी देर के बाद बच्चा सो गया और सुबह घाव खुश्क थे। सन्तोष की तो कोई बात नहीं थी क्योंकि हर दवा तीन दिन तक फायदा दिखाती ही थी किन्तु हानि का भय दूर हो गया। प्रयोग की इच्छा भी बढ़ी, बच्चे को दही से स्नान कराके पहली दवा छुड़ा कर फिर दवा लगा दी गई। इस प्रकार तीन दिन बाद खुजली व स्राव दोनों ही नहीं थे। अब यह प्रतीक्षा थी कि फिर कब प्रारम्भ होगा किन्तु दैनिक वही प्रयोग होता रहा और रोग की शान्ति होती गई। पन्द्रह दिन बाद कहीं भी कोई निशान नहीं रहा। चिकित्सकों को भी दिखाया उनकी राय में भी बच्चा स्वस्थ था।

यह तेल क्या था ?

देशी चने को मिट्टी की सुराही में भर कर उसके मुंह को नीम की सलाकाओं से बन्दकर दें, एक मटका लेकर उसके पेंदे को गोलाई में तोड़कर उसके मुँह में सुराही के मुंह को फंसाकर दो ईंटों पर मुंह के बल रखकर सुराही के मुंह के नीचे चपटे मुंह की शीशी रखलें, मटके के अवशेष भाग को उपलों से भर दें। उपले जलाने पर सुराही के मुंह से धुआं सा निकलने लगेगा और उसके साथ ही तेल भी। इस तेल का प्रयोग ५० व्यक्तियों पर किया गया, जिसमें दो रोगियों को कम लाभ हुआ। वह दोनों शुष्क एक्जिमा के थे। ४८ में से एक भी बहने वाले एक्जिमा के रोगी को निराश नहीं होना पड़ा। इस तेल में आधुनिक विज्ञान के अनुसार क्रियोजोट द्रव्य पाया जाता है और यह द्रव्य कीटाणु नाशक है।

यह घरेलू दवा उन रोगियों को अवश्य प्रयोग करके देखनी चाहिए जो सैकड़ों रुपये खर्च करके भी फायदा नहीं उठा पाये हैं।

—श्री पी० डी० जोशी आयुर्वेदाचार्य
मुरादाबाद।

*

:: पृष्ठ ८३५ का शेषांश ::

चोबचीनी चूर्ण का मिश्रण खाने से श्री धुरीसिंह जी मिनस्टरी फूड एण्ड एग्रीकल्चर डिपार्टमेंट नई दिल्ली का पुराना कान का बहना ठीक हुआ। जिस पर उन्हीं के कथनानुसार दो ढाई सौ रुपये खर्च करने पर भी लाभ न था। अभी २-३ मास पूर्व श्री धुरीसिंह जी मेरे औषधालय में आये थे उनको देखकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई होगी। यह प्रत्येक चिकित्सक महानुभाव जान सकते हैं।

(२) त्रिभुवनकीर्ति आदि मिश्रण से किसी-किसी रोगी को कुछ तापमान बढ़ता है उससे न घबराना चाहिए। कुछ समय पश्चात् पसीना आकर ज्वर धीरे-धीरे घटने लगता है।

(३) शुष्क कास (सूखी खांसी) में त्रिभुवनकीति मिश्रण न दें यदि देना हो तो अनुपान कफ को पतला कर निकालने वाला होना चाहिए।

(४) त्रिभुवनकीर्ति मिश्रण प्रतिश्याय, प्रतिश्याय जन्य ज्वर और वात श्लेष्मज्वर पर भी बहुत लाभ करता है।

—वैद्य गोवर्धनदास चागलानी
पटियाली दरवाजा एटा।

गर्भावस्था की प्रातःवान्ति

विमलादेवी शर्मा

परिचय—गर्भावस्था में बहुत विकार हो जाते परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि वे सब विकार गर्भावस्था के कारण ही होते हैं जिन रोगों की उत्पत्ति गर्भावस्था से होती है उन रोगों को गर्भावस्था के विकार कहते हैं। परन्तु जो रोग बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से गर्भावस्था में होते हैं उनको गर्भावस्था के रोग नहीं समझना चाहिए। इस अवस्था में बहुत से विकार हो जाते हैं परन्तु इसमें जो विकार सदैव एवं अति कष्टदायक हैं वह प्रातःकाल की वान्ति है। गर्भावस्था के प्रथम मासों में यह विकार होता है। इसका कष्ट स्त्रियों की प्रकृति के अनुसार न्यूनाधिक रूप में हुआ करता है।

कारण—इसका कारण यद्यपि निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता तथापि यह कहा जा सकता है कि गर्भावस्था की वृद्धि के कारण स्त्री की पचनेन्द्रिय को कष्ट होता है और इसलिए उक्त हड्डियां विकृतावस्था को प्राप्त हो जाती हैं तब वान्ति होने लगती हैं। प्रायः देखा जाता है कि जब कभी स्त्री को दो बच्चे एक ही साथ होने को होते हैं वा गर्भोदक का अधिक संचय होता है तथा गर्भाशय अधिक फूल जाता है; तो इससे प्रायः यह विकार हो जाता है। परन्तु कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि उपर्युक्त दोनों कारणों के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी यह विकार हो गया है।

लक्षण—आर्तव स्राव बन्द होने के बाद गर्भधारण का दूसरा स्पष्ट लक्षण प्रातः वमन होना है यह लक्षण प्रायः चार मास तक रहता है। वमन दिन में चाहे जब भी होता रहता है परन्तु विशेष कर सूर्योदय के साथ ही स्त्री का जी मिचलाने लगता है और वान्ति होने की नौवत आने लगती है। यह लक्षण प्रत्येक गर्भिणी स्त्री को न्यूनाधिक रूप में होता है। कुछ स्त्रियों का केवल जी ही मिचलाता है तो कुछ स्त्रियों से इन दिनों बिल्कुल ही खाया नहीं जाता अगर इच्छानुसार कोई चीज खाई भी जाती है तो उदर में नहीं ठहरती, अगर ठहरती भी है तो बड़ी कठिनाई से। कभी-कभी तो बड़ी शोचनीय अवस्था हो जाती है उस अवस्था में अन्न वा फल अथवा पेय पदार्थ किसी भी प्रकार का पदार्थ मुख में जाने से वमन आरम्भ हो जाती है और जरा भी अन्न पेट में नहीं ठहर पाता। इस अवस्था में गर्भिणी को कई-कई दिन उपवास की नौबत आ जाती है एवं अति दुर्बल हो जाती है। यह असाध्य अवस्था है। यह विकार न्यूनाधिक रूप में हुआ करता है। किसी को ये वान्तियां बहुत होती हैं तो किसी को कुछ कम होती हैं परन्तु साधारण तौर पर यही देखा जाता है कि अधिकांश स्त्रियों का केवल जी ही मिचलाकर रह जाता है और उसके साथ कुछ बलगम निकल जाने पर उन्हें कुछ अन्न पर भी रुचि हो जाती है इच्छानुसार खाने पीने पर थोड़ा-थोड़ा पचने लगता है। चार मास बाद वान्ति बहुत कम मात्रा में होने लगती है एवं धीरे-धीरे बन्द हो जाती है।

चिकित्सा—इस विकार वाली स्त्री को प्रातः कुछ-कुछ न खाकर फिर बिछौने से उठना चाहिए। यदि मलावरोध हो गया हो तो हल्का सा रेचन देना चाहिए। पंचसकार चूर्ण २ से ३ मासे तक रात्र को सोते समय दूध से देना चाहिए वा गुलकन्द २॥ तोले दूध में उबाल कर देना चाहिए।

वमन के लिये निम्न योग दें।

१— विसमथ	१० ग्रेन
सोडाबाईकार्ब	१० ग्रेन
टि. कलम्बा	१० बूंद

ए. हायोसायनिक डिल०	२ या ३ बूंद
जल	१ औंस

—ऐसी एक-एक मात्रा दिन में २ या ३ दें।

२—एसि. नायट्रो. हा. क्लोरिक डि.	१५ बूंद
टि. जैन्शन	१ ड्राम
जल	१ औंस

ऐसी दो या तीन मात्रा दिन में दें। यह सब औषधें भोजन से पूर्व दें।

३. पेपसीन ५ या १० ग्रेन भोजन के बाद दें।

४. सोडियम आक्जेलेट	५ से १० ग्रेन
क्रियाजूट	१ से ३ बूंद
टि. नक्सवोमिका	५ बूंद
जल	१ औंस

—ऐसी १ मात्रा में दें।

५. वाइनम इपिकाक वा टिंचर आयोडीन प्रत्येक घण्टे में प्रत्येक का एक २ बूंद पानी में मिला कर दें।

६. नायट्राइट आफ एमाइल सूँघने को दें।

७. पोटाशियम ब्रोमाइड ३० ग्रेन और नायट्रोग्लिसरीन $\frac{१}{१००}$ ग्रेन का इन्जेक्शन दें।

८. वान्ति यदि अधिक हो तो लेटे रहना चाहिए तथा पतला पदार्थ चमचा से खाने को दें। इस अवस्था में टि. ओपीयम की १५ बूंद गुद द्वार से देनी पड़ती हैं।

९. अथवा त्वचा में एट्रोपीन $\frac{१}{६०}$ ग्रेन का इन्जेक्शन दें।

१०. मार्फिया का $\frac{१}{४}$ ग्रेन का इन्जेक्शन दें।

११. लायकर मार्फिया की १० बूंद १ औंस जल में पीने को दें।

१२. आमाशय पर राई का लेप करें वा गर्दन के पिछले भाग पर आइस बेग रखें।

आयुर्वेदिक औषधि प्रयोग—

१. लघु सूतशेखर रस १ रत्ती की मात्रा में आंवले के मुरब्बे में दें। वा—

निम्बू का रस	$\frac{१}{४}$ तोले
अदरख का रस	$\frac{१}{४}$ तोले
अनार का रस	$\frac{१}{४}$ तोले
लघुसूतशेखर	१ रत्ती

—ऐसी तीन मात्रा दिन में दें।

२. प्रवाल वा मुक्ता पिष्टी १ से २ रत्ती तक आंवले के मुरब्बे में या अनार के अवलेह में दें।

३. सूतशेखर रस १ रत्ती मात्रा में आंवले का मुरब्बा वा शीतल जल से दो समय दिन में दें।

नोट—यदि किसी प्रकार से भी अन्न पेट में न जाता हो तो कृत्रिम रूप से पकाकर तैयार किया हुआ अन्न गुदा मार्ग से देना चाहिए।

अगर किसी उपाय से भी वान्ति नहीं रुकती हो और गर्भवती स्त्री की प्रकृति यदि बहुत खराब हो या नाड़ी निर्बल होजाय और किसी प्रकार भी उसके बचने की आशा न हो तो फिर अन्तिम में गर्भपात कराते हैं। परन्तु यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि जब विश्वास पूर्वक यह मालूम हो जाय कि उपर्युक्त विकार के कारण अब गर्भिणी किसी भी उपाय से बचेगी नही उसी अवस्था में गर्भपात कराना उचित होगा।

—विमलादेवी शर्मा आयुर्वेदाचार्या एम. ए. एम. एस. हलवासिया ट्रस्ट फ्री औषधालय, भिवानी।

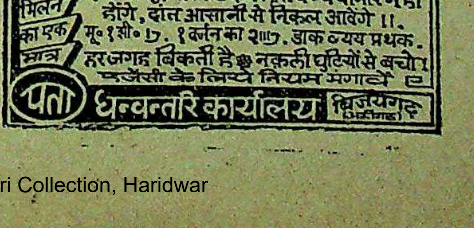

२०वीं वर्षों से परीक्षित एवं प्रशंसित मीठी
कुमार कल्याण घुटी
सभी उत्सव विधिवत् बनी हुई आयुर्वेदीय औषधियां मिलने का एक मात्र
बच्चों की हर एक बीमारी को दूर करती,
कमज़ोर बच्चों को ताक़तवर बनाती है।
ज़रा सी रोज़ाना पिला देने ही से बच्चे बीमार नहीं होंगे, दांत आसानी से निकल आवेंगे ।।
मू० १ शी० ।>, १ दर्जन का २।।>, डाक व्यय प्रथक.
हर जगह बिकती है। नक़ली घुटियों से बचो।
एजेंसी के लिये नियम मंगावें
पता धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

इसफगुल और स्वास्थ्य

डा० कुलरंजन मुखर्जी

इसफगुल (ईसबगोल) का आदि वास स्थान फारस देश है इस स्थान से इसकी पैदावार पश्चिम में स्पेन और पूर्व में भारतवर्ष तक फैली है। भारतवर्ष में यह विशेषकर पंजाब में उत्पन्न होता है। यह तिल की तरह एक छोटा बीज है। इसका रंग मटमैला और आकार नाव जैसा होता है।

इसफगुल का प्रधान गुण यह है कि इसकी तरह पेट साफ करने वाला निर्दोष खाद्य पृथ्वी पर और नहीं है। समाज में जितने प्रकार की रेचक दवाइयां व्यवहार की जाती हैं वे सभी शरीर के लिए थोड़ी बहुत हानि करती हैं। इस लिए इसके अलावा तैल जातीय जितनी चीजें स्तेमाल की जाती हैं वे आंतों के अन्दर रहने वाले ए. डी, ई और पी आदि तेल में पिघलने वाले विटामिनों को शोषण करके शरीर से बाहर कर देती हैं। खनिज तेल फेफड़ों और जिगर को हानि पहुँचाते हैं। पैराफिन आदि बहुत सी दवाइयां जो शरीर में शोषित नहीं होती हैं, वे बहुत दिनों तक प्रयोग करने से बड़ी आंत में कैंसर का कारण बन जाती हैं। इसफगुल केवल मात्र आंतों की राह को फिसलना बनाकर और स्वयं फूलकर अंत्रों में धंसे हुए मैल को धक्का देकर बाहर कर देता है।

अक्सर यह देखा जाता है कि बवासीर कब्ज से उत्पन्न होता है और जोर लगाने से बढ़ जाता है। इसफगुल से कोष्ठ के साफ रहने के कारण अपने आप ही बवासीर के ऊपर दबाव कम हो जाता है। और धीरे-धीरे बवासीर घटकर एकदम दूर हो जाता है।

पाकस्थली की सूजन तथा उसके और डियोडिनाम के घावों में कोष्ठबद्धता रहने से रोग सर्वदा बढ़ता ही जाता है। किसी प्रकार की रेचक औषधियां इन सब बीमारियों में इस्तेमाल नहीं की जा सकती हैं। ऐसी अवस्थाओं में रोगी को इसफगुल देने से बहुत फ़यदा होता है।

ऐसी कोई बीमारी नहीं है जो कोष्ठबद्धता से बढ़ती नहीं और कब्ज बहुत दिनों तक रहने से बहुत सी बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिये इसफगुल को स्वास्थ्य के लिये एक अत्यन्त हितकारी महौषधि समझा जा सकता है।

पुराने पेचिश तथा अजीर्ण में भी यह अत्यन्त फलप्रद है। अगर आंत के अन्दर घाव, उत्तेजना या जलन हो तो इसफगुल के स्निग्ध स्पर्श से वह शान्त हो जाता है। और जब पेट में वायु होती है, और भोजन सड़ने के कारण आंतों के अन्दर विष उत्पन्न होता है तब इसफगुल इन सब हानिकरने वाले पदार्थों को खींचकर शरीर से बाहर कर देता है। इसके फलस्वरूप घाव और जलन को अच्छा होने का मौका मिलता है, वायु घट जाती है, पेट की पीड़ा और अशांति दूर हो जाती है।

इसका एक गुण यह भी है कि यह पेशाब की जलन को दूर करता है, मूत्र के निःसरण की सहायता तथा उसके उत्पादन की वृद्धि करता है। जब मूत्राशय में जलन पैदा होती है या वह उत्तेजित अवस्था में रहता है तब इसफगुल के लेने से उपकार मिलता है। शरीर में जलन रहने से इसफगुल उसे भी शान्त कर देता है। इस लिये संस्कृत भाषा में इसका नाम है "स्निग्ध जीरा"।

हर प्रकार की रक्तपातयुक्त बीमारियों में बड़ी सफलता के साथ इसफगुल का प्रयोग किया जा सकता है।

इसफगुल नाना प्रकार से लिया जा सकता है। किन्तु सेवन करने से पहले इसे सदा भलीभांति साफ कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। इस

लिये सर्व प्रथम उसे महीन चलनी या कपड़े से छानकर उसमें मिले हुए कंकड़ और बालू को अलग कर देना चाहिये, क्योंकि बाजारों में इसे अत्यन्त गन्दी अवस्था में बेचा जाता है। आजकल कारखानों में साफ किये हुए डिब्बों में बन्द इसफगुल बाजारों में मिलता है। जहां तक संभव हो उसी का सेवन करना चाहिये। बीज हमेशा सूखे होना जरूरी है।

सेवन के पहले एक कटोरे में थोड़ा सा पानी लेकर बीजों को एक या दो बार शीघ्रता से धो लेना उचित है। साधारणतः एक खुराक में दो से चार ड्राम लिया जाता है, पर इससे अधिक परिमाण में निर्भयता से लिया जा सकता है। किसी किसी समय एक से दो औंस या मझोले चम्मच के दो-तीन चम्मच, या इससे भी अधिक, दिन में दो-तीन बार लिया जा सकता है। इसफगुल में कोई जहरीला पदार्थ नहीं है और छः से बारह घन्टे के अन्दर आंतों में जमे हुए मल के साथ वह बाहर निकल जाता है।

एक प्याला पानी में इसफगुल डालकर उसे एक चम्मच से भली प्रकार हिला लेना चाहिये। बीस मिनट से आधे घन्टे बाद वह सेवन करने योग्य हो जाता है। अगर उसके साथ थोड़ा-सा लाल चीनी या ताड़ का सिरप मिला लिया जाय तो वह स्वादिष्ट हो जाता है। ताड़ की मिश्री या डाब के पानी में मिलाकर भी इसे सेवन किया जा सकता है। ऐसा करने से यह केवल स्वादिष्ट ही नहीं, अत्यन्त उपकारी हो जाता है।

अन्य प्रकारों से भी इसे लिया जा सकता है, दो से चार तोला इसफगुल को उसके बीस गुना पानी में रात को भिगोकर सुबह उसे लाल चीनी मिलाकर मींजके प्रतिदिन प्रातः लिया जा सकता है।

इसफगुल के बीज के बदले उसके चोकर को लिया जा सकता है। साबुत दानों से यह अधिक उपकारी है। चोकर को दाने की अपेक्षा कम मात्रा में लेना चाहिये। एक बार में चाय के चम्मच के एक से दो चम्मच तक या चवन्नी के वजन के बराबर इसे लेने का नियम है। दो या चार औंस गरम पानी में इसे लेने से जल्दी उपकार मिलता है।

जिन लोगों का पेट अत्यन्त गरम रहता है और मल सूखकर कड़ा होजाता है उन्हें प्रत्येक बार के भोजन के बाद ही इसे लेना चाहिये। जब बवासीर से खून गिरता है या पुराना पेचिश फिर से उभड़ आता है तब दिन में दो तीन बार इसफगुल या उसके चोकर का सेवन करना चाहिये। साधारणतः पुरानी बीमारियों में दिन में एक बार लेना ही यथेष्ट है।

इसफगुल के सम्पूर्ण निर्दोष होते हुए भी इस पर पूर्ण रूप से निर्भर करना उचित नहीं। आवश्यकतानुसार केवल अल्प समय के लिये इसको व्यवहार करना चाहिये और उत्कट अवस्था के कम हो जाते ही पेट के व्यायाम, आसन वगैरह तथा स्वास्थ्यकारी भोजन द्वारा पेट को सुधार लेना चाहिये।

—श्री डा० कुलरंजन मुखर्जी
११४/२ हाजरारोड कालीघाट कलकत्ता।

ChayavanPrash
WITH ASHTHAVARGA
अष्ट वर्ग युक्त
क्षय, कास-श्वास, रक्त-पित्त स्वरभंग आदि के-लिये सर्वोत्तम रसायन:
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़
अलीगढ़

अनुपानों में श्रेष्ठ—

मधु

श्री जयकुमार जैन "सुधाकर"

मधु आयुर्वेदीय औषधियों का एक सर्व श्रेष्ठ अनुपान है। हमारे प्राचीनाचार्यों ने इसे अमृतोपम माना है।इसका निर्माण उन मक्खियों द्वारा होता है जो साधारण मक्खियों से भिन्न होती हैं। ये मक्खियां भिन्न-भिन्न जाति के पुष्पों का मकरन्द (रस) चूसकर एक विशिष्ठ प्रकार के स्वनिर्मित मधु थैली (छत्ते) में संग्रीहत करती हैं। प्रारम्भिक रूप में यह रस फीका एवं जल के समान पतला होता है। किन्तु कुछ समय पर्यन्त छत्ते में स्थित रहने पर वही रस गाढ़ा एवं मीठा हो जाता है। यही परिवर्तित रूप "मधु" संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है।

मक्खियों की प्रमुखतः आठ जातियां होती हैं। जो निम्न प्रकार से हैं।

> माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौत्तिकं क्षात्रमित्यऽपि
> आर्ध्यमौद्दालकं दाल मित्यष्टौ मधु जातयः।
> —भावप्रकाश।

माक्षिक, भ्रामर, क्षौद्र, पौत्तिक, क्षात्र, अर्ध्य, औद्दालक और दाल ये मधु के आठ भेद हैं।

माक्षिक मधु—

यह सब प्रकार के मधुओं में श्रेष्ठ होता है। यह मधु पिङ्गल वर्ण वाली बड़ी मक्खियों द्वारा निर्मित किया जाता है। यह मधु तैल सदृश होता है। मधु भेद से मधु माक्षिक नाम से सम्बोधित होता है।

नेत्र रोगों में यह काफी लाभप्रद होता है। कामला, अर्श, क्षत, श्वास, कास तथा क्षय आदि रोगों में विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

भ्रामर मधु--

यह मधु छोटी जाति वाले भोरों द्वारा जो मक्खियों के आकार वाले होते हैं निर्मित होता है। यह स्फटिक मणि के समान होता है।

यह भारी पाक में मधुर पिच्छल और शीतल होता है, विशेषतः रक्तपित्त में प्रयुक्त किया जाता है।

क्षौद्र मधु--

कपिल वर्ण वाली क्षुद्रनामधारी सूक्ष्म मक्खियों द्वारा यह मधु निर्माण किया जाता है। इसका वर्ण क्षुद्रा के समान ही कपिल होता है। इसके गुण माक्षिक मधु के सदृश होते हैं विशेषतः प्रमेह नाशक होता है।

पौत्तिक मधु--

यह मच्छर सदृश कृष्णवर्ण वाली सूक्ष्म मधु मक्खियों द्वारा निर्मित किया जाता है। यह मधु घृत के समान श्वेतवर्ण वाला होता है। यह गरम पित्तदाही, रूक्ष और आशु होता है। प्रमेह, रक्त विकार, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में इसका प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है गांठ का शोषण करना इसका परम कर्त्तव्य है।

छात्र मधु –

यह मधु अधिकतर हिमालय के बनों में पाया जाता है। इसका निर्माण छत्राकार पिंगल वर्ण वाली मक्खियों द्वारा होता है। इसका प्रयोग प्रमुखतः प्रमेह दाह श्वेतकुष्ठ आदि रोगों में किया जाता है। अधिक सेवन विष सदृश हो जाता है।

आर्ध्य मधु —

यह भोरों के समान बड़ी पीले रंग वाली तीक्ष्ण आर्ध्य मधु मक्खियों द्वारा निर्मित किया जाता है। यह कफ एवं पित्तनाशक है। उत्तम कषैला

पाक में चरपरा व कड़ुआ बल तथा पुष्टिकारक होता है।

औद्दालक मधु--

यह ऐसी मक्खियों द्वारा तैयार किया जाता जो बिलों में रहने वाले पिंगल वर्णयुक्त छोटे-छोटे कीड़ों के समान प्रतीत होतीं हैं। ये मक्खियां अन्य मक्खियों की अपेक्षा थोड़ा मधु बनाती हैं। यह मधु रुचिकारक किंचित् उष्ण कषाय रसयुक्त पाक में चरपरा एवं वायुनाशक है। स्वर विकृति में इसका प्रयोग काफी लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

दाल मधु–

पुष्पों में से झरकर पत्तों पर पड़ा हुआ जो मधुर और खट्टा रस होता है; मक्यिां उसे संग्रहीत कर मधु रूप में परिणित करती हैं। यह मधु लघु अग्निदीपक, कफनाशक, कषैला तथा रुचिकारक होता है। मधुर स्निग्ध पुष्टिकारक तथा तौल में भारी होता है।

शुद्ध मधु की पहचान--

किसी भी रूप में मधु प्रयोग करने के लिए वही मधु श्रेष्ठ एवं गुणकारी होता है जो असली एवं भलीभांति परीक्षित हो। क्योंकि आजकल मधु के नाम पर जो मिथ्या प्रचार प्रचलित है, वह काफी निन्दनीय एवं हेय है। अतः मधु परीक्षण के लिए निम्न लिखित प्रयोग कर लेना चाहिए।

१—असली शुद्ध मधु कुत्ता नहीं खाता।

२—मक्खी के ऊपर डालने से मक्खी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

४. अशुद्ध मधु के रूप रस गन्ध में भिन्नता आजाती है।

मानव शरीर पर मधु का प्रभाव—

आधुनिक गवेषणाओं से पता चला है कि मधु में विटामिन ए बी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। अतः विटामिन ए और बी के अभाव से होने वाले रोगों में अपना महत्त्वपूर्ण प्रभाव दिखाता है। रक्त शुद्धि के लिये इसका प्रयोग अचूक सिद्ध हुआ है। रक्ताल्पता एवं रक्त विकृति जन्य रोगों पर मधु सफलता पूर्वक प्रयोग किया जाता है।

मधु के विषय में आधुनिक अन्वेषणों से सिद्ध हो चुका है कि इसमें शर्करा, आयरन, गोंद, चूना, मेटोनेसिया, व फास्फोरिक एसिड आदि विविध तत्वों का समुचित समिश्रण है। यही कारण है कि इसे न केवल अनुपान के रूप में प्रयोग कर बल्कि शारीरिक बलवृद्धि एवं पुष्टि के लिये भी प्रयुक्त करते हैं। मधु में यह विशेषता है कि यह पहिले से ही हजम की हुई वस्तु है, अतः शरीर में प्रवेश करते ही रक्त में मिल जाता है। तथा शरीर में प्रतिक्रिया रूप में शक्ति उत्पन्न करता है।

यह फूलों के रस का उत्तम शर्बत है, जिसे प्रकृति ने स्वयं रसायनिक तौर पर उत्पन्न किया है। यह रक्तोत्पत्ति एवं रक्तशुद्धि का एक सुलभ एवं सर्वोत्तम साधन है। साथ में हम यह भी कह सकते हैं कि मधु एक ऐसी निर्दोष वस्तु है जिसका सेवन प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक प्रकृति वाला प्राणी निर्भय रूप से कर सकता है।

मस्तिष्क पर मधु का प्रभाव —

निरन्तर सेवन करने से मस्तिष्क पर भी मधु का अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसका सेवन मस्तिष्कीय दुर्बलता एवं ज्ञान तन्तुओं की निर्बलता दूर करने में काफी अंशों में सफल हुआ है। तथा उनके अन्दर समुत्पन्न श्लेष्मिक विकार को नष्ट करता है। इसका सेवन मनुष्य की विचार शक्ति स्मरणशक्ति एवं धारणा शक्ति को बढ़ाता है।

चर्म रोगों पर मधु—

दाह, खाज, खुजली फोड़े फुन्सी तथा रक्त विकार जन्य व्याधियों से पीड़ित व्यक्तियों को चाहिए कि वे प्रातःकाल आधी छटांक मधु (शहद) में एक छटांक जल मिलाकर लगातार कुछ दिनों तक सेवन करें। इससे उन्हें आशातीत लाभ होगा।

शेषांश पृष्ठ ८४७ पर।

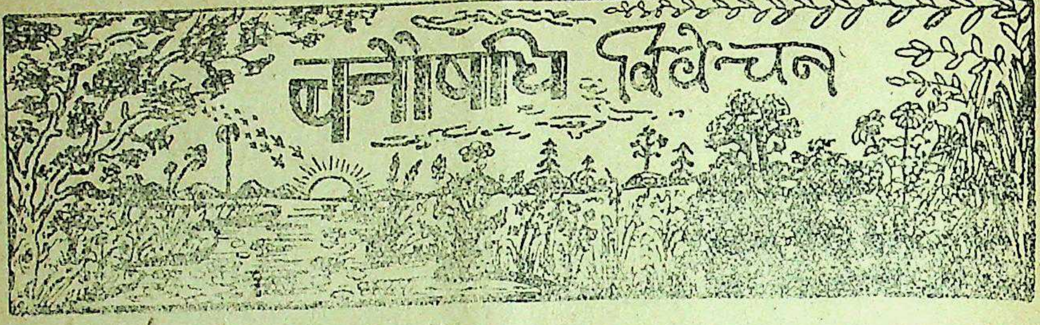

आक

लेखक—वैद्य मोहरसिंह यादव "हितैषी"

पर्यायनाम—अर्क, मदार, अशर, अकवन, अकौआ, इत्यादि। इसका पौधा डेढ़ दो गज का होता है। परन्तु १५-२० फुट तक के पेड़ भी हमारे ग्राम के निकट अनेक हैं। अधिकांशतः इसकी शाखें मूल से ही निकल कर फैलती हैं। परन्तु पौधे में जो जड़ पेड़ के रूप में परिवर्तित होजाता है, उसके मूल से शाखाऐं नहीं निकलती अपितु अन्य वृक्षों की भांति ही शाखाऐं फूटती हैं। इसके पत्र बड़े बड़े होते हैं। अर्क के किसी भी भाग को तोड़ा जाए तो श्वेत गाढ़ा दूध निकलता है। फूल गुच्छों में लगते हैं। फूलों का रङ्ग भीतर से कुछ सुर्खी माइल रक्ताभ होता है। जिस पेड़ पौधे के फूल श्वेत होते हैं वह श्वेत आक और लाल फूलों का लाल आक कहलाता है।

मदार के फल आम के फलों के सदृश होते हैं। आम के फलों की अपेक्षा इसके फल अत्यन्त नरम होते हैं। यह फल पकने पर स्वयं फट जाते हैं। इनके भीतर कोई बड़ी सी गुठली नही होती अपितु रूई सी होती है और उसी पर बीज लगे रहते हैं। फल से निकल कर यह हवा में उड़ जाते हैं एवं जहां गिरते हैं वहीं उग जाते हैं।

आक भारतवर्ष के सभी स्थानों में और सभी ऋतुओं में पाया जाता है। इसके लिये किसी विशेष प्रकार की भूमि की आवश्यकता नहीं। जहां बीज पड़ जाए वहीं पैदा होजाता है।

फुपफुस प्रदाह में—

बारहसिंगे के उत्तम पुष्ट सींगों को आग में जला कर कोयले करलें, चूर्ण कर मदार के दूध में घोटें। जितना दूध डालकर मर्दन करेंगे उतना ही उत्तम होगा फिर टिकिया बना धूप में सुखा, सम्पुट में बन्द कर २५ सेर उपलों की अग्नि में पुट दें। इसी प्रकार धत्तूर के पत्तों के स्वरस से पुट दें। एक रत्ती की मात्रा में मधु से दें।

कर्ण रोग में—

अर्क दुग्ध, धत्तूर पत्र स्वरस, हल्दी क्वाथ, मनःशिल, समुद्रफेन, कार्बोलिक एसिड प्रत्येक १-१ तोला सरसों का तैल १ पाव लेकर, तैल में डाल मन्दाग्नि से पकाकर तैल सिद्ध करें। नाड़ी व्रण, कर्ण शुष्कता, कर्ण स्राव पीड़ा को यह अर्कादि तैल दूर करता है।

आक के पीले पत्तों को निर्धूम अंगारों पर गर्म कर सुहाता सुहाता कान में निचोड़ने से कर्ण शूल, कर्णनाद, वेदना में तत्क्षण लाभ होता है।

शीतज्वर—

आक का दुग्ध २ भाग मिश्री ८ भाग मिलाकर

घोंट लें। १ रत्ती मात्रा में ज्वर आने से पूर्व दें।

आक के पुष्प के भीतर की डोंडी एक नग को १ तोला गुड़ में मिलाकर देने से शीतज्वर नहीं आता।

वात वेदना—

मदार दुग्ध का लेप करने से शान्त होजाती है।

दन्त कृमि शूल—अर्क दुग्ध में अहिफेन को भून कर कृमि वाले दांत में भर देने से दर्द शान्त हो जाता है।

दादमार—मदार का दुग्ध ५ भाग श्वेत संखिया १ भाग, वैसलीन या गौ घृत १० भाग को अच्छी तरह मिला खरल कर लें। दाद को साफ कर दवा लगायें। इससे उत्तम योग मिलना कठिन है। बहुत बार का परीक्षित है।

एक्जिमा काल—शुष्क एक्जिमा (Dry-Eczema) पर प्रतिदिन प्रातःकाल अर्क दुग्ध लगायें। कुछ दिन में ही रोग नष्ट होजायगा। मैंने १० रोगियों पर ऐसे प्रयोग किया है।

सर्पदंशपर—अर्क दुग्ध टपकाऐं। जब तक दूध सूखता जाय, टपकाते जाऐं। सूखना बन्द हो जाए तब न टपकाएं। घाव बन्द न होने दें।

अर्क की कौंपल गुड़ में मिलाकर उपर्युक्त योग के साथ रोगी को खिलाते जायें।

अतिसार बन्धु—आक की छाल का रस एक तोला, रेक्टीफाईड स्प्रिट १ तोला मिलाकर रख लें। निम्बू के रस में ४-५ बूंद मिला १-१ घण्टे के अन्तर से देते रहें।

हैजा—आक की जड़ का छिलका छाया में सुखा, चूर्ण कर सम भाग खाण्ड मिला चार रत्ती मात्रा में गरम पानी के साथ देने से हैजा, पेट दर्द ठीक होजाते हैं।

आक की जड़ की छाल १ तोला, अदरख रस, प्याज रस २-२ तोले लेकर मन्दाग्नि से पकाऐं फिर लाल मिर्च ६ माशा, काली मिर्च १ तोला मिला खूब घोंटें। फिर मटर प्रमाण गोली बना, लौंग तथा पीपल छाल के क्वाथ से १-१ गोली आधा आधा घण्टे से देने से मरणासन्न हैजा के रोगी ठीक किए हैं।

हाथ पांव की अकड़न में हैजा वाला प्रथम योग १ माषा की मात्रा में १-१ घण्टे के अन्तर से देने से आराम होजाता है।

आक की जड़ को जला कर राख (भस्म) कर लें। इस २ रत्ती भस्म को मधु में मिला कर देने से खांसी नष्ट होजाती है।

पीलिया में—आक के पीले पत्ते पर गौघृत चुपड़ सेंधानमक बुरक निर्धूम अंगारों पर जलायें। सावधानी से जले हुए पत्तो को उतार गौदुग्ध की लस्सी (छाछ) में मिला कर पिलाने से घोर पीलिया भी नष्ट होजाता है।

पांच तोले चावलों में आक का दूध इतना डालें कि वे अच्छी तरह डूब जांय। एक सप्ताह रखा रहने दें। फिर सुखाकर वस्त्रपूत चूर्ण करलें। यह नस्य तैयार है। इसके सुंघाने से मूर्च्छा, तन्द्रा, उन्माद, शिरःशूल निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं।

—श्री वैद्य मोहरसिंह यादव हितैषी
मिसरी, डालमियां दादरी।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ की निर्मित
खाजरिपु
खाज खुजली को लगाते लगाते ठीक कर देता है
आपके यहां के दूकानदारों के यहां मिल जायगा

स्वास्थ्य-प्रद बथुआ

लेखक—लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

कटुविपाके क्रिमिहा मेधाग्नि बलवर्द्धनः ।
सक्षारः सर्वदोषघ्नो वास्तुको रोचनः सरः ॥
(सुश्रुत संहिता)

भोजन में शाक का प्रयोग सर्वत्र प्रचलित है। प्रायः सभी व्यक्ति कोई न कोई शाक अवश्य ही पसन्द करते हैं। आयुर्वेद शास्त्रकारों ने शाक के छः प्रकार बताये हैं। जैसा कि लिखा है 'पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा, शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्याद्यथोत्तरम्' पत्र शाक लघु एवं सुपाच्य होने के कारण रोगियों व सामान्य व्यक्तियों को विशेष ग्राह्य है।

पत्र शाकों में बथुआ एक अतीव स्वास्थ्य प्रद शाक है। इसे संस्कृत में वास्तुक कहते हैं। इसके दो भेद हैं। गौर वास्तुक और क्षेत्र वास्तुक। क्षेत्र वास्तुक की पत्तियां छोटी होती हैं इसे चिल्ली भी कहा जाता है किन्तु गुणों में दोनों समान ही हुआ करते हैं। लिखा है कि 'लघुपत्री तु या चिल्ली सा वास्तुक समा मता' द्रव्य गुण के ज्ञाता आचार्यों ने दोनों ही प्रकार के बथुओं को उत्तम शाक माना है जैसा कि इस वचन से स्पष्ट है कि—सतीनो वास्तुकश्चुच्छुश्चिल्ली मूलक पोतिका, मण्डूकपर्णी जीवन्ती शाक वर्गे प्रशस्यते।

बथुआ उष्ण, स्निग्ध, रोचक, अग्निवर्द्धक, और सारक गुणों के लिये प्रसिद्ध है। भावमिश्र का कथन है कि 'वास्तूकं द्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम्, दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्र बलप्रदम्। सरं प्लीहास्रपित्तार्शः कृमि दोष त्रयापहम्'। चरक ने भी इसे त्रिदोषघ्न कहा है। अन्यत्र भी इसके गुणों के विषय में लिखा है कि-'वास्तुकस्तु सरो हृद्यो दोषनुत पाकतो लघुः, सक्षारः क्रिमिहा मेध्यो रुच्योऽग्नि बल वर्द्धनः।' सर होने के कारण पित्त, अर्श व कृमि रोग में अत्यन्त लाभप्रद है।

जो व्यक्ति कब्ज होने के कारण रोगी बने रहते हैं उनके लिये तो बथुए का प्रयोग अमृत तुल्य हितकारी है। अर्श रोगी इसे हिंग्वादि से संस्कृत तक्र के साथ भोजन के पश्चात् यदि मात्रा पूर्वक प्रयोग में लायें तो उनकी अर्श जनित वेदना व कब्जियत में आश्चर्य जनक लाभ होता देखा गया है। ग्रहणी रोग में भी इसका प्रयोग तक्र के ही साथ करे। इसके कुछ दिन लगातार प्रयोग से पुरीष क्रिमि नष्ट होजाते हैं। जो लोग अनेक अग्नि प्रदीपक औषधियों से अन्न में रुचि नहीं प्राप्त कर पाते वे इसके सुसंस्कृत एवं रुच्य शाक से अवश्य ही आशातीत लाभ को प्राप्त करते हैं। भोजन के पश्चात् जी मिचलाना, तन्द्रा, भोजन में अरुचि और शौच का खुलकर न होना आदि रोगों में यह एक अव्यर्थ औषधि का कार्य करता है।

वात रोगों में यह सदा सेवनीय है। पत्तों को उबाल रस को निचोड़ कर पर्याप्त घृत से संस्कृत करे तथा पर्याप्त मात्रा में भोजन में उपयोग करे। इस प्रकार यह रक्त वर्द्धक होने से वात-विकारों में भी लाभप्रद सिद्ध होचुका है। हेमन्त व शिशिर ऋतु में तो इसका ताजा शाक पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो ही सकता है किन्तु अन्य ऋतुओं में भी प्रकारान्तर से प्रयुक्त हो स्वास्थ्य में सहायक बनकर रोगों से मुक्त कर सकता है।

सुक्षेत्र में उत्पन्न हुए बथुये की पत्तियां उबाल कर, रस को निचोड़ साया में सुखा ले। अच्छी प्रकार से सूख जाने पर कूट कर चूर्ण बनालें। पुनः इस चूर्ण में काली मिर्च, नमक, भुनी हींग

और धनियां मिलाकर सुरक्षित रूप से कांच के पात्रों में रख ले। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को दही के तोड़ या तक्र में मिलाकर प्रयोग में लाये इस प्रकार से बथुये का प्रयोग अन्य ऋतुओं में भी करे।

जिन क्षेत्रों में मिट्टी क्षार युक्त होती है। उन्हीं क्षेत्रों में यह प्रचुरता से प्राप्त होता देखा गया है। यव क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाला बथुआ अन्य स्थानीय बथुओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। कहीं कहीं कोई व्यक्ति इसे कच्चा खाना ही पुष्टिकर बताते हैं किन्तु ऐसा नहीं। इसके पोषक तत्व और क्षार पका लेने पर नष्ट नहीं होते। कच्चा खाने से आमाशय दुष्टि की संभावना रहती है। इसमें पर्याप्त पोषक तत्व हैं: इस बात को सभी ने स्वीकार किया है। अतएव इसके लाभों से लाभान्वित होने के लिये यह आवश्यक है कि इसका प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया जाये। श्री.पं. लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल,

आयुर्वेदाचार्य, मंधना, कानपुर।

*

:: मधु ::

नेत्र रोगों पर मधुजन्य प्रभाव—

प्रायः सभी प्रकार के नेत्र रोगों में मधु का प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ है। प्रतिदिन एक बार नेत्रों में आंजने से नेत्र रोगों की सम्भावना कम होजाती है। नेत्र रोग ग्रस्त होने पर आंजने से भी लाभ होता है।

टांसल पर मधु का प्रभाव—

जुकाम कफ या गर्मी से टांसल बढ़ने पर मधु मिला जल के कुल्ले करने से तथा केवल शहद चाटने से टांसल ठीक होजाते हैं।

बाल शोष पर मधु —

छोटी मक्खियों के छत्ते से निकला हुआ शुद्ध शहद बच्चों को चटाने से सूखा रोग पर लाभ होता है।

अन्य मधु प्रयोग—

मधु को गोघृत में मिश्रण कर अंजन करने से शिरोत्पात् नामक रोग में लाभ होता है।

वृश्चिक दंश पर मधु का प्रभाव—

बिच्छू के काटे हुए स्थान पर मधु मलने से रोगी को शान्ति मिलती है।

:: पृष्ठ ८४३ का शेषांश ::

भेद से अगणित गुणों का समन्वय है। यही कारण है कि यह अनेक रोगों में विजय प्राप्त करने की क्षमता रखता है। यदि शुद्ध एवं ताजे मधु को रसायन संज्ञा दी जावे तो कोई अत्युक्ति न होगी। अतः हमें चाहिए कि शास्त्रानुसार इस महान वस्तु का प्रयोग कर रोग मुक्त हों।

—श्री. जयकुमार जैन वैद्य
श्री महावीर औषधि भण्डार
मढ़िया के पास, बीना इटावा (सागर)

ईख और उसके गुण

लेखक—श्री महावीरसिंह "माधव"

भारतवर्ष अतीतकाल से आयुर्वेद का जन्म स्थान रहा है। यहां पर आयुर्वेद शास्त्र के अनेक उद्भट प्रगल्भ विद्वान हो गये हैं जिन्होंने निजी अनुभव एवं प्रयोग के सहारे तथा अपनी विद्वत्ता एवं कर्त्तव्य के द्वारा अनेक अद्भुत कार्य कर दिखाये हैं। यों तो हमारा देश ही आयुर्वेद का भव्य भंडार है, कुबेर का आगार है। सिर्फ चतुर जौहरी की आवश्यकता है।

भारत के किसान तरह तरह की फसलें उपजाते हैं पर अज्ञानता के कारण उसका समुचित प्रयोग नहीं कर पाते हैं। यदि इस ओर लोग तनिक भी ध्यान दें तो अल्प व्यय में ही स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं। उन फसलों में ईख का प्रमुख स्थान है। इसकी खेती भारत के कोने-कोने में होती है। आयुर्वेद के ख्याल से ईख का प्रयोग अनेकानेक आदि व्याधियों में किया जाता है।

इसी ईख के रस से गुड़, शक्कर, बूरा, चीनी बताशा, मिश्री आदि तरह-तरह के मिठाई मिष्ठान पकवान तैयार किये जाते हैं।

ईख की बारह जातियां हैं पर रंग के विचार से सिर्फ तीन श्रेणियां हैं—(१) श्वेत (२) श्याम और (३) लाल।

यों तो ईख के साधारण गुण हैं - रक्त और पित्त को शान्त करना। यह शक्ति प्रदान करती है, कफ नाश करती है तथा धातु की वृद्धि करती है यह स्वाद में मधुर है तथा यह भारी, मूत्रवर्द्धक शीतल और स्निग्ध है। पर जाति विभेद एवं रोग विभेद के विचार से इसके विभिन्न गुणावगुण हैं। श्वेत ईख पुष्टिकारक, धातुवर्द्धक, शक्तिदायक तृप्तिकारक और स्निग्ध है। साथ ही यह मधुर स्वादिष्ट श्रमनाशक, रक्तपित्त नाशक और कफकारक है।

श्याम ईख में श्वेत ईख के अनेक गुण हैं। इसके अतिरिक्त यह शोथकारक शोषनाशक व्रणकारक और क्षारयुक्त है।

लाल ईख शक्ति और कान्ति प्रदान करने वाली मधुर, शीतल, धातुवर्द्धक, पुष्टिकारक और फोड़ानाशक है। इतना ही नहीं, यह रक्तदोषनाशक मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र नाशक भी है।

ईख के अवस्था भेद से भी इसके विभिन्न गुणावगुण हैं। कच्ची ईख कफकारक और प्रमेह कारक होती है। युवा ईख स्वादिष्ट रुचिकारक पित्तनाशक और वातनाशक होती है तथा पकी ईख बल-वीर्यवर्द्धक, रक्तपित्त नाशक और क्षत निवारक होती है।

ईख के रस से जैसा कि पहले बताया गया है, सिरका, छोआ, गुड़, राव, बूरा, शक्कर चीनी, मिश्री, मिष्ठान आदि तैयार किया जाता है। इनके तरह-तरह के प्रयोग से तरह-तरह की बीमारियों को आराम होता है।

ईख का रस सबसे बढ़िया फायदेमन्द वह होता है जो दांत से ईख को छीलकर चूसा जाता है। वह रस मधुर स्निग्ध, दस्तावर, शीतल, रक्त पित्तनाशक, वाजीकरण, कफकारक, मूत्रवर्द्धक, शक्तिवर्द्धक, श्रमहर तथा मेदोवृद्धि को शान्त करने वाला होता है।

पौष्टिकता के विचार से इस रस में निम्नांकित तत्व होते हैं—

९०·२% जल, ·१% प्रोटीन, ·२% चिकनाई ·४% खनिज पदार्थ, ९·१०·/.०. कार्बोहाइड्रेट, ·०१% कैलशियम, ·०१% फास्फोरस, १·१% लोहा तथा ३९ कैलोरी शक्ति प्रतिशत मिलीग्राम।

कल या मशीन के सहारे पेरी गई ईख का रस भारी, दस्तावर, दाहकारक और विलम्ब से पचने वाला होता है। क्योंकि यह गन्दा होता है। इससे ईख की जड़, पत्ते, मिट्टी, गन्दी वस्तुएं आदि सभी ईख के साथ कल में पेरी चली जाती है। अब यही रस बासी हो जाता है तब वह खट्टा हो जाता है जिसके पीने से तरह-तरह की बीमारी हो जाती हैं। हां कल के द्वारा पेरे हुए रस का यदि सिरका तैयार किया जाय तो वह फायदेमन्द होता है।

सिरका तैयार करने का सरल तरीका यह है- ईख के रस को एक मिट्टी के बर्तन में भरकर उसके मुंह को बन्द करदें और ४ दिन तक दिन को धूप में तथा रात्रि को शीत में रखें। ५ वां दिन उसे कपड़छन करके दूसरे बर्तन में रख कर बन्द करदें। बस सिरका तैयार है। यह वर्षों रखा जा सकता है। यह जितना ही पुराना होगा उतना ही अग्नि दीपक, पाचक और रोचक होगा।

रस से तैयार किये गये गुड़ के अनेक गुण हैं। यह धातु बर्द्धक, मूत्र शोधक, वात नाशक, भारी कफकारक और शक्तिदायक होता है।

गुड़ में औषधि की दृष्टि से तो अनेक गुण हैं ही, पौष्टिकता के ख्याल से भी अनेक गुण हैं। इसमें जितनी कैलशियम की मात्रा है, वह हड्डियों की मजबूती और रक्त संचालन एवं उसकी पौष्टिकता के लिए पर्याप्त है। हड्डियों के निर्माण में फास्फोरस की जितनी मात्रा होनी चाहिए, गुड़ में वर्त्तमान है। गुड़ में विटामिन ए भी पाया जाता है जो नेत्र और त्वचा को स्वस्थ, सबल और सशक्त रखता है साथ ही रोगों से रक्षा करता है। अधिक परिश्रम करने वालों के लिए गुड़ रामबाण का काम करता है। क्योंकि अधिक शारीरिक परिश्रम करने वालों को केलोरिज जितना चाहिए उतना गुड़ में वर्त्तमान है। इस लिये अधिक परिश्रमी को गुड़ खाना परमावश्यक है। हां, मानसिक परिश्रम करने वालों को गुड़ की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी शारीरिक परिश्रम करने वालों को है। उसी तरह बच्चों को भी अधिक गुड़ खाने की आवश्यकता नहीं है।

गुड़ खाने से पाचक क्रिया ठीक रहती है। भोजन के साथ या भोजनोपरान्त गुड़ खाने से मलावरोध की शंका जाती रहती है। इससे शरीर में स्फूर्ति आती है, दुर्बलता जाती है, जीवन के आवश्यक कार्यों एवं शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम में शक्ति लगती है।

आज के वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के पश्चात् गुड़ के जितने पौष्टिक तत्वों का पता लगया है वह इस प्रकार है—३·९% नमी, ·४% प्रोटीन, ·१% चिकनाई, ·६% खनिज पदार्थ, ९५०% कार्बोहाइड्रेट, ·०८% कैलशियम, ·०४% फास्फोरस ११·४% प्रतिशत लोहा मिली ग्राम तथा ३८३ कैलोरी शक्ति प्रतिशत।

औषधि एवं गुण के विचार से नये और पुराने गुड़ में अन्तर है। नया गुड़ कृमि, श्वास, कफ और अग्निमान्द्य को लाता है। पुराना गुड़ औषधि के काम में आता है। यह रुचिकर, ज्वर नाशक, वात-पित्त नाशक, कष्ट नाशक मल-मूत्र रोग नाशक, अग्निदीपक, हल्का स्निग्ध और श्रम नाशक होता है। पर तीन वर्ष से अधिक रखने से गुड़ गुणहीन हो जाता है।

अब यहां पर कुछ प्रयोग दिये जाते हैं—

सिरका का प्रयोग—

अजीर्ण—कभी कभी अधिक खा लेने या खाकर नहीं सोने पर अजीर्ण की शिकायत हो जाती है। इसके लिए सिरके का प्रयोग रामबाण दवा है। शक्ति के अनुसार ½ तोला से २ तोला तक दे सकते हैं।

सन्निपात—बीमारी अधिक बढ़ जावे पर जब मरीज चौन- मौन करने लगे, अंट संट करने लगे और बेहोश होने लगे तो गुलरोगन, चन्दन या चमेली के तैल में सम भाग सिरका मिलाकर सिर

- शेषांश पृष्ठ ८५७ पर।

अशोक

लेखक—श्री रामेशवेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

विविध भाषाओं में नाम

हिन्दी, मराठी, बंगाली, गुजराती आदि भाषाओं में इसका नाम अशोक ही है। तेलगू में इसे अशोकमु, तामिल में अशोघम् या अचोकम् मलयालम में अशोकम् कहते हैं। प्रायः सभी भाषाओं में इसके नाम अशोक से मिलते हैं।

अंग्रेजी में इस वृक्ष को संस्कृत नाम के आधार पर अशोक ही कहते हैं। लैटिन नाम रखते हुए सर विलियम जोन्श ने आशा की थी कि वनस्पति शास्त्र के विद्वान् इस वृक्ष को संस्कृत नाम अशोक ही दें तो अच्छा है, क्योंकि यह नाम प्राचीन भारतीय काव्यों में और धार्मिक ग्रंथों में बहुत अधिक वर्णित है। पिछली शती के वनस्पतिशास्त्र-वेत्ता सर विलियम रॉक्सबर्घ ने सर विलियम जोन्स के सम्मान में इस पौदे का औद्भिदी नाम (बोटेनिकल नेम) जोनेसिया अशोका (gonesia asoka roxlr) रख दिया था। कुछ काल बाद यह नाम बदलकर इसे सेरेका इण्डिका (Saraca indica Linn) नाम दे दिया गया, जो अब तक चल रहा है। औद्भिदीविदों के अनुसार पश्चिम भारत का देशीय नाम सेरेका है जो लैटिन में ग्रहण कर लिया गया है। इण्डिका का अर्थ है भारतीय।

संस्कृत के नाम[1]

नरहरि पण्डित (बारहवीं शती) ने अशोक के बाईस नाम दिये हैं। कैयदेव (१४५० सन्) ने पन्द्रह और भाव मिश्र (१५५० सन्) ने आठ। धन्वन्तरि निघंटु में इसके पर्यायवाची नौ शब्द हैं।

परिचय ज्ञापक नाम—

वन्जुलद्रुम (सुन्दर वृक्ष), चित्र, विचित्र (अद्भुत छटावाला), मधुपुष्प (मधुमास, वसन्त ऋतु में खिलने वाले फूल), रागीतरु, रक्तक (रागवान लाल) शोणपुष्प (लाल फूलवाला), हेम पुष्प (लाल फूल बाद में सोने के से नारंगी रंग के होजाते हैं); पिण्ड पुष्प (फूल गुच्छे-पिण्ड में लगते हैं); गन्धपुष्प, सुगन्धि (अच्छी गन्ध वाला फूल) कर्णपूरक (फूलों को रमणियां कर्णफूलों की तरह धारण करती थीं) रक्तपल्लव, ताम्रपल्लव (नये पत्ते लाल या तांबे के से रंग के होते हैं); प्रपल्लव, पल्लवद्रु (खूब पत्तों वाला वृक्ष)।

गुणप्रकाशक नाम[1]

अशोक, शोकनाश, अपशोक, (रोग निवारण

---

[1] क अशोकः शोकनाशश्च विचित्रः कर्णपूरकः।
विशोको रक्तको रागी चित्रः षट्पदमन्जरी॥
—ध० नि० आम्रादि० ५·१५६।
ख अशोकः शोकनाशः स्याद्विशोको वन्जुलद्रुमः॥
मधुपुष्पो अपशोकश्च कंकेलिः कलिकस्तथा॥
रक्तपल्लवकश्चित्रो विचित्रः कर्णपूरकः।
सुभगः स्मराधिवासो दोषहारी प्रपल्लवः॥
रागी तरुर्हेमपुष्पो रामवामांघ्रिघातकः।
पिण्डीपुष्पो नटश्चैव पल्लवद्रुर्द्विंशतिः॥
—रा० नि० करवीरादि १०, २७०-२७२।
ग अशोको हेमपुष्पश्च वन्जुलस्ताम्रपल्लवः।
कंकेलिः पिण्डपुष्पश्च गन्धपुष्पो नटस्तथा॥
—भा० प्र० पुष्पादि. ४३-४४।
घ गतशोको वीतशोको विशोकस्ताम्रपल्लवः।
पिण्डपुष्पो शोणपुष्पो सुभगः कर्णपूरकः॥
विचित्रो रक्तको रागी रामस्तवकमन्जरी।
चित्रशोकः शोकनाशः स्त्रीपादहतिदोहदः॥
—कै० द० नि०, ओ० व. १०८४-१०८५।

[1] त्वमशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु॥
—तिथ्यादि तत्व।

करके लोगों के शोक को नष्ट करने वाला); गतशोक वीतशोक, विशोक, (शोक रहित); सुभग (कल्याणकारी सुन्दर वृक्ष); दोषहारी (शरीर के दोषों को दूर करने वाला), रामस्तवकमन्जरी (राम प्रशंसक फूल, जैसे श्रीराम की गुणगरिमा का स्तवन कर रहे हैं), स्मराधिवास (कामदेव का आश्रय, वसन्त ऋतु का सुन्दरतम और सुगन्धित फूल होने से काम प्रवृत्तियों को जागृत करने वाला कामदेव के पांच बाणों में से एक अशोक के फूल हैं।), नट (कामदेव की जैसी नाट्यस्थली हो), स्त्रीपादहतिदोहद, कान्ताघ्रिदोहद (रमणी के पाद-प्रहार से जिसमें फूल धारण करने की इच्छा पैदा हो जाती है)।

औद्भिदीय वर्णन

यह सदा हरा छोटा वृक्ष है। तना प्रायः सीधा जाता है। शाखाएं बहुत होती हैं। प्रत्येक दिशा में जाती हुई ये बहुत रमणीय छायावान गोल घना मुकुट बनाती हैं।

तने की छाल चिकनी बाहर से मटियाले रंग की और अन्दर से लाल रहती है।

पत्ते छह से बारह इञ्च लम्बे जिनमें पर्णकों के तीन से छह जोड़े रहते हैं। पर्णक चार से आठ इञ्च तक लम्बे और एक दूसरे के सन्मुख लगे रहते हैं। नये पत्ते शाखाओं के सिरों पर गुच्छों में नीचे की ओर लटकते रहते हैं। आरम्भ में इनका रंग हरिताभ श्वेत होता है जो शीघ्रता से रक्ताभ आराग में बदल जाता है। अन्ततोगत्वा पर्णक जब परिपक्व होकर अपनी अन्तिम कठोरता तक पहुंच जाते हैं तब ये स्वच्छ गूढ़ हरे बन जाते हैं। जब लाल रंग के होते हैं तो उनका भ्रम आम के किसलयों से हो सकता है।[2]

फूल बड़े-बड़े गुच्छों में आते हैं। तीन-चार इञ्च व्यास के गुच्छों में फूल खूब घने गुथे रहते हैं। आरम्भ में ये सुन्दर पीले नारंगी रंग के होते हैं। सूर्य प्रकाश के प्रभाव से ये धीरे-धीरे गूढ़ लाल हिंगुल वर्ण के होते जाते हैं जिनमें विभिन्न प्रकार की सुन्दर छायाएं रहती हैं। रात में विशेष रूप से बड़े आकर्षक प्रतीत होते हैं क्योंकि उस समय ये आसपास के वायुमण्डल को एक नाजुक सुगन्ध से व्याप्त कर देते हैं।

भारत के विभिन्न स्थानों पर इसके फूल फरवरी से खिलना आरम्भ करके जून तक खिलते रहते हैं। हरिद्वार में ये एप्रिल के आरम्भ में खिलना शुरू करते हैं और लगभग १ मास में समाप्त हो जाते हैं।

पुंकेसरों (Stamens) की संख्या कम अधिक हो सकती है। एक ही वृक्ष के फूलों में ये छः से नौ तक पाये जाते हैं जिनमें से कुछ पूर्ण विकसित नहीं होते। पूर्ण विकसित पुंकेसर ६,८ होते हैं। इनकी लम्बाई लगभग एक इंच होती है। शोण वर्ण पराग दण्ड फूलों के सौन्दर्य में आभवृद्धि कर रहे होते हैं। फूलों में (petals) नहीं होते।

सौन्दर्य में अनुपम—

यदि आपने कभी पूरा खिला हुआ अशोक वृक्ष देखा हो तो मुझे विश्वास है कि आप भी विलियम जौन्स तथा राक्सवर्ग[1] के इस विचार का समर्थन करेंगे कि वनस्पति जगत् में पूर्ण विकसित अशोक वृक्ष के समान शायद ही कोई दूसरा वृक्ष सुन्दर दीखता हो। अशोक वाटिका में जब हनुमान् पहुंचे तो उन्हें खिले हुए अशोक फूलों की शोभा सूर्योदय की प्रभा के समान लग रही थी।[2] महर्षि वेदव्यास ने और कल्पकवि कालिदास जैसे कवियों ने इस प्रकार की अनेक उपमायें दी हैं जिनसे इस फूल का उत्कर्ष बढ़ता है। अशोक वाटिका में रखी हुई सीता को मिलने जब रावण

---

[2] अशोकाम्रदलो वृक्षः।

[1] फ्लोरा इण्डिका, १८७४।

[2] सर्वर्तुकुसुमैरम्यैः फलवद्भिश्च पादपैः ।
पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ।
प्रदीप्तामिव तत्रस्थो मारुतिः समुदैक्ष्यत ॥

—रामा० ५, १५-५

आया करता तो ऐसा सजा होता जैसे कि लाल पत्तों और फूलों वाले अशोक वृक्षों से सुशोभित कोई पर्वत हो। बालसूर्य की प्रभा के समान अशोक के अरुण किसलय और फूल उसकी शोभा बढ़ा रहे होते।[1] यद्यपि रावण का यह मूर्तिमान वसन्त रूप सीता को तो श्मशान में सजे हुए चैत्य के समान भयङ्कर ही लगता[2]।

अशोक के फूल वृक्ष की जड़ से ही खिलने शुरू हो जाते हैं। फूलों के गुच्छों का बोझ इतना अधिक होता है कि शाखायें झुक जाती हैं। वेदव्यास ने लङ्का की अशोक वाटिका के वृक्षों के बारे में भी लिखा है कि अपने भार से शोक नाशक फूलों के वे गुच्छे धरती को छू रहे थे।[3]

चपटी, चर्मश फली जाल सदृश चिन्हों से आवृत होती है। यह जरा सी वक्र और सिरे पर नोकीली होती है। इसके बाहरी किनारे के मध्य में स्पष्ट एक खांचा बना होता है। बाल फलियां एप्रिल में आजम्बु वर्ण की होती हैं। ज्यों-ज्यों पकती हैं ये गूढ़ रङ्ग में बदलती जाती हैं। चिकनी फलियां करीब दो इंच चौड़ी और छः से दस इंच तक लम्बी होती हैं। इनमें चिकने घूसर वर्ण के, बड़े चेस्टनट के आकार के चार से आठ बीज रहते हैं। बरसात में बीज पकते हैं।

नैसर्गिक वर्ग—

नैसर्गिक वर्गीकरण में यह शिम्बी वर्ग (लेगुमिनोसी) के अन्तर्गत रखा गया है। परन्तु फूलों को देखने से कोई सन्देह नहीं कर सकता कि यह शिम्बी वृक्ष है[4]। इस वर्ग के अन्दर कोई छः जातियों (Spccies) का एक छोटा सा गण (genus) सेरेका (Saraca) है। इस गण में सब पेड़ होते हैं जो भारत और मलय में देशीय हैं। इनमें से एक भारत में सामान्य रूप से पाया जाता है। यह अशोक है। इस गण की अन्य जातियों में से कुछ भारत के बगीचों में कहीं कहीं मिल जाती हैं।

प्राप्ति स्थान—

सहारनपुर और देहरादून जिलों में यह बगीचों में और मन्दिरों के आसपास कहीं कहीं उगाया हुआ मिलता है। जङ्गलों में स्वयं जात नहीं है। कुमाऊं के पास यह वृक्ष दो हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। बङ्गाल में बगीचों में और मन्दिरों के पास प्रायशः उगा हुआ मिलजाता है, जहां यह सुन्दर मध्यम आकार का वृक्ष बन जाता है। छाया वाले स्थानों पर सर्वोत्तम पनपता है। पूर्वीय बङ्गाल में सड़कों के साथ साथ यह बहुतायत से पाया जाता है। राक्सबर्घ के विचार में बंगाल के पूर्वीय सीमाप्रान्त में यह जंगलों में स्वयं उगने वाला वृक्ष है और सम्भवतः यहीं से इसके पौदे और बीज ले जाये गये थे। औद्भिदी के विद्वान् अब हमें बताते हैं कि यह भारत के अनेक भागों उत्तर तथा दक्षिण कन्नड़ प्रदेश और मलय का देशीय वृक्ष है। दक्षिण भारत, अराकान और टिनास्सेरिम में यह बहुतायत से उगता है।

ट्रूप (१९२१) के अनुसार खासी पर्वतमाला, चिटागोंग, अराकान, टिनास्सेरिम, अपर बर्मा, उत्तरीय सरकार्स और बम्बई के पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश में यह धाराओं के साथ साथ या सदा हरित वनों की छायाओं में जङ्गली रूप में पैदा होता है।

उगाना—

वराह मिहिर ने अशोक को उगाने की दो विधियां बताई हैं। पहली विधि में यह कर्तनों (कलमों) से पैदा किया जाता था। शाखाएँ काट कर भूमि में गाड़ दी जाती थीं। ऊपर सिरे पर ताजा गोबर लगा दिया जाता था जिससे पानी का

---

[1] रक्तपल्लव पुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाचलः ।

[2] श्मशानचैत्यप्रतिमो भूषितोपि भयंकरः ।

[3] समूलपुष्परचितैः अशोकैः शोकनाशनैः ।
पुष्पभारातिभारैश्च स्पृशद्भिरिव मेदिनीम् ॥
—रामा०

[4] फ्लावरिंग प्लाण्ट्स ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, नर्न।

वाष्पी भवन न हो और कलम न सूखे। अशोक के पौदे तैयार करने की दूसरी विधि में यह दूसरे वृक्ष के तने के ऊपर खूँटी गाड़ कर कलम उगाई जाती थी। जड़ से ऊपर वृक्ष का तना काट कर उसमें अशोक शाखा की खूँटी बैठा दी जाती थी।[1]

शुभ वृक्ष

वराह मिहिर ने इसे शुभ वृक्षों में गिनाया है। उसके अनुसार अशोक, नीम, पुन्नाग, शिरीष और प्रियंगु ये वृक्ष मंगलकारी हैं इस लिये बाग में अथवा गृहोद्यानों में पहले इन्हें रोपना चाहिये[2]। याज्ञवल्क्य स्मृति में राजा को उस स्थान में निवास करने की सलाह दी है जो रमणीय है, पशु और जीवन के लिये आवश्यक चीजें जहां मिल जाती हैं।[3] विज्ञानेश्वर (१२ वीं शती) ने रमणीय की टीका में लिखा है अशोक, चम्पक आदि से जो रमणीय बना हुआ है।[4] इससे प्रतीत होता है कि बारहवीं शती तक भी राज प्रसादों में अशोक को आदरणीय स्थान प्राप्त था। विश्वास किया जाता है कि गौतमबुद्ध (छटी शती ईस्वी पूर्व) अशोक वृक्ष के नीचे पैदा हुए थे। इस लिये बौद्ध इसे पवित्र मानते हैं। दुर्गा पूजा के महोत्सव में पत्तों का प्रयोग किया जाता है। मन्दिरों के सजाने के लिए और मंगलोत्सवों में मंडपों के अलंकरण में फूलों तथा पत्तों को खूब पसन्द किया जाता है। बौद्ध और हिन्दू मन्दिरों के पास यह वृक्ष रोपा जाता है क्योंकि इसके फूल धार्मिक कृत्यों में समर्पित किये जाते हैं। चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन अशोक की पुष्पकलिकाओं को पानी के साथ पीने से तथा अशोक वृक्ष की पूजा करने से सब दुखों से छुटकारा मिलने की बात लिंग पुराण में लिखी है।

राजाओं तथा तपसियों द्वारा सेवित

राजा अग्निमित्र के प्रमद वन में अशोक वृक्ष उगाये हुए थे। उसकी शीतल घनी छाया में पत्थर की चौकियां बिछी रहती थीं। प्रमद वन में मालविका अशोक वृक्ष की ठण्डी छाया में पत्थर की पाटी पर बैठी हुई जी बहला रही थी।[1] बकुलावलिका ने अशोक की छाया में बैठी हुई मालविका के पैर रंग थे।[2] राज प्रासादों की इस चहल पहल से दूर तपसियों के आश्रमों के पुनीत वातावरण में हमें अशोक की सौम्यता आकृष्ट करती है। विन्ध्याटवी में पम्पा सरोवर के निकट आश्रम में मुनिजनों, तापस कुमारियों, हरिण शिशुओं और मुनि कुमारों से सेवित जावालि ऋषि रक्ताशोक की छाया के नीचे पवित्र भूमि पर बैठे मिलते हैं। लाखी रंग के लाल पत्तों से और अभिनत्र फूलों के उपहार से वह वृक्ष रमणीय बना हुआ था।[3]

---

[1] पससाऽशोक कदली जम्बूलकुचदाडिमाः ॥
द्राक्षापालीवताश्चैव बीज पूरातिमुक्तकः ॥
एते द्रुमाः काण्डरोप्याः गोमयेन प्रलेपिताः।
मूलच्छेदेऽथवा स्कन्धे रोपणीयाः प्रयत्नतः ॥
— बृहत्संहिता, अ. ५५, ४-५

[2] अरिष्टाऽशोक पुन्नाग शिरीशाः सप्रियंगवः।
मंगल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा ॥
—बृहत्संहिता, अ. ५५, ३।

[3] रम्यं पशव्यमाजीव्यं जांगलं देशमासेवेत्।
—याज्ञ, आचाराध्याय, राजधर्म, प्रकरण १३, ३२१।

[4] रम्यं रमणीयं अशोकचम्पकादिभिः।
प. १०१।

[1] अयं स ललितकुसुमभारदोहदापेक्षी अग्रहीत कुसुमनेपथ्य उत्कण्ठिताया मया अनुकरोत्यशोकः। यावदस्य प्रच्छाय शीतले शिलापट्टके निशण्णात्मानं विनोदयामि।
—मालविकाग्नि मित्र अं. ३।

[2] एषा अशोकपादपच्छायायां मालविकाया बकुलावलिका चरणालंकारं निर्वर्तयति। मालविका, अं. ३।

[3] तत्र चैवं विघस्य मध्यभागमण्डलमलंकुर्वाणस्यालक्तकालोहितपल्लवस्य मुनिजनालम्बित कृष्णाजिनजलकरकसनाथशाखस्य तापसकुमारिकाभिर्मूलभागदत्तपीतपिष्ट पंचांगुलस्य हरिणशिशुभिरापीयमानालवालकसलि-

अशोक के छोटे पौदों के कोमल पत्तों को आश्रम के हरिण चरने लगते हैं तो उन्हें हटा दिया जाता है।[1] विरही यक्ष ने मेघ को अपने घर की निशानी बताते हुए कहा था कि उसके सामने जिस पहाड़ी पर मैं अपनी पत्नी के साथ खेला करता था वहां पर चपल किसलयों वाले लाल फूल का अशोक वृक्ष लगा हुआ है।[2] सार्वजनिक स्थानों में भी यह सुन्दर वृक्ष प्राचीन भारत में लगाया जाता रहा है। बावली के किनारे लगाये जाने वाले वृक्षों में वराह मिहिर ने अशोक गिनाया है।[3] सुन्दर वृक्ष होने से इसे पथ-वृक्षों के रूप में सड़कों पर और घरों, गांवों तथा पार्कों में लगाने के अधिक प्रयत्न किये जाने चाहिये। उत्तर भारत में यह बहुत कम मिलता है। इस लिए, वन महोत्सवों में इसे रोपने के निमित्त अधिक प्रचार किया जाना चाहिए।

राजाओं से समादृत

राज परिवारों में अशोक बड़ा समादृत रहा है।[1] राजकीय वाटिकाओं में अशोक फूलने के समाचार से ही राज-प्रसादों में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती थी।[2] अशोक की पूजा में व्यस्त महारानी धारिणी ने आज्ञा दी थी कि महाराज अग्निमित्र को कह दो कि मैं आर्य पुत्र के साथ ही चल कर फूले हुए अशोक की शोभा देखना चाहती हूँ।[3] अशोक वृक्ष की पूजा सम्भवतः गन्धर्वों और यक्षों की देन है। प्राचीन साहित्य में इसकी पूजा के उत्सवों का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। असल पूजा अशोक की नहीं, बल्कि उसके अधिष्ठाता कन्दर्प देव की होती थी। इसे मदनोत्सव कहते थे।[4]

केवल स्त्रियां ही नहीं, उसके साथ उनके पति भी इस मदनोत्सव में सम्मिलित होते थे। उनके बिना उत्सव की सफलता भी कैसी? अग्निमित्र के राजकीय उद्यान में मालविका के पाद-प्रहार से अशोक में दोहद का सञ्चार किया गया था, फूल खिल जाने पर महारानी धारिणी ने राजा को सन्देश भेजा था कि मेरे साथ चल कर उस फूले हुए सुनहरे लाल अशोक को देख कर मेरा उत्सव सफल कीजिये।[5]

—क्रमशः।

लस्य मुनिकुमारकावद्धकुशचीरदाम्नो हरितगोमयोपलेपन विविक्ततलस्य तत्क्षणकृतकुसुमोपहाररमणीयस्य नातिमहतः परिमण्डलतयाविस्तीर्णावकाशस्य रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टमत्युग्रतपोभिः……………………………

……………………………कादम्बरी, पूर्वभाग।

[1] एष बलाशोकवृक्षस्य पल्लवानि लंघयति हरिणः। ऐहि निवारयाम एनेम्। —मालविका, अं. ४।

[2] रक्ताशोकश्चलकिसलया केसरश्चात्र कान्तः।
प्रत्यासन्नौ कुरवकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ॥
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी।
कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥
—मेघदूत, उत्तर मेघ, १७।

[3] ककुभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुलजम्बूवेतसनीयैः।
कुरवकतालाऽशोकमधूकैर्वकुलविमिश्रैश्चावृततीराम् ॥
—बृहत्संहिता, अ. ५४, ११८।

[1] उपक्षिप्तो मया कृतसत्कारविधिस्तपनीयाऽशोकस्य वेदिकाबन्धः।
—मालविका, अं. ५।

[2] तस्यां तथा चण्डी देव्यनेनाशोककुसुमवृत्तान्तेन प्रसादसुमुखी भविष्यति।
—मालविका. अं. ५।

[3] आज्ञप्तास्म्यशोकसत्कार व्यापृतया देव्या, विज्ञापयार्यपुत्रम्।
इच्छाम्यार्यपुत्रेण सहाशोक-वृक्षस्य प्रसूनलक्ष्मी प्रत्यक्षीकर्तुमिति ॥
—मालविका, अं. ५।

[4] देखें: अशोक के फूल हज़ारीप्रसाद द्विवेदी।

[5] देवी विज्ञापयति-तपनीयाशोकस्य कुसुम दर्शनेन मयारम्भः सफलः क्रियतामिति।
—मालविका. अं. ५।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव के आयुर्वेद सम्मेलन में

श्री रामचन्द्र गौनियाल आयुर्वेद भास्कर का वक्तव्य

आज आयुर्वेद का उज्वल आलोक वर्तमान की विषम परिस्थितियों के आवरण में ढका हुआ है। उसकी जीवन-प्रद-ज्योति हम तक पहुंच ही नहीं पाती, फिर हमारे शरीर में नवशक्ति का संचार एवं स्नायु मण्डल में स्फूर्ति का प्रस्फुरण कैसे सम्भव हो सकता है ? यदि आयुर्वेद के प्रति हमारा कुछ भी ममत्व, कुछ भी विश्वास है, और उससे कुछ अपनी उपकार साधना करनी है, तो हमें उस पर पड़ी हुई विषम परिस्थितियों को दूर हटा देना होगा, तभी सम्भव है कि आयुर्वेद के सर्वाङ्गीण महत्व को हम सबके सामने उपस्थित कर सकें, यों तो सहस्र रश्मि आयुर्वेद की किरणें संसार के कोने-कोने तक पहुंच कर सभी लोगों के शरीर में जीवन संचार कर चुकी हैं, परन्तु आज के दुर्दिन में उसका यथार्थ-रूप वास्तविक क्रिया, एवं प्रखर-तेजस्विता प्रत्यक्ष रूप में नहीं दीख पड़ती।

कुछ लोगों की धारणा है कि आयुर्वेद का सितारा ढलता जारहा है, और कुछ दिनों में वह डूब जायगा, परन्तु यह तो एक धारणा मात्र है, क्योंकि सत्य वस्तु का कभी विनाश नहीं होता। आयुर्वेद तो सत्य शिव और सुन्दर है।

ब्रह्मा और दक्षप्रजापति के कटे हुए शिर को जोड़ना, अन्धे और अत्यन्त जर्जरित वृद्ध च्यवन-ऋषि को विमलनेत्र और नवयौवन की शक्ति देना सुरराज इन्द्र के बाहुस्तम्भ को चेष्टाशील करना, एवं असाध्य राजयक्ष्मा से पीड़ित सुधाकर चन्द्रदेव की चिकित्सा में सफल हो जाना यह आयुर्वेद ही का काम है। यह सब बातें अतीत के गर्भ में चली गईं, संसार इन बातों पर विश्वास करे या न करे, पर यह सब सत्य है।

यह तो एक निश्चित बात है कि प्रकृति परिवर्तन शील है। अप्रत्यक्ष रूपेण प्रकृति में प्रतिक्षण परिवर्तन होते रहते हैं. और कालान्तर में वे प्रत्यक्ष होते हैं। समष्टि प्रकृति के साथ साथ व्यष्टि प्रकृति में भी परिवर्तन अनिवार्य है संसार की गति एक सी नहीं रहती। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा आता ही रहता है। कभी किसी की तूती बोलती है तो कभी किसी की। जब तक एक मनुष्य अपनी अन्य कालिक स्थिति से स्वयं टक्कर नहीं ले सकता तो दूसरा क्या ले सकेगा। वर्तमान की विशेषता में अतीत के उज्वल आलोक को विस्मृति के गहरे गर्त में डाल देना क्या उचित होगा ? नहीं बिना, अतीत स्मृतियों के हमारा भविष्य निर्माण एक दम अधूरा ही रह जायगा। इसलिए इसकी आवश्यकता है।

एक वह भी जमाना था जब कि भारतीय नरेशों का आश्रय पाकर यहां का दर्शन, साहित्य, व्याकरण, तर्क, संगीत एवं आयुर्वेद इत्यादि नानाविधि विद्याऐं उन्नति के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ होकर अपनी प्रकाशमयी स्वर्णिम किरणों से सम्पूर्ण संसार को आलोकित किया करती थीं। यहां के विद्वान एवं वैद्य अपनी योग्यता के कारण आमन्त्रित होकर सभ्यता का पाठ पढ़ाने दूसरे देशों में जाया करते थे, और वहां योग्यता पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त कर भारत की विमल कीर्ति-पताका फहराया करते थे, भारतीय चिकित्सा पर सभी का विश्वास था।

दिग्विजयी सिकन्दर ने अपनी सेना की चिकित्सा के लिए भारतीय आयुर्वेद चिकित्सकों को ही नियुक्त किया था, जो उनके इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है। यह बात ईशा से चार शताब्दी पूर्व की है जबकि सारे संसार में असभ्यता, अज्ञानता, एवं अनाचारिता का निविड़ अन्धकार व्याप्त था। तब केवल भारतीय वायुमण्डल को ही नहीं अपितु अखिल विश्व के वातावरण को भारतीय ज्ञान का प्रचण्डमार्तण्ड अपनी ज्योतिर्मय किरणों से आलोकित कर रहा था।

यही नहीं भारत के प्रति एवं भारतीय ज्ञान के प्रति सभी लोगों का सम्मान था, श्रद्धा थी एवं विश्वास था। एक आज भी है जबकि दूसरों की दृष्टि में तो शायद हम इतने हेय नहीं समझे जाते जितने कि हम स्वयं अपने को हेय समझने लगे हैं। भारतीय संस्कृति, रहसहन, आचार-व्यवहार, वेष-भूषा, खान-पान, दवा-दारू इत्यादि सभी वस्तुओं में हमें दोष ही दोष दृष्टिगत होते हैं। हमारी आंखों पर भ्रम का चश्मा, सदैव चढ़ा ही रहता है। फलत: जो लोग मृत्यु समय में भी अपेय एवं अखाद्य विदेशीय औषधियों का व्यवहार करना हेय ही नहीं अपितु अत्यन्त पाप समझते थे, वह भी अब खुले आम इन अपवित्र औषधों का व्यवहार केवल रुग्णावस्था में ही नहीं अपितु स्वस्थावस्था में भी सेवन करते देखे जारहे हैं। यह हमारे लिए एक गौरव की बात होगई है।

बिना "सोडावाटर" या "लेमनेट" पीये अब अन्न ही नहीं पचपाता, बिना 'ब्रुश' और 'टूथ पाउडर' के अब दांत ही साफ नहीं हो पाते, बिना 'स्नो' और 'क्रीम' के अब सौंदर्य-साधना ही नहीं हो पाती, थोड़ी सी खांसी या कमजोरी होते ही "काडलीवर आइल" पीना प्रारम्भ कर देते हैं।

विदेशी वस्तुओं का व्यवहार आज शान के लिये, सभ्यता के लिये उच्चता के लिये, और कुलीनता के लिए अधिकांश लोगों को अत्यन्त आवश्यक सा जंचने लगा है। आजके मानव-समाज ने यह समझ रखा है कि हमारा शरीर दिव्य विदेशीय परमाणुओं से बना हुआ है, इसकी विशेषता को विचारे देशी वैद्य क्या समझ सकेंगे।

इतना भयंकर परिवर्तन कैसे हो गया? अपनी चीजें पराई क्यों जान पड़ने लगीं। जब हमारे हृदयगत भाव ही बदल गये, तब क्या यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि वह दिन दूर नहीं जिस दिन कि हम अपने आप को भी खोबैठेंगे।

मान्य नेतायुग का प्रतिनिधि होता है। उसकी सहायता ईश्वरीय होती है। उसका सौम्य दृष्टिपात जिस ओर होगा, वहां के सूखे नाले भी लहराने लगेंगे, वहां का बीहड़-बन भी नन्दनबन बन जायगा, और वहां का पिछड़ा हुआ समाज भी उन्नति के उच्चतम आसन पर आसीन होगा, ठीक यही आज हुआ, एक दम ढांचा ही बदल गया। भारतीय चिकित्सा पद्धति को लोक-कल्याण के लिए त्रिकालदर्शी महर्षियों ने जंगलों में रहकर पेड़ों के नीचे सोकर, फलफूल खाकर एवं उग्रतपस्या करके पाला पोसा बड़ा किया एवं अत्यन्त सुदृढ़ अवयवों वाला बनाया उसकी आज हम रक्षा भी नहीं कर सकते? यह हमारी पराधीनता अज्ञानता एवं कायरता का मूर्तिमान रूप है।

है पश्चिम में जितनी प्रभा, वह पूर्व ही से है गई।
हरते अन्धेरा हम न यदि, होती न खोज नई-नई॥
इस बात की सांची प्रकृति भी, है अभी तक कह रही।
होता प्रभाकर पूर्व ही सों, उदित पश्चिम से नहीं॥

क्या कारण है कि इतना होते हुए भी सरकार आज आयुर्वेद के प्रति चुप्पी साधे बैठी है? आयुर्वेद का विज्ञ वैद्य रोगी की प्रत्येक अवस्था देश, काल, प्रकृति एवं त्रिदोष की अंशांश कल्पना करके वही औषधि व्यवहार करेगा, वह यह नहीं करता कि ज्वर पर चलने वाली 'कुनैन' सरीखी औषधि का व्यवहार प्रत्येक ज्वर वाले रोगी पर कर दे। जैसा कि हमारे डाक्टर बन्धु करते हैं। आयु-

वैद के सिद्धान्तानुसार चिकित्सकों की औषधि योजना से विकार होने का भय इसलिए नहीं रहता कि वह रोगी की प्रत्येक अवस्था को देखकर प्रयोग तैयार करते हैं। परन्तु ऐलोपैथी में सभी रोगों की दवा सदैव तैयार ही रहती है, जिनकी परीक्षण विधि भी एक अजीब ढंग की है, एलोपैथी औषधियों की परीक्षा सर्व प्रथम जानवरों के पेट में अथवा प्रयोगशाला की नलिकाओं में की जाती है, जो कि सर्वथा अयोग्य तथा खतरनाक है—

"क्योंकि कुत्ते को चावलों की अपेक्षा मक्खियां जल्दी हजम हो जाती हैं। अतः वे चावलों से भी हल्की हैं। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि यदि किसी रोगी की पाचन शक्ति बहुत ही क्षीण हो गई हो तो उसको चावलों से भी हल्का भोजन मक्खियां खिलानी चाहिए।"

यह सिद्धान्त उन अधकचरे विज्ञान के ठेकेदारों का हो सकता है, जिनके यहां मशीन के बिना विवेचन बुद्धि का दिवाला हो। ऐसे अपुष्ट प्रमाण आयुर्वेद चिकित्सकों के मस्तिष्क को सन्तुष्ट नहीं बना सकते। क्योंकि आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति इस प्रकार की थोथी बातों को कभी नहीं सिखाती।

यह सत्य है कि वर्तमान अन्य चिकित्सापद्धतियों ने सरकार की पूर्ण सहायता के कारण पूर्ण तरक्की करली है और चिकित्सा के कई आवश्यक अंगों पर अपना एकाधिपत्य स्थापित करने के लिए बद्ध-परिकर हैं। फिर भी आयुर्वेदीय सत्य सिद्धान्तों के सम्मुख टिक सकने में अभी उनका पैर लड़खड़ा रहा है। यह तो एक दम अनधिकार चेष्टा एवं व्यर्थ प्रयास है, परन्तु इतना अवश्य है कि आयुर्वेदीय चिकित्सा पर यदि भारतीय जनता ने अविलम्ब ध्यान नहीं दिया तो उसका सर्वाङ्गीण महत्व (यथार्थ जीवन) अवश्य संदिग्धावस्था में होगा।

आयुर्वेद के पुनरुत्थान के लिए राज्य सत्ता का ध्यान इस ओर होना आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है। बिना राजकीय उदार सहायता पाये अच्छे से अच्छा गुण भी छिपा रह जाता है। उत्तम से उत्तम विद्यायें भी विलुप्त हो जाती हैं और आश्रय मिलने पर उनका मार्ग प्रशस्त होता है। आशा है भारत सरकार आयुर्वेद की उपयोगिता पर अवश्य ध्यान देकर उसे प्रश्रय प्रदान करेगी।

* * *

:: पृष्ठ ८४६ का शेषांश ::

पर हल्के हाथ से मालिश करना चाहिए और कपड़ा भिगो कर ललाट पर बांधना चाहिए।

गुड़ का प्रयोग—

बवासीर—गुड़ के बराबर छोटी हर्रे का चूर्ण मिला कर कुछ दिनों तक सेवन करके से बवासीर में आराम होजाता है।

कफ—अदरक छील कर छोटा छोटा टुकड़ा करके उसमें गुड़ मिला कर खाने से कफ दूर होजाता है।

खांसी-दमा—बहेड़ा, नागरमोथा और सोंठ को सम भाग लेकर चूर्ण बना लें। बाद में उसमें चूर्ण का एक तिहाई गुड़ मिलाकर गोली बनालें। उसे मुंह में रखकर चूसने से अधिक लाभ होता है।

अजीर्ण - पीपर के चूर्ण के बराबर गुड़ मिला कर सेवन करने से अजीर्ण नाश होता है।

वात—सोंठ का चूर्ण गुड़ के साथ खाने से वातव्याधि दूर होती है।

आमातिसार—सोंठ के बराबर गुड़ मिलाकर खाने से आमातिसार दूर होता है।

मूत्रकृच्छ्र—गुड़ और जीरे का चूर्ण सम भाग सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र की बीमारी नाश होती है।

—श्री महावीर सिंह 'माधव'
हवेली खरगपुर (मुंगेर)

गुप्त सिद्ध प्रयोग

श्री वैद्य चन्द्रभान प्रभाकर

आयुर्वेद विशारद
अमर आयुर्वेद आश्रम नरौली, मुरादाबाद ।

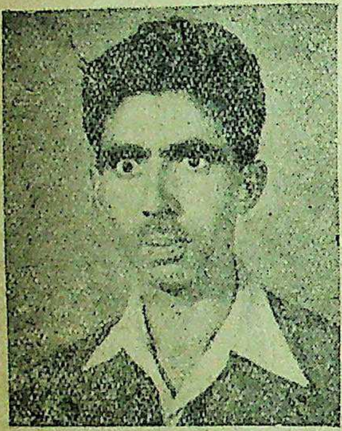

"आपका मुख्य वासस्थल पंजाब है । पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री, प्रभाकर, इण्टर आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं । अखिल भारतीय विद्यापीठ की विशारद की है । आप हिन्दी के स्टेनोग्राफर हैं । १६४७ से नरौली में आयुर्वेद सेवा में रत हैं । अपने पिता पितामहादि से परीक्षित प्रयोग जो कई वर्षों से आप भी बरत रहे हैं पूर्ण रूप से प्रमाणित हैं वैद्य बन्धुओं को सप्रेम प्रेषित किये जाते हैं ।"

—सम्पादक ।

अपस्मार पर—

—व्याधि रहित (जो किसी जीर्ण व्याधि से न मरा हो) मृतक युवक की खोपड़ी की राख बारीक पीस कर रख लें ।

प्रयोगविधि—प्रातः सायं ३ माषे मात्रा में १ पांव गौदुग्ध के साथ दें ।

अपथ्य—खटाई-मिठाई से रोगी दूर रहे ।

पथ्य—फल और हरी तरकारी का अधिक प्रयोग करावें रोगी को प्रसन्न रखें । दोनों समय भ्रमण करावें । भगवान् कृपा से अवश्यमेव लाभ होगा ।

पुत्रदाता एवं नपुंसकत्व नाशक—

इटइमली शालम मिश्री चीड़ कतीरा
असगन्ध नागौरी सतावर
मूसली हरड़ बहेड़ा
आंवला —हरेक १-१ तोला

—इन सब को बारीक पीस कर मधु मिलाकर रख लें ।

मात्रा—१-१ तोला प्रातः सायं गौ दुग्ध के साथ । खटाई मिठाई से दूर रहें ।

—मेरे घर के सामने डाक्टर कपूर के ७ लड़कियां हुईं, अबकी बार इस योग के प्रयोग से स्वस्थ सुन्दर लड़का उत्पन्न हुआ ।

नोट—इटइमली इसी नाम से पंजाब में मिलती है खाने वाली इमली के बीज के समान ही आकार में रुपये जितना बड़ा बीज होता है । अभाव में साधारण इमली के बीज ही लेने चाहिए । गुण में कोई कमी नहीं होती ।

चीड़ कतीरा=बबूल का गोंद ।

सौभाग्यवती प्रमिलाबाई वैद्या आयुर्वेद विशारदा

महिला धर्मार्थ चिकित्सालय, वरणगांव (पूर्वखानदेश)

आरम्भ में आपने अपने पिता वैद्य श्री हरिराम जी बराटे भुसावल तथा इन्दौर के माननीय वैद्य ख्यालीराम जी द्विवेदी शास्त्री से आयुर्वेद तथा संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया है। अब अपने पति श्री डा० टी० एस० महाजन वैद्य विद्या विशारद वरणगांव के कार्यों में सहकारिणी हैं।

आपने नि० भा० विद्यापीठ से आयुर्वेद भिषक् तथा आयुर्वेद विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की है। राजूबाई हीराचन्द मेर्टनिटी होम सोलापुर में आपने बहुत दिन प्रसूति का काम किया है। हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, संस्कृत भाषा की ज्ञाता, समाज सेवाप्रिय, उत्तम वक्ता, लेखिका तथा समाज कल्याण केन्द्र, वरणगांव आरोग्य भाग में आप प्रधान चिकित्सिका हैं।

आपका धर्मार्थ महिला चिकित्सालय है तथा आप स्त्री रोग और बाल रोग विशेषज्ञ हैं।

—सम्पादक।

गर्भाशय-विकृति

प्रसूति के समय गर्भाशय में दूषित रक्त के रह जाने से या गर्भस्राव अथवा बार बार गर्भपात के कारण आन्तरिक ऊष्मा के बढ़ जाने से या रजोविकार (मासिक धर्म के ऋतुस्राव में विकृति) से या उपदंश या सुजाक ग्रस्त पुरुष के संयोग से अति मैथुन से, या शीत स्थान में विशेष रहने से या शुद्धाशुद्ध के ख्याल से गीला वस्त्र ज्यादा पहने रहने आदि कारण से गर्भाशय में दोष संचय होकर वह विकृत हो जाता है। गर्भाशय के दूषित हो जाने से गर्भधारण नहीं हो पाता। गर्भधारणार्थ चाहे जितने उपाय किये जावे, व्यर्थ जाते हैं।

उपचार गर्भाशय शुद्धि—

दशमूल कमल कूठ खस
तगर सेवती मूल एरण्डमूल

—प्रत्येक समभाग

—सबको कूटकर चूर्ण बनावें। इसमें से २॥ तोले चूर्ण को ४० तोला जल में अष्टमांश क्वाथ कर छानकर उसमें औटाया हुआ गौदुग्ध १० तोले तथा सर्वस्त्रीगदांतक वटी २ (रसोद्धार तन्त्र) मिलाकर प्रातः सायं पिलाने से उत्तमतया गर्भाशय की शुद्धि हो जाती है।

नोट—उक्त प्रयोग ऋतुकाल में ही ५ या ७ दिन तक करावें। रुग्णा को उष्णोदक का टब बाथ नित्य कराया जावे। तथा गर्भस्थान पर (नाभी के नीचे पेट पर) अलसी और एरण्ड बीज को जल में पीस, गरम कर लेप कर दिया जावे और सुहागे की खील को सुखोष्ण जल में मिलाकर उत्तरबस्ति देते रहना चाहिए। तथा बीच बीच में स्निग्ध रेचन (दूध के साथ एरण्ड तैल) देते रहना हितकारक है। रुग्णा को मैथुन, विशेष परिश्रम एवं उष्ण पदार्थ के सेवन से बचते रहना चाहिए।

पुत्रप्रद योग —

गर्भाशयस्थ सब दोष दूर करने के लिए और तत्पश्चात् गर्भाधान होने के लिए निम्न लिखित औषधों का श्रेष्ठतम योग है-

रत्न भागोत्तर रस*	२ तोले
शिलाजीत सूर्यतापी	१।। तोला
लक्ष्मण लोह	१ तोला
अभ्रक भस्म १००० पुटी	।। तोला
वसन्त कुसुमाकर रस	।। तोला

- सब औषधि एकत्र करके (साफ खरल में ३-४ घण्टा घोटकर) स्वच्छ कूपि में रखे।

सेवन विधि-प्रतिदिन ३-३ रत्ती मिश्रण तथा निम्नलिखित अनुपान चूर्ण १ तोला और च्यवनप्राश अवलेह ½ तोला सभी एकत्र कर चटावें। ऊपर गौ दुग्ध देवें। इस तरह प्रातःकाल तथा सायंकाल दोनों समय औषध सेवन करे।

अनुपान चूर्ण—

अश्वगन्धा १० तोले
शिवलिंगी बीज १० तोले
श्वेत कण्टकारी मूल शतावरी
विदारीकन्द —प्रत्येक ५-५ तोला
अमृतासत्व इलायची दाणा
कमल केशर सूर्यतापी शुद्ध शिलाजीत
—प्रत्येक २।।-२।। तोला

समस्त द्रव्यों के कपड़छन चूर्णों को उक्त मान से मिलावे।

पथ्यापथ्य—शेंगदाणा तैल, सरसों का तैल, लाल मिर्च, बेजीटेबिल घृत, तैल में तली हुई चीजें, गरम मसाला, वायु कर बस्तुऐं, आंवला, खट्टा दही और जो जो पदार्थ प्रकृति को अनुकूल न हो वह त्याग देना चाहिए।

हमेशा सादा सात्विक भोजन गेहूं, चावल, मूँग की दाल, सभी फल दूध तथा शुद्ध घी खा सकती है। दूध तथा घी शक्य हो तहां तक ज्यादा प्रमाण में देना आवश्यक है।

दर्दी को ३ या ४ मास तक औषधि सेवन कराने की आवश्यकता है।

बाई के पति के लिए षोडशोगुण गन्धक जारित सुवर्णघटित पूर्ण चन्द्रोदय अनुपान मिश्रित गोली अवश्य उपयोगी है। जिससे उनका कोई भी वीर्यदोष होगा तो नष्ट होकर धातुपुष्टि बनी रहेगी।

बालशोषहर वटी—

प्रवाल भस्म वराटिका भस्म
शुक्ति भस्म फिटकरी खील
सुहागा खील क्षुद्र शङ्ख भस्म
शुद्ध रसौत भुनी हुई हल्दी
कछुए की पीठ की भस्म गोदन्ती भस्म
असली केशर —प्रत्येक ६-६ माशे
तुलसी पत्र १० तोले
अपामार्ग के पत्ते १० तोले

—लेकर सबको एकत्र निम्बू के रस में ३ दिन खरल करके २-२ रत्ती की गोलियां बनावे।

मात्रा—१ से २ गोली दूध के साथ दिन में ३ बार पिलावे। माता को दुग्ध शोधन क्वाथ देवे।

उपयोग—बालकों का सूखा रोग, ज्वर, दूध डालना अनेक प्रकार के दस्तों का आना आदि सम्पूर्ण विकार २१ दिन में अवश्य नष्ट हो जाते हैं। यदि यह औषध ४० दिन सेवन करा दी जाय तो बालक पहिले से दूना मोटा ताजा होजाता है।

आमातिसारघ्नी वटी—

सौंठ शतपुष्पी (सौंफ) सफेदजीरा
जायफल आम की गुठली की मिंगी
घी में भुनी हुई हीरा हींग बेलगिरि
पोस्त संचल नमक —समभाग

—शेषांश पृष्ठ ८६२ पर।

---

*रसरत्नसमुच्चये।

परीक्षित प्रयोग

मूत्रावरोध पर उपयोगी—

६ माशा तुलसी के बीजोंको १ पाव पानी में मिलाकर काढ़ा बनालें, १ छटांक शेष रहने पर छानकर पी लें इससे रुका हुआ पेशाब अतिशीघ्र ही जायेगा।

नोट--यदि एक बार के पीने से पेशाब न हो तो दूसरी बार भी तीन घंटे बाद पिलादें।

कै-दस्त पर अनुभूत—

अरहर की ताजी या सूखी पत्तियों को आधी या १ छटांक पानी में २।। दाना काली मिरच के साथ पीस छान कर के दो तीन बार पिलादें। इससे कै-दस्त अविलम्ब रुक जाएगा। यह भी मैंने अर्क कपूर, अर्क पोदीना, एसेन्सियल आयल के फेल होजाने पर प्रयोग किया है और आशातीत फल प्राप्त हुआ है।

—श्री हरिराम मिश्र वैद्य आयुर्वेद विशा०
फुटुक पो० लोटन (बस्ती)

× × ×

मुंह रोग पर—

सफेद गेरू या चाक मिट्टी (खड़िया)	१० तो.
सोना गेरू फिटकरी कत्था	—तीनों २-२ तोला
कपूर	३ माशा

--सबको कपड़छन चूर्ण बना थोड़ा अमृतधारा डाल खरल में घोट कर शीशी में सुरक्षित रखलें।

प्रयोग--थोड़ा सा चूर्ण चुटकी में लेकर जीभ में मलें तथा मुंह नीचे लटका दें। एक दो दिन में ही लाभ होजाता है। दिन में ३-४ बार लगावें।

नोट--इस रोग में जीभ फट जाती है रंग लाल हो जाता है तथा सफेद दानेदार फुन्सियां जम जाती हैं। चरपरी व गर्म चीजें नहीं खाई जातीं। इससे बच्चों को बड़ी तकलीफ होती है। दूध भी पी नहीं सकते। उन बच्चों के लिए ग्लीसरीन में उपरोक्त चूर्ण डाल जीभ में दिन में तीन चार बार लगावें अवश्य लाभ होता है।

वात दर्द पर—

काले धतूरे की जड़ की छाल	१ तोला
आक की जड़ की छाल	१ तोला
कालीमिरच	५ तोला
प्याज कंद १ (लगभग ५ तोला का हो)	

--कूट पीस बेर के समान गोली बनालें।

प्रयोग--गर्म जल से १-१ गोली शाम सुबह सेवन करायें, मालिश के लिए धतूरे का बीज, करायर, मैथी, रास्ना, कनेरफल की गिरी सरसों, लहसुन, सरसों तेल में जलाकर दर्द के स्थान में मालिश करें। तथा आकपत्र तेल से चुपड़ गर्म कर बांध दें।

गुण--इसके सेवन से कमर दर्द, गठिया दर्द, हाथ पैरों का दर्द शीघ्र आराम होता है।

पथ्य--निर्गुण्डी पत्र के क्वाथ से ही स्नान पान तथा भोजन अत्यावश्यक है।

—डा० मदनसिंह शिक्षक वै० भू०
प्राधानाध्यापक भूलन पो. पामगढ़

पत्थर दिल —

शोधन—पत्थर दिल को आग में तपा तपाकर सात बार कुल्थी के क्वाथ में बुझाने पर शुद्ध हो जाता है।

भस्म विधि—शुद्ध कल्बुल हज्र को इमाम दस्ते में कूटकर कपड़छान चूर्ण कर पत्थर के खरल में ३ दिन तक मूली के स्वरस में मर्दन कर टिकिया बनाकर धूप में सुखा लें फिर इसे शराब सम्पुट में बन्दकर लघुपुट में फूंक दें, स्वांग शीतल होने पर पीसकर काम में लावें।
(सिद्ध योग संग्रह)

मात्रा तथा अनुपान—२ रत्ती से ४ रत्ती तक। नारियल जल या अश्मरी नाशक क्वाथ से दिन में दो बार।

गुण—यह पथरीनाशक तथा मूत्रल है किसी भी कारण से रुके हुए पेशाब को खोलने में यह उत्तम है। यदि पथरी बहुत बड़ी न हो तो कुछ दिन लगातार देने से ही बिना ओपरेशन के पेशाब के रास्ते पथरी को गलाकर निकाल देती है। सूत्रावरोध मूत्रकृच्छ्र और शर्करा आदि में पेशाब साफ आने के लिए इसका प्रयोग बहुत लाभदायक है। मेरा अपना ४ साल का अनुभव है।

—वैद्यराज कर्मचन्द गुप्ता
रुद्रपुर, नैनीताल।

× × ×

वायुशूल नाशक—

एलुवा सुरंजानमीठा मस्तगी
सोंठ पीपल बाबूना
अकरकरा —प्रत्येक ६-६ माशा
केशर उत्तम ३ माशा

—इन सबका वस्त्रपूत चूर्ण करके घीकुमार के स्वरस में घोट कर मटर प्रमाण गोलियां बनालें।

मात्रा—रात्रि में भोजन के बाद १ गोली गर्म जल से दें।

गुण—प्रातः टट्टी साफ होगी, वायु का दर्द नष्ट होगा भूख खुलकर लगेगी।

—इसका नाम कृष्णबटी है, यह योग पं. रामहेत वैद्य से प्राप्त हुआ है।

—श्री कृष्णकुमार स्वर्णकार
मु० पो० फरबरपुर (बहिराइच)

× × ×

अतिसार वटी—

सौंठ सेंधानमक सुहागा भुना
—तीनों आधा आधा तोला

—लेकर इनकी प्रथक प्रथक पिष्टी बनालें। फिर तीनों पिष्टी एक साथ मिलाकर दिन में तीन बार निगल लें। इसके प्रयोग से सब प्रकार के अतिसार में लाभ होता है।

डाढ़ दर्द योग —

—टिंचर जिंजिवेरिस याने अदरख और नमक इन दोनों बस्तुओं की टिकिया बनाकर जहां दांत में दर्द है उस स्थान पर रखना चाहिए। इसके प्रयोग से दन्त पूय, दांत दर्द, डाढ़ दर्द आदि में तुरन्त लाभ होता है।

—वैद्य बबन तुकाराम वैद्य विशारद
जाधव बरूलकर

:: पृष्ठ ८६० का शेषांश ::

—लेकर सबको महीन कपड़छन चूर्ण करे और निम्बू के रस में खरल करके चने के बराबर गोलियां बनाये। इसमें से पूरी उम्र के रोगियों को एक वटी और बच्चों को उनकी उम्र के अनुसार आधी, चौथाई या आठवां भाग सेवन कराने से ३ दिन में ही आमातिसार या कोई भी अतिसार नष्ट हो जाता है। सात दिन में पूर्ण लाभ होता है।

—श्री प्रमिलाबाई वैद्या, आयुर्वेद विशारदा
महिला धर्मार्थ चिकित्सालय
वरणगांव पूर्वखानदेश।

श्वास कास पर तीन प्रयोग—

(१) आक के पेड़ को ऊपर से काट कर जड़ में बरमी से सुराख करके उसमें सुहागा जितना आसके भरदें ऊपर से डाट लगा देवें। चारों तरफ से मिट्टी हटाकर २५-३० सेर जङ्गली कंडे जोड़ कर आग लगा देवें सवेरे ठण्डा होजाने पर सुहागा कुश्ता निकाल कर शीशी में रखलें। श्वास रोगी को प्रातः काल १ रत्ती की मात्रा, २ तोला मक्खन में रख कर खिलावें, इसके सेवन से कफ अत्यधिक निकलेगा। चिन्ता न करें, अगर रोगी निर्बल हो तो मात्रा कम की जा सकती है। या रोगी की कमर दवा दिया करें २१ दिन के सेवन से रोगी स्वस्थ हो जावेगा तथा शिर से कफ का गिरना बन्द हो जावेगा।

पथ्यापथ्य—दुग्ध, अचार, तेल की वस्तु कदापि न देवें। खुश्क रोटी तथा दाल साग में घी देवें।

(२)

सज्जी·लोटा खार	समलखारचिटा
नीलाथोथा	काही सुर्ख

—यह सब १-१ तोला

अजवायन	४ तोला
नमक चारों	४ तोला

—इन सब दवाओं को यवकुट करके एक नारियल के खोपा (गोला) में सुराख करके भर देवें तथा उसमें जितना आक का दूध आसके भर देवें, मुंह उर्द (माष) के आटे से बन्द करदें, बाद को एक मिट्टी की हांडी में डालकर कपड़ मिट्टी से सम्पुट करके सुखा लेवें। और १ मन कंडों में फूँक देवें, ठण्डा होने पर बारीक पीसकर शीशियों में रख लेवें। रोगी को विरेचन देकर औषधि प्रारम्भ कर देनी चाहिए।

मात्रा—१ रत्ती मलाई या दूध से देवें।

पथ्य—खुश्क रोटी मोठ की दाल।

अपथ्य—अचार तेल की वस्तुयें न देवें।

नोट—जो श्वास कास किसी दवा से न जाये वह इस औषधि से अवश्य ही चला जायगा।

(३) चने की दाल एक पाव लेकर सात दिन तक आक के दूध में तर करें फिर सुखाकर उसको पीस कर आटा बना ऽ॥ असली गौघृत में भून कर ऽ॥ सेर खांड की चाशनी में उस आटा का पाक बना अमरतवान में रखलें

मात्रा—आधा तोले से एक तोले तक खिलाकर ऊपर से थोड़ा गरम दूध पिलाया करें। इसके कुछ दिन नियमित सेवन से असाध्य श्वास भी चला जाता है।

श्री वै० पं. जगन्नाथ जी प्रभाकर।
प्रभाकर फार्मेसी खैरपुर शेखां
पो. शम्भू तह. राजपुरा (पटियाला)

× × ×

बिच्छू के काटने पर

(१) बिच्छू काटते ही नीबू का सत (Tarteric acid), पोटास परमेगनेट (कुएमें डालने की दवा) मिलाकर काटे हुए स्थान पर रखें तथा नीबू के रस या प्याज के रस की २-३ बूंदें उस पर छोड़ें, इससे तुरन्त विष उतर जाता है।

(२) काटे अंग के विपरीत अंग की आंख में खाने के नमक का घोल एक बूंद डाल दें (२% का घोल हो)

(३) अमलताश के बीज का चूर्ण या उसे चंदन जैसा घिस कर बिच्छू के काटे स्थान पर लेप करने से विष तुरन्त उतर जाता है।

शीत पित्त पर

(१) नेत्रों में कलमी शोरे का बारीक चूर्ण लगाने से ३ दिन में पूर्ण आराम होगा।

(२) हरीदाख व लोहभस्म ३ रत्ती की एक दो खुराक ३ बार चटावे व खदिरारिष्ट पिलावे।

(३) Avil की गोलियां या Antistin की गोली या इन्जक्शन भी लाभप्रद होते हैं।

—"आरोग्य विज्ञान" से

समाचार एवं सूचनाएँ

उत्तर प्रदेश इण्डियन मैडीसन बोर्ड की बैठक

लखनऊ—२६ जून-दिनाङ्क २२, २३, २४, २५ जून को उ० प्र० इंडियन मैडीसन बोर्ड की बैठक मोती महल लखनऊ में श्री वैद्य दरबारीलाल जी शर्मा की अध्यक्षता में हुई जिसमें पास हुए अनेक प्रस्तावों में से प्रमुख यह हैं।

उत्तर प्रदेश में स्वतन्त्र आयुर्वैदिक डायरेक्टर की शीघ्र ही नियुक्ति की जावे।

उच्चस्तरीय समिति के निर्णयानुसार आयुर्वेदज्ञों का सैमिनार शीघ्र बुलाये जाने के लिए शासन से अनुरोध किया जाय।

सेंट्रल मैजिक रैमडीज एक्ट तथा उत्तर प्रदेश में आपत्ति जनक विज्ञप्ति नियन्त्रण कानूनों से उत्पन्न कठिनाइयों पर विचार करने के लिये श्री वैद्य धर्मदत्त शर्मा श्री रामगोपाल शास्त्री तथा श्री अहमद उस्मानी की कमेटी बनाई गई जो कि इस पर विचार करेगी।

कन्या गुरुकुल कनखल (सहारनपुर) की कन्याओं के लिए "आयुर्वेद भास्कर" की परीक्षा का पाठ्यक्रम अपने यहां पढ़ाने की स्वीकृति दी गई।

शुद्ध आयुर्वेद तथा शुद्ध यूनानी परीक्षा का त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम, जिसके अनुसार आयुर्वेद के स्नातकों को "आयुर्वेद शास्त्री" की उपाधि दी जा सकेगी, स्वीकार किया गया और निर्णय हुआ कि इसे यथाशीघ्र चालू किया जाय।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के आयुर्वेदाचार्य स्नातक, जिन्होंने ६ मास में दीक्षा प्राप्त की है उन्हें A. M. B. S. के स्नातकों के समान माना जाय, इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया।

रिवीजन कमेटी की रिपोर्ट पढ़ी गई और स्वीकृत हुई, निश्चय हुआ कि रजिस्टर्ड वैद्य हकीमों की सूची के रिवीजन का कार्य तत्काल प्रारम्भ कर दिया जाय।

(क) इसके लिये १ फार्म बनाया गया जो कि छपाकर प्रत्येक रजिस्टर्ड वैद्य व हकीम को भेजा जावेगा, इसे भर कर तीन मास के अन्दर प्रत्येक वैद्य व हकीम को वापिस कर देना होगा, यदि किन्हीं कारणों से यह फार्म उक्त अवधि के अन्दर भर कर नहीं आवेगा तो बोर्ड एक रजिस्टर्ड पत्र भेजेगा जिसमें एक मास के अन्दर इस फार्म को भर कर भेजने की आज्ञा देगा, बोर्ड की यह सूचना अन्तिम होगी, यदि इस अवधि में भी कोई वैद्य या हकीम उत्तर न देगा तो उसकी सूची आवश्यक कार्यवाही के लिये रिवीजन कमेटी को सौंप दी जावेगी।

(ख) रिवीजन फीस २) होगी, जो कि प्रत्येक रजिस्टर्ड वैद्य व हकीम को अनिवार्य रूप से भेजनी होगी।

(ग) यह फीस केवल इस बार ही ली जावेगी, उसके बाद समय समय पर सूची संशोधन का कार्य रजिस्ट्रार महोदय स्वयं करते रहेंगे।

(घ) रिवीजन का कार्य कमिश्नरी के अनुसार प्रारम्भ होगा, सर्व प्रथम यह कार्य लखनऊ कमिश्नरी से प्रारम्भ किया जायेगा।

(ङ) बोर्ड ने सरकार से अनुरोध किया है कि ऐसे वैद्य या हकीम जो चिकित्सा कार्य नहीं करते हैं या रजिस्टर्ड होने के पश्चात ऐसे काम (पेशा) करते हैं जिससे आयुर्वेदज्ञों की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचता है, उनके रजिस्ट्रेशन काट देने की आज्ञा प्रदान की जावे और इस सम्बन्ध का नियम बनाकर कानून में जोड़ दिया जावे।

जिला वैद्य सभा आगरा द्वारा

रिट दायर करने की पूरी तैयारी

इसी मास में जिला वैद्य सभा की दो बार कार्यकारिणी की बैठक हुई, जिसमें निश्चय हुआ कि 'मेडिशिन टायलेट प्रपरेशन एक्ट' के विरुद्ध भारत सरकार तथा उ० प्र० सरकार पर इलाहाबाद हाईकोर्ट में तुरन्त रिट दायर की जाय। जिससे कि आयुर्वेदीय आसवारिष्टों पर लगाये गये प्रतिबन्धों से शीघ्र ही मुक्ति मिल सके।

इस हेतु एक 'न्यायिक उपसमिति' का गठन किया गया, जिसके सदस्य आचार्य अविनाशचन्द्र वंशल, वैद्य प्रयागदत्त शास्त्री, अम्बिका चरण दीक्षित, रघुवर दयाल उपाध्याय चुने गये, इसके संयोजक वैद्य सूर्यभान गुप्त होंगे।

इस कार्य में व्यय के लिए धन संग्रह के निमित्त एक "अर्थ संकलन समिति' बनाई गई, जिसके संयोजक जिला वैद्य सभा के प्रधान मंत्री जी होंगे।

इस कार्य के लिये अब तक निम्न महानुभावों ने आर्थिक सहायता प्रदान की है।

५१) वैद्य मनमोहन शास्त्री सभापति
५१) ,, रामधन जी आयुर्वेदाचार्य
५१) ,, अम्बिका चरण दीक्षित
५१) ,, रघुवर दयालु उपाधाय
५१) ,, लाला कन्हैयालाल
५१) ,, कविराज एस० एस० गौतम
५१) ,, आचार्य अविनाश चन्द्र वंशल
२५) ,, प्रयागदत्त शास्त्री
२५) ,, उग्रसेन जैन
११) ,, लक्ष्मीनारायण चौरासिया
११) ,, जगन्नाथ प्रसाद विद्याश्रमी
११) ,, शंकरलाल एदमतपुर
११) ,, सूर्यभानु गुप्ता
११) ,, रणवीरसिंह शास्त्री प्रधान मन्त्री
५) ,, हुकुम चन्द्र जैन
५) ,, निहाल सिंह जमुना व्रज

आगरे जिले के वैद्यों में काफी उत्साह है और वहां के वैद्य इस कार्य में पूर्ण सहयोग कर रहे हैं तथा सैकड़ों की संख्या में वैद्यों ने आर्थिक सहायता के वचन दिये हैं।

आशा की जाती है कि जौलाई मास में हाईकोर्ट खुलते ही यह रिट दायर हो जावेगी।

+ \+ \+

स्थान परिवर्तन—

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन का कार्यालय शिमला से माजरा, सिरमूर (नाहन) के लिए परिवर्तित हो गया है अतः समस्त पत्र व्यवहार बी. डी. शर्मा, मंत्री-हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन, माजरा, जिला सिरमूर (नाहन) के पते पर करना चाहिए।

× × ×

भूल सुधार

धन्वन्तरि गुप्तसिद्ध प्रयोगांक (चतुर्थ भाग) पृष्ठ ५१२ पर मेरे परीक्षित प्रयोग (लेख) के "प्रवाहिका नाशक वटी" के योग में भूल से सौंफ १ तो० और हरड़ बड़ी का बक्कल (छिलका) १ तोला रह गई हैं। इन्हें मिलाकर योग तैयार करें।

वैद्य गोवर्धन दास चागलानी
पटियाली दरवाजा, एटा

भूल सुधार

मई मास के धन्वन्तरि के पृष्ठ ७४७, कालम १ में परीक्षा सम्बन्धी जो सूचना छपी है वह निराधार है। वास्तव में गत वर्ष की सूचना गलती से अब पुनः छप गई है।

कालिज आगे को इस प्रकार की कोई प्राइवेट परीक्षा नहीं ले रहा है। इसमें नियमानुकूल पञ्चवर्षीय G. A. M. S. आयुर्वेदाचार्य, तथा उपवैद्य एकवर्षीय, पाठ्यक्रम की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ही परीक्षा में बैठने का अधिकार होता है।

उपयोगी नवीन पुस्तकें

औषध स्वावलम्बन	२)
आयुर्वेदिक पारिवारिक चिकित्सा	२॥)
ज्वर और फैंफड़ों के रोग	।॥)
पाचन संस्थान की व्याधियां	॥)
सचित्र लघु द्रव्य गुणादर्श	३॥)
जीवन पथ प्रदर्शक	१)
सन्तान निग्रह	१॥)
महिलाओं के गुप्त रोग	१॥)
कामकला पुरुषों के लिए	१॥)
शिशु चिकित्सा	३।॥)
खाद्य की नई विधि	३)
तत्काल फलप्रद प्रयोग प्रथम भाग	१॥)
तत्काल फलप्रद प्रयोग द्वि. भाग	१॥)
महिला रोग चिकित्सा प्रथम भाग	२)
महिला रोग चिकित्सा उत्तरार्द्ध	२)
स्वादिष्ट चिकित्सा	२)
पुरुष रोग चिकित्सा	२॥)
सौ रोगों का इलाज	२)
पथ्य प्रदर्शक	।)
उपदंश-सुजाक चिकित्सा	१)
धर्मार्थ औषधालय के चिकित्सानुभव	१॥)
तिलस्मी औषध भण्डार	१॥)
हल्दी के करिश्मे	।)
कुमारी विज्ञान	॥)
प्राकृतिक चिकित्सा	१)
सूखा रोग विज्ञान	२)
नवीन चिकित्सानुभव	१)
पेनेसिलीनीन व स्टेप्टो माइसिन व मूत्र परीक्षा	१।)
आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध विज्ञान	५)
भैषज्यसार संग्रह (सजिल्द)	१५)
चिकित्सा रत्न	५॥)
हम १०० वर्ष कैसे जीवें	२)
ब्रह्मचर्य ही जीवन है	१।॥)
स्वास्थ्य और व्यायाम	२)
उपवास	२)
आदर्श भोजन	१॥)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

वैद्यों के लिये

आवश्यक

●

वैद्यों के लिए निम्न कागजात रखने कानूनन और सुविधा की दृष्टि से अत्यन्तावश्यक है। उत्तम ग्लेज कागज पर सुन्दर छपे हुए है, शीघ्र मंगालें।

रोगी रजिस्टर—२०० पृष्ठ का १०×१५ साइज का सजिल्द रजिष्टर, सभी आवश्यक खाने बने हैं। मूल्य ३)

रोगी प्रमाणपत्र—अवकाश प्राप्त करने के लिये आवेदन पत्र के साथ देने के लिए मैडीकल सार्टीफिकेट, ५० प्रति (हिन्दी में) की कापी का मूल्य १); बड़े साइज में अंग्रेजी में छपे ४० प्रमाणपत्र की कापी का मूल्य १।)

स्वास्थ्य प्रमाणपत्र—अवकाश समाप्ति पर कार्य पर जाने से पूर्व अपने स्वस्थ होने का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है इसी प्रमाणपत्र की (हिन्दी में) ५० प्रति की पुस्तिका का मूल्य १) अंग्रेजी में ४० प्रति का मूल्य १।)।

रोगी व्यवस्थापत्र—रोगियों को दिए जाने वाले दैनिक पर्चे, ।=) प्रति सैकड़ा।

आघात प्रमाणपत्र—चोट लग जाने पर दिये जाने वाले फुलस्केप साइजमें छपे २५ प्रमाणपत्रों की पुस्तिका १)।

तापमान चार्ट—रोगी का तापमान प्रति दिन ४ समय का १२ दिन क इस फार्म पर अंकित किया जासकता है २५ फार्म का मूल्य १)।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

नाड़ी दर्शन (सचित्र)

श्री पं० ताराशङ्कर मिश्र द्वारा लिखित अपने विषय की सर्वोत्तम सचित्र पुस्तक। अनेक चित्रों द्वारा सरल भाषा में नाड़ी की चाल आदि के विषय में सुगतता से बोध कराने वाली उपयोगी पुस्तक है। पृष्ठ संख्या १७२ मूल्य २।।) मात्र।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

विविध उपकरण

वैद्यों के लिए उपयंगी एवं वैद्यों की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले अनेक उपकरण हमने विक्रियार्थ संग्रह किए हैं। इसका प्रथक् सूचीपत्र पत्र डालकर मंगाइये।

पता—धन्वन्तरि कार्दलय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

सर्पगंधा

अत्युत्तम एवं नव्न सर्पगंधा (धवल बरुआ) मूल। विदेशों में मांग बढ़ जाने से इसका भाव बहुत अधिक होगया। मूल्य १५) प्रति सेर।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

टिकिया नाने की मशीन

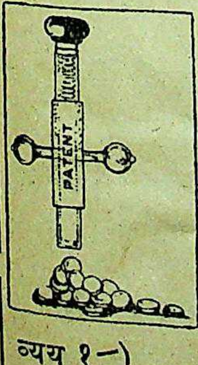

ीकिल पालिश की हुई टिकाऊ। त्न साइज की टिकिया ासानी से बनाई जा सकती । टिकिया को मोटी-पतली रके उसका बजन कम अधिक क्या जा सकता है। उपयोगी शीन है। मूल्य ११) पोस्ट-व्यय १—)

पता—धन्वन्तरि ार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

शिलाजीत नं० १

(सूर्यतापी)

स्वयं अपनी देखरेख में निकाला गया अत्युत्तम शिलाजीत नं० १ सूर्यतापी हमसे मंगाइयेगा। पूर्ण विश्वस्त तथा सर्वोत्तम होने की गारण्टी है। मूल्य १ सेर ५०) ५ तोला ३≡) १ तोला ॥≡)।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

शहद असली

अत्युत्तम बड़ी मोहार का शहद, औषधि निर्माण एवं अनुपान रूप में व्यवहार करने के लिए निम्न सुन्दर पैकिङ्ग में मंगावें।

१ पौंड का पैकिङ्ग	३।)
१० तोला पैकिंग	१)
५ तोला का पैकिंग	।।=)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

च्यवनप्राश अवलेह

सर्वोत्तम द्रव्यों, विशुद्ध घृत, असली अष्टवर्ग तथा उत्तम मिश्री से विधिवत् निर्मित सर्वोत्तम एवं पूर्ण प्रभावशाली च्यवनप्राश। एक बार परीक्षा अवश्य करें। इस समय नवीन आंवलों का बना है।

मूल्य—५ सेर डिब्बा में २०)
½ सेर शीशी में २।)
¼ ,, ,, में १=)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

असली केशर-कस्तूरी

ग्राहकों के आग्रह से उत्तम और असली कश्मीरी केशर एवं कस्तूरी संग्रह की है। आवश्यकतानुसार अवश्य मंगाइये।

कस्तूरी	१ तोला	६०)
केसर	१ तोला	१८)
केसर चूरा	१ तोला	८)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि का आगामी विशाल विशेषांक

नारीरोगांक

- ※ ७०० पृष्ठ तथा सैकड़ों चित्रों युक्त विशाल-काय विशेषांक होगा।
- ※ भारत के प्रतिष्ठित विद्वानों एवं अनुभवी चिकित्सकों के उपयोगी लेखों का अभूतपूर्व संग्रह होगा।
- ※ सम्पूर्ण स्त्री रोगों पर विवेचनात्मक वर्णन तथा अनुभवपूर्ण सफल चिकित्सा विधि दी जायगी।
- ※ स्त्रियों के विशेष रोग, गर्भावस्था के विशेष रोग प्रसूता स्त्री के विशेष रोग अर्थात् स्त्रियों से सम्बन्धित सभी रोगों का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जायगा।
- ※ यह विशेषांक चिकित्सकों तथा आयुर्वेद विद्यार्थियों के साथ-साथ सर्वसाधारण जनता के लिए भी समझने और लाभ उठाने योग्य उपयोगी साहित्य होगा।
- ※ इस विशेषांक की भाषा सरल एवं सुबोध रखने का प्रयत्न किया जायगा।

-आयुर्वेद-विद्वानों-

से सविनय निवेदन है कि वे इस विशेषांक व अपने विषय का सर्वांगपूर्ण साहित्य बनाने के लिए अपना सहयोग अवश्य दें। विद्वानों के सहयोग से ही हम धन्वन्तरि के इतने उत्तम विशाल विशेषांक प्रकाशित करने में समर्थ होते रहे हैं तथा आगे भी विद्वानों का पूर्ण सहयोग मिलेगा एसा विश्वास है। अपने लेख, लेख से सम्बन्धित चित्रादि शीघ्र ३१ अगस्त तक अवश्य भेजने की कृपा कीजियेगा। आपका लेख जितना शीघ्र मिलेगा हम उसे उतनी ही सुन्दरता से प्रकाशित कर सकेंगे।

कुमार कल्याण घुटी

जिन्होंने इस घुटी क प्रयोग अपने बालकों पर किया है या अन्य बालकों को कराया है उनसे हमको कुछ नहीं हना, वे तो इसके दिव्य गुणों को भली-भांति जानते ही हैं। जिन सज्जनों ने अभी तक हारी इस घुटी की परीक्षा नहीं की है उनसे आग्रहपूर्ण निवेदन है कि वह इस अवसर से लाभ उठावें और थोड़ी-बहुत परीक्षार्थ अवश्य मंगालें। इस घुटी को जिसने एक बार मंगाया वहसदैव के लिये इसका भक्त बन गया।

पंसारियों और अत्तारों से

निवेदन है कि वे इधर-उधर की बाजारू घुटी बेचकर केवल पैसा पैदा ही न करें, बल्कि हमारी इस अनमोल अत्युम घुटी को अपने यहां बिक्री कर पैसा पैदा करने के साथ-साथ देश के बच्चों को स्वस्थ और बलान बनाने में भी सहयोग दें। इस दिव्य घुटी का घर-घर में प्रचार हो इसी उद्देश्य से केवल १ ह के लिए २५ अगस्त से २५ सितम्बर तक रियायती मूल्य पर सप्लाई करने का निश्चय कया है। आशा है पंसारी, अत्तार, दवा बिक्रेता, एजेण्ट, वैद्य सभी इस अवसर से लाभ उठावे। रियायती मूल्य का विवरण निम्न प्रकार है—

तादाद	चालू मूल्य	रियायती मूल्य	तादाद	चालू मूल्य	रियायती मूल्य
१ शीशी	।–)	×	६ दर्जन	१६।।।=)	१६)
१२ शीशी	२।।।–)	२।।≡)	१ ग्रोस	३३।।।)	३१।)
३ दर्जन	८।≡)	८)	५ ग्रौस	१६८।।)	१४०)

४ औंस का कार्डबक्स कार्किंग १ शीशी २), १२ शीशी १८) १ माह के लिये रियायती मूल्य १७)

—नियम—

१—६ दजन से कम मंग पर सभी व्यय ग्राहक को देने होंगे।

२—६ दर्जन मंगाने पर हक को केवल रेल-भाड़ा या पोस्ट-व्यय देना पड़ेगा, पैकिंग बारदाना आदि कार्यालय देगा। ६ दर्जन या अधिक मंगाने वाले को टीन का तारीख बदलने वाला सुन्दर कलैंडर १ नग जा जायगा।

३—१ ग्रौस मंगाने पर ारी गाड़ी का आधा किराया ग्राहक को देना होगा, शेष सभी व्यय कार्यालय देगा। साथ एक तिरंगा चित्र भेजा जायगा।

४—५ ग्रौस मंगाने पर लगाड़ी से फ्री डिलीवरी दी जायगी। साथ में टीन का सुन्दर बोर्ड तथा अन्य विज्ञापन मग्री भी भेजी जायगी।

५—आर्डर रेल से भेजाय या पोस्ट से यह स्पष्ट लिखें।

६—हर आर्डर के साथ से कम ५) एडवांस अवश्य भेजें।

७—३ दर्जन से अधिक ाने वाले अपने पास का रेलवे स्टेशन अवश्य लिखें।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

मुद्रक—वैद्य देवीशरण धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़।
प्रकाशक—वैद्य देवीशरण

बालकों के सर्वरोग नाशक

एवं मोटा-ताजा-सुडौल

बनाने वाली

कुमार कल्याण घुटी

२५ अगस्त से २५ सितम्बर १९५९ तक

रियायती मूल्य में

नया पैकिङ्ग– घुटी शीशी से निकल जाने की शिकायत अधिक थी अतएव अब हमने नवीन पैकिङ्ग कर दिया। शीशियों में मजबूत कार्क लगाने के बाद बेकुलाइट कैप चूड़ीदार ऊपर लगा देते हैं अतएव अब वह शिकायत नहीं रही है।

(विवरण इसकी पुस्त पर देखे)

आयुर्वेद

सभी चिकित्सा पद्धतियों की जननी

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति विश्व की सभी पैथियों एवं चिकित्सा पद्धतियों की जननी है। यहां तक शल्य-शास्त्र का भी, जिसका डाक्टरी चिकित्सा पद्धति में विशेष स्थान है, आधार प्राचीन भारत की चरक सुश्रुत आदि पुस्तकें हैं। आयुर्वेद पद्धति साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ है।

आज विश्व स्वास्थ्य संघ भी, रोग-प्रतिबन्धक-प्राकृतिक नियमों की खोज में है। किन्तु हमारे यहां उन नियमों और सिद्धान्तों को इन्हें वैज्ञानिक असीम शक्ति से सम्पन्न होकर [illegible] चला है—हजारों वर्ष पूर्व जानकर जनहिताय प्रचारित किया गया था।

—माननीय श्री भीखा भाई

उप स्वास्थ्य मन्त्री राजस्थान सरकार।

दिसम्बर १९५९

धन्वन्तरि

आयुर्वेद का सर्वोत्तम सचित्र हिन्दी मासिक

R.P. Gupta

सम्पादक = वैद्योपाध्याय देवीशरण गर्ग, ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी.एस-सी.

सिद्ध मकरध्वज नं० १

तथा अन्य अनेक उत्तमोत्तम शक्तिप्रद औषधियों के योग से बनी अनुपम औषधि

मकरध्वजवटी

हजारों चिकित्सक अपने रोगियों को नित्य व्यवहार कराकर सफलता प्राप्त कर रहे हैं।

मूल्य–४१ गोलियों की एक शीशी का २॥=)
२१ गोलियों की एक शीशी का १।≡)

नोट—४१ गोलियों की १२ शीशी एक साथ मंगाने पर रियायती नेट मूल्य २१॥). कम मंगाने पर यह रियायती भाव हर्गिज नहीं लगाया जा सकेगा।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

नई शक्ति नवजीवन दाता
धन्वन्तरि निर्मित
मकरध्वज वटी
धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़

बच्चों को स्वस्थ-सुन्दर सुडौल व निरोग बनाने के लिए

कुमार कल्याण घुटी

का व्यवहार कराइये यह गत ५० वर्ष में बालकों के लिये सर्वोत्तम घुटी प्रमाणित हुई है। आप भी व्यवहार करावें।

मूल्य—१ शीशी ।-)
४ औंस की बड़ी शीशी २)
१२ शीशी का थोक भाव २॥-)
१ पौंड की बड़ी शीशी का ७)

२०वर्षों से परीक्षित एवं प्रशंसित घुटी
सभी उत्तम व विधिवत बनी हुई आयुर्वेदीय औषधियां मिलने का एक मात्र पता
कुमार कल्याण घुटी
बच्चों की हर एक बीमारी को दूर करती. कमजोर बच्चों को ताकतवर बनाती है।
मू० १शी० ।-). १दर्जन का ३।-). डाक व्यय पृथक.
नकली घुटियों से बचो!
धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़

निर्माता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग, धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़।
प्रकाशक-वैद्य देवीशरण गर्ग, धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़।

धन्वन्तरि के सभी ग्राहकों और पाठकों को

सूचना और प्रार्थना

इस अंक के साथ धन्वन्तरि का ३३ वां वर्ष पूरा हो रहा है। यह बारहवां अंक इस वर्ष का अन्तिम अंक है। आप लोगों ने इतने काल से धन्वन्तरि के साथ साथ अपना हार्दिक सम्पर्क सुदृढ़ रूप से सुरक्षित रखा इसके लिए सारा धन्वन्तरि परिवार आपका आभारी है।

१—इस अंक के साथ इस वर्ष का मूल्य समाप्त हो जाता है। इसके बाद चौंतीसवें वर्ष का प्रथम अंक "नारीरोगांक" विशेषांक होगा इसमें सम्पूर्ण स्त्री रोगों का अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित क्रमबद्ध वर्णन, अनुभूत चिकित्सा पद्धति तथा सफल परीक्षित प्रयोगों का संग्रह प्रकाशित होगा।

२—इसमें विषय को समझाने वाले सुन्दर चित्रों की संख्या पहिले सभी विशेषांकों से अधिक होगी। लगभग १५० चित्र तैयार हो गए हैं तथा और तैयार हो रहे हैं। ६०० पृष्ठों का चित्रों सहित यह विशेषांक अपने विषय का सर्वोपरि सारपूर्ण सरल साहित्य होगा।

३—इस विशेषांक की भाषा अति सरल रखी गई है। चिकित्सा समझाकर लिखी है, अनेक सफल प्रयोग दिए हैं अतएव यह विशेषांक पठित समाज के पढ़ने-समझने योग्य होगा।

४—इस विशेषांक के सभी दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के कारण ऐसी आशा की जाती है कि इसकी मांग बहुत अधिक रहेगी। अतएव ५॥) पांच रुपया पचास नए पैसा मनियार्डर द्वारा भेज कर जो स्थायी ग्राहक नहीं बन जायंगे उनको सम्भवतः अंक मिलने में कठिनाई हो सकती है अतएव नये-पुराने सभी ग्राहकों को तुरन्त मनियार्डर भेजना चाहिए। मनियार्डर फार्म इस अंक के साथ भेज रहे हैं। मनियार्डर कूपन में "ग्राहक संख्या" अवश्य लिख दें। नाम, पता, ग्राम, डाकघर आदि सभी स्पष्ट लिखें। नये ग्राहक बन रहे हों तो "नया ग्राहक" अवश्य लिखें।

५—'ग्राहक संख्या' न लिखने से आपका नाम नए ग्राहकों में लिख जाना सम्भव है। इससे विशेषांक नये नम्बरों से चला जायगा और पुराने नम्बरों से वी. पी. द्वारा विशेषांक दुबारा जायगा। ऐसी दशा में वी. पी. पहुँचने पर उसे वापिस न लौटा कर नया ग्राहक बनादें और उनका नाम पता साफ साफ लिख भेजें। ऐसा करके आप अपने 'धन्वन्तरि' को व्यर्थ की हानि से बचावेंगे।

६—सभी ग्राहकों-पाठकों से प्रार्थना है कि वे प्रयत्न करके धन्वन्तरि के २-२ नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनियार्डर से शीघ्र भिजवाने की कृपा करें। इससे उनके प्रिय "धन्वन्तरि" के प्रचार में बड़ी सहायता मिलेगी तथा आयुर्वेद का प्रचार होगा।

७—जिन पुराने ग्राहकों को किसी कारण ग्राहक न रहना हो वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें। सूचना न देने पर आप ग्राहक बना रहना चाहते हैं इसके लिए आपकी स्वीकृति समझते हुए वी. पी. भेजेंगे। वी. पी. पहुंचने पर लौटाना आपकी प्रतिष्ठा के विपरीत है तथा धन्वन्तरि को व्यर्थ हानि पहुंचाने वाला है। ऐसा अनैतिक कार्य आशा है कि आप नहीं करेंगे।

८—इस वर्ष विशेषांक का राजसंस्करण नहीं छापा जायगा।

सि. मकरध्वज नं० १

संस्कारित पारद द्वारा निर्मित, स्वर्ण-घटित, षट्गुण गंधक जारित अन्तर्धूम विपाचित सर्वोत्तम मकरध्वज

मकरध्वज आयुर्वेदीय चिकित्सा की मुख्य औषधि है। इसका अनुपान भेद से प्रायः समस्त रोगों में व्यवहार होता है। मकरध्वज में पारद जितना उत्तम डाला जायगा मकरध्वज उतना ही अधिक प्रभावशाली बनेगा। संस्कारित पारद से तैयार किये मकरध्वज की अपेक्षा हिंगुलोत्थ पारद से तैयार किया मकरध्वज न्यून गुण वाला होता है। इसी प्रकार मकरध्वज बनाते समय जितनी अधिक गन्धक जारण की जायगी। मकरध्वज के गुणों में उतनी ही वृद्धि होती जायगी। समान गन्धक जारण करके तैयार किये मकरध्वज की अपेक्षा छः गुनी गन्धक जारण करके तैयार किये मकरध्वज के गुणों में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार यदि मकरध्वज अन्तर्धूम विधि से तैयार किया जायगा तो वह वहिर्गुण विधि से तैयार किये हुए मकरध्वज की अपेक्षा अधिक गुणशाली होगा। वह मकरध्वज जो संस्कारित पारद से तैयार किया जाय और छः गुनी गन्धक जारण करके अन्तर्धूम विधि से तैयार किया जाय सर्वोत्तम होता है। यह नम्बर एक का मकरध्वज इसी प्रकार तैयार किया जाता है।

पारद जितने अधिक समय अग्नि पर रहेगा वह उतना ही अधिक प्रभावशाली बनेगा। लकड़ी की मन्द अग्नि से तैयार किया हुआ मकरध्वज ही अधिक गुण करता है। बिजली या कोयले की अग्नि से शीघ्र गन्धक जारण हो जाने के कारण मकरध्वज उतना अधिक प्रभावशाली नहीं बनता। हम मकरध्वज के निर्माण में लकड़ी की अग्नि का ही प्रयोग करते हैं और इसलिए वह अधिक गुणकारी होता है

मकरध्वज का अनुपान भेद से प्रायः सभी रोगों में प्रयोग होता है, किन्तु मुख्यतः यह कामोत्तेजक, हृदय को बल देने वाला, मानसिक निर्बलता, स्नायु दौर्बल्य, कफ एवं वायु के विकारों को नष्ट करने वाला होता है। सन्निपात की उस अवस्था में जब कि कफ का प्रबल वेग होता है, नाड़ी मन्द हो जाती है और संज्ञा नष्ट हो जाती है, मकरध्वज का सफल उपयोग होता है। आसन्न मृत्यु रोगी को वैद्य इसका ही सेवन करा कर चमत्कार दिखाते हैं। इसी मकरध्वज को 'पूर्ण चन्द्रोदय' भी कहते हैं।

मात्रा--इसकी साधारण मात्रा १ रत्ती की है, किंतु आयु और रोग की न्यूनाधिकता के अनुसार मात्रा न्यूनाधिक की जा सकती है, साधारणतः प्रातः एवं रात्रि को सोते समय मकरध्वज का व्यवहार करना चाहिए। सन्निपात आदि की अवस्था में, जिस समय आवश्यकता हो व्यवहार करना चाहिए।

अनुपान एवं व्यवहार विधि--कामोत्तेजना एवं बल वृद्धि के लिए मकरध्वज का विशेष प्रयोग होता है। इसके व्यवहार से वीर्य में उत्पन्न वायु शांत होती है, वीर्य पुष्ट होता है और स्तम्भन शक्ति की वृद्धि होती है। इसके लिये निम्न अनुपान अधिक उत्तम होता है—

लौंग, कालीमिर्च, जायफल–प्रत्येक १-१ तोला, भीमसैनी कपूर ६ माशे, कस्तूरी १½ माशे–इन सब वस्तुओं को मिलाकर दो दिन मर्दन करके अनु-

पान तैयार करना चाहिए।

व्यवहार--मकरध्वज १ रत्ती और अनुपान की औषधि १ माशे लेकर उत्तम प्रकार मर्दन करलें और पान में रखकर व्यवहार करें और इसके १ घण्टे पश्चात् दूध पीलें।

सन्निपात में—सन्निपात की उस अवस्था में जब कफ की वृद्धि हो, वायु का भी विकार बढ़ रहा हो, नाड़ी में शिथिलता हो, १ रत्ती मकरध्वज और १ रत्ती अभ्रक भस्म सहस्र पुटी मिलाकर, यदि नाड़ी अधिक शिथिल हो तो पान के स्वरस में और यदि कफ का अधिक विकार हो तो अद्रक के स्वरस में या दोनों वस्तुओं के स्वरस में व्यवहार करना चाहिए।

हृदौर्बल्य में—हृदय को बल देने में मकरध्वज का बड़ा उत्तम उपयोग होता है। १ रत्ती मकरध्वज १ रत्ती मुक्तापिष्टी और ४ रत्ती अर्जुन की छाल का चूर्ण मिलाकर प्रातः सायं शहद में व्यवहार करना चाहिए। इससे हृदय-विकार नष्ट होते हैं और बल की वृद्धि होती है।

पुरानी खांसी में—बहुत से व्यक्तियों को बहुत समय की खांसी हो जाती है और जाड़ों में विशेष कष्ट देती है। उन्हें मकरध्वज और अभ्रक भस्म मिला कर व्यवहार करना चाहिए। मकरध्वज नं० १ और अभ्रकभस्म नं० १ को समान मात्रा में पान का स्वरस डालकर कम से कम १२ घंटे मर्दन करना चाहिए। इसमें से१-१ रत्ती औषधि प्रातः सायं शहद के साथ व्यवहार करनी चाहिए। इस प्रकार व्यवहार करने से कई कई वर्ष पुरानी खांसी को नष्ट होते हुए देखा गया है।

शरीर के दर्द में—बहुत से व्यक्तियों के शरीर में जाड़ों में वायु की वृद्धि के कारण दर्द होता रहता है, उन्हें शुद्ध कुचला का कपड़छन चूर्ण १ तोला और मकरध्वज नं. १ ६ माशा को खूब अच्छी प्रकार मर्दन कर २-२ रत्ती की पुड़ियां बना लेनी चाहिए और १-१ पुड़िया दोनों समय शहद में व्यवहार करना चाहिए।

प्रसूति ज्वर में--प्रसूति ज्वर में भी मकरध्वज बहुत अधिक लाभ करता है। प्रसव के पश्चात् स्त्रियों के शरीर में हड़कल रहती है, सिर और पैरों में बहुत अधिक दर्द होता है, ज्वर की साधारण ऊष्मा रहती है। इस अवस्था में यदि मकरध्वज आधी रत्ती और प्रतापलंकेश्वर १ रत्ती को मिला कर प्रातः सायं शहद के साथ दिया जाय और ऊपर से दशमूल क्वाथ पिलाया जाय तो बहुत शीघ्र लाभ होता है। यदि उक्त विकारों के साथ खांसी भी हो तो आधी रत्ती अभ्रकभस्म का भी मिश्रण करलें।

इसी प्रकार यह अनुपम रसायन अन्य अनेक रोगों में रोगानुसार अनुपान एवं अन्य औषधियों के साथ मिश्रित करके सफलतापूर्वक व्यवहार की जाती है।

आयुर्वेद की इस महौषधि को

विश्वस्त स्थान से खरीदकर व्यवहार करें तभी इसके उपयोगी गुणों से आप लाभ उठा सकेंगे। हम गत ६० वर्षों से इसे निर्माण कर रहे हैं तथा सर्वोत्तम मकरध्वज निर्माण करते हैं यह हम पूर्ण गारण्टी से कह सकते हैं। एक बार हमारे मकरध्वज की परीक्षा अवश्य करें। मू० १ तोला ४८)

नोट-वैद्यों तथा थोक खरीदारों को उक्त भाव पर २५% कमीशन दिया जायगा।

पता-धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

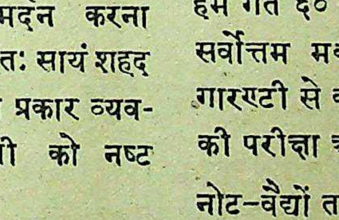

नारी-रोगाङ्क

१—यह विशेषांक लगभग ६०० पृष्ठों का ठोस साहित्य होगा।

२—इसमें विषय को सुगमता से समझने के लिए २०० उपयोगी सुन्दर चित्र प्रकाशित किये जायंगे।

३—सम्पूर्ण नारी-रोगों पर अधिकारी लेखक एवं अनुभवी चिकित्सकों के उपयोगी लेखों का क्रमबद्ध प्रकाशन होगा।

४—सभी स्त्री-रोगों की सफल चिकित्सा पद्धति एवं उपयोगी सफल प्रमाणित प्रयोगों का अभूतपूर्व संकलन इसमें प्रकाशित होगा।

५—इस विशेषांक की भाषा अति सरल एवं सभी के समझने योग्य होगी जिससे कि वैद्यों के अतिरिक्त अन्य पठित समाज भी इससे लाभ उठा सके।

६—इस विशेषांक के लिए लेख चित्र आदि भेजकर भारत के प्रतिष्ठित एवं अनुभवी चिकित्सकों ने खूब सहयोग दिया है और इसलिए विशेषांक हर दृष्टि से अभूतपूर्व प्रकाशित होगा।

७—यह विशेषांक हर दृष्टि से पूर्व प्रकाशित विशेषांकों से अधिक उपयोगी एवं सर्वाङ्गपूर्ण होगा जिसे आप अवश्य पसन्द करेंगे।

राजसंस्करण नहीं

ग्लेज कागज की मंहगी के कारण इस वर्ष के विशेषांक का राजसंस्करण प्रकाशित नहीं कर सकेंगे, अतएव सभी ग्राहकों से निवेदन है कि मनियार्डर से ५॥) ही भेजें। मनियार्डर फार्म साथ भेज रहे हैं। जो सज्जन किसी कारण ग्राहक न रहना चाहें तो पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। वी० पी० पहुँचने पर वापस करना अति अन्यायपूर्ण एवं अनैतिक कार्य है।

—नवीन ग्राहक बनावें—

हम अपने सभी ग्राहकों से नम्र निवेदन करते हैं कि वे धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाकर धन्वन्तरि के प्रचार में तथा आयुर्वेद के प्रसार में हमारी अवश्य सहायता करें। इसके लिये हम उनके हृदय से आभारी रहेंगे।

धन्वन्तरि

आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र जामनगर
कायचिकित्सा विभाग में
श्री डा. सी. द्वारकानाथ कायचिकित्सा विभागाध्यक्ष
(वर्तमान-आयुर्वेद-सलाहकार केन्द्रिय स्वास्थ्य विभाग)
के निर्देशन में
श्री पं० शिवकुमार मिश्र
द्वारा प्रस्तुत

श्वास रोग

पर
स्नातकोत्तर निबन्ध
(थीसिस)

भाग ३३
अङ्क १२
दिसम्बर
१९५९
वार्षिक मूल्य ५॥)
इस अङ्क का मूल्य १॥)

① This thesis was written by Shri Shiva Kumar Mishra under my guidance & direction and represents the outcome of his special study

② I recommend that the thesis may be approved.

Kayachikitsadhyapak

P.G.T. Centre

Jamnagar

30 3.58.

श्वास रोग पर स्नातकोत्तर निबंध की—

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

(१) प्राक्कथन ११२१
(२) विषय प्रवेश ११२२
(३) प्रश्वासोच्छ्वास ११२२
(४) प्राण तथा उदान आदि का श्वसन क्रिया से सम्बन्ध ११२३
(५) फुफ्फुस ११२८
(६) फुफ्फुस के कार्य ११२८
(७) प्राकृत रूप में श्वसन क्रिया ११३०
(८) आधुनिक वर्णन ११३३

द्वितीय खण्ड

(९) श्वास किसे कहते हैं ? ११३६
(१०) श्वास कष्ट के कारण ११३६
(११) श्वास-अनेक रोगों में लक्षण ११३९
(१२) श्वास-अनेक रोगों में उपद्रव ११४०
(१३) अरिष्ट लक्षण के रूप में श्वास ११४०
(१४) श्वास रोग में दोष, दूष्य तथा अधिष्ठान ११४२
(१५) आमाशय समुद्भवम् ११४३
(१६) श्वास रोग का वर्गीकरण ११४६

तृतीय खण्ड

(१७) श्वास रोग के सामान्य निदान ११४९
(१८) अनूर्जता ११५०
(१९) अनूर्जता तथा दूषीविष ११५२
(२०) सामान्य सम्प्राप्ति ११५५
(२१) पूर्वरूप ११५५
(२२) महाश्वास ११५५
(२३) उर्ध्वश्वास ११५५
(२४) छिन्नश्वास ११५६
(२५) तमक श्वास की सम्प्राप्ति ११५६
(२६) तमक श्वास के लक्षण ११५८
(२७) लक्षणों का विकृति विज्ञान ११५९
(२८) प्रतमक एवं सन्तमक ११५९
(२९) क्षुद्र श्वास ११६०

चतुर्थ खण्ड

(३०) श्वास रोग की चिकित्सा ११६०
(३१) चिकित्साक्रम ११६०
(३२) स्नेहन ११६२
(३३) स्वेदन ११६२
(३४) वमन ११६३
(३५) विरेचन ११६५
(३६) धूम्रपान ११६५
(३७) संशमन-चिकित्सा ११६६
(३८) सामान्य संशमन ११६७
(३९) वेगकाल में औषधि योग ११६७
(४०) संशमन औषधियां ११६८
(४१) रोगीवृत्तम् ११६९
(४२) संक्षिप्त सारांश तथा उपसंहार ११७५

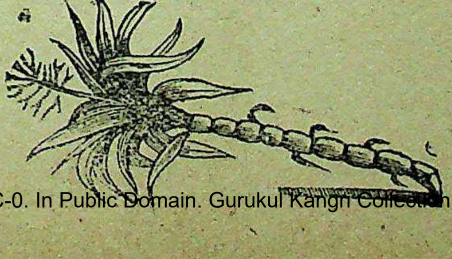

शुभ संदेश

आयुर्वेद संसार के लिए यह एक अतीव हर्षदायक समाचार है कि जामनगरस्थ आयुर्वेद शास्त्र के एकमात्र पोष्टग्रेजुएट प्रतिष्ठान ने अपने छात्रों द्वारा लिखे और वहां के आचार्यों द्वारा संशोधित निबन्धों को प्रकाशित करने का निश्चय किया है। यह और भी प्रसन्नता की बात है कि ये निबन्ध केन्द्रिय सरकार ने आयुर्वेदीय पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया है एवं यह हमारे लिए परम सन्तोषजनक है कि इस निबन्ध शृङ्खला की हिन्दी थीसिसें धन्वन्तरि के लिए सुलभ हो सकेंगी। इसमें पहला निबन्ध या थीसिस श्वास रोग पर श्री पं० शिवकुमार मिश्र द्वारा लिखित है, इसे स्वनामधन्य प्रोफ़ेसर, माने हुए विद्वान, डाक्टर सी. द्वारकानाथ ने अपने पथ-प्रदर्शन में तैयार कराया है।

कहना नहीं होगा कि यह निबन्ध श्वास रोग पर प्रामाणिक प्रकाश डालता है। इसमें इस विषय के सब आवश्यक भावों का समावेश किया गया है। हमें विश्वास है कि वैद्यगण एवं धन्वन्तरि के पाठक गण सब काम छोड़कर इसे पढ़ेंगे, लाभ उठावेंगे और यदि आवश्यक होगा तो अपने लेखों में इसके विशिष्ट अंशों के सम्बन्ध में चर्चा भी करेंगे। यह लेख पी. जी. टी. का कापीराइट है और बिना उसकी आज्ञा प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

हम केन्द्रिय सरकार को, पी. जी. टी. के अधिकारियों एवं प्रोफेसर सी. द्वारकानाथ के आभारी हैं कि उन्होंने हमें इसे प्रकाशित करने की आज्ञा दी है एवं आशा है कि भविष्य में भी हमें पूरा अवसर प्रदान करते रहेंगे।

—सम्पादक।

क्कथन

प्रस्तुत निबन्ध का विषय श्वास रोग है। अतिप्राचीन काल से यह रोग समाज के सम्मुख गम्भीरतम तथा कष्ट दायक समस्या के रूप में उपस्थित है। सुश्रुत ने श्वासरोग की तुलना इन्द्र के वज्र तथा पवन सहित दीप्तअग्नि के साथ करके इसके दुर्निवारत्व का दिग्दर्शन कराया है और "श्वास सांस के साथ जाता है" यह लौकिक उक्ति भी उपरोक्त मत का ही समर्थन करती है। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री एवं पुरुष सबों में यह रोग पाया जाता है और श्वासरोगियों की संख्या इतनी विशाल है कि केवल इनसे कई अन्तरंग चिकित्सालयों को भरा जा सकता है अतएव इस रोग के सम्बन्ध में विशेष जिज्ञासा स्वाभाविक है। इस विषय का महत्व दो दृष्टिकोणों से है।

१— विकृतिज्ञान के लिये प्रकृति के ज्ञान का होना परमावश्यक है और इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य चरक ने ग्रहणी चिकित्सा में रोग वर्णन से पूर्व ग्रहणी के कार्यों का उल्लेख किया है एवं इसी स्थल पर आचार्य चक्रपाणि ने—"अग्निदोषे वक्तव्ये प्रकृतिज्ञानानन्तरत्वाद्विकृतिज्ञानस्य प्रथमंतावदविकृतस्याग्ने रूपमाह"—लिख कर पूर्व में प्रकृति अर्थात् क्रिया-शारीरात्मक ज्ञान की आवश्यकता प्रतिपादित की है और यह केवल अग्नि के लिए ही नहीं, श्वास आदि अन्य रोगों के लिये भी समान रूप से उपयोगी है। अतः श्वासरोग के अध्ययन से पूर्व श्वास के रूप में होने वाले प्राकृत श्वसन व्यापार का अध्ययन भी आवश्यक है। इस निबन्ध में उपलब्ध संहिता ग्रन्थों तथा अथर्ववेद, छान्दोग्योपनिषत्, ब्रह्मविज्ञान" आदि में वर्णित श्वसन व्यापार का आधुनिक शरीर-क्रिया-विज्ञान के साथ तुलनात्मक तथा समन्वयात्मक विचार करने का प्रयत्न किया गया है।

२— श्वासरोग का निदान, सम्प्राप्ति तथा चिकित्सा आदि का सम्यक् ज्ञान उपस्थित कर उसके मूल सिद्धान्तों का विवेचन करना आवश्यक है। आमाशय या पित्त स्थान श्वासरोग की समुत्पत्ति का स्थान बताया गया है परन्तु इसमें प्राणवह स्रोतों की दुष्टि के लक्षण प्रधानरूप से वर्णित हैं। अतः इस पर गम्भीर विवेचन तथा अध्ययन की आवश्यकता थी और लेखक ने इस दिशा में यथासाध्य प्रयत्न किया है।

विकार के रूप में होने वाले आवेगात्मक श्वास के कारणों में आधुनिक दृष्टिकोण से अनूर्जता (Allergy) महत्वपूर्ण माना गया है। आयुर्वेद में वर्णित दूषीविष का विवरण अनूर्जता से बहुत अंशों में सामञ्जस्य रखता है। अतः इस सम्बन्ध में भी विचार उपस्थित किये गये हैं।

आचार्य दृढबल के इस आदेश का कि—"प्रतिसंस्कर्ता को लेशोक्त का विस्तार, अति विस्तृत का संक्षेप तथा पुराने को नव-निर्माण करने का अधिकार है" प्रभाव लेखक पर इस निबन्ध को लिखने में पर्याप्तरूप से पड़ा है तथा यह आश्वासन का स्रोत भी बना है।

प्रारम्भिक अध्ययन (क्रिया-शारीरात्मक)——

“श्वस-प्राणने” धातु से श्वास शब्द बनता है। श्वसनं-श्वासः, श्वस धातु है भाव में घ प्रत्यय लगाने से श्वास शब्द की रूपसिद्धि होती है। इस प्रकार श्वास शब्द प्राण का पर्याय वाचक हो जाता है। श्वास-क्रिया जीवन का प्रधान लक्षण है। इस क्रिया के बिना सामान्य मनुष्य का पांच मिनट भी जीवित रहना असम्भव[1] है। मनुष्य के जीवन के लिए वायु का सर्वाधिक महत्व है। वस्तुतः वायु के आहरण और निर्हरण का ही नाम श्वास या श्वसन-क्रिया है। इस क्रिया में प्रधान रूप से नासिका. गल, कण्ठ, श्वासनली एवं फुफ्फुस भाग लेते हैं और इन सभी अंगों को मिलाकर श्वास संस्थान का निर्माण होता है। श्वास संस्थान का कार्य प्रश्वास[2] (वायु का अन्तः प्रवेश) तथा उच्छ्वास (वायु का बहिर्गमन) द्वारा रक्त में शुद्ध वायु या विष्णुपदामृत पहुँचाना और मलरूप वायु को निकालना है। इस क्रिया से कुछ अंशों में शरीर के तापक्रम का नियमन तथा जल वाष्प निर्हरण भी होता है। इस क्रिया का ज्ञान तो अत्यन्त प्राचीनकाल से है। चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट इन तीनों संहिताकारों[3] ने प्राणवायु का कार्य, श्वास, प्राणावलम्बन तथा निश्वास बताया है परन्तु श्वसन-क्रिया में वायुवीय विनिमय किस प्रकार होता है, इसका वर्णन विस्तारपूर्वक नहीं मिलता। वायवीय विनिमय की क्रिया का स्पष्ट वर्णन शार्ङ्गधर[4] ने किया है। उन्होंने लिखा है कि नाभिस्थित प्राणवायु हृत्कमल का स्पर्शकर विष्णुपदामृत पानार्थ कण्ठ से बाहर निकलता है और आकाशस्थित अमृत का पान करके वेग पूर्वक पुनः अन्दर प्रविष्ट हो जाता है तथा सम्पूर्ण शरीर जीव एवं जठरानल का प्रीणन करता है।

शार्ङ्गधर का यह वर्णन पूर्णतया प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित है और आधुनिक वैज्ञानिकों के वर्णन से शत-प्रतिशत मिलता है। सम्भवतः शार्ङ्गधर ने अपने समय के प्राप्त किसी संहिता के वर्णन के आधार पर ही उपर्युक्त वर्णन किया होगा जो वर्तमान समय में हम लोगों के दृष्टिपथ से ओझल हो गया है।

प्रश्वासोच्छ्वास—

श्वसन क्रिया के द्वारा वायु के अन्तःप्रवेश तथा बहिर्गमन के लिए प्रश्वास, निश्वास तथा उच्छ्वास तीन शब्दों का प्रयोग आयुर्वेदीय संहिताओं में प्रचुरता से किया गया है। प्रश्वास शब्द से सर्वत्र ही अन्तःप्रविष्ट होने वाली वायु का ग्रहण किया जाता है परन्तु निश्वास तथा उच्छ्वास का अर्थ विवादास्पद है। साधारणतया लोग निश्वास तथा उच्छ्वास इन दोनों शब्दों से बहिर्गमन होने वाली वायु का ग्रहण करते हैं परन्तु चरक ने वायु के कर्मों के वर्णन क्रम में उच्छ्वास तथा निश्वास ये दोनों ही कार्य बताये हैं अतएव चरकमतानुसार दोनों विभिन्न अर्थ रखते हैं[5]। इसी स्थल पर कविराज

---

[1] योगीजनों के लिए अपवाद है।

[2] प्रश्वासोऽन्तः प्रविशद्वायुः उच्छ्वास ऊर्ध्वमुत्तिष्ठद् वायुः। (सु. शा. अ. ६-५ पर डल्हण)

[3] (क) ष्ठीवनक्षवथूद्गार श्वासाहारादिकर्म च। (च. चि. २८)

(ख) सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते। (सु. नि. १)

(ग) ष्ठीवनक्षवथूद्गारनिश्वासान्नप्रवेशकृत। (अ. हृ.सू. १२)

[4] नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वाहृत्कमलान्तरम्।
कण्ठाद्वहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम्॥
पीत्वाचाम्बर पीयूषं पुनरायाति वेगतः।
प्रीणयन्देहमखिलं जीवञ्च जठरानलम्॥
(शा. पू. स. अ. ५)

[5] उत्साहोच्छ्वासनिश्वासचेष्टाधातुगतिः समा। (च. सू. १८

योगेन्द्रनाथ सेन जी ने उच्छ्वास का अर्थ वायु का बहिर्गमन तथा निश्वास का अर्थ अन्तःप्रवेश किया है[१]। कविराज गणनाथ सेन जी ने अपने सिद्धांत निदान में उच्छ्वास शब्द का अर्थ वायु का अन्तःप्रवेश तथा निश्वास का अर्थ बहिर्गमन किया है[२] और आचार्य यादव जी ने व्याधि विज्ञान में परवर्ती मत की ही पुष्टि की है।

उच्छ्वास का अर्थ डल्हण एवं योगेन्द्रनाथ सेन दोनों ने ही वायु का बहिर्गमन किया है और यही अर्थ सरल भी प्रतीत होता है अतएव इस निबन्ध में उच्छ्वास शब्द का प्रयोग वायु बहिर्गमन अर्थ में तथा प्रश्वास शब्द का प्रयोग अन्तःप्रवेश के अर्थ में किया गया है[३]।

प्राण तथा उदान आदि का श्वसन क्रिया से सम्बन्ध

वायु के जो पंचविध प्रकार बताये गये हैं उसमें प्राणवायु के कार्यों में सर्वत्र ही श्वसन क्रिया का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उदानवायु श्वसनक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान देता है। क्योंकि शार्ङ्गधर ने फुफ्फुस[४] को उदानवायु का आधार माना है। इसके अतिरिक्त उदानवायु के कार्यों का उल्लेख करते हुए सुश्रुत ने भाषण एवं गीत आदि बताया है और इस आदि शब्द की टीका करते हुए डल्हण[५] ने आदि शब्द से उच्छ्वास आदि का ग्रहण करना चाहिये, ऐसा निर्देश किया है। उदानवायु की विकृति से होने वाले रोगों में श्वास का स्पष्ट उल्लेख हारीत[१] ने किया है। कास की सम्प्राप्ति में भी प्राणवायु दुष्ट होकर उदानानुगत हो जाती है, ऐसा बताया गया है और कास से आगे चलकर श्वास-रोग हो जाता है यह आप्तोपदेश और प्रत्यक्ष दोनों प्रमाणों से सिद्ध होता है। अतएव प्राणवायु एवं उदानवायु श्वसन कर्म कराते हैं, ऐसा स्पष्ट है। (प्राणवायु का कार्य प्रश्वास एवं उच्छ्वास दोनों ही हैं परन्तु उदानवायु प्रधान रूप से उच्छ्वास के लिये उत्तरदायी है)

प्राण एवं अपान इन दो शब्दों का प्रयोग उच्छ्वास तथा प्रश्वास के लिए भी किया गया है। परमात्मा के लक्षणों का वर्णन करते हुए चरक[२] ने प्राण एवं अपान इन दो जीवन व्यापारों का उल्लेख किया है और इसकी टीका में चक्रपाणि[३] ने प्राण का अर्थ उच्छ्वास तथा अपान का अर्थ निश्वास किया है।

श्रीमद्भगवद्गीता[४] में प्राण एवं अपान को नासाभ्यन्तरसंचारी वायु माना है और इन दोनों की गति को प्राणायाम परायणों के लिए रोकने का निर्देश है।

उच्छ्वास उर्ध्वश्वसनं श्वासमुक्तिः, निश्वासः श्वास्यान्तः प्रवेशनम्। (योगीन्द्रनाथसेन)

उच्छ्वासः श्वासमार्गेणवाह्यवायोराकर्षणम्, निश्वासः आकृष्ट वायोर्निरसनम्। सि. नि. प्र. ख. पृ. ६

प्रश्वासः Inspiration उच्छ्वास Expiration

—उदानवायोराधारः फुफ्फुसः प्रोच्यते बुधैः।

—भाषितगीतादिरित, आदिशब्दादुच्छ्वासादिविशेषः।
[सु. नि. अ. १-१५ पर डल्हण]

१—हिक्का श्वासः परिश्वासः कासः शोषार्तिघण्टिका।
... ... एते प्रोक्ता उदानतः॥
(शब्द कल्पद्रुम हारित)

२—प्राणापानौ निमेषाद्या ... ...
... ... लिङ्गानिपरमात्मनः॥
[च. शा. १]

३—प्राणापानादुच्छ्वासनिश्वासौ। चक्रपाणि

४—प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।
गीता अ. ५-२७

अपानेजुह्वति प्राणं प्राणे पानं तथा परे।
प्राणापानगतीरुद्ध्वाप्राणायामपरायणाः॥
गीता अ. ४-२६

इसकी टीका करते हुए श्रीधराचार्य जी[1] ने लिखा है कि उच्छ्वास तथा निश्वास रूप में नासिका के अन्तः भाग में संचार करने वाले प्राण और अपान के उर्ध्व एवं अधोगति का निरोध करना चाहिये।

छान्दोग्योपनिषत् के "यद्वै प्राणितिसप्राणोयद पानित सोऽपान:" के भाष्य में शंकराचार्य[2] जी ने भी लिखा है कि (मुख एवं नासिका से जिस वायु को बाहर निकाला जाता है उसे प्राण और जिस वायु को अन्दर लिया जाता है उसे अपान कहते हैं।)

उच्छ्वास एवं प्रश्वास रूपी प्राण एवं अपान में व्यान का बहुत ही अधिक महत्व है और व्यान के बिना प्राण एवं अपान रूपी व्यापार नहीं हो सकते, ऐसा महामहोपाध्याय मधुसूदन जी शास्त्री का मत है और इस सम्बन्ध में उन्होंने श्रुति का प्रमाण भी दिया है।

न प्राणेन नापानेन मर्त्योजीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ॥
— श्रुतिः

अर्थात् प्राण से अथवा अपान से कोई व्यक्ति जीवित नहीं रहता है, इन दोनों के अतिरिक्त तीसरा कोई देवता है जिसके ये दोनों आश्रित हैं, वही सब प्राणियों का जीवन-आधार है। हृदय में स्थित यह व्यान अन्तरिक्ष से प्राप्त होता है। इसी व्यान पर पृथ्वी से अपान वायु और सूर्य से प्राणवायु आकर सम्मिलित होते हैं। यह व्यान वायु सूर्य से आते हुए प्राणवायु का प्रतिपृम्भण (रोकना) करके उल्टा प्रतिक्षेपण (धक्का देना) करता है जिससे वही प्राणवायु उल्टा ऊपर जात हुआ अपानवायु कहलाता है।

इसी प्रकार वह व्यान वायु नीचे पृथ्वी आते हुए वायु को प्रतिष्टम्भव करके उल्टा प्रति क्षेपण करता है जिससे उल्टा नीचे को जाता हुआ वह अपान वायु कहलाता है। किन्तु जो उसक भाग शरीर में रहकर अन्नादि पाचन का का करता है वह समान वायु कहलाता है। इस प्रक तीन लोक के तीन रस मिलकर पांच प्राण उत्प करते हैं। इन्हीं पांचो प्राणों के आधार पर प्राणि की जीवन सत्ता निर्भर है।

ब्रह्मविज्ञान पृ-३४०

इस प्रकार सभी वायु भेदों में उन्होंने व्यान सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है और व्यान वायु द्वारा ही केवल गति विशेष से अन्य चार भेदों सत्ता स्थिर की है।

इस शरीर से वायु एक दम क्यों नहीं नि जाता? श्वास-प्रश्वास की क्रिया बराबर क्यों हो रहती है, इसके लिए भी उन्होंने व्यानवायु को निम्नांकित शब्दों में कारण माना है।

सूर्य से प्राण पृथ्वी से अपान दोनों भिन्न-भि जाति के दो रस शरीर में आकर जो इस ती व्यान पर निबद्ध होता है, जिसके कारण इस श में से वायु एकदम न निकल जाकर नियमानु श्वास प्रश्वास की क्रिया करता है।

आयुर्वेद तथा समस्त संस्कृत वांग्मय की विशेषता है कि एक ही शब्द विभिन्न स्थानों विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। प्रसंगानुसार अधिकरण सिद्धान्त के आधार पर ही शब्दों अर्थ करने पर समुचित अर्थ की उपलब्धि सकती है। प्राण एवं अपान इन शब्दों का भी प्रसंगानुसार समझ लेने से कोई विशेष आ नहीं रह जाती।

अथर्ववेद के एकादश काण्ड में जो प्राण बताया गया है उसमें प्राण के अनेक अ प्रयोग देखे जाते हैं। आचार्यचरक एवं सुश्रु

---

[1] उच्छ्वासनिश्वासरूपेणनासिकयोरभ्यन्तरे चरन्तौ प्राणापानावुर्ध्वंधोगतिनिरोधेन समौ कृत्वा।
श्रीधराचार्य।

[2] प्राणिति मुखनासिकाभ्या वायुं वहि: नि:सारयति, स प्राणाख्यो वायोर्वृत्तिविशेष:। यदपानिति अपश्वसिति ताभ्यामेवान्तराकर्षति वायुं सोऽपानाख्या वृत्तिः।
छान्दोग्योपनिषत् १-३-पर शंकराचार्य।

भी इसी प्रकार प्राण शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया है।

सुश्रुत ने अग्नि, सोम, वायु, सत्व, रज, तम, पंचेन्द्रियां एवं भूतात्मा इन को प्राणसंज्ञा दी है। आयु के पर्याय के रूप में प्राण शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर किया गया है और अहिंसा को प्राणवर्धक पदार्थों में सर्वोत्कृष्ट माना है भेलने[1] जीव की प्राणसंज्ञा दी है। प्राण का अर्थ जीवन भी है और चरक ने इस प्राण के दश विशिष्ट स्थान बताए हैं।

यथा-दोनों शंख, शिर, हृदय, वस्ति, कण्ठ, रक्त शुक्र, ओज एवं गुदा। इन स्थानों में विशिष्ट रूप से प्राण रहते हैं और यदि आघात लग जाय तो जीवन-लीला समाप्त हो सकती है। प्राण शब्द का प्रयोग समस्त वायु के लिए अथर्ववेद में किया गया है।

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
(अथर्व-का-११)

शार्ङ्गधर ने जहां कण्ठ से बहिर्निर्गमन होने वाली वायु की प्राणसंज्ञा दी है। वहां स्पष्ट रूप से यह उच्छ्वसित वायु के पर्याय के रूप में है।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि प्राण शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया गया है और प्राण वायु को कई स्थलों पर उच्छ्वसित रूप वायु भी माना है, परन्तु वायु के जो पंचविध प्रकार बताये गए हैं, उस वायु का भेद विशेष प्राणवायु को उच्छ्वसित या प्रश्वसित वायु मानना उचित प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः प्राण वायु प्रश्वास एवं उच्छ्वास दोनों कर्मों का साधक है वह स्वयं उच्छ्वसित या प्रश्वसित वायु नहीं। इसके अतिरिक्त प्राणवायु का कार्य केवल प्रश्वासोच्छ्वास ही नहीं, अपितु इसके द्वारा सम्पादित होने वाले अन्य अनेक कार्य हैं यथा ष्ठीवन क्षवथू, उद्गार, आहरण, बुद्धि, इन्द्रिय, मन, ए धमनी धारण आदि। इन कार्यों के अतिरि श्वसन-क्रिया भी प्राण वायु का कार्य है।

अतएव प्राणवायु के अर्थ को प्रश्वास तथ उच्छ्वास या प्रश्वसित और उच्छ्वसित वायु अर्थ में सीमित नहीं करना चाहिये।

अपान—

यद्यपि अपान शब्द का प्रयोग प्रश्वसित वा के लिये भारतीय वांगमय में अनेक स्थलों पर प्रा होता है जिसका संकेत पहले किया जा चुका तथापि आयुर्वेद में वायु के पंचविध भेदों वर्णित अपान वायु प्रश्वसित वायु नहीं है, क्यं कि उसके कार्यों में प्रश्वास शब्द का उल्लेख कहं नहीं मिलता। अपान वायु का स्थान वृषण, बस्ति मेढ्र, नाभि, उरु, वंक्षण, गुद एवं पक्वाशय बताय गया है। इसका प्रधान कर्म अवेगकाल में मल मूत्र, शुक्र, एवं आर्तव को धारण करना तथा वेग उपस्थित होने पर उसे निकालना है।

अवेगकाल में गुद, मेढ्र बस्ति एवं गर्भाशय आदि अंगों के द्वारों को बन्द रखकर तत्रस्थ मलादिकों को धारण करना तथा वेग उपस्थित होने प उन-उन अवयवों में संकोच उत्पन्न कर और उनके द्वार को खोलकर तत्रस्थ मलादिकों को बाहर निकालन अपानवायु का कार्य[1] है। गर्भाशय में प्रसव के लिये अनुपस्थित काल तक उसके मुख को बन्द रखकर गर्भ का धारण करना तथा प्रसवकाल उपस्थित होने पर गर्भाशय में संकोच उत्पन्न कर तथा

१–प्राणः प्रीणाति भूतानि प्राणो जीव इति स्मृतः ।
—भेल० सू० १६

१—वृषणौ वस्ति मेढ्रं च नाभ्यूरुवंक्षणौ गुदम् ।
अपानस्थानमन्त्रस्थः शुक्रमूत्रशकृत्क्रियः ॥
सृजत्यार्तवगर्भौ च युक्ताः स्थानस्थिताश्चते ।
स्वकर्मकुरुते देहो धार्यते तैरनामयः ॥
(च० चि० २८)

पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम् ।
समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्तवान्यधः ॥
(सु० नि० १)

उसके मुख को खोल गर्भस्थ बालक को बाहर निकालना अपानवायु का कार्य है।

उदान—

उदानवायु का स्थान जत्रु से ऊपर का भाग कण्ठ नासा, नाभि एवं उरःप्रदेश बताया गया है[1]। शब्द की उत्पत्ति में शरीर के उक्त अवयव भाग लेते हैं। भाषण एवं गीत आदि कर्मों में उदानवायु की क्रिया का ही प्राधान्य है। स्वरयन्त्र में प्रयत्न, स्वरतन्त्रियों में ऊर्जा तथा बल देना, वर्णों को उत्पन्न करना, स्रोतों का प्रीणन एवं धी, धृति, स्मृति, मन और बोधन आदि क्रियाओं को सम्पन्न करना उदानवायु के कार्य हैं। श्वसन में उच्छ्वास क्रिया को भी यह सम्पादित करता है।

व्यान—

व्यान वायु का स्थान[2] सम्पूर्ण शरीर बताया गया है अर्थात् वह हृदय में रहता हुआ सम्पूर्ण शरीर में रस-रक्तसंवहन करता रहता है। शरीर की समस्त रसवाहिनियां व्यानवायु का स्थान है और सम्पूर्ण शरीर में रस का संवहन कराना[3] व्यानवायु के कर्म हैं। रस संवहन में रक्तसंवहन का भी अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि रस के साथ ही रक्त का भी संवहन होता है। प्रसारण एवं आकुंचन आदि चेष्टाओं तथा उनसे होने वाली गतियां निमेष, उन्मेष एवं आक्षेप आदि कार्यों का हेतु व्यानवायु है। हृदय से रक्त को सम्पूर्ण शरीर में संचार कराना केशिकाओं के स्राव से उन-उन अवयवों का पोषण करना और अशुद्ध रक्त को पुनः हृदय की ओर ले जाना ये व्यान वायु के कर्म हैं। हृदय से अशुद्ध रक्त की शुद्धि के लिये फुफ्फुसों में ले जाना और शुद्ध रक्त को फुफ्फुस से हृदय में लाना भी व्यानवायु का ही कार्य है और इस प्रकार श्वसन क्रिया के लिये भी यह अपना विशिष्ट महत्व रखता है क्योंकि श्वसन और रक्त संवहन ये दो क्रियायें अन्योन्यापेक्षित होती हैं।

वायु और नाड़ीसंस्थान[1]—

आयुर्वेद में वर्णित वायु के कार्यों का विवरण आधुनिक नाड़ीसंस्थान के विवरणों से बहुत कुछ मिलता जुलता है और नाड़ीसंस्थान के कार्यों के अन्तर्गत वायु के कार्यों का समावेश किया जा सकता है। आयुर्वेद का पारिभाषिक शिर जो ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय एवं मन का अधिष्ठान माना गया है, इस संस्थान का मूल है।

नाड़ी संस्थान के प्रधानतः दो विभाग किये गए हैं।

(१) मस्तिष्कसौषुम्निक[2] और (२) स्वतन्त्र[3] नाड़ी संस्थान।

नाड़ी संस्थान का मुख्यकार्य शरीर को सहयोगिता के आधार पर नियन्त्रित तथा संचालित करना है। शरीर में दो प्रकार की क्रियायें होती है।

१—उदानस्य पुनःस्थानं नाभ्युरः कण्ठ एव च।
वाक्प्रवृत्तिः प्रयत्नोर्जोबलवर्णादिकर्मं च।
(च० चि० २८)
उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः।
तेन भाषित गीतादिविशेषोऽभिप्रवर्तते॥
(सु० नि० १)
आदिशब्दादुच्छ्वासादिविशेषः। डल्हण

२–देहं व्याप्नोति सर्वं तु व्यानः शीघ्रातिनृणाम्।
गतिप्रसारेणाक्षेपनिमेषादिक्रियः सदा॥
च० चि० २८
कृत्सन देहचरोव्यानो रससंवहनोद्यतः।
स्वेदासृक्स्रावणश्चापि पंचधाचेष्टयत्यपि॥
सु० नि० १

३—प्राणाः प्राणभृतां यत्राश्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमांगमंगानां शिरस्तदभिधीयते॥
च० सू० १७

(१) nervous system

(२) Ceribro-spinal.

(३) Autonomic Nervous system.

(१) परिसरीय[1] और (२) आशयिक[2] । परिसरीय क्रियाओं के द्वारा प्राणी बाह्य वातावरण के सम्पर्क में रहता है और उसके अनुकूल अपने को बनाये रखने में समर्थ होता है । यह कार्य त्वचा, पेशियों, सन्धियों एवं कण्डराओं में स्थित संज्ञावह प्रान्त भागों के द्वारा सम्पन्न होता है । इन क्रियाओं का नियमन मस्तिष्क सौषुम्निक नाड़ी संस्थान से होता है । आशयिक क्रिया में शरीर को जीवनीय क्रियायें यथा श्वसन, रक्तसंवहन, पाचन तथा मलोत्सर्ग आदि आती हैं । ये आशयिक क्रियायें पूर्णरूप से मनुष्य की इच्छा के अधीन नहीं हैं और इन क्रियाओं का नियमन स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान द्वारा होता है । मानसिक क्रियायें, इन्द्रिय, स्थानिक गतियां तथा विभिन्न प्रकार की संज्ञाओं का कार्य मस्तिष्क सौषुम्निक संस्थान के अन्तर्गत ही आता है । स्वतन्त्र मांस पेशियों का संचालन, फुफ्फुस, अपस्तम्भ, आमाशय, ग्रहणी, वृहदन्त्र, यकृत एवं अग्न्याशय आदि अंगों का नियमन, नेत्र एवं त्वचा का कार्य समस्त अन्तःस्रावी, बहिःस्रावी एवं उभयतोस्रावी ग्रन्थियों का कार्य स्वतन्त्रनाड़ी संस्थान द्वारा सम्पादित होता है ।

स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान के भी दो विभाग होते हैं। (१) सांवेदनिक[3] और (२) परसांवेदनिक[4] । त्वचा, त्वग्गत ग्रन्थियां, रक्तवाहिनियां, ताराविस्फार, अश्रुकला लालाग्रन्थियां एवं हृदयगतिवृद्धि आदि कार्य प्रधान रूप से सांवेदनिक नाड़ी मण्डल द्वारा होता है। तारासंकोच, अश्रुग्रन्थि, लालाग्रंथि, जिह्वा की कला, हृदय का नियमन, आमाशय एवं आन्त्र आदि का कार्य ये सब परसांवेदनिक नाड़ी मण्डल द्वारा होता है ।

उपरोक्त नाड़ी संस्थान के वर्णित कार्य आयुर्वेद में पंचविधि वायु द्वारा सम्पादित होते हैं और इस सम्बन्ध में महामहोपाध्याय गणनाथसेन जी के निम्न वाक्यों से हम लोगों का पथ प्रदर्शन हो सकता है ।

तत्र प्राणो नाम वायुःमस्तिष्कसुषुम्नाशीर्षक मूलः । तस्यवर्त्मानि शीर्षण्या नाड्यः उत्तरस्वतन्त्रनाडीमण्डलं च । तस्य क्रियाः इन्द्रियाधिष्ठानेषु, लालाग्रन्थिषु, श्वासयन्त्रे, हृदियकृदामाशयान्त्रादिषु, अन्येषु चोदेर्ययन्त्रेषु अन्यत्र वृक्कवस्तिगुदादिभ्यः ।

उदानो नाम वायुः प्राणवायोः सहकारी । तस्य मूलानि मध्यमस्वतन्त्रनाडीमण्डलस्य उत्तरानुग्रीविकग्रन्थिषु साक्षात् सुषुम्नाकाण्डस्य अनुग्रीविकांश अनुपृष्ठिकभागोत्तरार्द्धे च परम्परया । तस्य वर्त्मानि उर्ध्वजत्रुगताः कण्ठोरश्चराश्च स्वतन्त्रनाडीप्रतानाः आमहाप्राचीरं प्रसृताः । तैर्हि तस्य क्रियाप्रसरः स्तोकेन शीर्षण्येष्विन्द्रियाधिष्ठानेषु विशेषतश्च स्वरयन्त्रे, लालाग्रंथिषु श्वासयन्त्रे हृदये, महाप्राचीरायां च ।

समानो नाम वायुरुदर्य्ययन्त्राणां कर्मप्रवर्तको विशेषेण । तस्य मूलानि सुषुम्ना काण्डस्य अनुकटिकभागान्तर्देश्यानि, अधिवस्तिकनाडीचक्रे च ।

अपानो नाम वायुः वृहदन्त्रवृक्क वस्ति-वृषण-बीजकोष-गर्भाशयादीनां कर्म्मप्रवर्तकः । तस्य मलानि सषुम्नाकाण्डस्य अनुकटिकभागान्तर्देश्यानि, अधिवस्तिकनाडीचक्रे च ।

व्यानो नाम वायुः सर्वशरीरगः पेशीनां प्रचेष्टनः सिराधमन्यादिनां संकोचप्रसारकरोमस्तिष्कसौषुम्निकनाडीतन्त्र मूलः । स एव रससंवहनसहाय इति सुश्रुतः ।

प्रत्यक्ष-शारीर, तृतीय भाग, पृष्ठ १६६-६७

---

(१) Somatic.

(२) Splachnic.

(३) Sympathetic

(४) Para-Sympathetic.

फुफ्फुस

आचार्य सुश्रुत[1] तथा वाग्भट[2] ने फुफ्फुस की णना कोष्ठ एवं कोष्ठांगों में की है। चरक में फ्फुस शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। काश्यप-हिता[3] में फुफ्फुस की उत्पत्ति प्लीहा से बताई गई। आयुर्वेद में सर्वत्र ही फुफ्फुस शब्द का प्रयोग कबचन में ही किया गया है। फुफ्फुस की उत्पत्ति क्तफेन द्वारा होती है, ऐसा सुश्रुत तथा अरुणदत्त[4] नते हैं। रचना शारीर की दृष्टि से केवल स्थान । वर्णन मिलता है। सुश्रुत ने हृदय के नीचे मभाग में प्लीहा एवं फुफ्फुस तथा दक्षिण भाग यकृत् एवं क्लोम का स्थान बताया है[5]। अरुणदत्त फुफ्फुस का स्थान हृदय के दक्षिण भाग में ताया है।[6] माधवनिदान के टीकाकार विजयरक्षित फुफ्फुस का स्थान हृदय के वामपार्श्व में बताकर श्रुत के मत की ही पुष्टि की है।[7] गणनाथसेन जी ने प्रत्यक्ष शारीर की प्रस्तावना में सुश्रुत के पाठ में निम्न प्रकार का संशोधन प्रस्तुत किया है कि हृदय से नीचे वामभाग में प्लीहा, दक्षिण भाग में यकृत् और उभय भाग में क्लोम तथा फुफ्फुस हो, तो यह पाठ ठीक रहेगा।[1]

फुफ्फुस के कार्य—

(१) शार्ङ्गधर ने उदानवायु का आधार फुफ्फुस[2] को बताया है और उदानवायु का स्थान उरस्[3] है ऐसा चरक एवं सुश्रुत आदि आचार्य भी मानते हैं। वाक्प्रवृत्ति, प्रयत्न, उर्जा, बल, वर्ण, भाषण गीत तथा उच्छ्वास आदि उदानवायु के कर्म हैं। अतएव भाषण, गीत एवं उच्छ्वास आदि कार्यों में फुफ्फुस का सहयोग होना चाहिये।

प्राणवायु का स्थान उरस् भी बताया गया है अतएव प्राणवायु के कार्यों से भी फुफ्फुस का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। प्राणवायु के कार्यों में ष्ठीवन, क्षवथू उद्गार श्वास एवं आहार आदि है। इस प्रकार यह निश्चित है कि प्राण एवं उदानवायु का स्थान होने के कारण फुफ्फुस वह अंगविशेष है जिसके द्वारा श्वास, भाषण, गीत, ष्ठीवन, क्षवथू एवं उद्गार आदि कार्यों में सहायता मिलती है।

(२) विजयरक्षित ने फुफ्फुस को रक्ताधार[4] बताया है। शार्ङ्गधर तथा भावमिश्र ने उरः (फुफ्फुस-

---

– स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ।
हृदुण्डुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥
(सु० चि० २)

—कोष्ठांगानि स्थितान्येषु हृदयं क्लोम फुफ्फुसम् ।
यकृत्प्लीहोण्डुकं वृक्कौनाभिडिम्बान्त्रवस्तयः ॥
(अ० हृ० शा० ३)

—शोणिताद् हृदयं तस्यजायते हृदयाद् यकृत् ।
यकृतो जायते प्लीहा प्लीह्नः फुफ्फुसमुच्यते ॥
(का० सं० शा०)

—क-शोणितफेनप्रभवः फुफ्फुसः । (सु० शा० ४)
ख-फुफ्फुसो रक्तफेनज। (अ. हृ. शा. ३-१२ पर अरुणदत्त)

—हृदयस्याधोवामतः प्लीहा फुफ्फुसश्च दक्षिणतो यकृतक्लोम च । (सु० शा० ४)

- मांसपेशीचयो रक्त पद्माकारमधोमुखम् ।
तस्यदक्षिणतो क्लोमयकृत्फुफ्फुसमास्थितम् ॥
(अ० हृ० शा० ३·१२ अ० व०)

७—फुफ्फुसइति हृदयस्य वामपार्श्वे रक्ताधार:फुफ्फुस इति ख्यातः ।:(मा० नि० सद्योवृण० ५)

१—हृदयस्याधो वामतः प्लीहा: दक्षिणतो यकृदुभयतः क्लोम फुफ्फुसौचेति तु साधीयान् पाठः ।
(प्रत्यक्ष शारार प्रस्तावना चतुर्थ खण्ड)

२ उदानवायोराधारः फुफ्फुसः प्रोच्यते बुधैः ।
शार्ङ्गधर पू० ख० अ० ५

३—उदानस्य पुनः स्थानं नाभ्युरः कण्ठ एव च ।
च० चि० २८

४—रक्ताधारः फुफ्फुसः । मा० नि० सद्योव्रण
जीवरक्ताशयमुरो । शा० पू० ख० अ० ५
उरोरक्ताशयः । भावप्रकाश–

हृदय) को जीवरक्ताशय एवं रक्ताशय माना है अतएव इस अंगविशेष का रक्त के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है।

(३) चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट आदि सभी संहिताकारों ने कफ के स्थानों में उरस् का परिगणन किया है और चरक तथा वाग्भट् ने तो कफ का प्रधान स्थान[1] उरस् ही माना है। उरस् का महत्वपूर्ण अङ्ग फुफ्फुस भी है अतएव फुफ्फुस का कफ के साथ भी महत्वपूर्ण सम्बन्ध होना चाहिये।

प्राण एवं उदानवायु के विकृत हो जाने पर हिक्का श्वास आदि रोग होते हैं। ऐसा सुश्रुत[2] एवं भेल[3] का मत है। प्राण एवं उदानवायु का स्थान फुफ्फुस भी है अतएव फुफ्फुस की दुष्टि से कास, श्वास एवं हिक्का आदि रोग होने चाहिये।

इन उपरोक्त प्रमाणों से यह प्रतिपादित होता है कि lungs के नाम से आधुनिक रूप में व्यवहृत अंग ही फुफ्फुस है क्योंकि स्थान एवं कार्य की दृष्टि से दोनों ही समान हैं। यद्यपि आयुर्वेद में सर्वत्र ही एकवचन में फुफ्फुस का प्रयोग देखा जाता है तथापि हम दोनों पार्श्वस्थित अङ्गों को फुफ्फुस के रूप में ग्रहण करेंगे। संस्कृत साहित्य में जाति में एकवचन[4] का प्रयोग होता है और इस प्रकार दोनों फुफ्फुसों का ग्रहण किया जा सकता है। दोनों फुफ्फुस अपस्तम्भ तथा श्वासनली द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और इस प्रकार दोनों एक ही प्रतीत होते हैं। सुश्रुत फुफ्फुस का स्थान हृदय से वाम भाग में एवं अरुणदत्त दक्षिण भाग में बताते हैं। अतएव दोनों पार्श्वस्थित अङ्गों को फुफ्फुस मानने में कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि दोनों के कार्य समान हैं।

प्राणवहस्रोत—

श्वास रोग में प्राणवहस्रोतों[1] की दुष्टि बताई गई है। प्रकुपित हुआ वायु उरःस्थित कफ को बढ़ाकर प्राणवहस्रोतों में आविष्ट हो जाता है और श्वास रोग उत्पन्न करता है। इस प्रकार इस प्राणवहस्रोत से समस्त श्वसनयन्त्र (whole respiratory tract) का ग्रहण करना चाहिये।

श्वासनली (Trachea)--

स्वरयन्त्र से अपस्तम्भों तक वायु को लेजाने तथा निकालने का जो मार्ग है उसके नाम के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों में मतभेद दिखाई देता है। कई आचार्यों ने इसकी क्लोम संज्ञा दी है, परन्तु यह उपयुक्त नहीं जान पड़ता। क्लोम उदकवह स्रोतों का मूल एवं पिपासास्थान है परन्तु उदकवह स्रोत या पिपासा से श्वास नली का कोई विशिष्ट सम्बन्ध नहीं है। साथ ही क्लोम की गणना कोष्ठांगों में की गई है परन्तु यह नली कोष्ठांग न होकर प्रत्यंगों की कोटि में आसकता है अतएव इस निबन्ध में इस नली के लिये श्वासनली का ही प्रयोग किया गया है।

अपस्तम्भ (Bronchi)—

उरः के दोनों पार्श्वों में वायु को वहन करने वाली दो नाड़ियां हैं जिनका नाम अपस्तम्भ है।

---

[1] --उरः शिरो ग्रीवा पर्वाण्यामाशयोमेदश्च श्लेष्मस्थानानि। अत्राप्युरोविशेषेण श्लेष्मस्थानम्।

च०सू० २०

उरः कण्ठ शिरः क्लोम पर्वाण्यामाशयो रसः।
मेदो घ्राणंच जिह्वा च कफस्य सुतरामुरः॥

अ० हृ० सू० अ० १२

[2] —प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान्गदान्।

सु० नि० १

[3] --यच्चान्युदुर्ध्वं गजन्तोस्तदुदानस्य चेष्टितम्।
क्षवथुं हिक्कितंकासं उच्छवासंभूषणं (मूर्षणं) तथा॥

भेल० सू० १६

[4] --जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम्।

पाणिनीय सूत्र

---

[1] मारुतः प्राणवाहीनि स्रोतांस्याविश्यकुप्यति।
उरःस्थः कफमुद्धूय हिक्काश्वासान्करोति च॥

च० चि० १७

यह मर्म स्थान है और यदि इसका वेधन हो जाय तो रक्तपूर्णकोष्ठता एवं वातपूर्णकोष्ठता हो जाती है और श्वास, कास आदि रोग उत्पन्न हो जाता है जिससे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। ऐसा सुश्रुत[1] एवं वाग्भट[2] दोनों ही मानते हैं। वस्तुतः ये अपस्तम्भ bronchi के पर्याय हैं।

अपस्तम्भप्रतान—

दोनों अपस्तम्भ आगे चलकर अन्य अनेक शाखाओं, प्रशाखाओं में विभक्त हो जाती हैं, इन्हें अपस्तम्भप्रतान नाम दिया गया है। bronchial tree तथा broncheoles का अन्तर्भाव अपस्तम्भ-प्रतान के अन्तर्गत हो जाता है।

अनिलायन (Alveoli)—

सुश्रुत ने अनिलायन का वर्णन स्वरघ्नरोग में किया है[3]। अनिलायन जब कफ से रुद्ध हो जाता है तब मनुष्य निरन्तर तमः प्रवेश के साथ कष्ट-युक्त निश्वास करता है, स्वरभेद हो जाता है एवं कण्ठ शुष्क हो जाता है अतएव यह अनिलायन फुफ्फुसों में स्थित छोटी-छोटी वायुनलिकायें हो सकती हैं, जिन्हें Alveoli कह सकते हैं।

प्राकृतरूप में श्वसनक्रिया—

परमात्मा के लक्षणों का वर्णन करते हुए चरक ने प्रथम लक्षण प्राण एवं अपान अर्थात प्रश्वास एवं उच्छ्वासरूपी श्वसनक्रिया लिखा है और इस प्रकार श्वसन क्रिया जीवन का प्रमुख लक्षण है। अथर्ववेद में प्राण और अपान की क्रिया के रूप में श्वसन कर्म का अत्यन्त वैज्ञानिक वर्णन उपस्थित किया गया है। प्रश्वास एवं उच्छ्वास की क्रिया का वायवीय विनिमय के साथ साथ वर्णन करते हुए अंगविशेष एवं उपयोगिता इन सभी दृष्टिकोणों को उपस्थित किया गया है।

नमस्ते अस्त्वायते नभो अस्तु परायते।
नमस्ते प्राणतिष्ठत आसीनायोततेनमः ॥ अर्थव-का-११

हे प्राण आयते आगच्छते ते तुभ्यं नमोस्तु। तथा परायते परांगमुखं गच्छते तुभ्यं नमोस्तु। हे प्राण तिष्ठते यत्र क्वापि अवस्थिताय तुभ्यं नमोस्तु। आसीनाय उपविष्टायते तुभ्यं नमोस्तु।

— सायन भाष्य

इस मन्त्र में अन्तः प्रविष्ट होने वाली प्राणरूप वायु बाहर निकलने वाली वायु, अवशिष्टवायु तथा आसीन अर्थात् उपविष्टरूप वायु का वर्णन किया गया है। वस्तुतः श्वसनक्रिया का पूर्णरूप से वैज्ञानिक वर्णन इसी एक मन्त्र के आधार पर किया जा सकता है। प्रश्वास द्वारा जिस प्राणवायु का ग्रहण किया जाता है उसका वर्णन यहां 'आयते' से किया गया है। कार्वनद्वयोषित् के रूप में जो वायु शरीर से बाहर निकाला जाता है उसे इसमें 'परायते' के रूप में बताया गया है। अधिकतम उच्छ्वास के बाद भी फुफ्फुसों में कुछ वायु अवशिष्ट रह जाती है जिसे अवशिष्ट वायु (residual air) कहते हैं। जिसे हम गम्भीरतम उच्छ्वास के बाद भी नहीं निकाल सकते और इसी वायु का वर्णन इस मन्त्र में तिष्ठत के रूप में किया गया है। श्वसनक्रिया में ओषजन रक्तकण स्थित रक्तरंजक द्रव्य (haemoglobin) के साथ मिलकर सारे शरीर में परिभ्रमण कर प्राण का संचार करते हैं और

---

[1] —अपस्तम्भावुरः पार्श्वेनाड्यावनिलवाहिनी।
रक्तेन पूर्णकोष्ठोऽत्रश्वासात्कासाच्चनश्यति ॥
अ० हृ० शा० ४-१४
उरसः पार्श्वद्वेनाड्यावस्तम्भाख्ये
मर्मणोअनिलवाहिनी वातवहे।
अत्रमर्मद्वये विद्धेरक्तेनपूर्ण-
कोष्ठः श्वासकासाभ्याविपद्यते।
—अरुणदत्त

[2] —उभयत्रोरसोनाड्यौ वातवहे अपस्तम्भौनाम।
तत्रवातपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च मरणम् ॥
सु० शा० ६-२५

[3] —योऽतिप्रताम्यन्श्वसितिप्रसक्तं
भिन्नस्वरःशुष्कविमुक्त कण्ठः।
कफोपादिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः
स रोगः श्वसनात् स्वरघ्नः ॥
सु० नि० अ० १६-६१

इसे ही आसीनाय शब्द से निर्देशित किया है।

इसकी महत्ता निम्नांकित मन्त्र में प्रतिपादित की गई है। यथा —

प्राणमाहुर्मातरिश्वानंवातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं चप्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ अर्थव-का-११

अन्तरिक्षे श्वसिति वर्तत इति मातरिश्वा अन्तरिक्षाधिपतिर्वायुः। तं वायुं प्राणं प्राणात्मकमाहुः। वायुःप्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्। उक्त स्वार्थी व्यतिहारेण दृढी क्रियते वातो ह प्राण उच्यते इति। तस्मिनप्राणे इदं जगत् प्रतिष्ठितम् आश्रितम्। सा-भा-

इस मन्त्र में मातरिश्वा का नाम प्राण बताया गया है मातरिश्वा शब्द की व्युत्पत्ति-मातारि अन्तरिक्षेश्वसिति वर्तते स मातरिश्वा अर्थादाकाशे वर्तमानो विशुद्धात्मा वायुस्तं प्राणं प्राणाख्यमाहुः, ऐसा किया जा सकता है और इस प्रकार इसका तात्पर्य स्पष्ट रूप से ओषजन के साथ मिलता है। इसी वायु के आधार पर भूत एवं भविष्य सभी रूपों में जगत् प्रतिष्ठित है।

श्वसन क्रिया का वर्णन निम्नांकित मन्त्र में किया गया है —

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदगं स तमुत्खिदेन्नैवाप न श्वः स्यात्,
न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदाचन ॥ अथर्व-का-११

हन्ति गच्छति कृत्स्न शरीरं व्याप्य वर्तत इति हंसः प्राणः। सलिलात् सलिलोपलक्षितात् पाँचभौतिकाद् देहाद् उच्चरन् प्राणवृत्थात्मना उर्ध्वं गच्छन् एकं पादं अपानवृत्थात्मकं नोत्खिदति नोत्क्षिपति। यदि स प्राणस्तमपि अपानात्मक पादं उत्खिदेत् शरीराद् उत्क्षिपेत् तदा प्राणस्यकात्स्न्र्येनं शरीरतो निर्गतत्वात् मृतशरीरस्य तस्य अघश्वः रात्रि अहः इत्येवमात्मकः काल विभागो न स्यात्। कदाचिदपि न व्युच्छेत् तमसो निवृत्तिर्न स्यात्। अतः जगत् सजीवं कर्तुं एकं पादं नौत्खिदतीत्यर्थः। सा-भा-

इस मन्त्र में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि प्रश्वास एवं उच्छ्वास की क्रिया बराबर ही होती रहती है। जब प्रश्वास होता है उस समय उच्छ्वास रूपी पाद शरीर में स्थित रहता है और फिर उच्छ्वास के बाद इसी तरह प्रश्वास। इस प्रश्वासोच्छ्वास काल में हंस शब्द का उच्छ्चार होता है। वस्तुतः प्रश्वासोच्छ्वास काल में वायु के गमनागमन से जो विशिष्ट प्रकारकी ध्वनि होती है उसमें प्रश्वास काल में 'हं' तथा उच्छ्श्वास काल में 'सः' के समान ध्वनि होती है और यदि दीर्घ प्रश्वासोच्छवास लें तो इसकी प्रतीति एकदम स्पष्ट रूप से होती है। यह क्रिया बराबर ही होती रहती है और आज, कल, दिन में या रात्रि में कभी व्युच्छेद नहीं होता, अर्थात् बराबर चलता ही रहता है। वस्तुतः दिन हो या रात, मनुष्य जागृतावस्था में हो या स्वप्नावस्था में, यह श्वसन क्रिया बराबर लती रहती है क्योंकि इस क्रिया का लोप होजाना तो मृत शरीर का लक्षण हो जाता है और सम्पूर्ण रूप से प्राण उस शरीर से निकल जाता है।

स्थान का निर्देश करते हुए अधोलिखित मन्त्र दिया गया है।

अष्टाचक्रं वर्तते एकनेमि सहस्राक्षरं प्र, पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्ध कतमः स केतुः ॥
अथर्व-११

अष्टाचक्रं त्वगसृगाधाः सप्तधातवः ओजोनाम अष्टमो धातुः। तत्र रथात्मना वर्णनोयस्य शरीरस्य चक्रत्वेन रूप्यन्ते। अष्टौ चक्राणि यस्य तद् अष्टाचक्रं शरीरम्, एकनेमि एकेनैव प्राणेन नेमिनैव वेष्टितम्। प्राणपरिस्पन्दवशेन सहस्रं वहुविधानि अक्षराणि वर्णाविर्णात्मकानि शब्दरूपाणि यस्य तत् तथोक्तम्। सा, भा,

इस मन्त्र में श्वसन क्रिया से होने वाले क्रियाशारीर को बताया गया है। इस शरीर की संज्ञा अष्टाचक्र नाम से दी गई है क्योंकि रस रक्तादि सप्तधातु एवं ओज ये आठ चक्र हैं जिनके आधार से शरीर बना हुआ है। प्राण की संज्ञा इसमें "नेमि" दी गई है। जिस प्रकार पहिये के आठ चक्र अपने नेमि के आश्रय होकर संगठित रहते हैं और

छिन्न भिन्न न होकर एक साथ कार्य में रत रहते हैं। उसी प्रकार प्राण इस शरीर के अष्टधातुओं को कार्य में रत रखता है। वस्तुतः यदि प्राणतत्व धातुओं को न प्राप्त हो तो उनकी क्रियाशक्ति समाप्त हो जाती है और इस रूप में यह धातुओं के लिये प्राण है। वायु के अन्तः प्रवेश तथा वहिर्गमन काल में अनेक प्रकार के शब्द उच्चरित होते हैं। वायु जब श्वासनली एवं अपस्तम्भ तक रहती है, उस काल की ध्वनि को 'प्र' शब्द से, अपस्तम्भप्रतान एवं अनिलायनों में जाने पर जो ध्वनि होती है उसे 'पुरो' शब्द से, वायु जब बाहर निकलती है उस समय जो अनिलायनों में शब्द होता है उसे 'नि' शब्द से एवं अपस्तम्भ, श्वास नली तथा स्वर-यन्त्र में जो शब्द होता है उसे 'पश्चात्' शब्द से से प्रतिपादित किया गया है।

श्वसन काल में उत्पन्न शब्दों की व्याख्या निम्न मन्त्र में की गई है।

नमस्ते प्राणक्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नैव।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्णत॥
(अथर्व-का-११)

हे प्राण क्रन्दाय क्रन्दनशीलाय ध्वनते तुभ्यं नमः। क्रदि आह्वाने रोदने च। तथा स्तनयित्नवे मेघजालं प्रविश्य स्तनिलं गर्जितं कुर्वते। हे प्राण विद्युते विद्युदात्मना विद्योतमानायते तुभ्यं नमः। तदनन्तरं वर्षते वृष्टि कुर्वते ते तुभ्यं हे प्राण नमोस्तु। सा-भा-

प्रश्वासकाल में स्वरयन्त्र, श्वासनली एवं अपस्तम्भो में जो शब्द होते हैं जिसे पूर्व में प्र शब्द से प्रतिपादित किया गया है, उसकी ध्वनि क्रन्दन के समान होती है। आधुनिक लोग भी अपस्तम्भ एवं स्वर यन्त्र में उत्पन्न शब्द को तीव्र एवं कर्कश (loud and harsh) मानते हैं। अनिलायनों में जाने पर जो शब्द होता है वह मेघ गर्जन के समान होता है। आधुनिक लोग अनिलायन गत शब्द को कम्पन युक्त तथा मृदु (vesicular element produces soft and rustling sound) मानते हैं। इसी प्रकार वायु के लौटने पर अनिलायनो में जो शब्द होता है उसे विद्युते तथा अपस्तम्भ एवं स्वर यन्त्र गत शब्द को वर्षते के रूप में दर्शाया गया है।

उर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपद्यते।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनुशुश्रात कश्चन॥
अथर्व-का-११

हे प्राण त्वंः उर्ध्वः उत्थितः सन् सुप्तेषु निद्रापरवशेषु प्राणिषु जागार जागृहि तद्रक्षणार्थं निद्रारहितो वर्तस्व। प्राणिषु सुप्तेषु निद्रापर वशेषु सत्सु तच्छरीरमध्य वर्तिनः अ य प्राणस्य सुप्तं स्वाप कश्चन कोऽपि पुरुषः न अनुशुश्राव अनु पपरंपर्यक्रमेण श्रुतवान्। प्राणस्वपनस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभ इत्यर्थः। सा-भा-

इस मन्त्र में यह स्पष्ट रूप से निर्देशित किया गया है कि प्राणियों के निद्रावशीभूत होजाने के बाद भी प्राण की क्रिया अर्थात् आकाशामृत का शरीर प्रवेश बराबर होता रहता है। यह क्रिया बराबर होती रहती है, कभी बन्द नहीं होती। इस प्राण की क्रिया का जीवित शरीर में बन्द हो जाना किसी ने नहीं सुना।

इस प्रकार अथर्व वेद में श्वसन क्रिया का संक्षेप में अत्यन्त गम्भीर तथा महत्वपूर्ण वर्णन पाया जाता है। यह वर्णन आधुनिक वर्णनों के आधार पर भी सत्य प्रमाणित है।

शार्गंधर ने श्वसन क्रिया का उत्तम एवं अलंकारिक वर्णन प्रस्तुत किया है। नाभिस्थित प्राणवायु हृत्कमलान्तर का स्पर्श कर अर्थात् वहां जाकर विष्णुपदामृत पान के लिये कण्ठ से बाहर निकलता है और अम्बर पीयूष का पान करके वेग पूर्वक पुनः लौट आता है। इस वर्णन में सम्भवतः नाभिशब्द हृदय का पर्याय है क्योंकि आयुर्वेद में अनेक स्थलों पर हृदय के अर्थ में भी नाभि का प्रयोग किया गया है। सुश्रुत ने चौबीस नाभिप्रभवा [1] धमनियों का उल्लेख किया

---

(१) चतुर्विंशति धमन्यो नाभिप्रभवा अभिहिताः।
(सु. शा.)

अभिहिता उक्ता, शोणितवर्णनीये इति शेषः।

है। अभिहिताः शब्द की व्याख्या करते हुए डल्हण ने लिखा है कि शोणितवर्णनीयाध्याय में पूर्व में बताया गया है। शोणितवर्णनीय में धमनियों को हृदय से निकलता हुआ बताया गया है और इस प्रकार यहां नाभि शब्द हृदय का पर्याय बन जाता है।

दूसरा पारिभाषिक शब्द हृत्कमलान्तर है। अन्तर शब्द का अर्थ बाहर भी होता है। घर के अन्तर में अर्थात् घर से बाहर ऐसा पाणिनीय [1] व्याकरण में बताया गया है। यहां हृत्कमल का स्पष्ट अर्थ हृदय है और हृत्कमल का अन्तर अर्थात् दोनों पार्श्वों में स्थित फुफ्फुस यही अर्थ युक्तिसंगत प्रतीत होता है। इस प्रकार हृदय स्थित प्राणवायु सर्व प्रथम फुफ्फुसों में आता है और फुफ्फुसों से उच्छ्वास क्रिया द्वारा बाहर निकल जाता है। उच्छ्वास रूप में शरीर से जब दूषित या मलरूप वायु निकल जाती है तो पुनः प्रश्वास की क्रिया प्रारम्भ होती है और प्रश्वास काल में विष्णुपदांमृत (oxygen) फुफ्फुसों में लाया जाता है। उच्छ्वास की प्रक्रिया में वर्णित विधि के अनुसार यह विष्णुपदामृत रूप शुद्ध वायु पुनः फुफ्फुसों से हृदय में चला जाता है और वहां से सारे शरीर में जाकर सम्पूर्ण शरीर का प्रीणन करता है।

आधुनिक वर्णन–

श्वसन उन सभी क्रियाओं का समुदाय है जिससे शरीर के कोषाणुओं को ओषजन प्राप्त होता है तथा शारीरिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न मलरूप कार्बनद्वयोषित् का निर्हरण होता है। श्वसन क्रिया को शरीर और वायुमण्डल के बीच वायवीय विनिमय की क्रिया कहा जा सकता है। निम्न श्रेणी के प्राणी वायुमण्डल से सीधे ओषजन ग्रहण कर लेते हैं परन्तु मनुष्य आदि उच्चवर्ग के प्राणियों में जिनमें रक्त संवहन की व्यवस्था होती है रक्त के द्वारा ही ओषजन प्राप्त होता है। श्वसन और रक्त संवहन क्रियायें अन्योन्यापेक्षित होती हैं और प्राणियों में श्वसन की दो अवस्थायें देखी जाती हैं।

(१) वाह्य-श्वसन—

इसमें फुफ्फुसों केशिकाओं में स्थित रक्त तथा फुफ्फुस के अनिलायन में स्थित वायु के बीच आदान-प्रदान होता है। रक्त वायु से ओषजन ग्रहण करता है तथा कार्बनद्वयोषित का परित्याग करता है।

(२) अन्तः श्वसन—

इसमें सम्पूर्ण शरीर में केशिकास्थित रक्त तथा शरीर में मलरूप निर्मित कार्बनद्वयोषित् के बीच विनिमय होता है। शरीर धातुओं से कार्बनद्वयोषित निकलकर रक्त में चले जाते हैं और ओषजन शरीरधातुओं को प्राप्त होते हैं।

श्वसन क्रिया से सम्बद्ध शरीर के जो अङ्ग हैं, उन सबों को मिलाकर श्वाससंस्थान का निर्माण होता है। इसमें नासिका, कण्ठ, श्वासनली, अपस्तम्भ तथा फुफ्फुसों का अन्तर्भाव होता है।

नासिका एवं मुख दोनों वायु आहरण और निर्हरण के मार्ग हैं। प्राकृत अवस्था में साधारणतया नासिका से ही श्वास लिया जाता है और जब अधिक प्रश्वासोच्छ्वास की आवश्यकता होती है तो मनुष्य मुख के द्वारा भी श्वास लेता है। नासिका द्वारा श्वास ग्रहण अधिक लाभदायी है क्योंकि नासा के अन्तःभाग में स्थित पक्ष्मों द्वारा दूषित पदार्थ जो वायु के साथ अन्दर प्रविष्ट हो सकते थे, रोक लिए जाते हैं।

श्वासनली –

यह सौत्रिक एवं स्थितिस्थापक तन्तुओं से निर्मित एक नलिका है जिसके बीच में तरुणास्थिमय मुद्रिकायें रहती हैं। इसकी लम्बाई ४-४$\frac{१}{२}$ इञ्च तथा व्यास $\frac{३}{४}$–१ इञ्च तक होता है। श्वासनली का आभ्यन्तर पृष्ठ रोमिकामय आवरक तन्तु से युक्त होता है। रोमिकामय सूत्रों के द्वारा अविरत

---

(१) अन्तरं वहिर्योगोपसंख्यानयो' । पाणिनीय सूत्र अन्तरे अन्तरा वा गृहा, वाह्या इत्यर्थः । वृत्ति

ऊपर की ओर कम्पन सा होता रहता है। यही कारण है कि प्रश्वास के साथ आये हुए धूलिकण आदि अन्दर नहीं जा पाते और अन्तःभाग में उत्पन्न कफ मुख की ओर वाहित होता रहता है।

अपस्तम्भ —

श्वासनली नीचे जाकर दो अपस्तम्भों में विभाजित हो जाती है। इसकी रचना प्रायः श्वासनली के समान ही होती है परन्तु इसमें श्लेष्मलकला के नीचे स्वतन्त्रमांसपेशियों का एक सुस्पष्ट स्तर वृत्तरूप में क्रमबद्ध रहता है। यह अपस्तम्भ भी आगे चलकर अनेक प्रतानों में विभक्त हो जाता है। इन अपस्तम्भ प्रतानों में जो मोटी होती है उनकी दीवालें सौत्रिक तन्तु से बनी होती हैं, तथा उनमें तरुणास्थिमय मुद्रिकाओं के भाग स्वतन्त्रपेशीसूत्र तथा स्थितिस्थापक तन्तु के अनुलम्ब गुच्छ होते हैं। इसके अन्तःभाग की श्लेष्मलकला भी रोमिकामय आवरकतन्तु से आच्छादित रहती है। यहां भी स्रवित कफ का श्वासनली की ओर निष्कासन इन्हीं रोमिकाओं द्वारा होता है। अपस्तम्भ प्रतानों की सूक्ष्मशाखाओं में क्रमशः तरुणास्थि का भाग कम होता जाता है और अन्त में एकदम नहीं रहता। इस प्रकार अन्त में केवल सौत्रिक तथा स्थितिस्थापक तन्तु से निर्मित कला बच जाती है जिसमें चक्राकार पेशीसूत्रों का आधिक्य रहता है। अपस्तम्भ प्रतान के बाद पेशी भाग भी अनुपस्थित हो हो जाता है और यह अनियमित कोषों के रूप में फैल जाता है। इनकी दीवालें अत्यन्त पतली कला की बनी होती हैं और एक दूसरे से प्रायः मिली जुली होती हैं। इसे ही अनिलायन कहते हैं। अनिलायन के बाहर की ओर फुफ्फुसी केशिकाओं का एक सघनजाल फैला रहता है जिसमें फुफ्फुसगत वायु और केशिकागतरक्त के बीच कोई व्यवधान नहीं होता और वायु तथा रक्त के बीच विनिमय का कार्य सम्पन्न होता है।

फुफ्फुस —

उरः पंजर के मध्य में दोनों ओर एक एक फुफ्फुस अवस्थित रहता है। बाहर की ओर यह एक कला से आच्छादित रहता है जिसे उरस्याकला कहते हैं। इस कला के दो स्तर होते हैं। पहला स्तर फुफ्फुसों के ऊपर लगा रहता है और दूसरा उरस् की आभ्यन्तर दीवाल से लगा रहता है। इन दोनों स्तरों के मध्य में थोड़ा श्लेष्मा का अंश होता है जिससे फुफ्फुसों के फैलने पर भी दोनों स्तरों का परस्पर घर्षण नहीं हो पाता। फुफ्फुस स्पंज के समान कोषमय तथा स्थितिस्थापक होता है। दोनों फुफ्फुसों के कई खंड होते हैं, जिनमें प्रधानतः दक्षिण फुफ्फुस में तीन तथा वाम फुफ्फुस में दो खंड होते हैं। ये खंड भी कई छोटे-छोटे प्रखण्डों में विभाजित हुए होते हैं। फुफ्फुसों की रचना प्रधानतः अनिलायन और उसके चतुर्दिक फैले हुए केशिकाओं के प्रतानों से होती है। अपस्तम्भ प्रतान भी फुफ्फुसों के अन्दर ही रहते हैं। अनिलायनों के आधिक्य के कारण यदि फुफ्फुसों को अंगुलियों से दबाया जाय तो मृदु मर्मर शब्द होता है और जल में डालने से यह उसमें तैरता है। सद्योजातबालक के फुफ्फुस का वर्ण कमल के समान होता परन्तु धीरे-धीरे आगे जाकर यह श्याम तथा कर्पूर वर्ण का हो जाता है।

फुफ्फुसों में वायवीयविनिमय —

प्राणियों की जीवन रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि फुफ्फुसगत वायु निरन्तर विशोधित होती रहे। वायु के इस विशोधन का कार्य उरो गुहा के क्रमिक संकोच और प्रसार, फलतः फुफ्फुसों के संकोच और प्रसार से सम्पन्न होता है। सिराओं के द्वारा जो रक्त सम्पूर्ण शरीर से हृदय में आता है उसमें कार्बनद्वयोषित नामक मलरूप वायु की अधिकता होती है। यह रक्त फुफ्फुसीया धमनी के द्वारा हृदय से फुफ्फुस में आता है। इसकी अन्तिम सूक्ष्म प्रशाखायें अनिलायनों के चारों ओर तथा ऊपर फैल जाती है। प्रश्वास द्वारा गृहितवायु जिसमें विष्णुपदामृत का आधिक्य रहता है, अनिलायनों में आता है। अनिलायन और केशिका के मध्य में अत्यन्त पतली

कला का ही व्यवधान रहता है और इसके माध्यम से वायवीय विनिमय होता है। अनिलायन स्थित वायु में विष्णुपदामृत का दबाब अधिक होता है और केशिकाओं में यह दबाब अल्प होता है अतएव अनिलायनों में स्थित विष्णुपदामृत का केशिकाओं में प्रसरण हो जाता है। केशिकाओं में कार्बनद्वयोषित् के दबाब का आधिक्य रहता है अतः केशिकास्थित रक्त से कार्बनद्वयोषित् अनिलायनस्थित वायु में चला आता है। इस क्रिया के बाद अनिलायनस्थित वायु में कार्बनद्वयोषित का और केशिकाओं में विष्णुपदामृत का आधिक्य हो जाता है प्रश्वास के बाद जब उच्छ्वास की क्रिया होती है तो उच्छ्वासित वायु के साथ कार्बनद्वयोषित् शरीर से बाहर निकल जाता है और केशिकास्थित विष्णुपदामृत से युक्त शुद्ध रक्त फुफ्फुसीय सिराओं द्वारा पुनः हृदय में लौट आता है।

यह क्रिया निरन्तर होती रहती है और कार्बनद्वयोषित् रूप मलमूत वायु का निर्हरण होता रहता है। विष्णुपदामृत से युक्त विशुद्ध रक्त हृदय से सम्पूर्ण शरीर में फैलकर धातुओं का प्रीणन करता है। शाङ्र्गधर ने भी इसी क्रिया को दृष्टिगत रखते हुए लिखा है कि नाभि अर्थात् हृदय स्थित सिरा धमनियां सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर सभी धातुओं के सम्पर्क में आते हैं और उनका पोषण [1] करते हैं।

श्वसन क्रिया में मांसपेशियों का सहयोग —

कुछ मांस पेशियां श्वसन क्रिया में महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। इन मांस पेशियों के संकोच तथा प्रसार से उरोगुहा के आयतन में परिवर्तन होता रहता है और इस प्रकार फुफ्फुसों को फैलने का मौका मिलता है। प्रश्वास में प्रधान रूप से महाप्राचीरा [2] एवं उरस की पेशियां भाग लेती हैं। दीर्घ प्रश्वास में ग्रीवा एवं कटिस्थित पेशियों का भी सहयोग होता है। प्रश्वास के बाद मांस पेशियों का प्रसार होता है। तथा फुफ्फुस, उरस् एवं उदर पर से दबाब हट जाने के कारण वे पूर्वावस्था में आ जाते हैं।

श्वसनक्रिया में नाड़ीजन्य नियन्त्रण —

मांस पेशियों की क्रिया सुव्यवस्थित रूप से तथा क्रमबद्ध होती रहती है क्योंकि उनमें चेष्टावह नाड़ियों द्वारा क्रमिक उत्तेजनायें पहुंचती रहती हैं। यह क्रिया मस्तिष्कगत नाड़ी केन्द्र के नियन्त्रक प्रभाव में है और प्रत्यावर्तित क्रिया है। यदि नाड़ी केन्द्रों को उत्तेजित किया जाय तो श्वास की मात्रा बढ़ जाती है। यह उत्तेजना प्रत्यक्ष एवं परावर्तित दोनों रूपों में होती है।

साक्षात् उत्तेजक —

१ - विद्युत्।

२—कुचिला [1] आदि औषधियां।

३—रक्त की अधिक मात्रा।

४—ज्वर आदि रोगों में रक्त का तापक्रम बढ़जाने पर हृदय गति के साथ ही श्वास गति भी बढ़ जाती है और शीत के कारण श्वास की संख्या कम होती है।

प्रत्यावर्तित रूप में उत्तेजक —

१—मानसिक भावावेश, क्रोध, प्रवल इच्छा आदि में मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों की उत्तेजना से श्वासवृद्धि हो जाती है।

२—रक्तभार की कमी से उत्तेजक एवं आधिक्य से अवसादक प्रभाव होता है।

३—प्राणदा [2] नाड़ी की फुफ्फुसी शाखाओं की उत्तेजना।

४ - शरीर की प्रायः सभी संज्ञावह नाड़ियों की उत्तेजना। आदि-

---

(१) सिराधमन्यो नाभिस्थाः सर्वा
व्याप्य स्थितास्तनुम् ।
पुष्णान्ति चानिशं वायो संयोगात् सर्वधातुभिः ॥
(शा. पू. ५)

(२) महाप्राचीरा।

(१) कुचिला —nux vomica कुचिलासत्व—strychnine.

(२) प्राणदा—vagus.

श्वास किसे कहते हैं ?

श्वास या श्वसन क्रिया को प्राकृतिक शारीरिक क्रिया के रूप में पूर्व में प्रतिपादित किया गया है। रोग प्रकरण में श्वास शब्द श्वास सम्बन्धी विकृति का सूचक है और इस शब्द का प्रयोग अधिकतर विकृति (रोग या लक्षण) के रूप में किया गया है। इस रूप में श्वास शब्द कष्ट का पर्याय होता है।

एक स्वस्थ युवा व्यक्ति की श्वसन गति प्रति मिनट १६ से १८ बार तक होती है और यह प्राकृतिक है। श्वास कष्ट में संख्या की वृद्धि हो जाया करती है। परन्तु केवल संख्या की वृद्धि को हम तब तक श्वास नहीं कह सकते, जब तक वह कष्ट न उत्पन्न करे। संख्या की वृद्धि के साथ ही श्वासकष्ट भी आवश्यक है। तापमान वृद्धि के साथ ही श्वास की संख्या में भी वृद्धि होती है। प्राकृतिक रूप में हृदय और श्वसन गति का प्रायः १ और ४ का अनुपात होता है और हृदयगति वृद्धि के साथ ही स्वाभाविक रूप में श्वास गति में वृद्धि होने लगती है, लेकिन जब तक सांस लेने में या निकालने में कष्ट नहीं उत्पन्न होता, तब तक हम इसे श्वास नहीं कहते। श्वसनक ज्वर में, कफ की वृद्धि के कारण जब प्राणवहस्रोत कफावृत हो जाते हैं तब श्वसन क्रिया प्राकृत रूप से नहीं हो पाती। कफावृत होने के कारण अनिलायन गत अवकाश अल्प हो जाते हैं और शुद्ध वायु उचित परिमाण में नहीं पहुँच पाता, साथ ही मल रूप वायु के निष्कासन में भी बाधा उपस्थित होती है। ऐसी स्थिति में कष्ट के साथ रोगी अधिक परिमाण में श्वास लेने लगता है और उसका अनुपात भी हृदय के साथ के प्राकृत अनुपात से भिन्न हो जाता है। इस तरह की श्वसन सम्बन्धी जो विषम प्रकार की स्थिति होती है, उसे हम श्वास कहते हैं।

श्वास कष्ट के कारण——

विकारों के विभिन्न पांच समुदायों से श्वास कष्ट हो सकता है।

(१) हृद्रोग--

श्वास प्राणवहस्रोत का रोग है और प्राणवहस्रोतों का मूलस्थान हृदय[१] है। मूल की विकृति से स्रोतों की विकृति भी सम्भव है। आचार्य चरक[२] ने हृद्रोग से उत्पन्न होने वाले रोगों में श्वास का स्पष्ट उल्लेख किया है।

यद्यपि हृद्रोगजन्य श्वासकष्ट में ऐसे कोई विशेष लक्षण नहीं मिलते जो अन्य कारणों से उत्पन्न श्वासकष्ट में न हों, तथापि प्रायः इसमें श्यावांगता (Cyanosis) देखी जाती है। इसके साथ ही हृद्विकृति जन्य अन्य लक्षणों का इतिहास मिलता है। हृद्रोग पीड़ित रोगी में उसके हृदय की कार्यक्षमता जानने के लिए दो बातें महत्वपूर्ण हैं।

(१) रोगी बिना श्वासकष्ट के कितना श्रम कर सकता है।

(२) श्वासकष्ट की तीव्रता।

निम्नांकित हृदय सम्बन्धी विकारों में श्वासकष्ट पाया जाता है।

(क) व्यायाम से मांसपेशियों के बल का अनुमान लगाया जाता है। सम्यक् रूप से किये गये व्यायाम द्वारा मांसपेशियां पुष्ट होती हैं। यदि हृदय की मांसपेशियों को अत्यधिक श्रम कराया जाय तो इस अवस्था में वह कार्याक्षम हो जाती है

---

(१) प्राणवहानां स्रोतसां हृदयं मूलं महास्रोतश्च।
(च. वि. ५)

(२) वैवर्ण्य मूर्च्छाज्वरकासहिक्का-
श्वासास्यवैरस्य तृषाप्रमोहाः।
छर्दिः कफोत्क्लेशरुजारुचिश्च
हृद्रोगजाःस्युः विविधास्तथान्ये॥
(च. चि. २)

और परिणामस्वरूप श्वास कष्ट देखा जाता है। सुश्रुत[३] ने बलार्ध की स्थिति हो जाने पर व्यायाम का निषेध किया है क्योंकि बलार्ध की अवस्था मांसपेशियों के प्राकृत शक्ति की अन्तिम अवस्था है। व्यायाम करते समय हृदय स्थित वायु जल मुख में आ जाय अर्थात् केवल नासिका से श्वसन के कार्यों की पूर्ति न हो सके और मुख के द्वारा भी श्वसनकार्य प्रारम्भ होजाय तो उसे बलार्ध कहते हैं[४]। जब व्यायाम की मात्रा अत्यधिक ली जाय जैसा कि प्राकृत परिमाण में पहले नहीं लिया जाता था तब वह वैकारिक हो जाता है। यहां दो बातें महत्वपूर्ण हैं।

(१) व्यायाम की मात्रा जिससे श्वासकष्ट उत्पन्न होता हो।

(२) लक्षणों की उत्पत्ति का समय।

इसके द्वारा हृत्मांसपेशी कार्य की अक्षमता तथा हृत्मांसपेशीघात (Myocardial damage) की गति का अनुमान लगाया जा सकता है।

हृत्मांसपेशी की तीव्र प्रकार की विकृति में श्वासकष्ट अवश्य ही होता है। क्योंकि यह हृत्मांसपेशी के अवसाद का क्रियाशारीर के नियमों के अनुरूप लक्षण है।

(ख) हृत्कपाटों के तीव्र विकार में भी श्वासकष्ट देखा जाता है। हृत्मांसपेशी द्वारा विकृति जन्य अक्षमता की पूर्ति हो जाने पर हृत्कपाटजन्य विकार के रहते हुये भी रोगी को न तो कोई लक्षण ही उत्पन्न होते हैं और न उसे विकार का ज्ञान ही होता है। हृत्मांसपेशियों द्वारा जब कपाटजन्य विकृति की पूर्ति नहीं हो पाती तब श्वासकष्ट उत्पन्न होता है।

हृत्कपाटों की विकृति के कारण हृदयगत द्वार का संकोच अर्थात् स्रोतोरोध का प्रभाव सिराओं तथा धमनियों पर पड़ता है और रक्त का दबाब अधिक हो जाया करता है। हृदयगत द्वार संकोच के कारण प्राणवहस्रोतों में भी स्रोतोरोध उत्पन्न होता है क्योंकि दोनों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और इस प्रकार प्राणवहस्रोतों में अवरोध के कारण श्वास कष्ट उत्पन्न हो जाता है।

(ग) फुफ्फुसगत रक्ताधिक्य तथा हृत्वामभाग के क्रियाघात (Left sided failure) में भी तीव्र प्रकारका श्वासकष्ट होता है। हृदय के वामभाग में उत्पन्न स्रोतोरोध के कारण रक्त फुफ्फुस से हृदय में भलीभांति नहीं लौट पाता और इस कारण प्राणवहस्रोतों में भी अवरोध उपस्थित होता है। इसअवस्था में रोगी लेटे हुए श्वास नहीं ले सकता। प्रायः कुर्सी पर बैठ कर अथवा बिस्तरे पर तकिये के सहारे निद्रा रहित रात्रि व्यतीत करता है। यह सीधी स्थिति रक्ताधिक यकृत् (Engorged liver) के भार से फुफुस्सों को आराम देती है, अधोगा एवं ऊर्ध्वगा महासिराओं के दबाब को कम करती है, श्वसन की सहकारी मांसपेशियों को बल देती है तथा यथा सम्भव फुफ्फुस गत रक्ताधिक्य को कम करती है।

(घ) हृद्विघात (Heart failure) की अन्तिम अवस्था में छिन्न श्वास के तरह का श्वसन देखा जाता है।

(च) हृत्मांस पेशीक्षय (Myocardial degeneration) में भी श्वास कष्ट पाया जाता है और यह प्रायः हृद्धमनी-विकार (Diseases of the coronary Artery) के बाद उत्पन्न होता है। हृद्धमनी के द्वारा ही समस्त हृदय को पोषण पहुंचता है और यदि किसी कारण से हृद्धमनी में स्रोतोरोध उत्पन्न हो जाय तो मांसपेशियों के पोषण का अभाव होकर मांसपेशीक्षय स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(३ लाघवं कर्म सामर्थ्यं दीप्तोग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥
(अ. हृ. सू. २)

(४) हृदिस्थानस्थितो वायुः यदा वक्त्रं प्रपद्यते।
व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद् बलार्धस्य लक्षणम् ॥

(छ) फिरङ्गजन्य महाधमनीशोथ (Syphilitic aortitis)—

यह कपाट विकृति से युक्त तथा कपाट विकृति से रहित दोनों प्रकार का हो सकता है और इस अवस्था में श्वासकष्ट देखा जाता है। महाधमनीगत शोथ महाधमनी में स्रोतोरोध का ही परिचायक है।

(ज) गम्भीर स्वरूप का महाधमनीविस्फार (Deep seated Aneurysm of Aorta)

इस अवस्था में भी श्वासकष्ट देखा जाता है और प्रायः यह पौनःपुनिक प्रकार का होता है।

(झ) हृदयावरणगततोय (Pericardial effusion)

हृदयावरण में जब स्रोतोरोध उपस्थित होता है तब इस प्रकार स्रोतोरोध के कारण उसके अन्दर जलीयभाग का संचय हो जाता है और इस अवस्था में भी श्वास कष्ट देखा जाता है।

समीपगत रचनाओं द्वारा हृत्कार्य में वाधा—

यथा—

(१) उरोगुहागत अर्बुद।

(२) उरस्तोय।

(३) जलोदर।

(४) विस्फारित आमाशय।

(५) मेदो वृद्धि भी एक गौण कारण हो सकता है तथापि इस अवस्था में प्रायः अल्पमात्रा में भी हृत्मांसपेशी विकृति अवश्य ही देखी जाती है।

स्वरयन्त्र तथा श्वासनलिका में अवरोध—

अनेक फुफ्फुसगत रोग—

रक्त की अवस्थायें—

(क) तीव्र रक्ताल्पता के रोगी प्रायः श्वास कष्ट से पीड़ित रहते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें हृद्द्रव (Palpitation) रक्तजन्यध्वनि (Haemic murmurs) तथा पादशोथ भी पाया जाता है।

(ख) मधुमेहजन्य शौक्तोत्कर्ष (Diabetic ketosis) तथा मूत्र विषमयता (Ureamia) के कारण उत्पन्न अम्लोत्कर्ष (Acidosis) में भी श्वास कष्ट पाया जाता है और इन स्थितियों में आराम तथा श्रम दोनों अवस्थाओं में श्वास कष्ट उपस्थित रहता है।

पौनःपुनिक श्वासकष्ट

(Paroxysmal Dyspnoea)

इसमें श्वासकष्ट के वेग बार बार आते हैं। यह हृद्रोग में देखा जाता है, विशेषतः हृत्मांसपेशीक्षय में। ऐसे रोगियों में जिनका प्रधान लक्षण केवल पौनः पुनिक श्वासकष्ट हो, यदि यह हृदयजनित हो तो परीक्षण से हृदय विस्तृति मिलेगी। अन्य कारणों से उत्पन्न में विस्तृति नहीं मिलती है।

अन्य कारण—

(१) रात्रि में रोगी की निद्रा भंग कर आने वाला श्वास कष्ट का यह प्रकार साधारणतया जीर्ण वृक्कशोथ (chronic nephritis) का प्रथम लक्षण माना जाता है। यह हृदय वृक्ककार्य क्षय (cardio-renal failure) का असाधारण लक्षण माना जाता है।

(२) अनूर्जताजन्य श्वास, स्वरयन्त्राक्षेप (laryngismus stridulus) तथा कुक्कुरकास (whooping cough) में इस प्रकार के वेग आते हैं।

(३) नाड़ीविषमयता जन्य श्वासकष्ट (neurotic dyspnoea) कुछ वातिक प्रकार के रोगियों (neurotic patients) में श्वास के वेग देखे जाते हैं। यह निन्द्रा की अवस्था में अथवा जब रोगी सोचता हो कि उसे कोई नहीं देख रहा है, तो इन अवस्थाओं में अधिकतर हो जाया करता है।

(४) रक्तवाहिनी विस्फार तथा उरोगुहागत अर्बुद।

(५) तीव्र फुफ्फुस शोथ (acute pulmonary oedema)।

(६) बालग्रैवेयक (thymus) ग्रन्थि की वृद्धि।

(७) श्वासनली गत शल्य, बालकों में ग्रसनिका पश्चात् भाग में विद्रधि तथा स्वरयन्त्रगत अर्बुद (polypi or papillomata)।

(८) अन्ननलिका के विदीर्ण हो जाने से वमन के साथ श्वास कष्ट का तीव्र वेग आता है। यह श्वास कष्ट वातो रस (pneumothorax) के कारण होता है।

(९) फिरंगी खंजता (tabis dorsalis) जन्य स्वरयन्त्र विषमयता (laryngeal crises) में भी पौनःपुनिक प्रकार का श्वास कष्ट देखा जाता है।

श्वास-अनेक रोगों में लक्षण —

कोई भी लक्षण एक स्वतन्त्र रोग हो सकता है तथा किसी रोग विशेष का लक्षण[1] हो सकता है। यदि लक्षण विशेष की सत्ता स्वतन्त्र प्रकार की होती है तब उसे रोग की संज्ञा दी जाती है परन्तु जब लक्षण मुख्य रोग के आधीन रहता है और परतन्त्र रहता है, तब इस अवस्था में उसे लक्षण कहते हैं। अनेक रोगों का एक लक्षण हो सकता है और रोग विशेष का भी एक लक्षण हो सकता है[2]। एक ही रोग के अनेक लक्षण तथा अनेक रोगों के अनेक लक्षण हो सकते हैं। श्वास भी रोग का लक्षण दोनों अवस्थाओं में देखा जाता है। अपने विशिष्ट निदानों से जब दोष प्रकुपित होकर प्राणवह स्रोतों में आविष्ट हो जाते हैं तब तो यह विशिष्ट रोग होता है, परन्तु जब अन्य रोगों में उनके अन्य लक्षणों के साथ ही श्वास भी एक लक्षण होता है, तब इसे लक्षण कहते हैं। श्वास रोग के विशिष्ट निदान पूर्व रूपादि का विवरण आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

निम्नांकित रोगों में लक्षण के रूप में श्वास देखा जाता है।

१. कफज्वर, २. हीनपित्तकफमध्यवाताधिक-सन्निपात ज्वर. ३. कफहीन पित्तमध्यवाताधिक सन्निपात ज्वर, ४. सामान्य सन्निपात ज्वर, ५. साहसजन्य यक्ष्मा, ६. सन्धारण जन्य यक्ष्मा, ७. क्षय-जन्य यक्ष्मा, ८. एकादश रूप राजयक्ष्मा ९. वातिक गुल्म, १०. कफोदर, ११. प्लीहोदर, १२. बद्धोदर, १३. छिद्रोदर, १४. जलोदर, १५. सहजार्श, १६. वातिक ग्रहणी, १७. पाण्डु रोग का सामान्य लक्षण १८. कफज पाण्डु रोग, १९. क्षतज कास, २०.-वातज पक्वातिसार, २१. त्रिदोषज छर्दि. २२. वातज विसर्प २३. वातपित्तज विसर्प, २४. औपसर्गिक तृष्णा, २५. कफस्थानगतविष २६. वातजमदात्यय, २७. मदात्यय के सामान्यलक्षण, २८. आमाशय-गत वात, २९. प्राणावृत उदान, ३०. उदानावृत अपान, ३१. कफावृत प्राण, ३२ पितावृत उदान, ३३. असम्यक्कृत निरुह, ३४. हृदयाभिघात, ३५. अपतन्त्रक, ३६. शिरोभिघात तथा अन्यअनेक। (चरक)

३७. अर्शसां पूर्वरूपः, ३८. प्लीहविद्रधि, ३९. यकृद्विद्रधि, ४०. सान्निपातिक नाड़ी रोग, ४१. कण्ठशुण्डी, ४२. धातुपाक, ४३. स्वरघ्न, ४४. कोष्ठभिन्नता, ४५. दर्वीकर विष, ४६. विष का सप्तमवेग, ४७ तीक्ष्णकीटक दष्ट, ४८. लूताविष, ४९. नासापरिशोष, ५०. वातज उदावर्त, ५१. पक्वाशयज उदावर्त तथा अन्य। (सुश्रुत), ५२. दूषीविष, ५३. वस्तिकुण्डत तथा अन्य। (माधवनिदान)।

---

[1] ज्ञानार्थं यानि चोक्तानि व्याधिलिगानि संग्रहे।
व्याधयस्ते तदात्वे तु लिंगानीष्टानि नामयाः॥
(च. नि. ८-४१)

ये निदान स्थाने ज्ञानार्थं प्रधानभूत ज्वरादिज्ञानार्थं व्याधयः सन्ति तेऽविपाकारुच्यादयः स्वातंन्त्रेयेणोत्पद्यमाना व्याधय एव व्याधित्वेनैव व्यपदेष्टाइत्यर्थः। तदात्वे तु लिगानीति यदा ज्वरादि परतन्त्रा जायन्तेऽरुच्यादयः तदा पारतन्त्र्याल्लिङ्गान्येव ते नामयाः। चक्रपाणि।

[2] लिगं चैकमनेकस्य तथैवैकस्यलक्ष्यते।
बहून्येकस्य च व्याधेर्बहूनांस्युर्बहूनि च॥
(च. नि. ८-२८)

श्वास अनेक रोगों में उपद्रव--

रोगारम्भक दोष प्रकोप से उत्पन्न परन्तु रोगों से इतर जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उसे उपद्रव[1] कहते हैं। रोग प्रकरण में उपद्रव का बराबर ही ध्यान रखा जाता है। क्योंकि तीव्र उपद्रवों से युक्त रोग असाध्य अथवा कष्ट साध्य हो जाता है। चिकित्सा की दृष्टि से भी यदि उपद्रव बलवान हो तो सर्वप्रथम उपद्रव की ही चिकित्सा की जाती है।

श्वास भी अनेक रोगों में देखा जाता है। अनेक रोगों में जो सामान्य[2] उपद्रव उत्पन्न हो जाया करते हैं। उनमें श्वास भी एक प्रधान उपद्रव है। आचार्य सुश्रुत ने रोगों के सामान्य उपद्रवों (जिसमें श्वास भी अन्यतम है) का निर्देश करते हुए लिखा है कि इन उपद्रवों से युक्त हो जाने पर रोग असाध्य हो जाता है।

अतएव सिद्धि चाहने वाले वैद्यों को इन उपद्रवों से युक्त रोगियों की चिकित्सा छोड़ देनी चाहिए। यद्यपि श्वास सामान्यतया सभी रोगों का उपद्रव हो सकता है तथापि निम्नांकित रोगों में विशिष्ट रूप से निर्देश मिलता है।

(१) ज्वर, (२) अतिसार, (३) यक्ष्मा, (४) गुल्म, (५) रक्तपित्त, (५) ग्रन्थि विसर्प, (७) वातरक्त, (८) वातव्याधि, (९) गतगतु, (१०) विद्रधि, (११) व्रण, (१२) कुम्भकामला, (१३) छर्दिरोग, (१४) तृष्णारोग, (१५) वातज प्रमेह, (१६) शोथरोग, (१७) मसूरिका इत्यादि।

अरिष्ट लक्षण के रूप में श्वास—

जिन लक्षणों द्वारा नियत मरण का ज्ञान होता है उसे अरिष्ट लक्षण कहते हैं[1]। अरिष्ट लक्षण की उत्पति के बाद मृत्यु निश्चत ही होती है। जिस प्रकार भविष्य में होने वाले फल का पूर्वरूप फल (पुष्प) होता है उसी प्रकार मृत्यु का ज्ञापक पूर्व रूप अरिष्ट लक्षण होता है[2]। कुछ फल ऐसे हो सकते हैं जो बिना पुष्प के उत्पन्न हो जाय परन्तु मृत्यु बिना अरिष्ट लक्षणों के नहीं होती और अरिष्ट लक्षण उत्पन्न होने पर मृत्यु अवश्य ही होती है[3]।

इस सम्बन्ध में आचार्य सुश्रुत का मत है कि यद्यपि अरिष्ट लक्षणों के बाद मृत्यु निश्चित होती है तथापि विपुल विमल बुद्धि वाले ब्राह्मण, तपस्वी-पुरुष, सिद्ध मन्त्र चिन्तक योगी एवं रसायन सेवन से मृत्यु को रोका जा सकता है।

श्वास भी कई स्थलों पर अरिष्ट सूचक लक्षण हो जाता है। ऐसे श्वासरोगी या अन्य रोगों में उत्पन्न श्वास से पीड़ित रोगी अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं। यथा—

(१) जो रोगी गले से अस्पष्ट शब्द कूजन करता हो, अत्यधिक श्वास लेता हो, पतला दस्त हो बलहीन हो, बार-बार अत्यधिक प्यास लगती हो एवं मुख अन्दर से शुष्क हो गया हो तो वह

उपद्रवस्तु खलु रोगोत्तरकालजो रोगाश्रयो रोग एवं स्थूलोऽणुर्वा रोगात्पश्चाज्जायत इति उपद्रव संज्ञः।
(च, चि. २१)

(२) प्राणमांसक्षयश्वासतृष्णाशोषवमीज्वरैः ।
मूर्च्छातिसारहिक्काभिः पुनश्चैतैरुपद्रुता ॥
वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥
(सु. सू. अ. ३३)

१-(क) नियतमरणाख्यापकं लिंगमरिष्टम् ।
(मा. नि. मधुकोष)

(ख) रोगिणो मरणं यस्मादावश्यं भावि लक्ष्यते।
तत्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टं चाऽपितउच्यते ॥
(भा. प्र. पू.)

(२) पुष्पं यथा पूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः ।
तथा लिंगमरिष्टांख्यं पूर्वरूपं मरिष्यतः ॥
(च, इ. अ. २-२)

(३) ध्रुवं तु मरणं रिष्टे ब्राह्मणैस्तत किलामतैः।
रसायनतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्यते ॥
(सु. सू. अ. २८-२)

जीवित नहीं रहता[1]।

(२) जिस व्यक्ति का प्रश्वास छोटा हो गया हो, अत्यधिक कष्ट के कारण टेढ़ा-मेढ़ा होकर हिलता जुलता हो तो वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त करता है[2]।

(३) जिसे ऊर्ध्वश्वास हो गया हो, कफ से कण्ठ जकड़ गया हो, वर्ण बल एवं आहार हीन हो गये हों, तो वह मृत्यु को प्राप्त करता है[3]।

(४) जो मनुष्य प्रश्वास दीर्घ लेता हो, एवं उच्छ्वास छोटा हो गया हो, आंखों के आगे अंधेरा छा जाता हो तो उसे गतायु समझना चाहिये[4]।

(५) जिसे उर्ध्वश्वास हो गया हो, शरीर की उष्मा समाप्त हो गई हो, वङ्क्षण प्रदेश में तीव्र शूल होता हो एवं किसी भी स्थिति में आराम नहीं प्राप्त हो तो ऐसे रोगी की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए[5]।

(६) वायु जब प्रकुपित होकर वंक्षण एवं गुद प्रदेश में शूल उत्पन्न करता हुआ तीव्र श्वासकष्ट करे तो वह सद्योघातक होता है।[6]

(७) तृष्णा, श्वास, शिरोरोग, मोह, दौर्बल्य कूजन एवं द्रव मल प्रवृत्ति से युक्त रोगी शीघ्र ही प्राण त्याग करता है[7]।

(८) जिसके शरीर की उष्मा अल्प हो गई हो, मूत्र एवं पुरीष ग्रथित रूप में निकलता हो, अग्नि मन्द हो गई हो, तथा श्वास रोग से पीड़ित हो तो वह मृत्यु को प्राप्त होता है[8]।

(९) श्वास रोगी यदि स्वप्न में मार्ग गमन करे तो उसे अरिष्ट लक्षण समझना चाहिए[9]।

(१०) श्वास एवं कासरोग से पीड़ित रोगी को यदि अतिसार ज्वर, हिक्का, छर्दि, अण्डशोथ एवं मेहनशोथ उपस्थित हो जाय तो उसे मृत ही समझना चाहिये[10]।

(११) अति तीव्र दाह, पसीना आना, हिक्का एवं श्वास, ये बलवान मनुष्यों को भी मार डालते हैं[11]।

(१२) जिस पुरुष का उच्छ्वास अति दीर्घ या अति ह्रस्व हो, उच्छ्वसन के साथ सुगन्ध या दुर्गन्ध निकलता हो तो उसकी आयु केवल एक वर्ष की शेष है ऐसा समझना चाहिये[12]।

---

(१) प्रकुजति प्रश्वसिति शिथिलं चातिसार्यते ।
बलहीनः पिपासार्तः मुष्कास्योन स जीवति ॥
(च. इ. अ. ७)

(२) ह्रस्वं च यः प्रश्वसिति न्याविद्धं स्पन्दते च यः।
मृत एव तमात्रेयो व्याचचक्षे पुनर्वसुः ॥
(च. इ. अ. ६)

(३) उर्ध्वं च यः प्रश्वसिति श्लेष्मणा चाभिभूयते ।
हीनवर्णबलाहारो यो नरो न स जीवति ॥
(च. इ. अ. ६)

(४) दीर्घमुच्छ्वस्य यो ह्रस्वं नरो निश्वस्य ताम्यति ।
उपरुद्धायुषं ज्ञात्वा तं धीरः परिवर्जयेत् ॥
(च. इ. अ. ८)

(५) उर्ध्वश्वासगतोष्माणं सूलोपहतवंक्षणम् ।
शर्म चानधिगच्छन्तं बुद्धिमान्परिवर्जयेत् ॥
(च. इ. अ. ९)

(६) वंङ्क्षणं च गुदं चोभे गृहीत्वामारुतो बली ।
श्वासं सञ्जनयन्जन्ताः सद्योमुष्णाति जीवितम् ॥
(च. इ. अ. १०)

(७) तृष्णाश्वासशिरोरोगमोहदौर्बल्य कूजनैः ।
स्पृष्टः प्राणान्जहात्याशु शकृदभेदेन चातुरः ॥
(च. इ. अ. १०)

(८) यध्य मूत्रं पुरीषं च ग्रथितं संप्रवर्तते ।
निरुष्मणो जठरिणः श्वसनो न स जीवति ॥
(च. इ. अ. ६)

(९) अध्वा श्वास पिपासयोः । (सु. सू. २९-६०)

(१० अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूनाण्डमेढता ।
श्वासिनः कासिनो वापि यस्य तं क्षीणमादिशेत् ॥
(सु. सू. अ. ३१)

(११) स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्काश्वासश्च मानवम् ।
बलवन्तमपि प्राणैर्वियुंजन्ति न संशयः ॥
(सु. सू. अ. ३१)

(१२) ह्रस्वो दीर्घोतिनोच्छ्वासः पूतिः सुरभिरेववा ।
……………वर्षान्तं तस्य जीवितम् ॥
(अ. हृ. शा. ५-२६)

श्वास रोग में दोष, दूष्य तथा अधिष्ठान–

दोष—सामान्यतया सभी संहिताकारों ने कफ तथा वात को श्वास रोग का आरम्भक दोष[1] माना है। जिस प्रकार पित्त दोष ज्वर का और वात दोष गुल्म का आरम्भक कारण माना जाता है, उसी प्रकार कफ एवं वात दोष सम्मिलित श्वास रोग के आरम्भक कारण हैं। ज्वर आदि रोगों में एक दोष की प्रधानता रहती है अर्थात् पित्त के बिना ज्वर नहीं हो सकता तथापि वात ज्वर, कफज्वर वातकफज्वर, वातपित्तज्वर इस प्रकार रोगों का भेद किया जाता है। श्वास रोग के विभाग में इस प्रकार दोषानुकूल वर्गीकरण नहीं किया गया है। रोग के स्वरूप एवं गाम्भीर्य के आधार पर महाश्वास, ऊर्ध्व श्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास एवं क्षुद्रश्वास ये नामकरण कर दिये गये हैं। श्वास भेदों में किसमें किस दोष विशेष की प्रधानता रहती है, इसका उल्लेख चरक एवं सुश्रुत आदि संहिताग्रन्थों में नहीं मिलता। सुश्रुत के टीकाकर आचार्य[2] डल्हण ने तन्त्रान्तर का एक श्लोक उद्धृत किया है जिससे यह प्रतीत होता है कि तमकश्वास कफदोष प्रधान, छिन्नश्वास पित्तदोष प्रधान तथा अन्य तीन वातदोष प्रधान होते हैं।

दूष्य—रस रक्तादि धातु एवं स्वेद मूत्र पुरीषादि मलों की संज्ञा आयुर्वेद में दूष्य नाम से की गई है। दोष प्रकुपित होकर दूष्य के साथ मिल जाते हैं और दोनों ही मिलकर मूर्च्छित से हो जाते हैं। इसी अवस्था को दोषदूष्य सम्मूर्च्छना कहते हैं। चतुर्थ क्रियाकाल स्थानसंश्रय की अवस्था में दोषदूष्य सम्मूर्च्छना होती है और इसके बाद रोग लक्षण प्रकट होते हैं। दोषों के संचय, प्रकोप एवं प्रसर की अवस्थाओं में भी कुछ लक्षण विशेष उत्पन्न होते हैं किन्तु ये लक्षण ही कहे जा सकते हैं और दोषजनित होते हैं। लक्षणों का रोग के रूप में प्रादुर्भाव दोष दूष्य सम्मूर्च्छना के बाद ही होता है अतः व्याध्युत्पत्ति में दूष्य अपना विशिष्ट महत्व रखता है।

श्वास रोग में रसादि धातु दूष्य है। चरक ने लिखा है कि श्वास रोग में रसादि धातुओं का उपशोषण[1] होता है अतएव यह निश्चित है कि रसादि धातुओं की दुष्टि इस रोग में होती है। पूर्वरूप एवं रूप में विशेष रूप से रस दुष्टि के लक्षण देखे जाते हैं। भक्तद्वेष, मुखवैरस्य एवं हृत्पीडा ये श्वास रोग के पूर्वरूप में उत्पन्न होते हैं और रसप्रदोषज व्याधियों में इन लक्षणों की गणना की गई है। श्वासरोग में प्राणवहस्रोतों का अवरोध और कफ की अधिकता ये लक्षण पाये जाते हैं और रस की दुष्टि के बाद ही कफ का अधिक निर्माण सम्भव है क्योंकि कफ रसधातु का मल है। स्रोतसां रोधः भी रसदुष्टि जन्य लक्षण है। अग्निमान्द्य, तम एवं अरुचि भी श्वास रोगियों में देखा जाता है अतएव अन्य धातुओं के साथ विशेष रूप में रसधातु की दुष्टि होती है।

अधिष्ठान – श्वास रोग का अधिष्ठान प्राणवहस्रोत है समस्त श्वसनयन्त्र का ग्रहण प्राणवहस्रोतों में ही हो जाता है। प्राणवहस्रोत जब कफावृत हो जाते हैं तब मार्ग की संकीर्णता के कारण वायु के आवागमन में बाधा उपस्थित होकर श्वास रोग की उत्पत्ति होती है। अपस्तम्भ प्रतान तथा अनिलायनों में प्रधान रूप से अवरोध पाया जाता है।

वाग्भट ने प्राणवह स्रोत के साथ ही उदकवह एवं अन्नवह स्रोतों की दुष्टि का भी निर्देश किया है अतिवृद्ध पिपासा एवं तालु, क्लोम, ओष्ठ, जिह्वा आदि के सूखने से उदकवह स्रोतों की दुष्टि का अनुमान लगाया जाता है। तरल अंश की शरीर में कमी हो जाने पर वायु की वृद्धि सम्भव

---

(१) कफवातात्मकावेतौ············च-चि-अ- १७

(२) क्षुद्रको वातिकः श्लेश्मभूयिष्ठो तमकस्मृतः।
छिन्नः पित्त प्रधानस्यादन्यौ मारुतकोमजी॥
सु-उ-५१-४ पर डल्हण।

(१) हृदयस्य रसादीनां धातुनां चोपशोषणौ।
च-चि-अ १७

है जिसकी दुष्टि से श्वास रोग भी हो सकता है। अन्नवह स्रोत से मुख से लेकर क्षुद्रान्त्रपर्यन्त भाग का ग्रहण होता है और इस प्रकार मुख, अन्न नलिका, आमाशय तथा ग्रहणी का अन्तर्भाव अन्नवह स्रोतों में होता है। अन्नवह स्रोतों की दुष्टि से प्राणवह स्रोतों की दुष्टि होकर श्वास रोग की उत्पत्ति होती है और इसी लिए आचार्यों ने इस रोग का जन्म स्थान आमाशय बताया है।

पित्तस्थानसमुद्भवम् आमाशयसमुद्भवम् वा।

आचार्य चरक तथा वाग्भट्ट ने श्वास को पित्तस्थान[1] समुद्भव तथा आमाशय समुद्भव[2] माना है। वात एवं कफ ये दोनों दोष श्वास रोग के आरम्भक कारण हैं और पित्त स्थान के साथ इस रोग का सम्बन्ध है। पित्त आरम्भक दोष न होते हुए भी प्रारंभ में पित्तस्थान में अवश्यमेव दुष्टि होती है और तभी इस रोग की उत्पत्ति सम्भव है। अरुणदत्त[3] ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि आमाशय इस रोग का समुद्भव अर्थात् जन्म स्थान है अत: जो औषधियां वातजित्, दीपन तथा पाचन हों वह इस रोग के लिये प्रशस्त हैं। आमाशय के दो विभाग बताये गये हैं। ऊर्ध्व आमाशय और अधो आमाशय। ऊर्ध्व आमाशय कफ का एवं अधो आमाशय प्रधान रूप से पित्त का स्थान माना जाता है। चरक ने आमाशय में भोजन का पाचन तथा शोषण भी बताया है अतएव आमाशय शब्द से ग्रहणी[4] पर्यन्त आमाशय का ग्रहण हो जाता है। पाचन के कार्यों में यकृत् का भी महत्व पूर्ण भाग होता है और पित्तनलिका (Bile duct) के द्वारा ग्रहणी तथा यकृत् का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। अवस्था पाक के बाद आहार रस का अपने अपने धात्वग्नियों द्वारा पाक होता है और तभी धातुओं का निर्माण होता है। इस धातुपाक प्रक्रिया का कार्य भी विशिष्ट रूप से यकृत् में देखा जाता है अतएव इस पित्तस्थान के अन्तर्गत यकृत् का भी अन्तर्भाव हो जाता है।

(१) अरुणदत्त ने दीपन तथा पाचन औषधियों का विशेष महत्व इस रोग के लिए बताया है अतएव यह प्रमाणित है कि श्वास रोग में अग्नि की मन्दता होती है और उसी को दूर करने के दृष्टिकोण से दीपन तथा पाचन औषधियां प्रशस्त हैं।

(२) आमाशय में लवणाम्ल (Hydrochloric acid) नामक जो पाचक पूर्वांश होता है उसकी कमी[1] प्राय: सभी श्वास रोगियों में पाई जाती है। प्रयोगों द्वारा[2] यह प्रमाणित किया गया है कि ६ प्रतिशत श्वास के रोगियों में भोजन के आधे घण्टे बाद तक भी लवणाम्ल की उपस्थिति नहीं होती। ४८ प्रतिशत रोगियों में अत्यल्प मात्रा में

---

[1] कफवातात्मकावेतौ पित्तस्थानसमुद्भवौ।
च·चि-अ- १७

[2] उरस्थ: कुरुते श्वासमामाशयसमुद्भवम्॥
(अ-हृ-नि-अ-४)

[3] आमाशयात् समुद्भवोजन्म यस्य तमामाशयद्भवम्।
शास्त्रकारौश्चैवं विधां सम्प्राप्ति दर्शयन् यदौषधं
वातजित् पाचन दीपनं तदत्रशस्तमिति द्योतयति।
(अरुणदत्त)

[4] आमाशयगत: पाकमाहार: प्राप्य केवलम्।
पक्व: सर्वाशयम् पश्चाद्धमनीभि: प्रपद्यते॥
(च-वि-२-२५)

1. As the cammonest couse of indigestion in an Asthmatic is a deficient secretion of Hydrochloric acid,

   British Encyclopedia of Medical Practice.

2. In 9 percent of the cases there was a complete absense of hydrochloric acid over a period of two and three quarter hours following the meal. In 48 percent there was prononced hypochlorhydria, and in 23 percent a mild hypochlorhydria. Thus in 4 out of every five asthmatic children the respon:e of acid gastric secretion was below the average normal.

   Recent Advances in Allergy by Bray. P. 165.

लवणाम्ल की उपस्थिति पाई गई और २३ प्रतिशत रोगियों में सामान्य मात्रा से अल्प। इस प्रकार श्वास के प्रति पांच रोगियों में ४ रोगियों के आमाशय में लवणाम्ल की उपस्थिति अल्प देखी गई। लवणाम्ल की कमी के साथ ही क्लेदक कफ (mucus) की मात्रा का आधिक्य पाया गया।

'ब्रे' नामक श्वास रोग विशेषज्ञ ने श्वास के अनेक रोगियों पर कृत्रिम रूप से बनाये गये तरल लवणाम्ल का प्रयोग[1] बच्चों में ३० से ६० बून्द तक एवं युवा व्यक्तियों में और अधिक मात्रा के रूप से प्रतिदिन तीन बार नारंगी या नीम्बूस्वरस के साथ किया और इस प्रयोग से रोगी में तत्काल लाभ प्रारम्भ हो गया। रोगी की अग्नि बढ़ने लगी। शरीर भार में आधिक्य होने लगा और पूर्वापेक्षया अधिक निन्द्रा आने लगी। श्वास के वेग का काल अल्प होने लगा और बार बार आने वाले वेगों में कमी होने लगी। साथ ही तीन से चार महीने तक के निरन्तर प्रयोग से रोगी को स्थायी लाभ हो गया।

(३) श्वास के रोगियों की पाचन शक्ति मन्द हो जाती है। अनेक रोगियों में आमाशयिक अन्तःकला में शोथ हो जाता है और आमाशयिक लवणाम्ल के स्राव की कमी होजाती है[2]। पाचक रसों की इस प्रकार अल्पता हो जाने पर पाचन की क्रिया भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाती और फलस्वरूप आमरस की उत्पत्ति होती है। यह आमरस श्वास के वेगों को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(४) श्वास के रोगियों में यह देखा जाता है कि यदि उन्हें गरिष्ठ अथवा मात्राधिक भोजन दिया जात तो शीघ्र ही अरति सी होने लगती है और श्वास के वेग भी आजाते हैं लेकिन यदि भोजन की व्यवस्था ठीक रही और पाचन शोषण तथा मलक्रिया ठीक चलती रही तो लाभ रहता है।

स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्रस्थ आतुरालय में चिकित्सित अनेक श्वास रोगियों में यह पाया गया है कि जब जब उन्हें विबन्ध हुआ तब तब उन्हें श्वास का वेग भी बढ़ता रहा और यदि कोष्ठशुद्धि रखी गई तो तात्कालिक लाभ होता रहा। अतएव सामान्य पाचन की प्रक्रिया से इस रोग का महत्व पूर्ण सम्बन्ध है।

(५) आमाशय, ग्रहणी, हृदय एवं फुफ्फुस आदि अंगों में प्राणदा (vagus) नाम की नाड़ी की शाखायें जाती हैं और यदि आमाशय में किसी कारण से प्राणदा नाड़ी क्षोभ होता है तो उसका प्रभाव फुफ्फुस स्थित उन नाड़ियों पर होना भी स्वाभाविक ही है। इस प्रकार प्राणदा नाड़ीक्षोभ से अपस्तम्भीय मांस पेशियों में संकोच होकर

---

[1] Says Bray:--

I employ dilute hydrochloric acid (B. P.) in dose of 30 to 90 minims three times a day in orange or lemon juice in children, and even more larger doses for adults. I have found an immidiate improvement in appetite, an increase in weight and much sounder sleep. The attacks becomes progressively shorter in duration, less in intensity, diminished in frequency, and after some three to four months cease.

Recent Advances in Allergy by Bray. P. 169.

[2] There are many possible explanations of this deficient secretion. It may be due to a pathologic effect, the result of a chronic gastritis that frequently complicates or succeeds severe illness.

Recent Advances in Allergy Page-166.

श्वास वेग उत्पन्न हो सकता है[1] । अतएव इस दृष्टिकोण से भी आमाशय समुद्भवम् का अत्यन्त महत्व है।

(६) यकृत् भी इस क्रिया में अपना विशिष्ट महत्व रखता है । आयुर्वेद में यकृत् को पित्तस्थान बताया गया है तथा विशेषतया रंजक पित्त[2] का। आप्य रस जब यकृत् एवं प्लीहा में पहुँचते हैं तो उनका राग होता है और राग होने के बाद रस की रक्त संज्ञा होती है। रक्तवह स्रोतों का मूल भी यकृत् माना गया है। यकृत् रक्त का प्रधान स्थान है और वहां से ही अन्य रक्त स्थानों का अनुग्रह होता है[3]। शाखाश्रित कामला के लक्षणों में श्वेत वर्चा यह लक्षण चरक ने बताया है और इसकी टीका में आचार्य चक्रपाणि ने लिखा है कि कोष्ठस्थ मलरंजक पित्त के बहिर्निर्गम न होने के कारण तथा श्लेष्मा के वृद्ध होने के कारण श्वेत वर्चा होता है[4]। यह कोष्ठस्थ मलरंजक पित्त यकृत् में ही बनता है और पित्त कोष में संचित होता रहता है।

जितने परिमाण की आवश्यकता होती है उतने परिमाण में यह पित्त नलिका द्वारा ग्रहणी में आकर खुलता है जिससे पाचन में सहायता होती है और मल का रंजन भी होता है। इस प्रकार यकृत मल रंजक पित्त का भी मूल स्थान है।

आधुनिक दृष्टिकोण से यकृत शरीर का एक अत्यन्त ही महत्व पूर्ण अंग है। इस के निम्नांकित महत्वपूर्ण कार्य है।

१. पित्त (Bile) का निर्माण २. गर्भस्थ बालक में रक्त का निर्माण ३. फाईब्रिनोजिन, प्रोथोम्बिन तथा हिपेरीन का निर्माण, ४. लोह एवं ताम्र का संचय, ५. रक्तराशि नियन्त्रण, ५. विषनिर्हरण, (Detoxication) ७. प्रोभूजिन सात्मीकरण, ८. वसासात्म्यीकरण ९. शाकतत्व (carbohydrate) सात्म्यीकरण, १०. ताप की उत्पत्ति, ११. जीवतिक्ती अ (vitamin A) का निर्माण, १२. जीवतिक्ती ब का संचय इत्यादि ।

इस प्रकार भोजन के सात्म्यीकरण में यकृत् का कार्य अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। प्रोभूजिन का पाचन जब ठीक प्रकार से नहीं हो पाता और विजातीय प्रोभूजिन रक्त में उपस्थित रहते हैं तो अनूर्जता की स्थिति हो जाती है जो आधुनिक दृष्टिकोण से श्वास रोग का एक महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। यदि यकृत् के कार्य सुव्यवस्थित हों तो अनूर्जता की स्थिति उत्पन्न ही नहीं हो सकती और इस प्रकार श्वास रोग के उद्भव में यकृत् के कार्यों में कमी का महत्व देखा जा सकता है।

धातुपाक की प्रक्रिया (process of metabolism) काल में उत्पन्न विषस्थिति (toxic state) को दूर करने का कार्य भी यकृत् का ही है और यदि यह विष की स्थिति दूर नहीं हो सकी तो श्वास की सम्भावना रहती है। हेजेल्टिन

---

[1] Since the stomach & upper intestinal tract are supplied by the vagus nerve, gastric distension may irritate the vagus & so set up a reflex bronchial spasm.

British Encyclopidia of Medical Practice.

२—पित्तस्य स्थानं यकृत् प्लीहानौ ।

(सू-सू-२१-७)

यतु यकृत् प्लीहनोः पित्तं तस्मिन् रंजकोऽग्निरिति संज्ञा। स रसस्य रागकृदुक्तः । (सू-सू-२१-१०)

३—रक्तवहानां स्रोतसां यकृन्मूलं प्लीहा च ।

(च-वि-अ-५-८)

शोणितस्य स्थानं यकृत्प्लीहानौ, तच्च प्रागमिहितं तत्रस्थमेव शेषाणां शोणितस्थानानांमग्रहं करोति ।

सु-सू-२१-१६)

४--श्वेतवर्चा इति, कोष्ठस्थ पित्तस्य मलरजकस्य बहिर्निर्गमात् वृद्धेन श्लेष्मना श्वेतवर्चा भवति ।

[च-चि-अ-१६-१२६-पर चक्रपाणि]

(Haseltine)[1] नामक श्वास रोग विशेषज्ञ ने सभी श्वास रोगियों में विषस्थिति पाई और यह विष स्थितिदो कारणों से थी ।

(१) धातुपाक की प्रक्रिया काल में उत्पन्न ।

(२) उपसर्ग के स्थान से प्रसरित ।

पेने एवं ब्रे नामक वैज्ञानिकों ने श्वास के रोगियों पर जो विभिन्न प्रकार के प्रयोग किये हैं, उन प्रयोगों से भी यह सिद्ध होता है कि इस रोग में यकृत् के कार्यों में अपूर्णता देखी जाती है[2] ।

श्वास रोग का वर्गीकरण —

(१) सामान्यत: आगन्तुक शारीर, मानस और स्वाभाविक इन भेदों से व्याधियों के चार प्रकार होते हैं । जो व्याधि अन्न पान, काल एवं इन्द्रियार्थ आदि के अयोग, अतियोग, हीनयोग एवं मिथ्या योग आदि कारणों से वात, पित्त एवं कफ के वैषम्य हो जाने के कारण उत्पन्न होते हैं उन्हें शारीर या निज व्याधि कहते हैं और इस प्रकार श्वास रोग भी शारीर या निज व्याधि के अन्तर्गत आता है क्योंकि विभिन्न ८ प्रकार के मिथ्याहार विहारादि कफ एवं वात को दुष्ट करके प्राणवहस्रोत में विकृति लाकर श्वास रोग उत्पन्न करते हैं[3] ।

(२) दोष प्रकोप की संख्या के आधार पर दो प्रकार की व्याधियों की गणना की है । सामान्यज और नानात्मज । जो रोग एक दोष दो दोष या तीनों दोषों के प्रकोप के कारण उत्पन्न हो सकते हैं उन्हें सामान्यज और केवल एक दोष के कारण उत्पन्न व्याधि को नानात्मज व्याधि कहते हैं। श्वास रोग सामान्यज व्याधियों के अन्तर्गत गृहीत होता है क्योंकि सम्मिलित रूप से कफ एवं वात दोनों ही दोष दुष्ट होते हैं[1]।

(३) अधिष्ठान भेद से व्याधियों के दो प्रकार होते हैं[2]--

१. शरीराधिष्ठान और २. मनोधिष्ठान। श्वास रोग का अधिष्ठान शरीर ही है और शारीरिक दोषों के प्रकोप से ही यह व्याधि उत्पन्न होती है ।

(४) प्रभाव भेद से व्याधियों के प्रथमतः दो प्रकार किये गये हैं-(१) साध्य और (२) असाध्य साध्य के भी दो भेद होते हैं-(१) सुखसाध्य और (२) कृष्टसाध्य । असाध्य व्याधियों के दो भेद होते हैं-(१) याप्य और (२) प्रत्याख्येय । जिसके हेतु पूर्वरूप एवं रूप अल्प हों, दोष एवं दूष्य के गुण समान नहीं हों, रोगारम्भक दोष रोगी की प्रकृति नहीं हो, दोष के गुण हेमन्त आदि काल के समान नहीं हों, रोग का मार्ग एक हो, एक दोष से उत्पन्न व्याधि हो, रोग नवीन हो, उपद्रवों से युक्त न हो, रोगी सर्वौषधक्षम हो और चिकित्सा के चारों पाद यथावत हों तो उसे सुखसाध्य कहते हैं ।

श्वास रोग का एक प्रकार क्षुद्रश्वास सुखसाध्य के अन्तर्गत ही आता है क्योंकि इसके लिए विशेष

---

[1] All patients showing symptoms of asthma are in an abnormal condition of the kind generally designated as a toxicosis or a toxic state .... either (A) engered by the normal process of metabolism or (B) absorved from a focus of infection.

Recent Advances in Allergy Page. 124.

[2] Liver function fests indicate some hepatic insufficiency. Recent Advances in Allergy Page- 176.

[3] -ते चतुर्विधा आगन्तवः, शारीरा, मानसा, स्वाभाविकाश्चेति । शारीरास्त्वनपानमूलावातपित्तकफशोणितवैषम्यनिमित्ताः ।

[1] —तत्र विकारा सामान्यजा नानात्मजाश्च ।
[च० सू० अ० २०]

[2] —त एते मनः शरीराधिष्ठानाः ।
सु० सू० अ० १

तत्र मनोधिष्ठानाः क्रोधादयः, शरीराधिष्ठाना ज्वरादयः, उभयाधिष्ठाना अपस्मारादयः । डल्हण

चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती और स्वतः आराम हो जाया करता है।

निमित्त, पूर्वरूप एवं रूप का बल यदि मध्यम प्रकार का हो, काल, प्रकृति एवं दूष्य में से अन्यतम सामान्य हो, कृच्छ्र देश में उत्पन्न हो द्विमार्गगत हो, चतुष्पाद पूर्ण न हो तथा दो दोषों से उत्पन्न हुआ रोग तो वह कष्ट साध्य होता है।

पथ्य एवं औषधि सेवन से जो रोग दबा हुआ रहता हो परन्तु अल्प कारण भी उपस्थित हो जाने के कारण पुनः रोग उग्र रूप धारण करले। गम्भीर एवं बहु धातुओं में आश्रित हो एवं दीर्घकाल से चला आ रहा हो तो वह रोग याप्य होता है।

तमक श्वास यदि नवीन हो और अल्पलक्षणों से युक्त हो तो कष्टसाध्य होता है परन्तु दीर्घकालानुबन्धी एवं बहुलक्षणों से युक्त होने पर वह याप्य हो जाता है।

जो व्याधि त्रिदोषज हो, क्रियापथ को अतिक्रान्त कर गई हो सम्पूर्ण मार्गों में फैली हुई हो औत्सुक्य, मोह एवं अरति को उत्पन्न करती हो, इन्द्रियों को नाश करने वाली हो एवं अरिष्टलक्षणों से युक्त हो तो उसे प्रत्याख्येय कहते हैं।

महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास एवं छिन्नश्वास ये श्वास रोग के तीन प्रकार प्रायशः प्रत्याख्येय ही होते हैं क्योंकि चिकित्सा से इन रोगों में सफलता प्रायः नहीं मिलती।

आचार्य सुश्रुत ने सभी रोगों का सात प्रकार का वर्गीकरण किया है। (१) आदिवलप्रवृत्त (२) जन्मवलप्रवृत्त (३) दोषवलप्रवृत्त (४) संघातवलप्रवृत्त (५) कालवलप्रवृत्त (६) दैववलप्रवृत्त और (७) स्वभाववलप्रवृत्त[1]।

जो रोग माता पिता के शुक्रबीज दोष से पुत्र-पुत्रियों में संक्रमित हो जाया करता है उसे आदिवलप्रवृत्त कहते हैं।

आधुनिक मतानुसार स्त्रीबीज एवं पुंबीज के मिलन के बाद उसमें स्थित क्रोमेटीन तथा साइट्रोप्लाज्मिक रचनाओं द्वारा अपत्यों में दोषों का संक्रमण हो जाता है और अपत्य में वे रोग उत्पन्न होते हैं।

श्वास रोग का संक्रमण भी आदिवलप्रवृत्त के रूप में देखा जाता है। यद्यपि सुश्रुत में आदिवल प्रवृत्त रोगों के जो उदाहरण दिये हैं उसमें श्वास रोग का नाम नहीं है तथापि उन्होंने उन उदाहरणों को सीमाबद्ध नहीं किया है। कुष्ठार्शः प्रभृतयः में प्रभृति शब्द से श्वास आदि अन्य रोग भी जो माता पिता के शुक्रबीज दोष से संतान में संक्रमित होते हैं, उनका ग्रहण हो जायगा। यहां स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र के आतुरालय में चिकित्सित कई रोगियों में श्वास रोग आदिबलप्रवृत्त रूप में देखा गया है।

मिथ्या आहार विहार के कारण दोषों के वैषम्य से तथा एक व्याधि से जो दूसरी व्याधि उत्पन्न होती है उसे दोषबलप्रवृत्त कहते हैं। आदिबलप्रवृत्त के साथ ही श्वास रोग दोषबलप्रवृत्त भी है क्योंकि कफ एवं वात दोष की विकृति से इस रोग की उत्पत्ति होती है तथा कास आदि रोगों के बाद श्वास रोग हो जाया करता है।

दोषबलप्रवृत्त के भी दो भेद बताये गये हैं। १. आमाशयोत्थ और २. पक्वाशयोत्थ। श्वास रोग आमाशयोत्थ व्याधि है अतएव इसे आमशय समुद्भवम् बताया गया है[1]।

---

[1] —ते पुनः सप्तविधा व्याधयः। तद्यथा—आदिवलप्रवृत्ताः जन्मवलप्रवृत्ताः, दोषवलप्रवृत्ताः, संघातवलप्रवृत्ताः, कालवलप्रवृत्ताः, दैववलप्रवृत्ता, स्वभाववलप्रवृत्ताः इति। —सु० सू० २४

तत्रादिवलप्रवृत्ताः ये शुक्रशोणित
दोषान्वयाः कुष्ठार्शः प्रभृतयः।

१—दोषवलप्रवृत्ता य आतंकसमु-
त्पन्ना मिथ्याहाराचारकृताश्च।
तेपि द्विविधा आमाशय-
समुत्थाः, पक्वाशयसमुत्थाश्च॥
—सु० सू० अ० २४

(६) बलभेद से रोगों के दो प्रकार होते हैं। १. मृदु (अल्पबल) २. दारुण (महाबल)। इसमें क्षुद्रश्वास मृदु व्याधि है और अतिरिक्त श्वास के चार भेद दारुण होते हैं।[1]

(७) निमित्तभेद से व्याधियों के दो प्रकार होते हैं। १-स्वधातु वैषम्यनिमित्त २-आगन्तुनिमित्त जो रोग शरीर को धारण करने वाले वातपित्त एवं कफ इन तीनों दोषों, रसरक्तादि सातधातु, आर्तव-स्तन्य आदि उपधातु एवं पुरीषमूत्र स्वेदादि मलों के वैषम्य से उत्पन्न होते हैं उसे स्वधातुवैषम्यः निमित्त कहते हैं और श्वासरोग भी स्वधातुवैषम्य-निमित ही है[2]।

(८) वाग्भट ने दोषज, कर्मज और दोषकर्मज भेद से व्याधियों के तीन प्रकार बताये हैं। जो व्याधि इस जन्म में किये गये अपचार एवं तज्जन्य दोष प्रकोप के कारण उत्पन्न हो उसे दोषज, दृष्टा-पचारज या दृष्टकर्मज कहते हैं। पूर्वजन्म में किये गये कर्मों के फल के अनुसार इस जन्म में जो व्याधि होती है उसे कर्मज, अदृष्टकमज या पूर्वापचारज कहते हैं। दोषज एवं कर्मज यदि दोनों सम्मिलित हों तो उसे दोषकर्मज कहते हैं[1]।

श्वास रोग के निदानों में पूर्वजन्म में किये कर्मों का उल्लेख भी मिलता है। पिशुन व्यक्ति नरक भोगने के बाद दूसरे जन्म में श्वास काल से युक्त होता है तथा कृतघ्न व्यक्ति भी श्वासकष्ट भोगता है ऐसा उल्लेख मिलता है, अतएव इस दृष्टिकोण से श्वास रोग दोष कर्मज व्याधि है।

(९) चिकित्सा के दृष्टिकोण से व्याधियों के दो भेद होते हैं। १. स्नेहादिक्रियासाध्य एवं २. शस्त्र साध्य। श्वास रोग स्नेहादिक्रियासाध्य है[2]।

---

[1] —द्वे रोगानीके वलभेदेन—मृदु, दारुणं च।

[2] द्वे रोगानीके निमित्तभेदेन-स्वधातुवैषम्यनिमित्तम्, आगतु निमित्तं च। —च. वि. अ. ६

[1] —दृष्टापचारजः कश्चित्, कश्चित् पूर्वापचारजः।
तत्संकराद्भवत्यन्यो व्याधिरेवं त्रिधास्मृतः॥
यथानिदानं दोषोत्थः कर्मजो हेतुभिर्विना।
महारम्भोल्पके हेतावातंको दोषकर्मजः॥
— अ. हृ. सू. १२

कृतघ्नो जायते मर्त्यः कफवान् श्वासकासवान्।
पिशुनो नरकस्यान्ते जायते श्वासकासवान्॥
निदानसहचिकित्सा-श्वासरोगाध्याय

[2] —द्विविधाव्याधयः-शस्त्रसाध्या, स्नेहादिक्रियासाध्याश्च।
—सु. सू. अ. २४

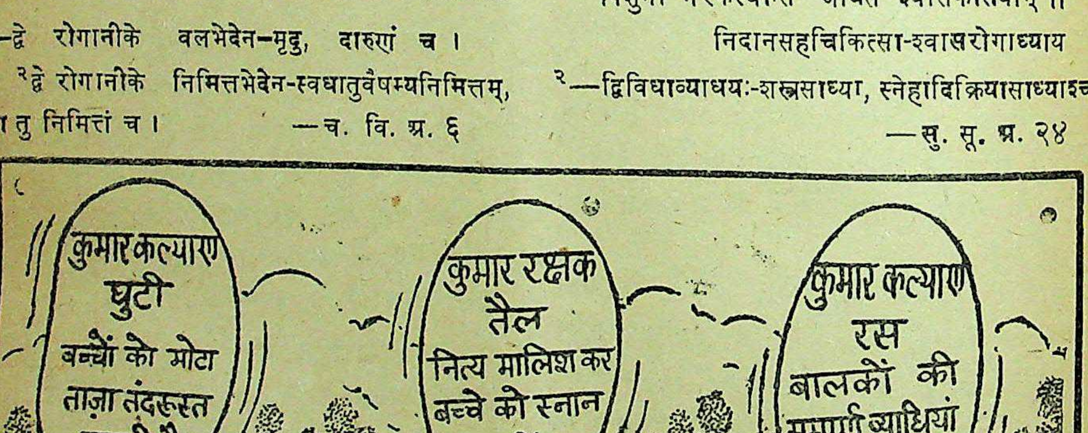
कुमार कल्याण घुटी
बच्चों को मोटा ताज़ा तंदरूस्त बनाती है
कुमार रक्षक तैल
नित्य मालिश कर बच्चे को स्नान करायें
कुमार कल्याण रस
बालकों की सम्पूर्ण व्याधियां नाशक

पंच निदान

आचार्य चरक ने रोग विशेष विज्ञान के लिये आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष तथा अनुमान इन तीन साधनों का उल्लेख किया है और इन साधनों के द्वारा प्रत्येक व्याधि का निदान, पूर्व-रूप-रूप-उपशय एवं सम्प्राप्ति इन पांच विषयों का ज्ञान करने का आदेश है[1]। प्रथमतः प्रत्येक रोग के निदान पंचकों का ज्ञान आप्तोपदेश द्वारा किया जाता है और रोगी विशेष में पुनः प्रत्यक्षानुमान द्वारा उसकी सम्पुष्टि की जाती है। इस प्रकार पंच निदान रोग ज्ञान के विषय हैं और इसी आधार पर हम रोग विशेष का विशिष्ट नाम करण करते हैं। ये व्यस्त एवं समस्त दोनों ही रूपों में व्याधि का ज्ञान कराते हैं और प्रत्येक का अपना मौलिक महत्व है तथापि निश्चित ज्ञान की उपलब्धि समस्त के द्वारा ही हो सकती है। अतएव यह आवश्यक है कि श्वास रोग के पंचनिदान का ज्ञान किया जाय।

श्वास रोग के सामान्य निदान—

विभिन्न संहिताओं में श्वास रोग के लिये वर्णित जो निदान उपलब्ध हैं उन्हें निम्नांकित वर्गी करण द्वारा उपस्थित किया जाता है—

१. आहार सम्बन्धी कारण २. बिहार सम्बन्धी कारण ३. मानसिक कारण ४. पूर्व रूप ५. निदानार्थ कर रोग।

आहार[2]—

१. निष्पाव २. माष ३. पिण्याक ४. तिलतैल ५. पिष्ट ६. शालुक ७. दधि ८. आमक्षीर ९. जलज मांस १०. आनूपमांस ११. विष्टम्भि पदार्थ १२. विदाहीपदार्थ १३. गुरुपदार्थ १४. अभिष्यन्दि पदार्थ १५. श्लेष्मल पदार्थ. १६. रुक्षपदार्थ १७. शीतपान १८. शीतासन १९. विषमासन २०. अध्यशन २१. समशन।

विहार—

१. रज २. धूम ३. वात ४. शीत स्थान ५. व्यायाम ६. ग्राम्यधर्म ७. अध्वमन ८. अपतर्पण ९. संशोधनातियोग १० अनल ११. भारवहन १२. वेगाघात १३. द्वन्द्व युद्ध[1]।

मानसिक कारण-१. उत्तेजना २. भावावेश इत्यादि।

पूर्वकर्म—१. पिशुन २. कृतघ्न आदि।

निदानार्थकर रोग—

१. कास २. ज्वर ३. आम ४. अतिसार ५. छर्दि ६. विष ७. पाण्डु ८. मर्माघात ९. आनाह १०. दौर्बल्य ११. प्रतिश्याय १२. क्षत १३. क्षय १४. रक्तपित्त १५. उदावर्त १६. विसूचिका १७. अलसक १८. कण्ठप्रतीघात १९. उरःप्रतीघात २०. विबन्ध २१. अभिघात।

सामान्य निदानों में वर्णित आहार अधिकतर गुरु, रुक्ष स्निग्ध अभिष्यन्दि. शीत, एवं विदाही आदि गुणों से युक्त है इन आहारों के अति सेवन से कफ एवं वात दोष का प्रकोप स्वाभाविक है जो श्वास रोग के आरम्भक दोष हैं। गुरु आदि

१—त्रिविधं खलु रोगविशेषविज्ञानं भवति आप्तोपदेशः, प्रत्यक्षं अनुमानं चेति। च-वि-अ-४
तस्योपलब्धिर्निदानपूर्वरूपरूपोपशयसम्प्राप्तितः।
च-नि-अ-१

२—निष्पावमासपिण्याक ....।
.... श्लेष्मलानां च सेवनात्॥
[च-चि-१७]

१—रजसा धूमवाताभ्यां शीतस्थानाम्बुसेवनात्।
प्रवर्तते गदाविमौ। [च-चि-अ-१७]
विदाही गुरुविष्टम्भि....................।
.... नृणां समुपजायते॥
[सु-उ-अ-५०]

पदार्थों का अति सेवन अग्निमान्द्य उपस्थित कर सकता है। इस प्रकार पित्त स्थान की दुष्टि एवं पित्तक्षय भी इन कारणों से सम्भव है।

विहारों में रज तथा धूम से प्राणवह स्रोतों में क्षोभ तथा वात प्रकोप सम्भव है। शीत स्थान कफ एवं वात दोनों के समान रूप से प्रकोपक होते हैं। ग्राम्यधर्म अध्वगमन एवं अपतर्पणादि से भी सर्व प्रथम वात का प्रकोप ही सम्भव है और वात के प्रकोप के बाद दूष्य एवं अधिष्ठान यदि श्वास रोगानुकूल मिल जांय तो इन विहारों से श्वास रोग की उत्पत्ति हो सकती है।

मानसिक कारणों से तत्काल ही वात का प्रकोप होता है और प्रकुपित वायु श्वसन केन्द्र को उत्तेजित कर श्वास रोग उत्पन्न करता है। निदानार्थ कर रोगों में कास तथा ज्वर विशेषतया श्वसनक ज्वर का महत्व सर्वाधिक है। यहां आतुरालय में चिकित्सित श्वास रोगियों के मध्य अनेकों ने कास तथा श्वसनक ज्वर का पूर्व इतिहास बताया है। आम का अर्थ आम विष है जो अग्निमान्द्य के कारण उत्पन्न होता है। भोजन का विशेष अंश प्रोभूजिन के अपाचन से जो आम विष बनता है वह विशेष रूप से श्वास रोग उत्पन्न करता है। अतिसार एवं विसूचिका की अवस्थाओं में शरीर के अप धातु का बहुत अंशों में निःसरण हो जाता है और रक्त में तरल अंश की अल्पता से श्वसन क्रिया में बाधा उपस्थित हो जाती है। छर्दि के कारण आमाशय में विक्षोभ उत्पन्न होता है और आमाशयगत प्राणदा नाड़ियों के विक्षोभ से प्रतिक्षिप्त क्रिया के रूप में श्वास वेग उपस्थित हो जाता है। पाण्डु, क्षय एवं रक्त पित्त में रक्त धातु के क्षय के कारण श्वसन क्रिया में काठिन्य होकर श्वास रोग उत्पन्न हो सकता है। उदावर्त, आनाह, अलसक, एवं विबन्ध में अपानवायु की गति विलोम हो जाती है और यह अपान अपने सहकर्मी प्राण एवं उदानवायु को दूषित कर श्वास रोग उत्पन्न कर सकता है। मस्तिष्क एवं हृदय रूपी मर्मों में आघात लग जाने पर श्वास कष्ट स्वाभाविक ही है। उरः प्रतिघात एवं कण्ठ प्रतिघात में प्राणवह स्रोतों में अवरोध उपस्थित हो जाने के कारण आगे चलकर श्वास रोग भी उपस्थित हो सकता है। विष भी श्वास रोग का एक कारण माना गया है। विष से स्थावर, जंगम, कृत्रिम एवं दूषी विष इन सबों का ग्रहण किया जा सकता है। स्थावर जंगमादि विष प्रत्यक्ष रूप से श्वसन केन्द्र को उत्तेजित कर श्वास उत्पन्न करते हैं। दूषी विष के उत्पन्न होने वाले रोगों में माधव ने श्वास का भी नामतोनिर्देश किया है। आधुनिक दृष्टिकोण से अनूर्जता (Allergy) को श्वास रोग का एक महत्व पूर्ण कारण माना जाता है और अनूर्जता का साम्य आयुर्वेद में वर्णित दूषी विष से बहुत अंशों में मिलता है। रज, धूम, शीतस्थान, जलजमांस, आनूपमांस आदि अनूर्जता उत्पादक कारण हैं और अपने आचार्यों ने श्वास रोग के निदानों में इन सबों का स्पष्टतया उल्लेख किया है तथापि अनूर्जता के विषय में जो विशेष ज्ञान उन्नत किया गया है उसका संक्षिप्त विवरण उपस्थित करना आवश्यक प्रतीत होता है। अनूर्जता का अन्तर्भाव दूषी विष के अन्तर्गत किया जा सकता है और इस विषय में भी तुलनात्मक विचार प्रस्तुत करना आवश्यक है।

अनूर्जता —

आधुनिक चिकित्साविदों के दृष्टिकोण से अनूर्जता श्वास रोग का एक महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। अपस्तम्भीय श्वास के अधिकतर रोगी अनूर्जता से प्रभावित रहते हैं।

वोन परक्वेट नामक वैज्ञानिक ने अनूर्जता (Allergy) शब्द का प्रयोग प्राणी में प्रविष्ट विजातीय प्रोभूजिन के कारण उत्पन्न विशिष्ट प्रति क्रिया के लिए किया था। सर्व प्रथम मसूरिका विषाणु के लिए दिये गये प्रथम और द्वितीय टीके के बीच के अन्तर को बतलाने के लिये इस शब्द का उपयोग उसने किया था, परन्तु बाद में इस

शब्द का प्रयोग मनुष्य में अश्वलसीका के बहुमात्रा में सूचीवेध के उपरान्त कुछ दिनों के अन्दर ही उत्पन्न लक्षण समूहों को बतलाने के लिए उसने किया । इस प्रकार अनूर्जता के अध्ययन के सम्बन्ध में एक विशिष्ट परिभाषा बनाई गई जिसका अर्थ बाद में स्वयं बदल गया ।

अनूर्जता के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी के लिए यह आवश्यक है कि निम्नांकित पारिभाषिक शब्दों के अर्थों का एक स्पष्ट चित्र मानस पटल में अंकित हो ।

प्रतिजनक एक ऐसा द्रव्य है जिसकी प्रकृति प्राय: प्रोभूजिन होती है और रक्तसंवहन में इसके प्रवेश से अनूर्जता उत्पन्न होती है ।

विरोधी द्रव्य वे द्रव्य हैं जो कि शरीर में प्रतिजनक के सूचीवेध के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं ।

अति संवेदनशीलता का अर्थ भी प्रायः वही है जो अनूर्जता का है ।

वैयक्तिक अनूर्जता का अर्थ अनूर्जता से थोड़ा भिन्न होता है । तथापि इस शब्द का उपयोग प्राय: एक सदृश अवस्थाओं को बताने के लिए किया जाता है । वैयक्तिक अनूर्जता की अवस्था को हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं कि यदि कोई विशिष्ट व्यक्ति आयोडीन, ऐस्प्रीन, मत्स्य आदि लेने पर विषम प्रकार के लक्षणों को व्यक्त करे, जब कि ये द्रव अनेक व्यक्तियों में कोई विशेष लक्षण नही उत्पन्न करते, तो इस अवस्था को वैयक्तिक अनूर्जता कह सकते हैं ।

अनवधानता शब्द का प्रयोग कृत्रिम रूप से निर्मित विशिष्ट प्रोभूजिन संदवेनशीलता की अवस्था को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है । उदाहर के लिए पशु तथा मनुष्य दोनों ही में किसी एक प्रोभूजिन के लिए अतिसंवेदनशीलता की अवस्था उसी प्रोभूजिन के द्रव का सूचीवेध देकर पुन: उसी द्रव का सूचीवेध देने पर उत्पन्न की जा सकती है । द्वितीय बार के सूचीवेध में विशिष्ट लक्षण उत्पन्न होते हैं । जो प्रथम बार के सूचीवेध काल में नहीं उत्पन्न होते । अनवधानता तथा अनूर्जता की अवस्था एक है या भिन्न भिन्न, इस विषय में अनेक प्रकार का विचार किया गया है परन्तु अब सामान्यतया यह मान लिया गया है कि अनवधानता शब्द से कृत्रिम रूप से निर्मित प्रोभूजिन संवेदनशीलता की अवस्था का ग्रहण करना चाहिए जब कि अनूर्जित अवस्था प्राकृतिक रूप से निर्मित अवस्था होती है । आधुनिक अनुसंधानों से यह निश्चित् हो चुका है कि अनूर्जता तथा अनवधानता की अवस्थाएं मूल रूप में एक ही हैं । शब्दों का बाहुल्य केवल भ्रमोतपादक है ।

अनूर्जता की सम्प्राप्ति—

“वेलस” नामक वैज्ञानिक के मतानुसार सभी प्रतिजनक प्रोभूजिन स्वरूप के होते हैं अथवा ऐसे प्रोभूजिन जिनका रसायनिक संगठन शिथिल हो गया हो । पाचन की प्रक्रिया में प्रोभूजिन अपने संगठन आमिषाम्ल में विश्लेषित हो जाता है और शोषित होकर यकृत में पहुंचता है । आमिषाम्ल यकृत में जाने पर या तो पूर्णरूप में विघटित हो जाते हैं अथवा प्रोभूजिन के रूप में पुन: उनका संश्लेषण हो जाता है । इस प्रकार अश्वलसीका मुख द्वारा

इस अध्याय में दिए गये पारिभाषिक शब्द आचार्य श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर जी द्वारा निर्मित है और तदर्थ हम उनके आभारी हैं ।

१. अनूर्जता २. प्रोभूजिन ३. विजातीय प्रोभूजिन मसूरिका विषाणु अश्वलसीका ।

१—प्रतिजनक=Antigen.
२—विरोधी द्रव्य=Antibody.
३— अतिसंवेदनशीलता=Hypersensitiveness.
४—वैयक्तिक अनूर्जता=Idiocyncracy.
५—अनवधानता=Anaphylaxis.
१—आमिषाम्ल=Amino-acid ।
२—कोष=Cell ।
३—संवेदनशील=Sensitized ।
४—हिस्टामिन=Histimine ।

लेने पर अपने संगठक आमिशाम्ल में विघटित हो जाता है और शोषित होकर बाद में मनुष्य के लसीका के रूप में पुनः संश्लेषित किया जाता है। जब कभी कोई बाह्य प्रोभूजिन बिना पूर्व पाचन के रक्तवह संस्थान में प्रविष्ट किया जाता है तो शरीर में एक दूसरी ही एक प्रतिक्रिया होती है। इस अवस्था में शरीर कोष उन प्रोभूजिनों को अपने घटक आमिषाम्ल में विघटित करने के लिए विरोधी द्रव उत्पन्न करते हैं। यह माना जाता है कि प्रत्येक विशिष्ट प्रोभूजिन के लिए ये विरोधी द्रव्य भी विशिष्ट प्रकार के होते हैं। जब कोषों में विरोधी द्रव्य उपस्थित रहते हैं तो प्राणी को संवेदनशील कहा जाता है। प्राकृत असंवेदनशील अवस्था में इस प्रकार के विरोधी द्रव्य कोषों में उपस्थित नहीं रहते। जब विरोधी द्रव्य प्रतिजनक के सम्पर्क में आते हैं तो लक्षण उत्पन्न करते हैं। कोषों में विरोधी द्रव्य एवं प्रतिजनक की प्रतिक्रिया की प्रक्रिया से हिस्टामिन सदृश द्रव्य उत्पन्न होता है जिसका धातुओं पर विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। हिस्टामिन का प्रधान प्रभाव क्षेत्र सामान्य प्रकार की मांसपेशियां हैं जो संकुचित होती हैं। यह बड़ी रक्तवाहिनियों की भित्तिका भी संकोचक है जिससे धमनियां संकुचित हो जाती हैं तथा केशिकायें विस्फारित होती हैं। यह विरोधी द्रव्य तथा प्रतिजनक की प्रतिक्रिया शरीर में कहीं भी यथा—त्वचा, उपत्वचा, सन्धिगत, श्लेष्मलकला, श्लेषककला तथा अपस्तम्भीय मांस पेशियों में होती है।

हिस्टामिन—वार्गर एवं डाले नामक वैज्ञानिकों ने सर्व प्रथम अर्गट से हिस्टामिन निकाला था। बाद में उन्होंने इसे मनुष्य शरीर के आन्त्र में भी उपस्थित पाया। आन्त्रस्थित कुछ विशिष्ट जीवाणुओं (Coli-typhoid group) की क्रिया जब आमिषाम्ल के हिस्टोडीन नामक अंश पर होती है तो उसमें से कार्बनद्वयोषित अलग हो जाता है और हिस्टामिन बनता है। धातुओं में हिस्टामिन किस प्रकार बनता है इसके सम्बन्ध में अभी तक कोई विशिष्ट जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी है। फुफ्फुस, यकृत्, मांसपेशियों एवं आन्त्र में विशिष्ट रूप से इसकी उपस्थिति पाई जाती है। प्रति १०० सी. सी. रक्त में १ से ८ माईक्रोग्राम तक हिस्टामिन पाया जाता है और श्वेतकणों के उषसिप्रिय (Eosinophil) नामक कण में विशिष्ट रूप से रहता है।

हिस्टामिन कोषाणुओं के अन्तःभाग में स्थित रहता है और जब विशिष्ट प्रकार की उत्तेजना या आघात लगने पर कोष से बाहर निकलकर बहिःकोषाणवीय द्रव में आता है तभी विशिष्ट लक्षणों को उत्पन्न करता है। हिस्टामिन के कार्य प्रायः सीमित रहते हैं क्योंकि आंत्र तथा वृक्क में पाये जाने वाले हिस्टामिनेज नामक किण्वतत्व इसे अकार्यकर बना देता है। एड्रीनेलिन नामक अन्तः स्राव के कारण भी इसका कार्य अवरुद्ध होता है और इन दोनों के अभाव में ही यह विशिष्ट क्रियाशील रहता है।

अनूर्जता तथा दूषीविष —

यह पूर्व में बताया जा चुका है कि हिस्टामिन य तत्सदृश द्रव्य अनूर्जता उत्पन्न करने में मूल रूप से कारणभूत होते हैं आयुर्वेद में दूषीविष की परिभाषा बहुत कुछ अनूर्जता से मिलती जुलती है और दूषीविष के अन्दर इसका समावेश किया जा सकता है।

दूषीविष की परिभाषा[1] बताते हुए सुश्रुत ने लिखा है कि स्थावर जंगम या कृत्रिम् विष जो

---

[1] —यत्स्थावरं जंगम कृत्रिमं वा,
देहादशेषं यन्निर्गतं वा।
जीर्णं विषघ्नौष धिभिर्हतं वा
दावाग्नि वातातपशोषितं वा॥
स्वभावतो वा गुण विप्रहीनं
विषं हि दूषीविषतामुपैति।
वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्
कफावृतं वर्ष गणानुबन्धि॥
[सु. क. अ. २]

शरीर से सम्पूर्ण रूप में बाहर नहीं निकलता अपितु पचकर या विषघ्न औषधियों से नष्ट होकर या दावानल, वायु एवं आतप से सूख जाने के कारण अथवा अपने स्वभाव से ही कुछ कम गुणों का हो जाता है, इस विष को दूषीविष संज्ञा दी जाती है। यह दूषीविष अल्पवीर्य होने के कारण मनुष्य को जान से नहीं मारता अपितु कफ से आवृत होने के कारण बहुत वर्षों तक बना रहता है।

हिस्टामीन के सम्बन्ध में उपरोक्त परिभाषा सत्य रूप में बहुत अंशों तक मिलती है। हिस्टामीन के ऊपर हिस्टामिनेज[1] नामक विशिष्ट किण्व तत्व का कार्य होता रहता है जिससे यह अकार्यकर हो जाता है और इस रूप में हम हिस्टामीनेज को विषघ्न औषधि मान सकते हैं। हिस्टामीन शरीर में बराबर ही विद्यमान रहता है परन्तु जब तक यह कोषाणु के अन्दर रहता है तब तक कोई विशिष्ट कार्य नहीं कर पाता, क्योंकि इस अवस्था में वह मन्दवीर्य हो जाता है। कफावृत शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि हिस्टामीन कोषाणु के अन्तः भाग[2] में स्थिर रहता है और उसके चारों ओर कोषाणु के वाह्यावरण रहते हैं अर्थात् कफरूप कोषाणु से वह आवृत रहता है। वर्षगणानुबन्धी भी बहुत अंशों में सत्य है। जब तक कोषाणु की स्थिति रहती है तब तक निश्चित रूप से उसमें हिस्टामीन रहता है और नष्ट नहीं होता।

आचार्य चक्रपाणि ने कालान्तर में प्रकोप करने वाले विष को दूषीविष[1] की संज्ञा दी है। हिस्टामीन का संचय तो शरीर में रहता ही है और कालान्तर में ही विशिष्ट प्रकोपक अवस्थाओं के कारण यह अपने लक्षणों को उत्पन्न करता है। इस प्रकार इस परिभाषा के अनुसार भी हिस्टामीन का अन्तर्भाव दूषीविष के अन्तर्गत होता है।

दूषीविष का प्रकोप किस प्रकार होता है इसे बतलाते हुए आचार्य सुश्रुत ने लिखा है कि देश, काल, अन्न एवं दिवास्वप्न आदि कारणों से यह विष धातुओं को दूषित करता है और इसी लिए इस विष को दूषीविष संज्ञा दी गई है। इस प्रकार देश विशेष, कालविशेष, अन्नविशेष एवं दिवास्वप्न आदि कारणों से यह विष जो शरीर में मन्दवीर्य एवं कफावृत पहले से ही रहता है–प्रकुपित होकर शरीर धातुओं को दूषित करता है।

अनूर्जता की स्थिति भी विशिष्ट अनूर्जक कारणों से ही उत्पन्न होती है। किसी विशेष देश के कारण–यथा किसी व्यक्ति को किसी विशेष स्थान पर पहुँचने से ही अनूर्जता एवं तत्सम्बन्धी रोगजन्य विशिष्ट लक्षण उत्पन्न होते हैं। उस देश सम्पर्क से वंचित रहने पर व्यक्ति अनूर्जता से प्रभावित नहीं होता। किसी विशेष काल अर्थात् शीतकाल, ग्रीष्मकाल, वर्षाकाल आदि समयों के अनुसार भी अनूर्जता की स्थिति देखी जाती है। अनेक अनूर्जता के ऐसे रोगी पाये जाते हैं जिनमें शीतकाल आने पर ही लक्षण उत्पन्न होते हैं और शीतकाल के पुनः बीत जाने पर रोग लक्षण स्वतः

---

[1] Histamine is destroyed by an enzyme system, histaminase which is found in verious tissues, but particularly the kidney and small intestine. Physiological Basis of Medical Practice by Best and tailor- Page. 296.

× × × ×

Histamine is present as such in the cell interior, being prevented from leaving it so long as the cell memberane is physiologically intact and that it produces its action only if some stimulus or injury cause its escape into the extracellular fluids.

Recent Advances in Allergy by Bray, page: 34.

१—कालान्तर प्रकोपिविषं दूषीविषं।

—च. चि. अ. २३-३० पर चक्रपाणि

शान्त हो जाते हैं[1] ।

अन्न के साथ भी इसका इसी प्रकार का सम्बन्ध देखा जाता है। यथा—कोई व्यक्ति विशेष यदि किसी विशेष अन्न यवादि या फ़ल केला आदि खाता है तो वह अन्न या फल अन्य सामान्य व्यक्तियों के समान उसे सात्म्य नहीं होते और विशेष लक्षण उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार दूषी विष के प्रकोप के दृष्टिकोण से भी हम अनूर्जता का गृहण इसके अन्दर कर सकते हैं[2] ।

दूषीविष की सम्प्राप्ति—चरक ने दूषीविष द्वारा रोगोत्पत्ति के वर्णन में लिखा है कि दूषीविष रक्त को दूषित करके फोड़े, किटिभ तथा चकत्ते (कोठ) उत्पन्न करता है अर्थात् सर्वप्रथम इस विष के प्रभाव से रक्तदुष्ट हो जाता है और रक्त के दूषित हो जाने के कारण किटिभ कोठ एवं अन्य रक्त सम्बन्धी विकृतियां उत्पन्न होती हैं।

अनूर्जता में भी रक्त की दुष्टि होती है। नौल्फ[3] नामक वैज्ञानिक के अनुसार रक्तसंवहन में प्रतिक्रिया होती है और रक्त में स्थित फाइब्रिन नामक विशेष प्रकार का प्रोभूजिन जमा हो जाता है।

रक्त में स्थित श्वेत कणों में उषसिप्रिय (Eosinophil) नामक कण का आधिक्य प्रायः अनूर्जता में ही हो जाया करता है[1] ।

अतएव यह निश्चित है कि अनूर्जता की स्थिति में रक्त की दुष्टि होती है। इस रक्तदुष्टि के उपरान्त अनेक प्रकार के त्वग् विकार इसमें होते हैं। प्रधान रूप से शीतपित्त के समान चकत्ते और विचर्चिका की भांति के रक्त विकार पाये जाते हैं[2] ।

इस प्रकार चरक ने जो दूषीविष की सम्प्राप्ति बताई है वह बहुत अंशों तक अनूर्जता के साथ भी मिलती जुलती है।

सुश्रुत ने भी दूषीविष से उत्पन्न होने वाले जिन रोगों की गणना की है उसमें मण्डल और कोठ भी हैं[3] । इसके अतिरिक्त सुश्रुत का कथन है कि दूषीविष आमाशय में स्थित हो तो कफवातज रोग होता है और श्वास रोग भी एक आमाशयोत्थ कफवातज विकार ही है। सुश्रुत ने श्वास का नाम तो निर्देश नहीं किया परन्तु माधवकर[4] ने तो दूषीविषजन्य विकारों में श्वास का नाम भी निर्देश किया है। इस प्रकार अनूर्जता का अन्तर्भाव यदि दूषीविष के अन्तर्गत कर लिया जाय तो कोई विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उपरोक्त सापेक्ष विचार में दूषीविष के अतिरिक्त अन्य कोई विशिष्ट रोग या वर्गीकरण अनूर्जता से मिलता हुआ नहीं दिखाई दिया है, अन्य सभी की अपेक्षा दूषीविष

१—दूषितं देशकालान्न दिवास्वप्नैरमीक्ष्णशः ।
यस्माद्दूष्यायते धांतून्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥
— सु. क. २

२—दुषीविषं तु, शोणितदुष्ट्यारु:किटिभकोठ
लिंगम् च ॥ —च. चि. अ. २३-३०

3. Nolf thought that the reaction took place in the circulating fluid, producing a distrubance of the delicately adjusted colloid balance of the blood in which fibrin deposits occured.

Recent Advances in Allergy Page. 8.

1. In most allergic conditions a blood and local tissue eosinophilia can be determined.

Recent Advances in Allergy Page- 15.

2. The mechanism of allergy played a decided part in the etiology of many forms of skin diseases.

Recent Advances in Allergy Page- 291.

३. मण्डल कोठमोहान् आमाशयस्थे कफवातरोगी ।
—सु० क० २

४. दूषीविष श्वासतृपाज्वरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धिं जठरस्य चापि । माधवनिदान ।

को ही निकट पाकर ऐसी कल्पना की है। यह विषय वस्तुतः अपना मौलिक महत्व रखता है और इस पर अन्य विशिष्ट खोज किये जा सकते हैं।

श्वास रोग की साम्प्रतिय सम्प्राप्ति —

विभिन्न निदानों से प्रकुपित हुआ वायु प्राणवह स्रोत में आविष्ट होकर उरः स्थित कफ के साथ मिलकर स्रोतों में अवरोध उत्पन्न करता है कफ के कारण मार्गों में अवरोध उत्पन्न हो जाता है अतएव वायु का आवागमन सम्यक् प्रकार से नहीं हो पाता और श्वास रोग उत्पन्न हो जाता है[1]।

पूर्वरूप—

चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट ने निम्नांकित श्वास रोग के पूर्वरूप बताये हैं[2]।

(१) आनाह (२) पार्श्वशूल (३) हृत्पीडा (४) प्राणविलोमता (५) भक्तद्वेष (६) अरति (७) मुखवैरस्य (८) शंखभेद।

इसके अतिरिक्त काश्यप ने लिखा है कि उर से शब्द करता हुआ एवं उष्ण सांस लेने पर यह समझना चाहिए कि उसे श्वास रोग हो जायगा।

श्वास रोग के पूर्वरूप को हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) श्वास रोग उत्पन्न होने से पहले उत्पन्न हुए लक्षण।

(२) श्वास वेग आने से पहले उत्पन्न होने वाले लक्षण।

आतुरालय में चिकित्सित सभी श्वास के रोगी व्यक्तावस्था में ही प्रविष्ट हुए अतः श्वास रोग होने से पूर्व उन्हें कौन कौन से लक्षण उत्पन्न हुए थे इसका सम्यक् ज्ञान नहीं हो सका।

तमक श्वास के वेग आने से पूर्व विबन्ध, पार्श्वशूल, शिरःशूल, हृत्प्रदेश में पीडा, प्रतिश्याय, अरुचि, अरति, एवं मुख वैरस्य ये लक्षण रोगियों में उपस्थित होते हैं, ऐसा देखा गया।

महाश्वास—

वायु की ऊर्ध्वगति हो जाने के कारण जो रोगी क्रुद्ध सांड के गर्जन के समान शब्दयुक्त निरन्तर श्वास लेता हो, जिसका ज्ञान एवं विज्ञान लुप्त हो गया हो, जिसके नेत्र चंचल हों, मुंह एवं नेत्र फैले हुए रहते हों, मलप्रवृत्ति एवं मूत्रप्रवृत्ति रुक गई हो, वाणी अतिशय क्षीण होगया हो, मुंह ग्लानियुक्त हो, उसके श्वसन की ध्वनि दूर से सुनाई पड़ती हो, रोगी संज्ञारहित हो गया हो, पार्श्वशूल से पीड़ित हो, जिसका कण्ठ सूखता हो, नीचे झुककर श्वास लेता हो, कर्ण, शङ्ख एवं शिर में अतिशय पीड़ा होती हो तो ऐसे रोगी को महाश्वास से पीड़ित समझना चाहिए[1]।

उर्ध्वश्वास—

जो रोगी दीर्घकाल तक श्वास बाहर निकालता हो परन्तु अन्दर नहीं ले सकता हो, जिसके मुख एवं प्राणवहस्रोत श्लेष्मा से आवृत हों, वायु के तीव्र प्रकोप से पीड़ित हो, जिसकी दृष्टि ऊपर की ओर चढ़ी हुई हो तथा इधर-उधर घूमती हो, तीव्र

---

(१) मारुतः प्राणवाहीनि स्रोतांस्याविश्य कुप्यति ।
उरःस्थकेफमुद्धूय हिक्काश्वासान्करोति सः ॥
—च. चि. १७।
कफोपरुद्धगमनः पवनो विष्वगास्थितः ।
—अ. हृ. नि. ४।

(२) आनाहः पार्श्वशूलं च पीडनं हृदयस्य च ।
प्राणस्य च विलोमत्वंश्वासानां पूर्वलक्षणम् ॥
—च. चि. १७।
निष्टनत्युरसात्युष्णां श्वासस्तस्योपजायते ॥
—काश्यप सू. २५-१७।

(१, उद्धूयमानवातो यः............. ।
.....................क्षिप्रमेव विपद्यते ॥
—च. चि. १७।
विसंज्ञः पार्श्वशूलार्तः शुष्ककण्ठोऽतिघोषवान् ।
संरब्धनेत्रस्त्वायम्य यः श्वस्यात्स महान् स्मृतः ॥
—सु. उ. अ. ५१।

वेदना से पीड़ित हो, जिसका मुख सूख जाता हो एवं बेचैनी रहती हो, उर्ध्वश्वास के प्रकुपित हो जाने के कारण अधः श्वास का निरोध हो गया हो अर्थात् मल, मूत्र एवं अधोवात की प्रवृत्ति बन्द हो गई हो, आंखों के आगे अंधेरा छा जाता हो एवं बारबार मूच्छित होता हो, जिसके मर्मस्थान खिंचते हुए से जान पड़ते हों, स्वर बैठ गया हो तो इस प्रकार के रोगी को उर्ध्वश्वास से पीड़ित समझना चाहिए[1]।

छिन्नश्वास—

जो रोगी रुक-रुक कर श्वास लेता हो, हृदय आदि मर्मस्थानों में अत्यन्त पीड़ा होने के कारण कुछ कुछ काल के बाद श्वास लेना बन्द कर देता हो, आनाह से पीड़ित हो, पसीना निकलता हो तथा बार बार मूर्च्छा आ जाती हो, वस्ति प्रदेश में दाह होता हो तथा मूत्र का निरोध हो गया हो, जिसकी आंखें अश्रुपूरित हों, अत्यन्त क्षीण श्वास लेता हो तथा एक नेत्र रक्तवर्ण का हो गया हो, संज्ञाहीन हो गया हो, मुख शुष्क हो गया हो, वर्णविकृत हो गया हो, रोगी प्रलाप करता हो, जिसकी छाया नष्ट हो गई हो, नेत्र नीचे की ओर झुके हुए हों तो उस रोगी को छिन्नश्वास से पीड़ित समझना चाहिए[2]।

आधुनिक दृष्टिकोण से जिस श्वास की क्रिया बीच बीच में कुछ काल तक खण्डित हो कर चलती है उसे सान्तर श्वसन (Periodic Breathing) कहते हैं। बालक तथा वृद्धावस्था में कभी कभी निद्राकाल में प्राकृतिक रूप में भी देखा जाता है परन्तु रुग्णावस्था में यह अरिष्ट सूचक माना जाता है।

इस अवस्था के दो प्रकार देखे जाते हैं।

१. चेनस्टोक का श्वसन (Cheyne-stokes Respiration)

इस प्रकार के श्वसन की खोज चेन एवं स्टोक नामक दो वैज्ञानिकों ने की थी अतएव उन लोगों के नाम पर इसे चैन स्टोक का श्वसन कहते हैं। इस अवस्था में कुछ काल के लिये श्वसन गति बन्द हो जाती है। फिर धीरे-धीरे श्वसन की गति एवं गम्भीरता दोनों ही बढ़ने लगती हैं। धीरे-धीरे श्वसन की गति एवं गम्भीरता कम होने लगती है और कुछ काल के लिए श्वास लोप हो जाता है।

हृद्रोग, मूत्रविषमयता, सन्न्यास, मस्तिष्कावरण शोथ एवं अंशु घात आदि रोगों की अन्तिम अवस्था में ये लक्षण पाये जाते हैं।

२. वायट का श्वसन (Biat's Respiration)—

इसमें भी कुछ काल तक श्वास बन्द रहता है। फिर स्वाभाविक अवस्था की तरह श्वसन प्रारम्भ होता है और कुछ काल तक बन्द हो जाता है। चेन स्टोक के श्वसन से इसमें अन्तर यह है कि इसमें श्वास की गति एवं गम्भीरता धीरे-धीरे अल्प एवं धीरे-धीरे अधिक नहीं होती। श्वसन क्रिया में एकाएक कुछ काल के लिये निरोध हो जाता है और पुनः प्रारम्भ हो जाता है। मस्तिष्कावरण शोथ में यह लक्षण पाया जाता है।

तमकश्वास की सम्प्राप्ति —

अपने निदानों से प्रकुपित हुआ प्राणवायु जब प्रतिलोम गति से ग्रीवा एवं सिर में प्राप्त होता है तब तत्रस्थित कफ का उदीरण करके सर्व प्रथम प्रतिश्याय उत्पन्न करता है[1]। इस प्रकार कफ की

---

(१) दीर्घश्वसिति यस्तुर्ध्व .... ।
.... श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून ॥
—च. चि. अ. १७।

(२) यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं .... ।
छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥
—च. चि, १७।

१—प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते।
ग्रीवा शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणसमुदीर्य च ॥
करोति पीनसं तेन रुद्धोघुर्घुरकं तथा।
अतीव तीव्रवेगं च श्वासंप्राणप्रपीडकम् ॥
च-चि-१७

वृद्धि होजाने पर जब वह प्राणवह स्रोतों में आविष्ट होजाता है तब तमक श्वास रोग की उत्पत्ति होती है ।

प्राणवह स्रोतों की दुष्टि का लक्षण[1] बताते हुए चरकने लिखा है कि अत्यन्त दीर्घ, बंधा हुआ, कुपित, बढ़ा हुआ अथवा थोड़ा थोड़ा निरन्तर निकलता हुआ या शब्द एवं शूल के साथ उच्छ्वास को निकालते हुये देख कर यह समझना चाहिये कि प्राणवह स्रोतों की दुष्टि हो गई है ।

तमक श्वास में प्राणवह स्रोतों की दुष्टि होती है अतएव अत्यन्त दीर्घ, सशब्द एवं सशूल उच्छ्वास देखा जाता है । प्राणवह स्रोतों के कफ से उपरुद्ध रहने के कारण उच्छ्वसित वायु के निकलने में अत्यन्त कठिनाई होती है और रोगी को इसके लिए बल लगाना पड़ता है । कफ से अवरोध होजाने के कारण वायु अन्दर ही अन्दर घूमती है और रोगी को पीड़ा पहुंचाती है । यद्यपि प्रश्वास में भी कष्ट होता है तथापि प्रश्वास की अपेक्षा उच्छ्वास काल में अधिक कठिनाई हो जाती है । प्रश्वासकाल में महाप्राचीरा पेशी के संकोच तथा पर्शुकाओं की ऊर्ध्वगति के कारण फुफ्फुसों और तत्फलस्वरूप प्राणवह स्रोतों को फैलने का अवसर मिलता है परन्तु उच्छ्वास काल में संकोच के कारण स्रोत के अवकाश अल्प होजाते हैं, साथ ही कफ से उपरुद्ध पहले से ही रहते हैं अतएव उच्छ्वासित वायु का निर्हरण ठीक से नहीं हो पाता और वायु की अधिक मात्रा प्राणवह स्रोतों में अवशिष्ट रहजाती है । सामान्यतया अतिप्रवृत्तिः, संग, सिराग्रन्थि एवं विमार्ग गमन ये चार लक्षण स्रोतोदुष्टि के बताये गये हैं[2] । तमक श्वास में प्राणवह स्रोतों की दुष्टि के कारण श्वास की अतिप्रवृत्ति देखी जाती है और अनेक रोगियों में ४० प्रति मिनट तक श्वास गति पाई जाती है । प्राणवह स्रोतों में संग के लक्षण भी उत्पन्न होते हैं और अवरोध के कारण ही कण्ठ में घुर्घुर शब्द तथा उच्छ्वास कष्ट देखा जाता है ।

श्वास रोग आमाशयोत्थ विकार है । अग्नि के मन्द होजाने के कारण जब अन्न का सम्यक् प्रकार से परिपाक नहीं हो पाता, तब आमरस की उत्पत्ति होती है । यह आमसंज्ञक दुष्ट रस त्रिदोष प्रकोपक होता है अतः इसे आमविष भी कहते हैं । इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जासकता है कि श्वास के रोगियों के आमाशय में पाचक पूर्वांश की मात्रा अत्यल्प उपस्थित रहती है अतएव खाये गये भोजन का अच्छी तरह अम्लभाव नहीं हो पाता, साथ ही प्रोभूजिन नामक आहार पदार्थ का परिणाम पेपटोन भी नहीं बन पाता । भोजन जब आमाशय से ग्रहणी में आता है तब यकृत् तथा अग्न्याशय से आने वाले पाचक रसों को भी अल्प उपस्थिति होती है और अन्न का ठीक प्रकार से परिपाक न होकर आमविष की उत्पत्ति होती है । सामान्यतया बृहदन्त्र स्थित सहज कृमि क्षुद्रान्त्र में आकर जीवित नहीं रह सकते, क्योंकि दोनों आन्त्रों के वातावरण में अन्तर रहता है परन्तु पाचक रसों की अल्प स्थिति में बृहदान्त्र के कृमियों का प्रसार क्षुद्रान्त्र में हो जाता है और ये भी वैकारिक पदार्थों को उत्पन्न करते हैं । आन्त्र से इन वैकारिक पदार्थों का शोषण प्रतिहारिणी महासिरा द्वारा यकृत् में हो जाया करता है । यकृत् इस प्रकार के विषों को दूर करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है तथापि यकृत् की विष हरण शक्ति सीमित होती है । जब ये आमविष अतिमात्रा में यकृत् में संचित हो जाते हैं, तब यकृत् उन्हें निर्विष बनाने में समर्थ नहीं हो पाता और रक्त वाहिनियों द्वारा ये हृदय में पहुंचते हैं । ये विष हृदय से रक्त वाहिनियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में परिभ्रमित होते हुए मस्तिष्क गतश्वसन केन्द्रों पर अपना प्रभाव डालते हैं । श्वसन केन्द्र के उत्तेजित

---

[1] अतिसृष्टमतिवद्धं कुपितमत्याल्पमभीक्ष्णं वा । सशब्दमूलमुच्छ्वसन्तं दृष्ट्वाप्राणवहान्यस्य स्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात् । च-वि-अ-५ ।

[2] अतिप्रवृत्तिः संगो वा सिराणां ग्रन्थयोऽपिवा ।
विमार्गगमनं चापि स्रोतसां दुष्टि लक्षणम् ॥
(च-वि-५)

हो जाने पर श्वसन व्यापार में बाधा उपस्थित होती है और परिणाम स्वरूप प्रश्वास या उच्छ्वास अथवा दोनों ही में वैकारिक अवस्था उत्पन्न होती है। श्वसन केन्द्र के उत्तेजित होजाने से चेष्टावह नाड़ी सूत्रों द्वारा अपस्तम्भ प्रतानगत मांस पेशियों में आवेग पहुँचते हैं और अपस्तम्भप्रतानगत प्राणवह स्रोत में अवरोध उत्पन्न होता है। अवरोध के कारण स्रोतोगत अवकाश अल्प होजाते हैं और श्वसन काल में सीत्कार ध्वनि (wheezing sound) उत्पन्न होती है जो श्रवण यन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती है।

इस स्थिति में प्रायः अपस्तम्भ प्रतानगत अन्तः कला में शोथ की उपस्थिति भी पाई जाती है और अन्तः भाग स्थित ग्रन्थियों के द्वारा श्लेष्मा का स्राव अधिक होता है। यह घना एवं पिच्छिल होता है और जब प्राणवह स्रोतों में आकर समाविष्ट हो जाता है, तब इस कफ की उपस्थिति के कारण भी स्रोतोवरोध की अवस्था उत्पन्न होती है। तमकश्वास के वेग आने से पूर्व अनेक रोगियों में प्रायः प्रतिश्याय देखा जाता है। कफ की थोड़ी भी मात्रा जब श्वास काल में निकलती है तो उस से कुछ अंशों में स्रोतोरोध दूर होता है और रोगी को आराम मालूम देता है परन्तु जब तक कफ नहीं निकलता तब तक अतिशय कष्ट होता है।

इस प्रकार श्वसन केन्द्र की उत्तेजना एवं नाड़ियों के क्षोभ के कारण प्राणवायु की गति प्रतिलोम होजाती है और प्राकृत स्थिति के विपरीत कार्य होने लगता है और कफ के कारण स्रोतोरोध उत्पन्न हो जाता है।

तमकश्वास के लक्षण●

१—कण्ठ में घुर्घुर शब्द के साथ तीव्र पीड़ा देने वाला तथा तीव्र वेग वाला श्वास का होना।

२—जोर की खांसी आने पर ग्लानि युक्त तथा निश्चेष्ट सा हो जाना।

३—खांसते-खांसते बारम्बार प्रमोह की उपस्थिति।

४—कफ के निकलने से कुछ काल के लिए आराम हो जाना और जब तक थोड़ी मात्रा में भी कफ न निकले तब तक अतिशय कष्ट पाना।

५—कण्ठ के छिल जाने के समान वेदना तथा कष्ट के साथ बोलना।

६—श्वास की तीव्र पीड़ा के कारण निद्रा का अभाव रहना।

७—सोती हुई अवस्था में अधिक कष्ट रहना और उठकर बैठने से थोड़ा आराम मालूम होना।

८—उष्ण पदार्थ के सेवन की इच्छा रहना।

९—अत्यधिक कष्ट के कारण आंखों का ऊपर की ओर चढ़ जाना।

१०—ललाट पर बार-बार पसीना आना।

११—मुख का शुष्क हो जाना।

१२—बारम्बार तीव्र वेग से श्वास का धोंकनी की तरह चलना।

१३—वर्षा, जल, शीतल वायु, पूरब दिशा की वायु तथा कफवर्धक पदार्थों से श्वास की वृद्धि होती है।

१४—अरुचि, प्यास अधिक लगना, पसीना आना और वमन होना, ये लक्षण भी प्रायः मिलते हैं।

१५—रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाता है।

●प्रतीवतीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम्।
प्रताम्यत्यतिवेगांच्च कासते सन्निरुध्यते॥
प्रमोहं कासमानं च सगच्छति मुहुर्मुहुः।
श्लेष्मन्यमुच्यमाने तु भृशं भवतिदुखितः॥
तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहुर्तं लभते सुखम्।
अथास्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोतिभाषितुम्॥
न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः।
पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः॥

तमकश्वास में पाये जाने वाले लक्षणों का विकृति विज्ञान*

लक्षण	अधिष्ठान	ग्रन्थ		
१ श्वासः	आमाशयगतवात	च०	चि०	२८
	उदानावृत अपान	,,	,,	,,
२ कासः	आमाशयगतवात	,,	,,	,,
३ उच्छ्वासग्रहः	कफावृतप्राण	,,	,,	,,
४ वाग्ग्रहः	कफावृत उदान	,,	,,	,,
५ श्लेष्मण्युमुच्यमानेदुःखः	स्रोतोरोधजन्यः	,,	,,	,,
६ मोहः	आमाशयगतवात	,,	,,	,,
७ निद्रानाश	अस्थिस्थितवात	,,	,,	,,
	मज्जास्थितवात	,,	,,	,,
८ अरुचिः	कफावृतप्राण			
९ छर्दिः	कफावृत प्राण	,,	,,	,,
१० दौर्बल्यम्	कफावृतप्राण-कफावृत उदान (सु. नि. १)	(च. चि. २८)		
११ उष्णकामिता	कफावृतप्राण	,,	,,	,,
१२ शीतकामिता (प्रतमक)	पित्तावृतवात			
१३ मूर्च्छा (प्रतमक)	पित्तावृत उदान	,,	,,	,,

प्रतमक एवं सन्तमक—

चरक ने तमक श्वास के दो अतिरिक्त भेद किये हैं।

(१) प्रतमक और (२) सन्तमक

प्रतमक के लक्षण●—

जिस रोगी में तमक श्वास के अन्य लक्षण उपस्थित हों और ज्वर मूर्च्छा ये लक्षण अतिरिक्त रूप में हों, पित्तानुबन्धी होने के कारण शीत से शान्ति मिले और उष्ण से वेग बढ़ता हो तो उसे प्रतमक कहते हैं।

---

* आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ।
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्वीधता मृशमर्तिमान् ॥
विशुष्कास्योमुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ।
मेघाम्बुशीतप्राग्वातश्लेष्मलैश्च विवर्धते ।
स याप्य स्तमक श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥
—च. चि. १७

तृट् स्वेद वमक्षु प्रायः कण्ठ घुर्घुरिकान्वितः ।
विशेषाद्दुर्दिन ताम्येत्श्वासः स तमको मतः ॥
घोषेण महताविष्टः सकासः सकफो नरः ।
यः श्वसित्यवलोऽन्न द्विष्ट् स वै तमक पीडितः ॥
—सु. उ. अ. ५१

●ज्वर मूर्च्छा परोतस्य विधात्प्रतमकं तु तम् ।
—च. चि. अ. १७

उदावर्त रजोजीर्ण विलन्न काय निरोधजः ।
तमसावधतेऽयर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति ॥
मज्जतस्तमसोवास्य विधात्सन्तमकं तु तम् ॥
— च. चि. अ. १७

मूर्च्छाज्वराभिभूतस्य ज्ञेयः प्रतमरस्तु सः ।
—सु. उ. अ. ५१

ज्वरमूर्च्छायुतः शीतैः शाम्येत् प्रतमकस्तु सः ।
—अ हृ. नि. अ. ४

सन्तमक —

जो तमक श्वास उदावर्त, रज, अजीर्ण, शरीर का आर्द्र हो जाना और वेगधारण इन कारणों से उत्पन्न हो, अंधेरे में रहने से बढ़े और शीतोपचार से शान्त होता हो, पीड़ित रोगी को यह प्रतीत होता हो कि मैं घोर अन्धकार में पड़ा हुआ हूं तो ऐसे लक्षणों से युक्त श्वासभेद को प्रतमक मानना चाहिये।

सुश्रुत एवं वाग्भट ने प्रतमक एवं सन्तमक इन दो भेदों को अलग न मानकर एक ही में अन्तर्भाव कर दिया है और तमक श्वास का भेद विशेष केवल प्रतमक का ही दिग्दर्शन किया है। प्रतमक एवं सन्तमक को एक ही मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि दोनों के लक्षणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दो विशिष्ट लक्षणों के कारण इसका नामकरण हुआ है वस्तुतः ये तमक श्वास की दो अवस्थायें हैं।

क्षुद्रश्वास की सम्प्राप्ति तथा लक्षण*—

रूक्ष पदार्थों का सेवन, अतिभोजन तथा श्रम से कोष्ठ में अल्प प्रकुपित वात क्षुद्रश्वास उत्पन्न करता है। परिश्रम छोड़कर बैठ जाने से यह श्वास स्वतः शान्त हो जाता है। इतर श्वासों के समान इस श्वास में न तो कोई शारीरिक कष्ट ही होता है और न दुःख ही। भोजन-पानादि क्रिया में भी कठिनाई नहीं होती। इसे ही क्षुद्रश्वास कहते हैं और यह साध्य होता है।

---

*रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वात उदीरयन् ।

क्षुद्रश्वासो न सोत्यर्थं दुःखेनांग प्रबाधकः ॥
हिनस्ति न सगात्राणि न च दुःखोय थेतरे ।
न च भोजन पानानां निरुणद्ध्यु चितां गतिम् ॥
नेन्द्रियाणां व्यथांचापि कांचिदापादयेद्रुजम् ।
स साध्यउक्तो बलिना सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥
च. चि. अ. १७

किंचिदारममाणस्य यस्य श्वासः प्रवर्तते ।
निषण्णस्यैति शान्तिं च स क्षुद्र इति संज्ञितः ॥
सु. उ. अ. ५१

…………………तत्रायासातिभोजनैः ।
प्रेरितः प्रेरयेत् क्षुद्रं स्वयं संशमनं मरुत् ॥
अ. हृ. नि. अ. ४

चतुर्थ खण्ड

श्वास रोग की चिकित्सा

श्वासरोग में युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा का विशिष्ट महत्व है और इसी के द्वारा रोग से निवृत्ति की जाती है। कुछ स्थलों पर दैवव्यापश्रय चिकित्सा का थोड़ा सा उल्लेख मिलता है। श्वास रोग में महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास एवं छिन्नश्वास के रोगी असाध्य होते हैं और ऐसे रोगी मिलते नहीं। असाध्य होने के कारण इनकी चिकित्सा का उल्लेख भी नहीं मिलता। क्षुद्रश्वास चिकित्सा के बिना ही स्वतः शान्त हो जाया करता है। इस प्रकार श्वास रोग की चिकित्सा में प्रधान रूप से तमक श्वास की ही चिकित्सा की जाती है।

चिकित्साक्रम●—

तमक श्वास से पीड़ित रोगी को सर्वप्रथम

●हिक्काश्वासार्दितं स्निग्धैरादौ स्वेदैरुपाचरेत् ।
आक्तं लवणतैलेन नाड़ीप्रस्तरसंकरः ॥
तैरस्य ग्रथितः श्लेष्मास्रोतः स्वभिविलीयते ।
खानिमार्दवमायान्ति ततो वातानुलोमता ॥
यथाद्रिकुंजेश्वकांशुशुतप्तं विष्यन्दते हिमम् ।
श्लेष्मा तप्तः स्थिरोदेहे स्वेदै विष्यन्दते तथा ॥
स्विन्नं ज्ञात्वा ततस्तूर्णं भोजयेत्स्निग्धमोदनम् ।
मत्स्यानां शूकराणां वा रसैर्दध्युत्तरेण वा ॥
च. चि. अ. १७

लवणमिश्रित तैल का अभ्यंग करके नाड़ीस्वेद प्रस्तरस्वेद तथा शंकरस्वेद से उपचार करें। स्वेदन से स्रोतों में स्थित ग्रथित कफ विलीन हो जाता है, स्रोतोमार्ग मृदु हो जाते हैं और वात का अनुलोमन होता है। स्वेदन द्वारा कफ के विलीन हो जाने पर वह कोष्ठ में आ जाता है और वहां से सुविधापूर्वक बाहर निकाला जा सकता है।

जिस प्रकार पर्वतस्थ वृक्षों पर जमा हुआ हिम (बर्फ) जब सूर्य की प्रखर किरणों से स्वेदित होता है तब पिघलकर प्रवाहित हो जाता है उसी प्रकार शरीर में ग्रथित कफ स्वेदन द्वारा दिये गये ताप से पिघलकर बह जाता है।

भलीप्रकार से स्वेदन हो जाने पर शीघ्र ही रोगी को मत्स्य अथवा शूकर के मांसरसों से अथवा जिन व्यंजनों में दधिप्रधान हो, उनके साथ स्निग्ध ओदन खिलावे। स्निग्ध ओदन खिलाने से तरल रूप कफ की वृद्धि होगी और कफके बढ़ने पर रोगी को पिप्पली, सैंधव तथा मधु से युक्त वामक औषधियों का पान कराये। यह ध्यान रखना चाहिए कि वामक औषधियां वातवर्धक न हों।[1]

वमन हो जाने के बाद दूषित कफ के निकल जाने के कारण स्रोतों की शुद्धि हो जाती है और वायु भी वाधा रहित होकर संचरण करता है।[2]

वमन के उपरान्त भी यदि कुछ दोष स्रोतों में लीन रह गये हों तो विभिन्न प्रकार के धूमों का प्रयोग कर दोषों को निकालना चाहिये।

सुश्रुत ने स्वेदन के बाद ही धूम्रपान का उल्लेख किया है। श्वास का रोगी वलवान भी हो सकता है तथा दुर्बल भी। कोई रोगी कफाधिक हो सकता है और कोई रुक्ष तथा वाताधिक। अतएव सर्व प्रथम रोगी की दोषावस्था का विचार करना चाहिए।[1]

जो रोगी बलवान् हो, कफ की मात्रा अधिक हो, एसे रोगी को वमन देना चाहिए। वमन के उपरांत मातुलुंग, अम्लवेतस, हिंगु, पीलु एवं विड् लवण आदि औषधियों से युक्त अन्न मृदु विरेचनार्थ देना चाहिए। वमन के बाद भी जो दोष कोष्ठ में अवशिष्ट रह गये हों वे विरेचन द्वारा निकल जाते हैं।[2]

जो रोगी दुर्वल, वातिक, वालक अथवा बृद्ध हो तो उसे वमनादि संशोधन क्रिया न कर जांगल, उरभ्र एवं आनूप मांस रसों को सुसंस्कृत कर देना चाहिए जिससे रोगी का संतर्पण हो सके। श्वास नाशक औषधियों से सुसंस्कृत स्नेहयूष का प्रयोग इस प्रकार के रोगी में उत्तम रहता है।

क्षतक्षीण, अतिसार, रक्तपित्त एवं दाह के अनुबन्ध से होने वाले श्वास रोग में मधुर, स्निग्ध,

---

[1] —ततः श्लेष्मणि संवृद्धे वमनं पाययेतु तम् ।
पिप्पली सैंधव क्षौद्र युक्तं वाताविरोधि यत् ॥

[2] —निहृते सुखमाप्नोति सकफं दुष्टविग्रहे ।
स्रोतःसु च विशुद्धेषु चरत्यविहतोऽनिलः ॥
लीनश्चेद्दोषशेषः स्याद्धूमैस्तं निर्हरेद्बुधः ॥
—च. चि. अ. १७

(१) स्विन्नं ज्ञात्वा ततश्चैवभोजयित्वा रसौदनम् ।
वातश्लेष्म विवन्धे वा भिषग्धूमं प्रयोजयेत् ॥
—सु उ. अ. ५१
हिक्काश्वासामयो ह्येके वलवान्दुर्बलोऽपरः ॥
(२) कफाधिकस्तथैवेकोरुक्षो वह्वनिलोऽपरः ।
कफाधिके बलस्थे च वमनं सविरेचनम् ॥
—–च. चि. अ. १७

ध्यानोदावर्ततमके मातुलुंगाम्लवेतसैः ।
हिंगुपीलुविडैर्युक्तमन्नंस्यादनुलोमनम् ॥
ससैंधवं फलाम्लं वा कोष्णं स्याद्विरेचनम् ॥
—–अ. हृ. चि अ. ४

दुर्बलेचैव रुक्षे च तर्पणं हितमुच्यते ।
जांगलोरभ्रजैमासैरानूपैर्वासुसंस्कृतैः ॥
सु. उ. अ. ५१
सपयैदेव शमनैः स्नेहयूषरसादिभिः ।
—–च. चि. अ. १७

शीतहर एवं वृंहण क्रियाओं द्वारा उपक्रम करना चाहिए।[1]

जब औषधियां, अन्न, पेयपदार्थ एवं विहार आदि कफवातघ्न उष्ण एवं वातानुलोमक हों वह श्वास के रोगी के लिए हितकर होते हैं।[2]

जो औषधि वातकारक किन्तु कफ नाशक हो अथवा वातनाशक किन्तु कफ वर्धक हो, तो उसका एकान्त रूप से प्रयोग करना निषिद्ध है तथापि वातनाशक औषधियों का प्रयोग अधिक उपयोगी है। वातहर क्रिया से वातहरण के साथ ही वृंहण हो जाता है और यदि अल्प हानि भी हो जाय तो वह शक्य है। शमन चिकित्सा में कोई उपाय नहीं होता। कर्षण चिकित्सा से हानि अधिक हो सकती है और फिर वह अशक्य हो जाता है अतएव संशोधन किये गये रोगियों का अथवा जिनका संशोधन नहीं हुआ उन्हें भी शमन तथा वृंहण कर्मों द्वारा उपचार करना चाहिए।[3]

स्नेहन--

स्वेदन से पूर्व स्नेहन करने का सामान्य नियम है और स्नेहन के बाद ही स्वेदन का उत्तम लाभ मिलता है। मुख द्वारा स्निग्ध पदार्थों के सेवन का निषेध कहीं नहीं मिलता और चिकित्सा क्रम में चरक का जो पाठान्तर है उसमें स्नेहन का विधान बताया गया है अतएव स्वेदन से पूर्व स्नेहन आवश्यक है। दुर्बल, वातिक, वृद्ध एवं बालक रोगियों के लिए स्नेहयूष एवं मांस रस द्वारा तर्पण का विधान भी स्पष्टतया मिलता है। सुश्रुत में सौवर्चलादिघृत, हिंस्राद्यघृत, शृंग्यादिघृत, अभयादिघृत एवं सुवहाद्यघृत का प्रयोग स्पष्टरूप से शमन चिकित्सा के रूप में किया है। चरक ने भी दशमूल्यादि, तेजोवत्यादि एवं मनःशिलादि घृतों का उल्लेख किया है। अतएव स्वेदन से पूर्व श्वासनाशक शमन औषधियों से सिद्ध घृत आदि स्नेह पदार्थों से स्निग्ध कर लेना आवश्यक है। स्नेहन से शरीर स्थित दोष शिथिल हो जाते हैं और वात का शमन होता है। सूक्ष्म स्रोतों से स्थित दोष स्नेह में विलीन हो जाते हैं और तत्पश्चात् किये गये स्वेदन द्वारा दोष कोष्ठ में आते हैं अतएव दोषों के विलयन के लिए स्नेहन आवश्यक है।

रोगी की विशेष अवस्था पर भी स्नेहन का प्रयोगाप्रयोग निर्भर करता है। यदि कफ का अतिशय उत्क्लेश हो गया हो तब स्नेहन नहीं करना चाहिए और इस अवस्था में रुक्षस्वेद किया जा सकता है।

यहां आतुरालय में चिकित्सित श्वास रोगियों को संशोधन क्रम में सर्व प्रथम स्नेहपान कराया गया और जब स्नेहोद्वेष, वातानुलोम्यता, दीप्ताग्नि, स्निग्धवर्चस आदि सम्यक् स्नेह के लक्षण उपस्थित हो गये उसके अनन्तर ही स्वेदन तथा वमन दिया गया।

स्वेदन—

श्वास रोग में चरकने नाड़ीस्वेद, प्रस्तरस्वेद तथा शंकरस्वेद का विधान लिखा है।

नाड़ी स्वेद—

एक हण्डिका या घड़ा लेकर उसमें नाड़ी लगा देनी चाहिये। यह नाड़ी कई स्थानों पर मुड़ी हुई

---

[1] —क्षतक्षीणातिसारासृक्पित्तदाहानुबन्धजान् ।
मधुरस्निग्ध शीताद्यैर्हिक्काश्वासानुपाचरेत् ॥
——च. चि. अ. १७

[2] —यत्किंचित् कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् ।
भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वासहिक्कने ॥
——च. चि. अ. १७

[3] — वातकृद्वाकफहरं कफकृद्वानिलापहम् ।
कार्यं नैकान्तिकं ताभ्यां प्रायः श्रेयोऽनिलापहम् ॥
सर्वेषां वृंहणे स्यल्पः शक्यश्च प्रायशो भवेत् ।
नावश्यं शमनेऽपायो भृशोऽशक्यश्च कर्शने ॥
तस्माच्छुद्धानशुद्धांश्च शमनैवृंहणैरपि ।
हिक्का श्वासार्दितांजन्तून् प्रायशः समुपाचरेत् ॥
——च. चि. अ. १७

रहे। घड़े के अन्दर मूल फल, पत्र, पुष्प, पशु पक्षियों के मांस आदि से युक्त कांजी, घृत, मूत्र दुग्ध एवं जल आदि डालकर एरण्ड पत्र आदि द्वारा मुख को भली भांति बन्द कर देना चाहिये और इस यन्त्र के नीचे अग्नि डाल दें। उष्ण होने पर वाष्प नाड़ी से निकलेगा। इससे रोगी का स्वेदन करें।

प्रस्तर स्वेद--

शूकधान्य, शमीधान्य, वेशवार, पायस एवं कृशरा आदि को स्वेद्य पुरुष के प्रमाणानुसार फैला कर उस पर एरण्ड अथवा अर्क आदि का पत्ता बिछा दे और रोगी स्नेह की मालिश कर उसके ऊपर लेट जाय। इसे ही प्रस्तर स्वेद कहते हैं।

शंकर स्वेद --

तिल, माष, कुलत्थ, पायस, एवं कृशरा आदि द्रव्यों के पिण्ड बनाकर उन्हें वस्त्र में रखकर अथवा बिना वस्त्र में रक्खे हुए ही जो स्वेदन कराया जाता है उसे शंकर स्वेद कहते हैं।

श्वास रोग के चिकित्सा क्रम में स्वेदन का महत्व अधिक बताया गया है। स्वेदन द्वारा वात-कफात्मक विकार दूर होते हैं और श्वास रोग भी वात कफात्मक विकार ही है। रोग, ऋतु तथा रोगी के बलाबल के अनुसार यथोचित द्रव्यों से विधि पूर्वक तैयार किया हुआ एवं स्वेद योग्य स्थान में किया गया स्वेदन अतिशय लाभकारी होता है। श्वास के रोगियों को अन्य स्थानों की अपेक्षा उर:प्रदेश में स्वेदन देना चाहिये। उर:प्रदेश में स्वेदन से प्राणवह स्रोतों में स्थित दोषों का विलयन अधिक मात्रा में हो सकेगा और तभी दोषों के उत्क्लेश की प्रवृत्ति होगी। स्वेदन से प्राणवह स्रोतों के अन्दर स्थित कफ दोष का विलयन हो जाता है और इस प्रकार बहुत अंशों में स्रोतोरोध दूर हो जाता है। उर:प्रदेश में हृदय भी रहता है और हृदय को स्वेदन से बचाने का निर्देश है अतएव सर्वदा मृदु स्वेद ही करना चाहिये।

यहां रोगियों को स्नेहन के बाद साधारण स्वेद दिया गया। प्रस्तर एवं नाड़ी स्वेद का विधान नहीं किया गया, केवल उष्णोदकदृति ((hot-water bag) से स्वेदन कराया गया। श्वास वेग काल में भी इस थैली के उर:प्रदेश पर रखने से रोगी को शर्म लाभ मिलता है, ऐसा देखा गया।

वमन –

आचार्य चरक ने श्वास रोगियों के लिये स्वेदन के पश्चात् वमन का विधान बताया है। उर:प्रदेश तथा आमाशय स्थिति दोषों के निर्हरण के लिये वमन का प्रयोग किया जाता है। श्वास रोग का अधिष्ठान उर:प्रदेश है और दोषों में कफ दोष की प्रधानता होती है और इस प्रकार अधिष्ठान तथा दोष दोनों दृष्टिकोणों से वमन ही सर्वोत्तम चिकित्सा है। आचार्य चरक ने लिखा है कि कफ प्रधान तथा उरोगत विकारों को दूर करने एवं आमाशय की शुद्धि के लिये सभी उपक्रमों की अपेक्षा वमन प्रधानतम[1] है।

वमन द्वारा किये गये दोषनिर्हरण से आमाशय की शुद्धि हो जाती है और इस प्रकार आम की उत्पत्ति का मूलस्थान शुद्ध हो जाता है, अग्नि प्रदीप्त होती है जिस से पुनः पुनः आमरस की उत्पत्ति का भय नहीं रहता। स्नेह स्वेदादि द्वारा स्रोतों में स्थित दोषों का विलयन हो गया होता है और वे वमन द्वारा निकल जाते हैं। इस प्रकार सदा के लिये दोषों का समूल उच्छेद हो जाता है। संशमन चिकित्सा द्वारा की गई रोग शान्ति से रोग का पुनराक्रमण हो सकता है क्योंकि रोग का जड़ से विनाश नहीं होता, परन्तु वमनादि संशोधन उन्हें सदा के लिये नष्ट कर देता है।

(१ वमनं तु सर्वोपक्रमेभ्यः श्लेष्मणि प्रधानतमं मन्यन्ते भिषज', तदस्यादित स्वामाशयमनुप्रविश्य उरोगतं केवलं वैकारिकं श्लेष्ममूलमूर्ध्वमुत्क्षिपति ।।

(च-सू-अ-२०-१६)

कुछ श्वास रोग हृद्रोग के उपद्रव स्वरूप उत्पन्न होते हैं और हृद्रोग में वमन का निषेध किया गया है अतएव यदि श्वास का रोगी हृद्रोग से युक्त हो तो उसे वमन नहीं देना चाहिए और इसकी सम्यक् परीक्षा पूर्व में ही करके स्थिर विचार कर लेना उत्तम रहता है।

श्वास के रोगियों के लिये वमनार्थ चरक ने मधु युक्त पिप्पली तथा सैन्धव का प्रयोग लिखा है।[1] वमन के लिये प्रयुक्त द्रव्यों में मदनफल को सर्व श्रेष्ठ माना गया है। अन्य वामक द्रव्यों की अपेक्षा मदनफल[2] अल्प हानिकारक होता है अर्थात् यदि वमन द्रव्यों का अयथावत् प्रयोग हो जाय तो वे अधिक विकार उत्पन्न कर सकते हैं परन्तु मदनफल उतना विकार नहीं करता। मदन, जीमूतक, इक्ष्वाकु, कोशातकी, इन्द्रयव एवं वचा आदि द्रव्यों की गणना श्रेष्ठ वामक द्रव्यों में की गई है। रोगी विशेष के लिये वामक द्रव्यों का चुनाव अवस्था विशेष तथा वामक द्रव्यों की उपलब्धि के अनुसार करना चाहिये।.

सभी वमन योगों में कफ को विलीन तथा छेदन करने के लिये मधु और सैन्धव लवण मिलाना चाहिये। संशमन कषाय आदि योगों में शीतावस्था में ही मधु के मिलाने का विधान है परन्तु वमनयोग में उष्णावस्था में भी मधु मिलाने से कोई आपत्ति नहीं है। मदनफल आदि के कषाय का प्रयोग सुखोष्ण अवस्था में ही किया जाता है अतएव मधु मिलाने में दुविधा में नहीं पड़ना चाहिये। उष्णकषाय में मिलाये हुए मधु से कोई हानि नहीं होती क्योंकि वह पाचन के बिना पुनः बाहर निकल जाता है और अपने साथ दोषों को भी बाहर निकालता है।[1]

मधु के अतिरिक्त षाडव, राग, लेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पणपानक, मांस रस, एवं मद्य आदि में से किसी एक में मदनफल आदि वमन द्रव्यों का प्रयोग रोगी की इच्छा, दोष एवं रोग के अनुसार करना चाहिए।

जिस पुरुष में कफ की अधिकता होती है उसे आराम के साथ वमन होता है और कफ के अल्प होने पर वामक औषधियां वमन नहीं लाती अतएव पूर्व में कफ को स्नेह स्वेदादि द्वारा बढ़ाकर एवं विलीनकर कोष्ठ में जमा कर लेना चाहिए।

सम्यक्कृत वमन के लक्षण[2]—

वमनौषध पिलाने पर यदि क्रमशः कफ, पित्त एवं वायु का निःसरण हो तो सम्यक् वमन हो गया है, ऐसा जानना चाहिए। यद्यपि पित्तान्त वमन का निर्देश पूर्व में किया गया है तथापि पित्त के बाद वायु का निःसरण, पित्तान्त के अनुरूप ही है। कफ एवं पित्त के निकल जाने के बाद अवशिष्ट वायु ही उर्ध्वमार्ग से निकलता है। वायु के आने से यह समझा जाता है कि पित्त निकल गया है और यह अन्तिम लक्षण है। इसके साथ ही हृदय, पार्श्व, मस्तिष्क एवं इन्द्रियों के मार्गों की शुद्धि और शरीर का लाघव भी सम्यक् वमन का लक्षण है।

---

[1] —ततः श्लेष्मणिसंवृद्धौ वमनं पाययेतु तम्।
पिप्पलीसैन्धवक्षौद्रयुक्तं वाताविरोधि यत्॥
च-चि-अ-१७

[2] —वमनद्रव्याणां मदनफलानि श्रेष्ठतमान्याचक्षते।
च-क-अ-१

[1] —सर्वेषु तु मधुसैन्धवम् कफविलयनच्छेदार्थं
वमनेषु विदध्यात्। च० क० अ० १
तथा वदर षाडवराग···दद्यातेः साधुवमतीति।
च-क-अ-१

[2] —क्रमात्कफः पित्तमथानिलश्च
यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः।
हृत्पार्श्वमूर्धेन्द्रिय मार्गशुद्धौ
तथा लघुत्वेपि च लक्ष्यमाणे॥
च० सि० अ० १

पित्तान्तमिष्टं वमनम्। च. सि. अ. १

अकृत वमन के लक्षण[1]--

यदि स्फोट, कोठ एवं कण्डू की उत्पत्ति हो जाय तथा हृदय, स्रोतस् एवं इन्द्रियां विशुद्ध न हों, शरीर में गुरुता हो तो अकृत वमन समझना चाहिये।

अतिकृत वमन के लक्षण[2]--

वमन के अतियोग से तृषा, मोह, मूर्च्छा, वातकोप, निद्रानाश एवं दौर्बल्य आदि लक्षण होते हैं।

वमन की क्रिया का सम्पादन उत्तम प्रकार से होना चाहिए। जघन्य अथवा अवर वमन में चार वेग होने चाहिए। मध्य में छः तथा प्रवर वमन में आठ वेग उत्तम रहते हैं[3]। पित्तांत वमन को सम्यक् वमन माना जाता है और अवर वमन से १ प्रस्थ, मध्य में १/२ प्रस्थ तथा प्रवर वमन से २ प्रस्थ दोषों के निर्हरण का प्रमाण माना जाता है।

रोगीवृत्तम् में कृत वमन का जो विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है उसमें नं १ रोगी ने तरल की मात्रा केवल ३४ औंस ली परन्तु वमित द्रव्यों की मात्रा ५० १/२ औंस थी इसी प्रकार नं० २ में लिए गये द्रव्य की मात्रा ८८ औंस तथा वमित द्रव्यों की मात्रा की ३५ औंस थी। इस प्रकार क्रमशः प्रथम रोगी में १६ १/२ औंस तथा द्वितीय रोगी में ७ औंस दोषों की मात्रा का निर्हरण हुआ। वस्तुतः वमित द्रव्यों का रसायनिक विश्लेषण कर यह पता लगाना चाहिए कि विशिष्ट रूप में निकलने वाले द्रव्यों में क्या क्या अंश है? यहां इसकी सुविधा नहीं रहने के कारण ऐसा नहीं किया जा सका परन्तु इतना तो निश्चित है कि शरीर से दोषों का निर्हरण उत्तम परिमाण में हुआ।

विरेचन--

वमन के अनन्तर संसर्जनक्रम समाप्त हो जाने पर श्वास के रोगियों के लिए विरेचन का निर्देश है। जो दोष वमन के उपरान्त भी बचे रहते हैं तथा आमाशय से नीचे चले गये होते हैं उनका निर्हरण विरेचन द्वारा हो जाता है। मृदु औषधियों द्वारा ही श्वास रोगियों में विरेचन कराना चाहिए क्योंकि श्वास कफ प्रधान रोग है और वमन के द्वारा ही अधिक परिमाण में दोषों का निर्हरण हो गया होता है। यदि रोगी बलवन् हो और दोष अवशिष्ट रह गये हों तो विरेचन से उत्तम लाभ होता है।

वाग्भट ने मृदुविरेचनार्थ मातुलुङ्ग, अम्लवेतस, हिंगु, पीलु एवं बिडलवण का उल्लेख किया है। बीजपूरादि अम्लफलों को कोष्णकर तथा सैंधव मिलाकर भी विरेचन दिया जा सकता है।

रोगी की अवस्था के अनुसार विरेचन द्रव्यों का चुनाव करना चाहिये और मृदुविरेचन ही देना चाहिये।

धूम्रपान*--

संशोधन के अनन्तर धूम्रपान कराने का निर्देश किया गया है। संशोधन के बाद भी जो दोष स्रोतों में लीन रह जाते हैं वे धूम्रपान के द्वारा निकल आते हैं अतएव धूम्रपान का प्रयोग उत्तम रहता है।

यहां आतुरालय में रोगी को शोधन के अनन्तर धूम्रपान कराया गया (देखिये संशोधित रोगी नं. १)

धूम्रपान के लिये चरक ने अनेक योगों का उल्लेख किया है। रोगी की अवस्था तथा दोषानुसार प्रयोग करना चाहिये। सामान्यतया धूम्रपान की वर्ति बनाकर प्रयोग करना उत्तम रहता है। चरक

---

[1] १-दुश्छर्दिते स्फोटककोठकण्डूहृत्खाविशुद्धिगुरुगात्रता च।

[2] २-तृण्मोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा बलातिहानिर्वमनेऽतिचस्यात्।

च. सि. अ. १

[3] ३-जघन्यमध्यप्रवरे तु वेगाश्चत्वार इष्टा वमनेषडष्टौ।

च. सि. अ. १

*लीनश्चेद्दोषशेषः स्याद्धूमैस्तं निर्हरेद्बुधः।

च० चि० अ० १७

अशान्तौ कृतसंशुद्धे धूमैर्लीनं मलं हरेत्

अ० हृ० चि० अ० ४

ने धूम्रवर्ति बनाने का निर्देश निम्न प्रकार से किया है।

औषधियों को अच्छी तरह जल से पीसकर सरकण्डे की इषीका (खोल) को लिप्त कर दे। इस वर्तिका को यव के आकार की बनावे, अर्थात् दोनों पार्श्वभागों में पतली और मध्य में मोटी हो। मध्यभाग में अंगुष्ठ के समान मोटी होनी चाहिए। वाग्भट के अनुसार औषधों के कल्क का पांच बार लेप करना चाहिए। इषीका १२ अंगुल लम्बी लेनी चाहिए। इस इषीका के दोनों ओर दो-दो अंगुल छोड़कर बीच के ८ अंगुल परिमित प्रदेश पर कल्क का लेप होना चाहिये[*]।

श्वास रोगियों के लिए निम्नांकित धूम्रपान का उल्लेख मिलता है।

(१) हरिद्राद्यधूमवर्ति (२) स्योनाक, एरण्ड, पद्माख, गुग्गुलु, अगर, शल्लकी आदि का धूम्रपान।

(३) मोंम, राल, एवं घी को सकोरे में डाल कर दूसरे सछिद्र सकोरे से ढककर बन्द कर दे और छिद्र में नलिका लगाकर उसका धूम्रपान करे। —च. चि. अ. १७

संशमन चिकित्सा—

शोधन और शमन भेद से चिकित्सा के दो विभाग होते हैं। शोधन चिकित्सा के बाद भी जो दोष अवशिष्ट रह जाते हैं उनकी निवृत्ति संशमन औषधियों द्वारा होती है। यदि रोगी रुक्ष दुर्बल तथा अल्प दोष से युक्त हो तो प्रारम्भ से ही शमन औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

तमक श्वास की संशमन चिकित्सा को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। १—श्वासवेग उपस्थित होने पर वेग की तात्कालिक शान्ति के लिए दी जाने वाली औषधियां और २—संशोधन के पश्चात् या संशोधन के बिना भी रोगी की स्थायी शान्ति के लिए प्रयोज्य औषधियां।

श्वासवेग उपस्थित होने पर धूम्रपान, वाष्प, नस्य या तत्काल प्राणवहस्रोतों के संकोच को दूर करने वाली औषधियों का प्रयोग व्याधि प्रत्यनीक के रूप में किया जाता है। सुश्रुत ने विदारीगन्धादि, सुरसादि और दशमूल इन गणों की औषधियों को श्वासहर लिखा है। चरक ने शठी, पुष्करमूल, अम्लवेतस, एला, हिंगु, अगुरु, सुरसा, तामलकी, जीवन्ती तथा चण्डा इन दश औषधियों के गण को श्वासहर संज्ञा दी है। श्वास के वेग को तत्काल दूर करने में सोम, धत्तूर, शृङ्गी, सूचीबूटी, पुष्करमूल तथा कुष्ठ आदि औषधियों का प्रयोग किया जाता है और इनसे तात्कालिक शान्ति मिलती है। कुष्ठ चूर्ण को २ माशे की मात्रा में अग्नि पर डाल कर उसके धूम्र को मुख एवं नासिका द्वारा लेने पर तत्काल लाभ होता है। यहां आतुरालय में कई रोगियों पर इसका प्रयोग किया गया और १०-१५ मिनट बाद ही ३० प्रतिमिनट चलने वाली श्वासगति क्रमशः निम्न होकर २२-२४ तक आ जाती थी। केवल वेगकाल में इस धूम्र का प्रयोग लाभकर होता है। यदि अवेगकाल में धूम्र दिया जाय तो रोगी को अरति होने लगती है और तीव्र अवसादक प्रभाव होता है अतएव श्वासवेग के अनुपस्थित होने पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार सोम चूर्ण की ४ रत्ती से १ माशे तक की मात्रा का प्रयोग मधु में मिलाकर करने से तत्काल रोगी को लाभ होता है। सोम के प्रयोग से तत्काल प्राणवहस्रोतों का प्रसार होता है और इस प्रकार स्रोतोरोध के कुछ अंशों में दूर हो जाने के कारण शांति मिलती है। मल्ल के योग—यथा—श्वासकुठार रस, मल्लसिंदूर, रसमाणिक्य शुद्ध मनःशिला आदि का स्वतन्त्र प्रयोग भी लाभकर होता है। कनकासव की १½ से २ तोला तक की मात्रा

---

[*] पिष्ट्वा लिम्पेच्छरेषीकां तां वर्ति यवसन्निभाम्।
अंगुष्ठसम्मितां कुर्यादष्ठांगुलसमां भिषक्॥
शुष्कां निगर्भां तां वर्ति धूमनेत्रार्पितां नरः।
स्नेहाक्तामग्निसंप्लुष्टां पिवेत्प्रायोगिकींसुखाम्॥
च-सू-अ-५

तत्काल श्वासवेग को दूर करने में समर्थ होती है। अन्य अनेक योग जिसका प्रयोग आतुरालय में श्वास शमनार्थ किया गया और जिससे रोगी को तात्कालिक लाभ हुआ, उसकी सूची आगे दी जा रही है।

सामान्य संशमन—

श्वासवेग के दूर हो जाने के बाद सामान्य संशमन औषधियों का प्रयोग किया जाता है जिससे श्वासवेग उपस्थित ही न हो। रोगी की स्थिति एवं दोषों के बलाबल का विचार करके संशोधन के अनन्तर या प्रारम्भ से ही संशमन औषधियों का प्रयोग करना चाहिये। औषधियां कफवातघ्न, उष्ण एवं वातानुलोमन होनी चाहिये। तमक श्वास आमाशयोत्थ विकार है और आमरस के कारण इस रोग को प्रश्रय मिलता है अतः आमपाचन एवं अग्निदीप्ति के लिये प्रारम्भ में दीपन-पाचन औषधियों का प्रयोग उत्तम रहता है। आमरस को दूर करने के लिए मृदु लंघन कराया जा सकता है। लंघन से वातवृद्धि होती है और इस रोग का आरम्भक कारण वातदोष है अतएव पूर्ण उपवास न कराकर वातहर एवं सुपाच्य अन्न खिलाना चाहिये। सायंकाल के पश्चात् भोजन न देना अच्छा रहता है। अन्नपान को पुष्करमूल, शठी, त्रिकटु मातुलुङ्ग, अम्लवेतस, घृत, विडलवण एवं हिंगु से सुसंस्कृत कर प्रयोग करना उत्तम रहता है। विभिन्न प्रकार की श्वासनाशक औषधियों से सिद्ध घृत का प्रयोग करना चाहिये। घृत से अग्निदीप्ति एवं वातहर दोनों क्रियायें होती हैं। कोष्ठ शुद्धि पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। विबन्ध उपस्थित होने पर प्रायः श्वास के वेग आ जाया करते हैं अतएव औषधि एवं अन्न ऐसे होने चाहिये जिससे विबन्ध दूर रहे। विबन्ध होने पर त्रिफला, त्रिवृत्, अश्वकंचुकी आदि अनुलोमन एवं सर औषधियों का प्रयोग कर कोष्ठ शुद्धि रखनी चाहिये। विभिन्न प्रकार के कषाय जो अग्नि को दीप्त करते हैं उनका प्रयोग उत्तम रहता है। हिंगु उत्तम दीपन-पाचन है और सुश्रुत ने आमलक प्रमाण कण्टकारी कल्क में चतुर्थांश हिंगु मिलाकर मधु के साथ श्वास रोग में खिलाने को लिखा है। आतुरालय में इस योग का प्रयोग किया गया और रोगी को सामान्य लाभ हुआ। विभीतक का पुटपाक बनाकर उसके चूर्ण को नवसादर के साथ प्रयोग करने से ग्रथित कफ का विलयन हो जाता है और कफ शरीर से बाहर निकल जाता है जिससे श्वासरोगियों को तत्काल शांति मिलती है। अनूर्जताजन्य तमकश्वास में मनःशिलादि घृत तथा घृतभृष्ट हरिद्रा का प्रयोग भी लाभकर देखा गया है। कनकासव, मल्लसिंदूर, समीरपन्नग आदि औषधियां शमन के रूप में अच्छा लाभ करती हैं। तमकश्वास में यदि पित्तानुबन्ध हो अर्थात् प्रतमक के लक्षणों से युक्त हो तो पित्तहर औषधियां भी साथ-साथ देनी चाहिये। पित्तानुबन्ध में सूतशेखर मिश्रण और श्वासकुठार मिश्रण से अच्छा लाभ मिलता है। सामान्य संशमन औषधियों की तालिका आगे दी जा रही है।

स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र आतुरालय में श्वास वेग काल में प्रयुक्त औषधि योग—

१ - कर्पूरादि चूर्ण ५ रत्ती, प्रवालभस्म २ रत्ती, सोमचूर्ण २ रत्ती, गोरोचन १ रत्ती—३ बार मधु से।

२—श्वासकुठार रस २ रत्ती, सोमचूर्ण २ रत्ती, प्रवालभस्म १ रत्ती —३ बार मधु से।

३—कनकासव २ तोला जल के साथ।

४—हरिद्राचूर्ण ४ रत्ती, रससमाणिक्य ½ रत्ती, सोमचूर्ण ५ रत्ती—३ बार मधु से।

५ - श्वासकुठार रस १ रत्ती, चन्द्रामृत रस ३ रत्ती, सोमचूर्ण २ रत्ती—३ बार मधु से।

६—चतुर्भुज मिश्रण २ रत्ती, सोमचूर्ण, ३ रत्ती — मधु से।

७—सोमचूर्ण ४ रत्ती, चतुर्भुज मिश्रण २ रत्ती, श्वासकुठार रस २ रत्ती, जातिफलादि १ रत्ती मधु से ।

८—सोमचूर्ण ४ रत्ती, श्वासकुठार रस २ रत्ती, अभ्रकभस्म १ रत्ती, चतुर्भुज मिश्रण २ रत्ती, कुष्ठचूर्ण २ रत्ती—मधु से ।

९—श्लेष्मान्तक रस २ रत्ती, सोमचूर्ण ४ रत्ती, कर्पूरादि चूर्ण २ रत्ती—मधु से ।

१०—हेमगर्भपोटली १/४ रत्ती, अभ्रकभस्म १/२ रत्ती, सूतशेखर रस ४ रत्ती, २-२–घण्टे पर मधु से ।

११—मल्लसिन्दूर १ रत्ती, नागगुटी १ रत्ती, चौसठ-पहरा पीपल २ रत्ती, शृंगभस्म २ रत्ती—मधु से ।

१२—शुद्ध मनःशिला २ रत्ती, शृंगभस्म २ रत्ती, अभ्रकभस्म १/२ रत्ती—मधु से ।

१३—पिप्पली चूर्ण ३ रत्ती, श्वासकुठार रस १ रत्ती—मधु से ।

१४—सोमचूर्ण २ १/२ रत्ती, सर्पगन्धा २ १/२ रत्ती—मधु से ।

१५—कुष्ठचूर्ण ३ माशा—अग्नि पर डालकर धूम्र-देना ।

सामान्य संशमन औषधियां

कषाय —

१—दशमूल कषाय (च-चि-अ-१६)
२—देवदार्वादि क्वाथ (चिकित्सा प्रदीप)
३—शृंग्यादि कषाय (चिकित्सा प्रदीप)
४—भूनिम्ब गुडूची कषाय (सहस्र योग)
५—शट्यादि कषाय (अ-हृ-चि-अ-४)
६—दशमूलादि कषाय (,, ,,)

चूर्ण—

७—शट्यादि चूर्ण (च-चि-अ-१७)
८—पुष्कराद्य चूर्ण (,, ,,)
९—तालीसादि चूर्ण (सिद्ध योग संग्रह)
१०—सितोपलादि चूर्ण (अ-हृ-)
११—कर्पूरादि चूर्ण (योगरत्नाकर)
१२—अजमोदादि चूर्ण (शार्ङ्गधर)
१३—कट्फलादि चूर्ण (,, ,,)

वटी—

१४—मागोत्तर गुटिका (भैषज्य रत्नावली)
१५—एलादि गुटिका (च-चि-अ-१७)
१६—नागगुटी (चिकित्सा प्रदीप)
१७—लवंगादि वटी (सिद्ध योग संग्रह)

अवलेह —

१८—च्यवनप्राशावलेह (सिद्ध योग संग्रह)
१९—वांसावलेह (भैषज्य रत्नावली)
२०—व्याघ्री हरीतकी (भैषज्य रत्नावली)
२१—हरिद्राखण्ड (,, ,, ,,)

आसवारिष्ट—

२२—कनकासव (भैषज्य रत्नावली)
२३—द्राक्षारिष्ट (,, ,, ,,)
२४—दशमूलारिष्ट (,, ,, ,,)

भस्म —

२५—अभ्रकभस्म (रसामृतम्) ।
२६—प्रवालभस्म (,, ,,)
२६—शृंगभस्म (,, ,,)

रसौषधियां—

२८—मल्लसिन्दूर (रसामृतम्)
२९—सूतशेखर मिश्रण (चिकित्सा प्रदीप)
३०—श्वासकुठार रस मिश्रण (चिकित्सा प्रदीप)
३१—रसमाणिक्य (रसामृतम्
३२—श्वासकुठार रस (भैषज्यरत्नावली)
३३—चतुर्भुज मिश्रण (चिकित्सा प्रदीप)
३४—चन्द्रामृत रस (भैषज्य रत्नावली)
३५—समीरपन्नग रस (रस योग सागर)
३६—श्वासकास चिन्तामणि (,, ,,)
३७—श्लेष्मान्तक रस (चिकित्सा प्रदीप)
३८—शुद्ध मनःशिल (रसरत्न समुच्चय)

घृत —

३६-मनःशिलादिघृत (च-चि-अ-१७)
४०-दशमूल्याद्यघृत (,, ,,)
४१-वासाघृत (,, ,,)
४२-तालिशादिघृत (सु-उ-अ- ५१)
४३-अभयादिघृत (सु-उ-अ·५१)
४४-शृंग्यादि घृत (सु-उ-अ-५१)

श्वास रोग में पथ्य —

अन्न-शालि-यव-गोधूम-कुलत्थ-आदि । शाक-पटोल-बास्तुक-तण्डुलीयक । फल-पक्वकपित्थ खजूर, दाडिम, मातुलुंग आदि । दुग्ध—अजादुग्ध-अजा घृत । पानीय-उष्णोदक-मद्य आदि । मांस-एण-तीतर लावा आदि । अन्य-हिंगु-लशुन-मधु-एला, शुण्ठी, पिप्पली आदि ।

अपथ्य—निष्पाव, माष, पिण्याक्, तिल तैल, आनूप मांस, जलज मांस, गुरु एवं शीत अन्न-पान, प्राग्वात, शीत स्थान, शीतपना, श्लेश्मल पदार्थ, श्रम, शोक, क्रोध, चिन्ता, रात्रि जागरण, आदि ।

रोगी वृत्तम् —

(१) नाम—श्री रा प्रे, पुरुष । वय-१८ वर्ष । प्रवेश तिथि-११-११-५७, निर्गम तिथि-१६-१२-५७ ।
रोग निर्णय-तमक श्वास
वेदना विशेष-बाल्यकाल से ही श्वास कास

इतिवृत्त—

रोगी को बाल्यकाल से ही श्वास का वेग आ जाया करता था । प्रायः प्रति १५ दिनों बाद निश्चित रूप से श्वास वेग उपस्थित होता था । सर्व प्रथम प्रतिश्याय होकर फिर तीव्र प्रकार का आवेगात्मक श्वास कष्ट ४ घण्टे से १-२ दिनों तक रहता था । संशमन औषधियों के प्रयोग से श्वास कष्ट तत्काल दूर हो जाता था परन्तु १५-२० दिन के बाद पुनः उपस्थित हो जाया करता था । रोगी के पिता को भी श्वास कष्ट सम्बन्धी रोग था । प्रवेश के दिन श्वास वेग आया हुआ था और अतीव तीव्र वेग के साथ रोगी श्वास लेता था । बैठने से थोड़ा आराम मालूम देता था परन्तु लेट जाने पर श्वास कष्ट अधिक होजाता था । रात्रि में रोगी को निद्रा का अभाव रहा । श्रवणयन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर प्रवेश दिन दोनों फुफ्फुसों में सीत्कार ध्वनि की उपस्थिति थी, जिह्वा मल युक्त, श्वास गति २६ प्रति मिनट तथा नाड़ी गति ८४ प्रति मिनट थी । थोड़ा थोड़ा कफ भी निकलता था ।

चिकित्सा -

अवधि-१ मास ५ दिन । प्रवेश के दिन श्वास वेग शान्त्यर्थ घृत भृष्ट हरिद्रा की ३ माशे की मात्रा मधु में मिलाकर तीन बार दी गई । दूसरे दिन रोगी का श्वास वेग शान्त हो गया और श्वास गति भी २२ प्रति मिनट हो गई । ७ दिनों तक केवल इसी योग का प्रयोग किया गया । तदुपरि संशोधन चिकित्सा के पूर्व कर्म के रूप में सुकुमार घृत की १ तोला की मात्रा ३ बार प्रति दिन उष्णोदक से देना प्रारम्भ किया । नारायण तैल का उरः प्रदेश पर अभ्यंग कर मृदु स्वेद भी दिया जाने लगा और प्रति दिन सितोपलादि १ माशा एवं श्वास-कुठार रस १ रत्ती की ३ मात्रा मधु से देना प्रारम्भ किया । ३ दिनों के बाद से गन्धर्वहस्तादि कषाय की २ औंस की मात्रा एक बार प्रातःकाल दी जाने लगी और शेष पूर्ववत् चलता रहा । २५-११-को सुकुमार घृत के बदले षट्पल घृत का प्रयोग किया गया । दूसरे दिन भी यही क्रम रहा । २७-११ को स्नेहोद्वेग, वातानुलोमन, स्निग्धवर्चस, दीप्ताग्नि आदि लक्षण उपस्थित थे । नाड़ी मन्द एवं गुरु ५६ प्रति मिनट, श्वास गति १८ प्रति मिनट थी । हृदय, फुफ्फुस आदि अंग अविकृत थे । दक्षिणकुक्षि प्रदेश में स्पर्श से अल्प वेदनाहोती थी एवं मल-स्याव, स्निग्ध तथा जल में डूब जाता था । इन सब लक्षणोंके उपस्थित होने पर प्रातःकाल ६-१५ बजे मदनफल चूर्ण २ तोला, वचा $\frac{1}{2}$ तोला, सैंधव $\frac{1}{2}$ तोला, पिप्पली $\frac{1}{2}$ तोला एवं उष्ण जल ८ औंस के साथ मिलाकर दिया गया । वमन द्रव्यों के देने से पूर्व उरःप्रदेश पर पटुतैलाभ्यंग

करके स्वेदन दिया गया था। वामक द्रव्यों के पान के दो मिनट बाद ही उद्गार एवं हृल्लास प्रारम्भ हुआ जिसका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। पित्तान्त सम्यक् वमन हुआ। अन्दर लिए गये तरल की मात्रा केवल ३४ औंस थी परन्तु वमन में ५०½ औंस निकला अतएव दोषों का उत्तम परिमाण में निर्हरण हुआ। १०-३० बजे हरिद्रा, एरण्ड, मनःशिला, बचा, मधुक, जटामांसी एवं घृत का धूम्रपान कराया गया। सायंकाल पेया दी गयी। दूसरे दिन नाड़ीगति ६३ और श्वासगति १७ थी। शरीर में लाघव उत्साह एवं उद्गार शुद्धि जान पड़ती थी। अगस्त्य हरीतिकी १ तोला, कर्पूरादि चूर्ण ५ रत्ती का तीन बार मधु के साथ प्रयोग शमन के रूप में प्रारम्भ किया। वांसावलेह, गन्धर्वहस्तादि क्वाथ एवं पंचतिक्त कषाय का प्रयोग भी बीच बीच में किया गया। परिणाम-पूर्व में रोगी को प्रति १५-२० दिनों पर श्वास के वेग आ जाया करते थे परन्तु यहां १ माह ५ दिनों तक

रोगी नं० (१) का वमन विवरण

समय	अन्दर लिये गये तरल की मात्रा	वेग	वमित द्रव्य की मात्रा	वमित द्रव्य के स्वरूप	विवरण
९-५	जल मिश्रित दुग्ध २४ औंस	×	×	×	×
९-१५	वमन द्रव्यों सहित उष्ण जल ८ औंस	×	×	×	×
९-१७	×	उद्गार हृल्लास	×	×	×
९-१९	×	२	३१ औंस	कुछ श्याव एवं भूरे वर्ण के साथ दुग्ध एवं तरल	×
९-२३	×	१	४ औंस	,,	×
९-२५	लवण जल २ औंस	×	×	×	×
९-२८	×	२	१० औंस	गहरे पीताभवर्ण का कफ से युक्त	स्वेदागम भी होने लगा
९-३०	×	१	१ औंस	पीताभतरल, फेन एवं कफ सहित	×
९-३१	×	१	१ औंस	पीताभ, फेन सहित	×
९-४५	×	१	१ औंस	हरितपीताभ	पित्त की मात्रा निकलने लगी
९-५०	×	१	१½ औंस	,,	×
कुल योग	३४ औंस औषधि	९ वेग	४९½ औंस	×	×

रहने पर भी कभी वेग नहीं आया। बल, वर्ण एवं कान्ति अच्छी हो गई। अग्निमान्द्य दूर हो गया और रोगी को घर जाने की आज्ञा दी गई।

(२) नाम—कु कु, स्त्री। वय—१५ वर्ष। प्रवेशतिथि—२६-८-५७ निर्गम तिथि—१-१-५८।

रोग निर्णय—तमक श्वास।

वेदना विशेष—श्वासः, कास, प्रति ४-५ दिनों पर बराबर प्रतिश्याय।

इतिवृत्त—प्रायः ४ वर्ष से श्वास का वेग आता था। एकाएक प्रारम्भ हुआ। प्रथम प्रतिश्याय होकर और फिर श्वास के वेग आते थे। प्रायः प्रतिदिन श्वासकष्ट रहता है। दिन में अल्प एवं रात्रि में अधिक। शयनावस्था में श्वासवेग अधिक और बैठने से शान्ति मिलती थी। कण्ठ में घुर्घुर शब्द होता था। प्रायः दोनों फुफ्फुसों में सीत्कार ध्वनि और प्रश्वास काल में पारावत एवं कूजन शब्द होता था। विबन्ध उपस्थित होने पर सामान्यतः श्वासवेग आ जाया करता था।

चिकित्सा—प्रवेश के दिन श्वास वेगकी शान्ति के लिये तथा प्रतिश्याय दूर करने के लिये नीलगिरी पत्र वाष्प तथा सितोपलादि एवं सोम दिया गया।

दूसरे दिन से कर्पूरादिचूर्ण एवं सोम का प्रयोग प्रारम्भ किया। विबन्ध उपस्थित होने पर त्रिफला कषाय, सैंधव एवं मधु की बस्ति दी जाती थी। ६ दिनों बाद पुनः श्वास का तीव्र वेग आ गया और कर्पूरादि चूर्ण, सोम, प्रवाल एवं गोरोचन का मिश्रण वेग शान्ति के लिये दिया गया। अग्निदीप्ति के लिए भास्कर लवण तथा भूनिम्ब गुडूची कषाय भी दिया जाने लगा। इन औषधियों के प्रयोग के बाद भी ३-४ दिनों तक श्वास वेग आ जाया करता था अतएव स्नेहन के लिए ता० २१-९-५७ से सुकुमार घृत १ तोला की ३ मात्रा प्रतिदिन एवं उरः प्रदेश पर पटुतैलाभ्यंग प्रारम्भ किया। बीच-बीच में वेग उपस्थित होने पर कनकासव १½ तोले की मात्रा दी जाती थी। ४ दिनों के स्नेहस्वेद के अनन्तर २५-९-५७ को वमन दिया गया। ४ वेग आये और कफ तथा पित्त का निर्हरण हुआ। वमन के अनन्तर धूम्रपान भी कराया गया। तिथि २८-९-५७ को पुनः श्वासवेग आ गया और श्वासकुठार रस, सोमचूर्ण एवं कर्पूरादि चूर्ण का प्रयोग किया गया। तदनन्तर शृंगभस्म, श्वासकुठार रस, कनकासव, द्राक्षारिष्ट, कनकसुन्दर रस आदि औषधियों का प्रयोग सामान्य संशमन के रूप में किया गया और वेग उपस्थित होने पर तात्कालिक शमन योग दिये जाते थे। अग्निदीप्ति के लिए लवणभास्कर, हिंग्वाष्टक आदि योग भी दिये जाते रहे, तथापि बीच-बीच में विबन्ध एवं प्रतिश्याय उपस्थित होकर श्वासकष्ट हो जाया करता था। कण्टकारी कल्क-१ तोला में चतुर्थांश हिंगु मिलाकर मधु के साथ विभाग करके प्रति दो घण्टे पर १ मात्रा दी जाने लगी और ५ दिनों तक इसे खिलाया। रुग्णा को सामान्य लाभ हुआ परन्तु रोग निवृत्ति नहीं हुई और १-१-५८ को चली गई।

(३) नाम-क वी, पुरुष। वय-३६ वर्ष। प्रवेश तिथि —२६-८-५७। निर्गमन तिथि-१-९-५७।

रोगनिर्णय—तमकश्वास।

वेदना विशेष—३ वर्ष से श्वासकष्ट, कास, मन्दाग्नि, विबन्ध।

इतिवृत्त-प्रायः ४ वर्ष पहले रोगी के कथनानुसार श्वसनक ज्वर हुआ था। बाद में रोगी को दौर्बल्य, कास, श्वास आदि लक्षण उपस्थित हुये। यक्ष्मा के सन्देह के कारण क्ष-किरण भी लिया गया और चिकित्सा की गई। अन्य लक्षण निवृत्त हो गये परन्तु श्वासकष्ट अवशिष्ट रह गया। पूर्व में यह यहां से ४० मील दूर रहता था और जब जामनगर आया तब श्वासकष्ट बढ़ गया। सामान्य औषधियों से तात्कालिक शान्ति होती थी परन्तु १५-२० दिनां बाद पुनः श्वास वेग आ जाया करता था। श्वास होने के साथ ही उदर शूल भी प्रारम्भ

रोगी नं० २ का वमन विवरण

समय	अन्दर लिये गये तरल की मात्रा	वेग	वमित द्रव्य की मात्रा	वमित द्रव्य का स्वरूप	नाड़ीगति	श्वास	विशेष
९-३५	८ औंस दुग्ध	—	—	—	—	—	—
९-४०	औषधि १० औंस	—	—	—	८० प्र० मिनट	२६ प्र० मिनिट	—
९-४१	—	हृल्लास आस्य स्रवण १ वेग	४ औंस	औषध द्रव्य+ दुग्धफेन सदृश द्रव तथा भूराहरा	—	—	—
९-४७	—	२ वेग	१५ ,,	औषधि+ फेन भूरा-उजला	—	—	—
९-५०	—	३ कास १ वेग	४ ,,	औषधि अल्प, कफ एवं फेन अधिक श्वेतवर्ण	—	—	—
९-५५	--	४ कास १ वेग	३ ,,	फेन+श्लेष्मा, वर्ण पीत, रस-तिक्त			स्वेदागम सारे शरीरपर
१०-७	— —	५ कास १ वेग	२ ,,	पीत-वर्ण तिक्तरस फेनयुक्त	९२ प्र०मिनट	—	—
१०-१०	जल २ औंस	—	—	—	—	—	रोगी बेचैन
१०-२०	जल ८ औंस	६ कास १ वेग	६ ,,	पीतवर्ण-श्लेष्मा-युक्त, रस-तिक्त	१०५ ,,	—	घबराहट
१०-३०	—	१ वेग	१ ,,	पित्तनिःसरण	—	२६ ,,	दौर्बल्य
१०-४५	—	—	—	पीतवर्ण कफ का निःसरण	—	—	—
१०-५५	—	—	—	—	—	—	हिक्का का वेग,मधु पानक दिया गया
योग	२८ औंस	८ वेग	३५ औंस	—	—	—	—

हो जाता था और श्वासवेग के शान्त होने पर उदरशूल भी समाप्त हो जाता था। मन्दाग्नि एवं दौर्बल्य भी उपस्थित थे। पूर्व में यह सिन्ध (पाकिस्तान) में रहता था और वहां ३-४ बार श्वसन ज्वर प्रतिवर्ष शीतकाल में हो जाया करता था। इसके पिता एवं माता को भी श्वास की बीमारी थी और इसी रोग से दोनों दिवंगत हुए। व्यायाम शक्ति द्वारा बल की परीक्षा की गई और साधारण श्रम से श्वास वेग ३४ प्रति मिनट होजाया करता था। अत्यन्त वेग से खांसी आती थी, शयनावस्था में श्वासकष्ट रहता था और कण्ठ में घुघुर शब्द होता था। उष्ण पदार्थों से शान्ति मिलती थी और प्राग्वात एवं शीत से रोग वृद्धि हो जाया करती थी। फुफ्फुसों में सीत्कार ध्वनि मिलती थी। निदान के दृष्टिकोण से दधि, जलज एवं आनूप मांस, धूम्रपान एवं निदानार्थकर रोगों में ज्वर एवं कास का इतिवृत्त बताता था। श्वासवेग प्रारम्भ होने से पूर्व अरति, विबन्ध, पार्श्वशूल एवं भक्तद्वेष पूर्वरूप के रूप में उपस्थित होते थे।

चिकित्सा—प्रवेश के दिन कर्पूरादि चूर्ण १ माशा ३ बार मधु से दिया गया। तीन दिनों तक श्वासकुठार २ रत्ती, सोमचूर्ण २ रत्ती एवं अकरकरा चूर्ण २ रत्ती की ३ मात्रा उष्णोदक से दी गईं। ३१-८ की पूर्वोक्त औषधियों के अतिरिक्त वासास्वरस १।। तोला, भार्ग्यादि क्वाथ २।। तोले में मधु मिलाकर तीन बार दिया गया और विबन्ध दूर करने के लिए त्रिफला कषाय, सैंधव एवं मधु की बस्ति दी गई। श्वासवेग अल्प हो गया था परन्तु रोगी के इच्छानुसार उसे मुक्त कर दिया गया।

(४) नाम—जी गो, स्त्री। वय—५१ वर्ष। प्रवेशतिथि—१७-६-५७ निर्गमतिथि—१-९-५७।

रोग निर्णय—तमकश्वास।

वेदनाविशेष—श्वासकष्ट, शिरोभ्रम, तमः, दौर्बल्यम।

इतिवृत्त—३ साल पहले चलते-चलते गिर गई थी, उरःप्रदेश में अभिघात लगा था और शूल प्रारम्भ हुआ। कुछ दिनों के बाद कास हो गया और ६-७ महीने बाद श्वास के वेग आने लगे। कास के बाद पीतवर्ण का कफ निकलता था। ३ महीने के बाद शीत लगकर ज्वर आ जाया करता था और तीन घंटे बाद पुनः उतर जाता था। ७-८ दिनों तक यह क्रम रहा और फिर ठीक हो गया। प्रायः २ महीने से श्वासकष्ट बराबर ही रहा करता था और रात्रि में अधिक हो जाता था। प्रवेश के दिन हृदय अत्यन्त दुर्बल तथा फुफ्फुसों में सीत्कार ध्वनि की उपस्थिति थी। नाड़ी ९० प्रति मिनट अपूर्ण एवं अल्पशक्ति थी।

चिकित्सा-अवधि—१ मास १३ दिन। प्रवेश के दिन से (१) हरीतकी २ माशा, प्रातःकाल (२) सोमचूर्ण २½ रत्ती, सर्पगन्धा २½ रत्ती, तीन बार मधु से (३) शंखवटी १ गोली, उष्णोदक से तीन बार दिया जाने लगा। इन औषधियों के प्रयोग से वेग की शान्ति हुई। निद्रा आने लगी, बुभुक्षा लगने लगी और रुग्णा को लाभ प्रतीत हुआ। श्वास के वेग नहीं आते थे केवल चलने में श्वासकष्ट हो जाया करता था। ता० ३-७-५८ से सोम के साथ सर्पगन्धा न देकर सोम २½ रत्ती, कर्पूरादि चूर्ण ५ रत्ती, सुवर्णवसन्तमालती १ रत्ती, ३ बार मधु से दिया जाने लगा। रुग्णा को केवल दौर्बल्य अवशेष रह गया। वैवर्ण्य की उपस्थित थी अतएव मधूदक-३ बार प्रतिदिन पिलाया जाने लगा। ता० ८-७-५७ से अन्य औषधियों को बन्द कर केवल पुनर्नवा मण्डूर का प्रयोग वैवर्ण्य एवं दौर्बल्य दूर करने के लिये किया जाने लगा। पुनर्नवा मण्डूर की १ माशे की मात्रा पंचतिक्त घृत के साथ दी जाने लगी। ता० १९-७ को पुनर्नवा मण्डूर की मात्रा १½ रत्ती कर दी गई। २०-७-५७ को पुनर्नवा माण्डूर १ माशे में हेमगर्भपोटली ½ रत्ती तथा शृंगभस्म ३ रत्ती साथ-साथ दिया जाने लगा। ता० १-८-५७ तक इसी औषधि का प्रयोग चलता रहा। रुग्णा पूर्णतः स्वस्थ हो चुकी

थी। कास श्वास नहीं थे। मल प्रवृत्ति ठीक होती थी। निद्रा सन्तोषजनक तथा दौर्बल्य दूर हो गया था, अग्नि ठीक थी, भूख लगती थी अतएव मुक्त किया गया।

(५) नाम हा सो, पुरुष। वय ४० वर्ष, प्रवेश तिथि ६-६-५७ निर्गमतिथि १६-६-५७।

रोग निर्णय–तमकश्वास।

वेदना विशेष–श्वास, कास, दौर्बल्य।

इतिवृत्त—रोगी को १२-१३ वर्ष पहले श्वसनक ज्वर हुआ था और उसके बाद से श्वास का वेग बराबर आ जाया करता था। प्रायः ६ महिने के बाद श्वास का वेग उपस्थित होता था और १०-१५ दिनों तक रहता था। औषधियों के सेवन से शांति मिलती थी। वर्षाकाल एवं शीतकाल में रोग प्रकोप विशेष रूप से हुआ करता था। प्रायः चार मास पूर्व श्वासवेग उपस्थित हुआ था और १ महिने तक रहा। औषधियों के सेवन से आराम लाभ हुआ था और फिर अपना मजदूरी का कार्य प्रारम्भ कर दिया अतएव पुनः श्वासवेग उपस्थित हो गया था। प्रवेश के दिन रोगी के फुफ्फुसों में सीत्कार ध्वनि की उपस्थित थी। अतिवेग से कास होता था और थोड़ा कफ निकलने से शांति मिलती थी। शयनावस्था में कष्ट अधिक रहता था और रात्रि में कुछ-कुछ स्वेद भी निकलता था। रोगी की माता को भी श्वासकष्ट था और प्रायः २० वर्ष पहले दिवंगत हो चुकी थी।

चिकित्सा अवधि–१० दिन। प्रवेश के दिन से (१) सितोपलादि चूर्ण २ माशा, अभ्रक भस्म २ रत्ती श्वासकुठार रस २ रत्ती–३ बार प्रतिदिन हरिद्रा खण्ड के साथ (२) भार्ग्यादि काथ २½ तोला २ बार प्रति दिन तथा (३) सोमचूर्ण ५ रत्ती, पुष्कर-मूल ५ रत्ती, रात्रि में श्वास बढ़ने पर दिया जाने लगा। ५ दिनों तक इसी औषधियों का प्रयोग चलता रहा और इससे रोगी को लाभ हुआ। तिथि १६ से (१) सुवर्णवसन्तमालती १ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, सितोपलादि ५ रत्ती–३ बार मधु से तथा (२) वासावलेह १ तोला तीन बार दुग्ध से दिया जाने लगा। ३ दिनों तक यही औषधि चलती रही और रोगी को अच्छा लाभ हुआ। रोगी की निष्ठयुत परीक्षा कराई गई और यक्ष्मा जीवाणु की उपस्थिति पाये जाने के कारण तिथि १६-६-५७ को मुक्त कर दिया गया।

(६) नाम क ही, पुरुष। वय–५५ वर्ष। प्रवेश तिथि—१२-७-५७। निर्गमतिथि–२-१२-५७

रोग निर्णय–तमकश्वास।

वेदना विशेष–श्वास, दौर्बल्य, कास।

इतिवृत्त—प्रायः १ साल से थोड़ा-थोड़ा श्वास कष्ट था परन्तु २० दिनों से अधिक हो गया था। २० दिन पूर्व रोगी वर्षा में भीग गया और घर पर शीत लग कर ज्वर तथा श्वासकष्ट उपस्थित हो गया। ५-७ दिनों बाद ज्वर का आना बन्द हो गया परन्तु श्वासकष्ट उपस्थित रहा जो रात्रि में अधिक हो जाया करता था। रोगी को प्रायः १० वर्ष पहले श्वसन ज्वर भी हुआ था।

चिकित्सा–अवधि—४ मास २० दिन। प्रवेश दिन से (१) सोमचूर्ण २½ रत्ती, कर्पूरादि चूर्ण २½ रत्ती, अकरकरा चूर्ण ५ रत्ती तथा प्रवालभस्म २ रत्ती ३ बार मधु से और (२) भूनिम्बगुडूची कषाय २½ तोला ३ बार दिया जाने लगा। इनके प्रयोग से श्वास अल्प हो गया और दशा उन्नत हुई। १० दिन बाद से अग्निदीप्त्यर्थ शिवा-एक माशा तथा सैंधव ३ रत्ती मिलाकर उष्णोदक से दिया जाने लगा। तिथि–३०--८ से भूनिम्ब-गुडूची कषाय के बदले वासास्वरस १½ तोला, भार्ग्यादि क्वाथ—२ तोला मधु के साथ दिया जाने लगा और शेष पूर्ववत् रहा। रोगी की दशा में दिनानुदिन सुधार होता रहा और तिथि १८-६ से (१) व्याघ्री हरीतकी १ तोला दो बार दुग्ध से (२) कनकासव ½ तोला २ बार भोजनोत्तर जल से, (३) द्राक्षासव ½ औंस भोजन से ½ घण्टा

:: शेषांश पृष्ठ ११७६ पर ::

संक्षिप्त सारांश तथा उपसंहार

(१) विकृति जानने के लिए प्राकृत अवस्था का ज्ञान आवश्यक होता है अतएव इस निबन्ध में सर्व प्रथम श्वास के रूप में होने वाले प्राकृत क्रिया शारीर का दिग्दर्शन कराया गया है ।

(२) अथर्व वेद तथा आयुर्वेद में संक्षिप्त रूप में वर्णित श्वसन क्रिया का विवेचन प्रस्तुत कर आधुनिक विवरण के साथ सामंजस्य उपस्थित करने की चेष्टा की गई है ।

(३) श्वास रोग की निदान चिकित्सा के विवेचन से पूर्व आवश्यक सामान्य विवरण प्रस्तुत किया गया है और श्वास किसे कहते हैं तथा आधुनिक दृष्टिकोण से उसके कारणों की विवेचना की गई है ।

(४) श्वास रोग आमाशयोत्थ विकार है और पित्त स्थान के साथ इसका महत्व पूर्ण सम्बन्ध है इसे सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक दोनों प्रकारों से उपस्थित कर इसके सम्बन्ध में अनेक प्राच्य-प्रतीच्य विकारों को प्रस्तुत करते हुए समन्वय का प्रयत्न किया गया है ।

(५) श्वास रोग के निदानों का विवेचन करते हुए दूषी विष के साथ अनूर्जता का साम्य उपस्थित किया गया है । व्युत्पत्ति, सम्प्राप्ति, प्रकोप, रोगोत्पत्ति तथा दुष्टिकर्तृत्व इन सभी दृष्टिकोणों से अनूर्जता तथा दूषी विष की साम्यता की चेष्टा करके भविष्य में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के लिए एक प्रेरणात्मक समस्या उपस्थित कर दी है ।

(६) तमक श्वास की सम्प्राप्ति के वर्णन क्रम में भी आमाशय से रोग का समुद्भव किस प्रकार होता है, इसे प्रतिपादित किया गया है ।

(७) तमक श्वास के लक्षणों में दोषों तथा उनके आवरणों की सकारणता को सयुक्तियुक्त उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है ।

(८) चिकित्सा क्रम तथा स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन एवं धूम्रपान आदि की श्वास रोग में उपयोगिता को आप्तोपदेश तथा प्रत्यक्ष दोनों प्रमाणों से प्रतिपादित किया है ।

(९) तमक श्वास की संशमन चिकित्सा को दो भाग में विभक्त कर आवश्यक तथा दृष्टफल औषधियों का ग्रन्थों के आधार पर नामतोनिर्देश करके आतुरालय में चिकित्सित श्वास रोगियों का निदान चिकित्सात्मक वृतान्त उपस्थित किया है और उसके आधार पर परिणाम उपस्थित करने का प्रयत्न किया है ।

निबन्ध का उपसंहार करते हुए लेखक का निवेदन है कि विषय के प्रतिपादन में चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि संहिता-ग्रन्थों द्वारा प्रदर्शित सरणी अर्थात् आप्तोपदेश का अनुगमन किया गया है एवं इसी प्रकार प्रत्यक्ष तथा अनुमान का भी आश्रय लिया गया है और इस विवेचन के फलस्वरूप जो परिणाम प्रकाश में आये हैं उसे विद्वज्जनों के समक्ष उपस्थित करने की चेष्टा की है ।

अन्त में अपने विभागीय अध्यक्ष श्री डा० सी० द्वारिकानाथ जी के प्रति अतिशय कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके निर्देशन तथा निरीक्षण में निबन्ध का कार्य पूर्ण हो सका है । केन्द्रीय आयुर्वेदान्वेषण संस्था के प्रधान चिकित्सक आचार्य पं. श्री रामरक्ष पाठक जी का भी में चिर ऋणी हूँ, जिन्होंने अपने बहुमूल्य विचारों से निबन्ध को पूर्ण करने में योगदान दिया है तथा सन्दिग्ध विषयों के लिए उचित परामर्श दे कर अनुगृहीत किया है । अपने विभागीय सहायक अध्यापक श्री चन्द्रकान्त पी० शुक्ल, श्री त्रिलोकचन्द्र जैन तथा केन्द्रीय अन्वेषण संस्था के सहायक चिकित्सक पं. श्री मुकुन्दीलाल जी द्विवेदी द्वारा दिये गये परामर्शों के लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं । टाइप के कारण तथा बुद्धि विभ्रम से अनेक स्थलों पर त्रुटियां रह जाना स्वाभाविक है और तदर्थ लेखक क्षमा प्रार्थी है ।

आपरितोषाद्विदुषां न साधुमन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥

सहायक ग्रन्थों की सूची

ग्रंथ	लेखक
१—अथर्ववेद सायनभाष्यं—	सायनाचार्य
२—अष्टांग-संग्रहः — शशिलेखा व्याख्या—	इन्दु
३—अष्टांगहृदयम्	
सर्वांगसुन्दरी व्याख्या	अरुणदत्त
४—आयुर्वेदीय क्रिया-शारीर--	वैद्य रणजीत राय
५—काश्यप संहिता	
६—चक्रदत्त—	आचार्य चक्रपाणिदत्त
७—चरकसंहिता	
आयुर्वेददीपिका व्याख्या-	आचा. चक्रपाणिदत्त
जल्पकल्पतरु व्याख्या-	कविराज गंगाधर सेन
चरकोपस्कार व्याख्या-	कविराज योगेन्द्रनाथ सेन
तन्त्रार्थदीपिका व्याख्या-	श्रीजयदेव विद्यालंकार
८—चिकित्सा प्रदीप-	वैद्य भास्कर विश्वनाथ गोखले
९—छान्दोग्योपनिषत्	
शांकर भाष्य	शंकराचार्य
१०—त्रिदोष-तत्व-विमर्श —	आचाय रामरक्ष पाठक
११—निदान सहचिकित्सा	
१२—भावप्रकाश	
१३—प्रत्यक्षशारीरम्-	महामहोपाध्याय गणनाथ सेन
१४—भेलसंहिता	
१५—भैषज्य रत्नावली	
१६—माधवनिदानम्	
मधुकोष व्याख्या	आचार्य विजयरक्षित
१७—योगरत्नाकर	
१८—रसयोगसागर का उपोद्घात्-	वैद्य पं. हरिप्रपंन जी
१९—ब्रह्मविज्ञान-	महामहोपाध्याय मधुसूदन शास्त्री
२०—रोग परिचय	शिवनाथ खन्ना
२१—व्याधिविज्ञान	आचार्य यादव जी
२२—शब्दकल्पद्रुम	
२३—शरीर क्रिया विज्ञान	पं. प्रियव्रत शर्मा
२४—शांर्गधर संहिता	
२५—सिद्धयोग संग्रह:	आचार्य यादव जी
२६—सिद्धांतनिदान	महामहोपाध्याय गणनाथ सेन
२७—सुश्रुत संहिता	
निबन्ध संग्रह व्याख्या	आचार्य डल्हण
आयुर्वेद रहस्यदीपिका	श्री भास्कर गोविंद घाणेकर
२८—श्रीमद्भगवद् गीता---	श्रीधराचार्य की टीका
२९—हारीतसंहिता	

ENGLISH:—

1. Ayurveda Sharir by Dr. D. N. Banerjee.
2. British Encyclopidia of Practice of Medicine.
3. Clinical methods by Hutchinson & Hunter.
4. Grey's Anatomy.
5. Halliburton's Physiology.
6. Human Organism by Decoursey.
7. Principles of Internal medicine.
8. Physiological Basis of clinical medicine by Best and Tailor.
9. Physiology of man by Langley & Cheraskin.
10. Manual of Allergy by Milton B. Cohen.
11. Recent Advances in Allergy by Bray.

:: पृष्ठ ११७४ का शेषांश ::

पहले जल से देना प्रारम्भ किया और १८-१० तक यही चिकित्सा चलती रही। १८-१० की सायंकाल श्वास वेग उपस्थित होजाने के कारण (१) प्रवालभस्म २ रत्ती, रसमाणिक्य $\frac{1}{2}$ रत्ती, विभीतकी ३ माशा मधु के साथ ३ बार, बाद में हरिद्राखण्ड $\frac{1}{2}$ तोला (२) कनकासव २ तोला जल के साथ भोजनोत्तर (३) सोम २$\frac{1}{2}$ रत्ती, कर्पूरादि चूर्ण २$\frac{1}{2}$ रत्ती, विभीतकी ५ रत्ती आवश्यकता पड़ने पर दिया जाने लगा। उरःप्रदेश पर पटुतैलाभ्यंग करके स्वेद भी दिया जाता था। तिथि १-११ से (१) सितोपलादि ३ माशा, यष्टिमधु १ माशा, श्वासकुठार रस १ रत्ती-३ बार मधु से (२) सोमचूर्ण ५ रत्ती, प्रवाल २ रत्ती कर्पूरादि ५ रत्ती ३ बार मधु से तथा (३) घृतभ्रष्टनिशा १ तोला मधु से दिया जाने लगा। यह चिकित्सा १-१२-५७ तक चलती रही। रोगी को सामान्य लाभ हुआ। कास दूर होगया। श्वास के वेग की शान्ति रही। दौर्बल्य भी बहुत अंशों में दूर हो गया। अग्नि दीप्त हो गई और रोगी को जाने की आज्ञा दी गई।

समाचार एवं सूचनाएँ

वैद्यों और हकीमों को सूचना

बोर्ड आफ् आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टम्ज् आफ् मैडीसिन पंजाब अमृतसर के निर्णयानुसार गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) १९५७ के पश्चात् इस बोर्ड द्वारा स्वीकृत संस्था नहीं रही। --रजिस्ट्रार।

× × ×

जिला आयुर्वेद-मंडल उज्जैन का अधिवेशन–

उज्जैन जिला आयुर्वेद मंडल की कार्य समिति की बैठक दिनांक १५-११-५९ दिन के दो बजे नईपेठ के मध्य भारत आयुर्वेदाश्रम में आयुर्वेदाचार्य पं० वासुदेव जी मेहता अध्यक्ष उज्जैन जिला आयुर्वेद मंडल की अध्यक्षता में हुई। इसमें संगठन व सदस्यों की वृद्धि के लिए जिले के सभी स्थानीय मंडलों में दौरा करने का निश्चय किया गया। प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्थाओं पर भी निर्णय हुए। साथ ही उज्जैन में आयुर्वेदिक आतुरालय की स्थापना के लिए म० प्र० शासन द्वारा तीन लाख रुपये की धन-राशि स्वीकृत होते हुये भी उसकी स्थापना अभी तक नहीं हुई इस विलम्ब के लिए क्षोभ और इसकी पूर्ति अविलम्ब करने की व्यवस्था के लिये निवेदन करने का निर्णय किया गया। मध्य प्रदेशीय मैडीकल एसोशियन के जबलपुर में हुये अधिवेशन में उसके अध्यक्ष इन्दौर के डाक्टर बागले ने आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियों के उत्थानार्थ किये गये शासकीय व्यय को अपव्यय बताने और पद्धतियों के विपरीत हीन विचार व्यक्त किये। मंडल ने इसके प्रति क्षोभ प्रकट किया तथा इन पद्धतियों के प्रति भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू के ये शब्द कि·········· आयुर्वेद को कुछ लोग अवैज्ञानिक कहते हैं और हेय की दृष्टि से देखते हैं वे अपने ही अज्ञान का प्रदर्शन करते हैं।······ को समझकर इन पद्धतियों के विपरीत कहे शब्दों के प्रति खेद प्रकट करने की मांग की गई।

× × ×

देशनोक में आतुरालय का उद्घाटन

श्री करणी मण्डल औषधालय के अन्तर्गत पांच सीट के आतुरालय का उद्घाटन करते हुये उप स्वास्थ्य मन्त्री श्री भीखा भाई ने कहा कि आयुर्वेद एक ऐसा विज्ञान है जिसके अनुसार चलने से मनुष्य बीमार ही नहीं पड़ते। आयुर्वेद चिकित्सा प्रतिबन्धक चिकित्सा है। इसमें रोग को समूल नष्ट करने की शक्ति है। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति विश्व में सभी चिकित्सा पद्धतियों की जननी है। यहां तक कि शल्य शास्त्र का भी, जो डाक्टरी चिकित्सा पद्धति में अच्छी प्रणाली है, आधार प्राचीन भारत की चरक व सुश्रुत पुस्तकें हैं। आयुर्वेद पद्धति साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ है।

इसी अवसर पर राजस्थान आयुर्वेद विभाग के संचालक श्री प्रेमशंकर जी ने कहा कि राजस्थान सरकार आयुर्वेद की उन्नति के लिए आगामी तृतीय पंच वर्षीय योजना में २ करोड़ से अधिक का बजट प्रस्तुत कर रही है। दिनों दिन आयुर्वेद के औषधालय खोले जा रहे हैं। वैद्यों की वेतन वृद्धि के लिये विचार किया जा रहा है। प्राइवेट औषधालयों को सरकारी सहायता उदार दिल से दी जाती है। आयुर्वेद की सेवा करने वाले, आयुर्वेद में किसी भी अनुसन्धान के लिये सरकार सहायता देने को तैयार है। उन्होंने कहा कि श्री करणी मंडल औषधालय एक बहुत अच्छी संस्था

है जो गांव के नागरिकों द्वारा सञ्चालित है। इसको देखकर हमको बड़ी प्रसन्नता हुई। नगर वासियों का यह आयुर्वेद प्रेम व उनका सेवाकार्य प्रसंशनीय है।

× × ×

जिला बोर्ड वैद्य संघ का निवेदन

बिहार प्रान्त के सभी जिला बोर्डों द्वारा प्रबन्धित आयुर्वेदिक औषधालयों के वैद्य महानुभावों से साग्रह अनुरोध करता हूँ कि आयुर्वेद की वर्त्तमान दशा पर ध्यान देकर सरकार की नीति का पूर्णत: विचार कर आयुर्वेद विकास के निमित्त संगठित होकर सरकार के सामने अपनी मांग उपस्थित करें। देश के अन्य प्रान्तों में सरकारी आयुर्वेदिक औषधालयों की जो स्थिति है उसमें कहीं पीछे बिहार प्रान्त के सरकारी औषधालयों की स्थिति पायी जाती है। परम्परा के अनुसार सभी क्षेत्रों में बिहार अगुआ रहता आया है, परन्तु आयुर्वेद क्षेत्र में यह प्रान्त पिछड़ता जा रहा है। जिला बोर्डों का प्रान्तीयकरण हो गया, फिर भी इन औषधालयों की दशा में सुधार नहीं देखा जा रहा है। भिन्न-भिन्न जिला बोर्ड भिन्न-भिन्न प्रकार से औषधालयों का सञ्चालन करते हैं। कर्मचारियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से वेतन क्रम दिया जाता है, जब कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारियों को सारे प्रान्त में एक ही प्रकार के वेतन दिये जाते हैं। इन आयुर्वेदिक औषधालयों को स्थापित करने के पूर्व इनके भवन और कर्मचारियों के निवास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है जब कि ऐलोपैथिक औषधालय के संस्थापन के पूर्व ही डाक्टर और कर्मचारियों के निवास, औषधालय भवन आदि का प्रबन्ध उनके उच्च अधिकारी वर्ग करते हैं।

आपके चिल्लाने पर भी सरकार आपके सुप्रबन्ध की कोई व्यवस्था नहीं करती है यह केवल आपकी और आपके उन स्तम्भों की कमजोरी है, जिनके बल पर आज आयुर्वेद टिका हुआ है।

अत: इस सम्मानित पत्र द्वारा बिहार प्रान्त के सभी वैद्य वर्ग और आयुर्वेदाधिकारियों से प्रार्थना करता हूं कि आप भी मतभेद छोड़कर अपने अपने अधिकार और अपनी स्वाधीनता की ओर देखें और संगठित होकर कार्य करें।

—श्री भूदेव शर्मा B. I. M. S.

प्रधान मन्त्री।

जिला बोर्ड वैद्य संघ जीरादेई (सारण)।

× × ×

आयुर्वेद चिकित्सालय भवन का शिलान्यास–

भग्गू नागौर—दानवीर सेठ श्री रामनाथ तापड़िया भग्गू वाला जी निवासी की जनहितैषिणी भावनाओं से आकृष्ट होकर राजस्थान के उप स्वास्थ्य मन्त्री श्री भीखाभाई तथा डाइरेक्टर साहब श्री प्रेमशंकर जी भिषगाचार्य पधारे। शाम को श्री उपमन्त्री महोदय ने आयुर्वेद औषधालय, जो श्री तापड़िया जी के द्वारा २०,००० की लागत से बनेगा, शिलान्यास किया। इस अवसर पर भाषण देते हुए श्री उपमन्त्री महोदय ने कहा कि आयुर्वेद स्वास्थ्य का नैसर्गिक विधान है। जीवन स्वास्थ्य का आधार हित-मित और आहार बिहार है जो भारतीय आयुर्वेद शास्त्र ने मानव सभ्यता के उदय के साथ ही उद्घोषित कर विश्व मानव को जरा आमय से अब तक संरक्षण प्रदान किया है।

श्री उप मन्त्री महोदय ने सेठ जी द्वारा की जा रही लोक सेवा की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस आयोजन में नौखा के सुप्रसिद्ध समाज सेवी एवं वैद्य श्री मोहनलाल जी कोठारी, श्री गंगादत्त जी वैद्य, श्री रामप्रताप जो, श्री हनुमान दत्त जी व कान्ह महर्षि भी उपस्थित हुए। सेठ साहब की ओर से समस्त अतिथियों का हार्दिक सम्मान एवं सत्कार अर्पित किया गया।

आवश्यक सूचना—

उत्तर प्रदेश में चिकित्सा कार्य करने वाले प्रत्येक वैद्य बन्धु की सेवा में निवेदन है कि वे सरकार द्वारा आयुर्वेदीय आसवारिष्टों पर की जाने वाली प्रत्येक आपत्ति की सूचना प्रमाणसहित निम्न पते पर भेजने की कृपा करें।

—आचार्य रणवीरसिंह शास्त्री वैद्य
एम. ए. विद्याभास्कर
प्रधान मन्त्री—जिला वैद्य सभा
इन्द्र औषधालय, नाई की मण्डी, आगरा।

× × ×

भूल सुधार—

अक्टूबर १९५६ के अङ्क में पृष्ठ १०१७ पर प्रकाशित पंचामृत वटी का मात्रा आदि विवरण निम्न प्रकार पाठक समझें—

—जायफल, जावित्री, लौंग, केशर, अकरकरा—पांचों १-१ तोला और मकरध्वज ३ माशा। पान के रस में १२ घण्टे घुटाई करके मूंग प्रमाण गोली बनावें।

डिप्थीरियापेन्ट में रीठासत—

निर्माण विधि-रीठे को गर्म पानी में डालकर झाग उठावें और उस झाग को पृथक् एक पात्र में रखते जांय। इसे आग पर या धूप में पकाकर घनसत्व निकाल लें।

× × ×

प्रकाशित हो गई—

१—व्याधि विज्ञान (प्र. भाग) लेखक—डा. आशानन्द पञ्चरत्न मूल्य १०)
२—भावप्रकाश निघण्टु हरीतक्यादि—लेखक—श्री पं. विश्वनाथ द्विवेदी मू० ७)
३—पेटेंट प्रेस्क्राइबर—लेखक—डा० रमानाथ द्विवेदी मूल्य ७)
४—चरक संहिता (प्रथम भाग,)—टीकाकार—जयदेव विद्यालंकार मू० १५)

—ये पुस्तकें समाप्त हो गई थीं, अब पुनः छपकर तैयार हैं।

प्राप्त स्थान—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़)

× × ×

नवीन प्रकाशन—

१—इञ्जैक्शन—लेखक डा० शिवनाथ खन्ना मू. १०)
२—सचित्र गर्भरक्षा तथा शिशुपालन—लेखक डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा ४।।)
३—भेल संहिता—संस्कर्ता आचार्य गिरजादयालु शुक्ल—मू० १०)

प्राप्त स्थान—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़

× × ×

प्रश्न—

१—किसी विद्वान चिकित्सक ने डा० डीशेन हैदराबाद की हर्बो मिनरल औषधियों द्वारा चिकित्सा करके अनुभव प्राप्त किया हो तो अपने अनुभव विस्तार पूर्वक लिखें।

—चिकित्सक पूर्णचन्द (सोम) आलमपुर
पो. सुवावाला—शेरकोट (बिजनौर)

२—रक्त एवं कृष्णवर्ण के गन्धक का प्राप्त स्थान यदि किसी को मालूम हो तो अवश्य सूचित करें।

× × ×

शोक समाचार—

१—अन्तरिम जिला परिषद जालौन के प्रख्यात चिकित्सक पं० दयाशङ्कर शास्त्री इटौरा का २४ नवम्बर १९५६ को हृदयगति रुकने के कारण देहावसान हो गया। जिले की जनता को अत्यधिक शोक हुआ। ईश्वर दिवंगत आत्मा को शांति एवं दुखी परिवार को धैर्य प्रदान करे।

२—शाढ़ौरा (गुना) म. प्र. के प्रसिद्ध हकीम श्री करीम खां का देहावसान ता० २४-११-५६ को हृदयगति रुकने से होगया। आप वयोवृद्ध अनुभवी यूनानी चिकित्सक थे। ईश्वर दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं कुटुम्बियों को दुःख सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

"मार्तण्ड के आयुर्वेदिक इन्जेक्शन"

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स बड़ौत भारतवर्ष में एक मात्र इलेक्ट्रिक ओटोमेटिक मशीनों तथा आधुनिकतम वैज्ञानिक यन्त्रों से सुसम्पन्न (एयर-कन्डिशन्ड) वातानुकूलित लेबोरेट्री है जिसमें सरकार द्वारा प्राप्त लाईसेन्स के आधीन सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अनुभवी केमिस्टों की देख-रेख में आशुगुणकारी सर्वथा निरापद आयुर्वेदिक इन्जेक्शनों का निर्माण विशुद्ध वैज्ञानिक रीति से होता है। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय क्वाथों के टिंचर्स तथा पूर्ण शास्त्रीय ढंग से रस, रसायन, भस्म आदि का भी निर्माण होता है। कृपया रिसर्च, सचित्र साहित्य तथा "मार्तण्ड मासिक पत्रिका" की एक प्रति मुफ्त मंगाइये।

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत

S. S. Rly. (उ. प्र.)

भारत का प्रसिद्ध चिकित्सक मासिक पत्र

फार्मेसी समाचार

जो कि अब तक केवल उर्दू तथा पंजाबी भाषा में छप रहा था अब हिन्दी भाषा में भी प्रकाशित होना आरंभ हो गया है।

चन्दा वार्षिक ६) नमूना मुफ्त

फार्मेसी समाचार लुधियाना

शारीरिक चित्र

चार प्रकार के सुन्दर चित्र मंगाकर डिस्पेंसरी में लगाइयेगा।

मूल्य–चारों चित्रों का १६)

पता--धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़

बनारस में

बनारस शहर तथा निकटवर्ति जनता को हमारी औषधियां, पुस्तकें आदि सुविधापूर्वक मिल सकें इसलिये हमने अपनी सोल एजेंसी निम्न स्थान पर स्थापित कर दी है आशा है हमारे ग्राहक इस एजेंसी से अवश्य लाभ उठावेंगे।

पता—

श्री ब्राह्मी भण्डार

१४।११२ टेढ़ीनीम, बनारस

कोटा में

कोटा शहर एवं निकटवर्ति जनता को हमारी औषधियां, पुस्तकें आदि सुविधापूर्वक मिल सकें इस लिए निम्न स्थान पर हमने सोल एजेंसी स्थापित करदी है। आशा है हमारे ग्राहक इस एजेंसी से अवश्य लाभ उठावेंगे।

–पता–

शाह गैंदीलाल नाथूलाल गोइल

गांधी चौक, कोटा।

शीत ऋतु में सेवन योग्य

पूर्ण विश्वस्त आशुफल प्रद

रस रसायन भस्म

धन्वन्तरि कार्यालय की रस रसायन भस्में अपनी उत्तमता, गुणकारिता, था उचित मूल्य के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। सैकड़ों-हजारों वैद्य कविराज तथा आयुर्वेद मी चिकित्सा कार्य में इनका व्यवहार करते हैं। आप भी इनको सेवन करके तथा पने रोगियों को कराकर लाभ उठावें।

० कस्तूरी भैरव रस	१ तो.	२२)	१ मा.	२)	मुक्ताभस्म नं. १	१ तोला	१००)	१ माशा	८॥)
स्तूरी भैरवरस	,,	१६)	,,	१॥)	लोहभस्म ३०० पुटी	,,	८)	,,	॥≡)
मार कल्याण रस	,,	४०)	,,	३॥)	स्वर्णभस्म सर्वोत्तम	,,	२००)	,,	१७॥)
तुर्मुख चिन्तामणिरस	,,	२२॥)	,,	२)	स्वर्ण पर्पटी नं. १	,,	३२)	,,	३)
मङ्गलरस	,,	३६)	,,	३—)	वृ. योगराज गूगल	,,	१—)		—
ल पञ्चामृतरस	,,	१४)	,,	१।)	त्रिभुवनकीर्तिरस	,,	॥—)		—
विषमज्वरांतकलोह	,,	१७)	,,	१॥)	ब्राह्मी वटी नं. १	१ तोला	४२)	१ माशा	३॥)॥
न्तकुसुमाकर रस	,,	३३)	,,	३)	मृगांकपोटली रस	,,	६६)	,,	८—)
वात चिन्तामणिरस	,,	३३)	,,	३)	मधुमेहान्तकरस		१० गोली		८॥)
चन्द्रोदय नं. १	,,	८०)	,,	६॥।—)	महालक्ष्मी विलासरस	१ तो.	१०)	१ माशा	॥।=)
मकरध्वज नं. १	,,	४८)	,,	४।—)	योगेन्द्ररस	,,	४८)	,,	४—)
तचन्द्रोदय	,,	४८)	,,	४।—)	रसराजरस	,,	३०)	,,	२॥)॥
ीर पन्नगरस नं. १	,,	३०)	,,	२॥—)	श्वासचिन्तामणिरस	,,	२०)	,,	१॥।)
कभस्म १००० पुटी	,,	४०)	,,	३।=)	स्वर्ण बसन्तमालती नं. १		३३)	,,	३)
,, १०० पुटी	,,	३—)	,,	।—)	सर्वांगसुन्दर रस	,,	२४)	,,	२—)
रसम नं. १ (वंगेश्वर)	,,	२।)	,,	≡)॥	सूतशेखर रस	,,	१७)		१॥)

—(०) से अधिक मूल्य की औषधियां मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।
अन्य औषधियों के लिए सूचीपत्र मंगालें।

022663

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

कासारि रियायती

१ ननवरी १९६० से ३१ जनवरी १९६० तक रियायत

'कासारि' सभी प्रकार की खांसी एवं श्वास-यंत्र की अन्य बीमारियों में सद्यःगुणप्रद प्रमाणित हुई है। इसके गुणों के कारण इसका प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है। अधिकाधिक प्रचार की कामना से हम अपने ग्राहकों, चिकित्सकों तथा पीड़ितों के लिये यह रियायत कर रहे हैं। आशा है आप भी इससे अवश्य लाभ उठावेंगे। कासारि बांसापत्र क्वाथ से निर्मित शर्बत में पिप्पली, कण्टकारी आदि कासनाशक द्रव्यों को सम्मिश्रित कर बनाया जाता है तथा यह शर्बत अन्य अनेक रोगों में रोगनाशक औषधियों के अनुपान रूप में शहद के स्थान पर भी प्रचुरता से प्रयोग किया जाता है। मूल्य कम, पैकिंग सुन्दर तथा गुणप्रद होने से इसकी बिक्री शीघ्र होती है —

मूल्य—१ औंस (५ मात्रा) का पैकिंग	।=)	कमीशन कम करके	१ दर्जन का ३।=) नेट
४ औंस (२० मात्रा) ,,	१)	,, ,,	१ दर्जन का ९) नेट
१६ औंस (८० मात्रा) ,,	३॥)	,, ,,	१ दर्जन का ३१॥) नेट

रियायत—एक प्रकार का पैकिंग—

१ दर्जन मंगाने पर १ शीशी फ्री

३ दर्जन मंगाने पर ४ शीशी फ्री

१ ग्रौस मंगाने पर १८ शीशी फ्री

अन्य सुविधायें—

१—२५) से अधिक का आर्डर मिलने पर पैकिंग-व्यय, स्टेशन पहुँचाई, बिल्टी खर्च नहीं लिया जायगा। रेल किराया ग्राहक को देना होगा।

२—४०) से अधिक का आर्डर होने पर आपके स्टेशन पर मालगाड़ी से फ्री डिलीवरी दिया जायगा।

३—१००) से अधिक का आर्डर होने पर साथ में टीन का एक बोर्ड तथा आपके नाम के ५०० विज्ञापन वितरण करने के लिए भेजे जांयगे।

नियम—१-यह रियायत ३१ जनवरी के बाद हर्गिज नहीं दी जायगी।
२-आर्डर के साथ चौथाई रुपया पेशगी भेजना अत्यावश्यक है।
३-कासारि का पैकिंग बजनी होता है अतएव रेल से ही भेजी जा सकती है। रेलवे स्टेशन का नाम आर्डर में स्पष्ट लिखें।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

Checked
1999-2000